भूमिका

"वेदानां सामवेदोऽस्मि" कहकर गीता उपदेशक ने सामवेद की गरिमा को प्रकट किया है। साथ ही इस उक्ति के रहस्य की एक झलक पाने की ललक हर स्वाध्यायशील के मन में पैदा कर दी है। यों तो वेद के सभी मंत्र अनुभूतिजन्य ज्ञान के उद्घोषक होने के कारण लौकिक एवं आध्यात्मिक रहस्यों से लबालब भरे हैं, फिर सामवेद में ऐसी क्या विशेषता है, जिसके कारण गीता ज्ञान को प्रकट करने वाले ने यह कहा कि 'वेदों में मैं सामवेद हूँ।'

यहाँ स्मरण रखने योग्य तथ्य यह है कि ऋषियों ने 'वेद' सम्बोधन किसी पुस्तक विशेष के लिए नहीं किया है, उसका अर्थ है दिव्य साक्षात्कार से उद्भूत ज्ञान। इस आधार पर 'वेद' कोई पुस्तक नहीं, ज्ञान की एक विशिष्ट परिष्कृत धारा है, तो सामवेद को भी मंत्रों का एक संग्रह न कहकर ज्ञान की अभिव्यक्ति या उपयोग की एक विशिष्ट विधा ही कहा जा सकता है। इस दृष्टि से 'वेदानां-सामवेदोऽस्मि' का भाव यह निकलता है कि वेद की सामधारा या विधा को समझ लेने से 'मुझे' (परमात्म-चेतना को) भी समझा जा सकता है।

यहाँ ज्ञान के साथ भावना के संयोग का महत्त्व समझाया गया है। यह सत्य है कि ज्ञान दृष्टि से ईश साक्षात्कार किया जा सकता है, किन्तु भावना के बिना ज्ञान दृष्टि भी अपूर्ण ही रहती है। यह सत्य है कि 'भावे हि विद्यते देवः तस्मात् भावो हि कारणम्' अर्थात् भावना ही देवों का निवास है, अतः उनके साक्षात्कार का मुख्य आधार भावना ही है; किन्तु भावना एक उफान है, उसे भटकन से बचाकर दिशाबद्ध तो, ज्ञान ही-विवेक ही करता है। इसीलिए ज्ञान एवं भावना का युग्म ही ईश साक्षात्कार का सुनिश्चित आधार बनता है।

संत तुलसीदास ने इसीलिए श्रद्धा एव विश्वास के रूप में भवानी-शंकर की वंदना करते हुए कहा है कि इनके योग के बिना सिद्ध पुरुष भी अपने अंतःकरण में विराजमान ईश तत्त्व का साक्षात्कार नहीं कर पाते —

> भवानीशंकरौ वन्दे
> श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
> याभ्यां विना न पश्यन्ति
> सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्।
> — मानस

ज्ञान की परिपक्वता से विश्वास उपजता है तथा भावना की परिपक्वता श्रद्धा है। ज्ञान और भावना के संयोग से ईश से साक्षात्कार संभव है, यह तथ्य निर्विवाद है। सत्य से ईश्वर का बोध हो सकता है— यह मानने वाले अगले चरण में यह भी अनुभव करते हैं कि सत्य ही ईश्वर है; इसी तरह यह अनुभवगम्य है कि परिष्कृत ज्ञान और उत्कृष्टतम भावना का संयोग ईश्वरत्व ही है।

वेद है ज्ञान, साम है गान। गान का सीधा-सीधा सम्बन्ध भाव-संवेदना से है। अनुभूति की अभिव्यक्ति में शब्दों की सामर्थ्य छोटी पड़ जाती है। वेद अनुभूतिजन्य ज्ञान हैं, उन्हें व्यक्त करने में भी शब्द शक्ति अपर्याप्त है। ऋषि ने अनुभूतिजन्य ज्ञान को शब्दों में व्यक्त करने का प्रयास किया, किन्तु जब देखा कि पूरे प्रयास के बाद भी अभिव्यक्ति अनुभूति के स्तर की नहीं बन सकी, तो उसने ईमानदारी से कह दिया 'नेति-नेति'-'यह बात पूरी नहीं हो सकी'।

शब्दों द्वारा अभिव्यक्ति की तीन धाराएँ हैं—गद्य, पद्य एवं गान। ज्ञान की किसी भी धारा को इन्हीं माध्यमों से व्यक्त किया जाता रहा है। कोई भी देश-काल हो, अभिव्यक्ति के माध्यम तो यही हैं।

वेद का-ज्ञान का मूल स्रोत ऋषियों ने ईश्वर को ही माना है। ज्ञान की सार्थकता-पूर्णता तभी है, जब वह पुनः अपने उद्‌गम तक जा पहुँचे। ईश्वर तक पहुँचने के लिए उसे भावना का योग चाहिए। भाषा को भावपूर्ण बनाने के प्रयास में ही मंत्र बने। गद्य की अपेक्षा पद्य में भाव-संयोग एवं उभार की क्षमता अधिक पाई गई। पद्य को भी जब गान विद्या से जोड़ा गया, तो भावना का प्रवाह अधिक पूर्णता से खुला— इस तथ्य को सभी जानते हैं।

जब वेद के पद्यबद्ध मंत्रों को गान विद्या से अनुप्राणित किया गया, तो 'सामवेद' बन गया। मानवीय क्षमता के अंतर्गत ज्ञान और भावना का सर्वोत्कृष्ट संयोग होने से इसे सर्वश्रेष्ठ प्रयोग कहना सब प्रकार युक्तिसंगत है।

भाव विज्ञान एवं गान विद्या

सृष्टि क्या है ? सृजेता की आत्माभिव्यक्ति ही तो है। भावमय परमात्मा द्वारा रची गई यह सृष्टि भी भावमय ही है। अंतरंग जीवन हो या बहिरंग, हम उसमें अपनी भावनाओं को ही प्रतिबिम्बित या प्रतिफलित होते देखते हैं। मन की कल्पनाओं, बुद्धि के विचारों और कर्म की हलचलों के ताने-बाने भावनाओं के आधार पर ही बनते-बदलते रहते हैं।

तरंगें चुम्बक की हों या विद्युत् की, वे अपना चक्र (सर्किट) पूरा करती हैं। भाव तरंगों के साथ भी ऐसा ही होता है। जिस तरह की भाव तरंगें हम विश्व चेतना में छोड़ते हैं, उसी के अनुरूप भाव तरंगें किसी न किसी माध्यम से हम तक पहुँचती रहती हैं। ऋषियों ने यह विज्ञान समझा और सिद्ध किया था, इसीलिए वे विश्व-व्यापी भाव-प्रवाहों को परिष्कृत करते रहने में सफल होते रहते थे। आज के जमाने में भी मनोवैज्ञानिकों ने इस तरह के कुछ प्रयोग सम्पन्न किये, जिससे भाव-प्रवाहों के प्रतिफलित होने की बात प्रमाणित होती है। उदाहरण के लिए एक प्रयोग के दौरान मनोविद् लारेंस डी० वैलेस ने तनाव, आशंका, भयजनित पीड़ाओं से ग्रस्त कुछ ऐसे व्यक्तियों को लिया, जिनका संसार दुःख से भरा था। उन्हें सामूहिक रूप से इस भाव में विभोर होने को कहा गया—समूची सृष्टि शान्ति-प्रेम व आनन्द की तरंगों से भरी है। ये तरंगें स्वयं में समा रही हैं और व्यक्तित्व को इन्हीं भावों से भर रही हैं। धीरे-धीरे स्वयं के अस्तित्व के रोम-रोम से यही भाव निकलकर सारे समाज में फैल रहे हैं। इन भावों की गहराई में स्वयं को समाहित करने में शुरुआत में थोड़ी कठिनाई हुई, ईर्ष्या-द्वेष की विक्षुब्धता एवं मन के बिखराव ने बाधा डाली, किन्तु तीन-चार दिनों में सभी को इसमें रस आने लगा। स्वयं में परिवर्तन की भी अनुभूति हुई। इस प्रयोग में लिये गये पचास व्यक्तियों ने धीरे-धीरे जीवन रस को अनुभव किया। जिस जिन्दगी से वे निराश हो गये थे, उसमें अमृत-रस- वर्षण की अनुभूति हुई।

लारेन्स डी० वैलेस ने अपने इन्हीं प्रयोगों की शृंखला में एक और प्रयोग किया। इसमें समूह के स्थान पर व्यक्ति का चयन किया गया। ऐसे व्यक्ति, जो किसी व्यक्ति विशेष से आशंकित अथवा भय-ग्रस्त थे, इनसे उपर्युक्त भाव में तल्लीन होने के साथ यह निर्देश दिया गया कि स्वयं के अस्तित्व से विकसित होकर ये भाव उस व्यक्ति विशेष में प्रवेश कर रहे हैं। उसका व्यक्तित्व घृणा-विद्वेष के स्थान पर शान्ति-प्रेम-आनन्द से भर रहा है। इस प्रयोग के परिणाम उन्हें प्रयोग में लिए गये व्यक्तियों के मन की समर्थता के क्रम में प्राप्त हुए। जिस व्यक्ति का मन जितना अधिक समर्थ था, उसने उतनी ही गहनता से इन भावों को सम्प्रेषित किया। जिस व्यक्ति में सम्प्रेषण किया गया था, उसने स्वयं की भावनाओं में परिवर्तन की अनुभूतियाँ कीं। कई बार तो ये अनुभव स्थायी प्रेम में बदल गये।

इन सफलताओं के क्रम में वैलेस ने एक

आयाम विकसित किया । इस क्रम में लगभग एक मनःस्थिति के भाव-सम्पन्न लोगों को लेकर कई शहरों में स्थान-स्थान पर शान्ति-सभाओं का आयोजन किया, जिसमें प्रयोग- कर्त्ताओं ने शान्ति-प्रेम, आनन्द की भाव-तरंगों को धारण- सम्प्रेषण का प्रयोग गहरी तल्लीनता-तन्मयता के साथ किया। प्रयोग के पहले उन स्थानों की अपराध दर- आत्महत्या दर, जैसे आँकलन किये गये थे, बाद में इनके घटते क्रम की सुखद अनुभूति हुई-। इन सभी प्रयोगों में वैज्ञानिक विधि का पूरा-पूरा पालन किया गया। परिणामों का आँकलन भी सांख्यकीय गणना प्रणाली से किया गया।

उक्त प्रयोग ऋषियों द्वारा किये गये प्रयोगों की तुलना में चाहे जितने हल्के कहे जाएँ, किन्तु उनसे अब भी भाव- प्रवाहों की क्षमता तो, प्रमाणित हो ही जाती है। प्रकृति की इस व्यवस्था का लाभ आज भी इस विद्या को विकसित करके उठाया जा सकता है।

भावों को उभारने और सम्प्रेषित करने में गायन का महत्त्व हमेशा रहा है और आज भी है। वेद ने भी इसीलिए उसका उपयोग विशेषज्ञता के साथ किया है। अभिव्यक्ति के तीन माध्यमों (१) गद्य (२) पद्य और (३) गायन में, गायन को भाव-विद्या में सबसे अग्रणी देखकर उसे विशेष महत्त्व दिया गया। ज्ञान की अभिव्यक्ति की उक्त तीन विधाओं के कारण वेद को तीन प्रवाहों- युक्त "वेद त्रयी" कहा गया। यह विभाजन इन तीन विधाओं के आधार पर है, न कि पुस्तकाकार संकलनों के आधार पर। पुस्तकाकार संकलन विषयानुसार भले ही चार भागों में किये गये हैं, किन्तु वे इन्हीं तीन धाराओं के अंतर्गत आ जाते हैं।

भाषा कोई भी हो, उसमें अभिव्यक्ति के तीन ही विभाग हैं-गद्य, पद्य और गान। यथार्थ में कहा जाय, तो यह जाने-अनजाने वैदिक परम्परा का अनुगमन ही है। यजुर्वेद में जो पादबद्ध मंत्र ऋग्वेद या अथर्ववेद से लिये गये हैं, वे पद्य के समान नहीं बोले जाते, बल्कि गद्य की तरह बोले जाते हैं अर्थात् वे ही मंत्र ऋग्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में पद्य के अनुसार छंदों में बोले जाते हैं और वे ही यजुर्वेद में बोलने के समय गद्य के समान बोले जाते हैं। पाठ की इस परिपाटी का निर्वाह अतिप्राचीन समय से होता आया है।

त्रयी हो या चतुष्टयी, वेद मंत्रों की गणना में कोई अंतर नहीं। वेदत्रयी में भाषा की रचना प्रमुख है और वेद चतुष्टयी में प्रतिपाद्य विषय की प्रधानता है। इसको इस ढंग से भी समझ सकते हैं—वेदत्रयी अर्थात्—पद्य मंत्र, गद्य मंत्र एवं गान के मंत्र। वेद चतुष्टयी-अर्थात् गुण वर्णन के मंत्र, यज्ञ कर्म के मंत्र, गान के मंत्र और ब्रह्म ज्ञान के मंत्र।

इन सबमें भाव-तरंगों के रहस्यमय दिव्य प्रयोगों को सम्पन्न करने वाले गान के मंत्रों को अपेक्षाकृत कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। तभी इसके प्रयोग प्रत्येक शुभ कर्म के प्रारम्भ में करने का स्पष्ट निर्देश है। बात भी सही है, पद्य, गद्य और गायन में से मन पर "गायन" का विशेष प्रभाव पड़ता है। इसका अनुभव हम सबको सामान्य जीवन क्रम में भी होता रहता है। गायन से, पीड़ित हृदय को शान्ति और संतोष मिलता है। इससे मनुष्य की सृजन-शक्ति का विकास और आत्मिक प्रफुल्लता बढ़ती है। सच कहें, गायन की अमूल्य निधि देकर परमात्मा ने मनुष्य की पीड़ा को कम किया है। मानवीय गुणों में प्रेम और प्रसन्नता को बढ़ाया है।

शास्त्रकारों ने स्पष्ट स्वरों में घोषणा की है—"स्वरेण सँल्लयेद्योगी" (त्रि०ता०५.७) स्वर साधना के द्वारा योगी अपने को तल्लीन करते हैं। एकाग्र की हुई मनःशक्ति को विद्याध्ययन से लेकर जीवन के किसी भी क्षेत्र में लगाकर चमत्कारी सफलताएँ अर्जित की जा सकती हैं। इसलिए यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि इससे मनुष्य की क्रिया शक्ति बढ़ती और आत्मिक आनन्द की अनुभूति होती है। वेद के प्रणेता ऋषि-महर्षियों ने इस तत्त्व की अनुभूति बहुत पहले ही कर ली थी, तभी तो उन्होंने अपने शोध-निष्कर्ष में कहा-"अभि स्वरन्ति

भुवनस्य निसते"। (ऋ० ९.५८.१३) अर्थात्—अनेक मनीषी विश्व के महाराजाधिराज भगवान् की ओर संगीतमय स्वर लगाते हैं और उसी के द्वारा उन्हें प्राप्त करते हैं।'

एक अन्य मंत्र में बताया है कि ईश्वर प्राप्ति के लिए भक्ति-भावनाओं के विकास में गायन का योगदान असाधारण है— "स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः....।"(ऋ० ८.३३.२) अर्थात् " हे शिष्य ! तुम अपने आत्मिक उत्थान की इच्छा से मेरे पास आये हो। मैं तुम्हें ईश्वर का उपदेश देता हूँ। तुम उसे प्राप्त करने के लिए संगीत के साथ उसे पुकारोगे, तो वह तुम्हारी हृदय गुहा में प्रकट होकर अपना प्यार प्रदान करेगा।"

संगीत के दृश्य-अदृश्य प्रभावों के अनुसंधान में रत ऋषियों को ऐसी चमत्कारी शक्तियाँ-सिद्धियाँ और अध्यात्म का इतना विशाल क्षेत्र उपलब्ध हुआ, जिसे वर्णन करने के लिए एक पृथक् वेद की रचना करनी पड़ी। सामवेद में भगवान् की संगीत शक्ति के ऐसे रहस्य प्रतिपादित और पिरोये हुए हैं, जिनका अवगाहन कर मनुष्य अपनी आत्मिक शक्तियों को तुच्छ से महान्, सूक्ष्म से विराट् बना सकता है, विश्वात्मा से मिल सकता है। अब तो पाश्चात्य विद्वानों की मान्यताएँ भी उनके समर्थन में मुखर हो उठी हैं। उनके कथन से, जो निष्कर्ष मिलते हैं, उनसे यही साबित होता है कि यदि मानवीय गुणों और आत्मिक आनन्द को जीवित रखना है, तो मनुष्य स्वयं को गायन से जोड़े रहे। उन्होंने संगीत की तुलना प्रेम से की है। दोनों ही समान उत्पादक शक्तियाँ हैं। इन दोनों का प्रकृति और जीवन दोनों पर चमत्कारी प्रभाव पड़ता है। संगीत आत्मा की उन्नति का सबसे अच्छा साधन है, इसलिए हमेशा वाद्य यंत्र के साथ गाना चाहिए। यह पाइथागोरस की मान्यता थी, पर डॉ० मैक फेडेन ने अकेले गायन को भी प्रभावोत्पादक और लाभकारी बताया है। इस सम्बन्ध में कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में कहें तो-"स्वर्गीय सौन्दर्य का कोई साकार रूप और सजीव प्रदर्शन है, तो उसे संगीत ही होना चाहिए।"

अलग-अलग प्रकार की सम्मतियाँ, वस्तुतः अपनी-अपनी तरह की विशेष अनुभूतियाँ हैं, अन्यथा गायन में शरीर, मन व आत्मा तीनों को बलवान् बनाने वाले तत्व परिपूर्ण मात्रा में विद्यमान हैं। यही कारण था— ऋषियों ने विशिष्ट मंत्रों का संकलन कर गायन की पद्धति विकसित की। आधुनिक विद्वान् भी इस तथ्य को स्वीकार करने लगे हैं कि समस्त स्वर, ताल, लय, छंद, गति, मंत्र, स्वर-चिकित्सा, राग, नृत्य, मुद्रा, भाव आदि सामवेद से ही निकले हैं।

संगीत रत्नाकर में इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए नाद को २२ श्रुतियों में विभक्त किया गया है। ये श्रुतियाँ कान से अनुभव की जाने वाली विशिष्ट शक्ति तरंगें हैं। इसका प्रभाव मानवीय काया और चेतना पर होता है। इन बाईस शब्द श्रुतियों के नाम हैं-(१) तीव्रा (२) कुमुद्वति (३) मंदा (४) छंदोवती (५) दयावती (६) रंजनी (७) रतिका (८) रौद्री (९) क्रोधा (१०) वज्रिका (११) प्रसारिणी (१२) प्रीति (१३) मार्जनी (१४) क्षिति (१५) रक्ता (१६) सांदीपिनी (१७) अलापिनी (१८) मदन्ती (१९) रोहिणी (२०) रम्या (२१) उग्रा और (२२) क्षोभिणी— ये बाईस ध्वनि शक्तियाँ ही सप्त स्वरों के रूप में सम्बद्ध हैं। यह विभाजन इस प्रकार है—

षड्ज— (स) तीव्रा, कुमुद्वति, मन्दा, छन्दोवती।
ऋषभ— (रे) दयावती, रंजनी, रतिका।
गान्धार—(ग) रौद्री, क्रोधा।
मध्यम—(म) वज्रिका, प्रसारिणी, प्रीति, मार्जनी।
पंचम—(प) क्षिति, रक्ता, सांदीपिनी, अलापिनी।
धैवत—(ध) मदन्ती, रोहिणी, रम्या।
निषाद—(नि) उग्रा, क्षोभिणी।

इन बाईस श्रुतियों को गायन के द्वारा उत्पन्न होने वाले भौतिक एवं चेतनात्मक प्रभाव ही समझना चाहिए। ओषधियाँ जिस प्रकार मूल द्रव्यों के रासायनिक सम्मिश्रण से उत्पन्न होने वाले अतिरिक्त प्रभाव के कारण विभिन्न रोगों पर अपना प्रभाव डालती हैं। उसी प्रकार इन बाईस शक्तियों का

उनके सम्मिश्रण का वस्तुओं तथा प्राणियों पर प्रभाव पड़ता है। इस सारी शोध का मूल स्रोत सामवेद ही है। वैदिक काल में इस रहस्यमय विज्ञान के ज्ञाता, मंत्र गायन, भाव मुद्राओं के और रसानुभूतियों के आधार पर अपने अन्तराल में दबी हुई शक्तियों को जगाते थे और सम्पर्क में आने वाले प्राणि- मात्र की व्यथा-वेदना हरते थे । जड़-चेतन प्रकृति को प्रभावित करके वे अवांछनीय परिस्थितियों को बदलकर, अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने में चमत्कारी सफलता प्राप्त करते थे।

पाश्चात्य वैज्ञानिकों के शोध-निष्कर्ष

ऋषियों द्वारा निर्धारित सूत्रों को वर्तमान प्रयोगों में खरा उतरते देखकर आधुनिक वैज्ञानिक सुखद आश्चर्य से भर उठते हैं । पिट्सवर्ग की एक कम्पनी अल्कोआ के डायरेक्टर राल्फ लारेंस हॉय और उनकी पत्नी ने पहली बार अपने संगीत प्रयोग उस महिला पर किए, जो रुधिर नाड़ियों की किसी भयंकर बीमारी से पीड़ित रोग शय्या पर पड़ी मौत की राह देख रही थी । पति-पत्नी उसके पास गये । पति ने वायलिन उठाया, पत्नी ने पियानों पर संगति दी । धीरे-धीरे संगीत लहरियाँ उस क्रंदन भरे कमरे में गूँजने लगीं । रोगिणी को ऐसा लगा जैसे कष्ट-पीड़ित अंगों पर कोई हल्की-हल्की मालिश कर रहा है। मंत्र-मुग्ध की तरह वे उन स्वर लहरियों का आनन्द लेती रहीं और उसी में आत्मविभोर हो, सो गईं । जगने पर उन्होंने अपने मन में विलक्षण शान्ति और विश्राम की अनुभूति की । उन्हें रोग में बड़ा आराम मिला। उससे प्रभावित होकर पति-पत्नी ने कई तरह के टेप तैयार कराकर उस महिला को भिजवाये । टेप पाकर तो, जैसे उसे अमृत पाने का अनुभव हुआ । वह नियमित रूप से उन्हें सुना करती । जब स्वर समाप्त होते, तो लगता शरीर के रोगी परमाणु शरीर से निकल गये हैं और वह हल्कापन अनुभव कर रही है। कुछ दिनों में वह पूर्ण स्वस्थ हो गई। राल्फ लारेंस हॉय इस घटना से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने रोगियों के लिए संगीत चिकित्सा की एक विधा ही खोल दी । 'आर फार आर' (रिकॉर्डिंग फार रिलैग्जेशन, रेस्पान्स एण्ड रिकवरी) नाम से यह प्रतिष्ठान आज सारे अमेरिका और योरोप में छाया हुआ है।

इंग्लैण्ड के डॉ० मीड और अमेरिका के एडवर्ड पोडी लास्की ने अपने लम्बे शोध का निष्कर्ष यह बताया कि संगीत से नाड़ी संस्थान में एक विशेष प्रकार की उत्तेजना उत्पन्न होती है, जिसके सहारे शरीरगत मल-विसर्जन की शिथिलता दूर होती है। मल-मूत्र, स्वेद, कफ आदि मल जब मंद गति से रुक-रुक कर निकलते हैं, तो ही विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं । मलों का विसर्जन ठीक तरह से होने से रोग की सम्भावनायें ही समाप्त हो जाती हैं । डॉ० वाल्टर एच० वालसे के अनुसार जुकाम, पीलिया, अपच, यकृत-शोथ, रक्तचाप, जैसे रोगों की स्थिति में शास्त्रीय गायन का अच्छा प्रभाव पड़ता है। जर्मनी के मनोरोग चिकित्सक डॉ० वाल्टर क्यूग के अनुसार मनोविकारों के निवारण में संगीत को सफल उपचार के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

गायन-वादन का प्रभाव मनुष्यों तक ही सीमित नहीं है, वरन् उसे पशु-पक्षी भी उसी चाव से पसंद करते और प्रभावित होते हैं । संगीत सुनकर प्रसन्नता व्यक्त करना और उसका आनन्द लेने के लिए ठहरे रहना यह सिद्ध करता है कि उन्हें रुचिकर और उपयोगी प्रतीत होता है। मनुष्येतर प्राणियों की जन्म-जात प्रवृत्ति यही होती है कि उनकी स्वाभाविक पसंदगी उनके लिए लाभदायक ही सिद्ध होती है।

पशु मनोविज्ञानी डॉ० जार्जकर विल्स ने छोटे जीव-जन्तुओं की शारीरिक और मानसिक स्थिति पर पड़ने वाले प्रभावों का लम्बे समय तक अध्ययन किया है। घर में बजने वाले पियानों की आवाज

सुनकर चूहों को अपने बिलों में शान्तिपूर्वक पड़े हुए उन्होंने कितनी ही बार देखा है । बेहिसाब उछल-कूद करने वाली चूहों की चांडाल-चौकड़ी मधुर वाद्ययंत्र सुनकर किस प्रकार मुग्ध होकर चुप हो जाती है, यह देखते ही बनता है । दुधारू पशु को दुहते समय यदि संगीत की ध्वनि होती रहे, तो वे अपेक्षाकृत अधिक दूध देते हैं ।

घरेलू कुत्ते संगीत को ध्यानपूर्वक सुनते और प्रसन्नता व्यक्त करते पाये जाते हैं । वन विशेषज्ञ जार्ज ह्वेस्हे ने अफ्रीका के कांगों देश में चिम्पाजी तथा गुरिल्ला वनमानुष को संगीत के प्रति सहज ही आकर्षित होने वाली प्रकृति का पाया । उन्होंने इन वानरों से संपर्क बढ़ाने में मधुर ध्वनि वाले टेपरिकॉर्डरों का प्रयोग किया और उनमें से कितनों को ही पालतू जैसी स्थिति का अभ्यस्त बनाया । नार्वे के विज्ञानी डॉ० हडसन ने शहद की मक्खियों को अधिक मात्रा में शहद उत्पन्न करने के लिए संगीत को अच्छा उपाय सिद्ध किया है । अन्य कीड़ों पर भी वाद्ययंत्रों के भले-बुरे प्रभावों का उन्होंने विस्तृत अध्ययन किया और पाया कि छोटे-छोटे कीड़े भी संगीत से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते ।

कटक और दिल्ली के कृषि-अनुसंधान केन्द्रों में भी ऐसे प्रयोग और परीक्षण हुए हैं और यह देखा गया है कि संगीत के प्रभाव से जीव-जन्तुओं की भाँति पौधे भी मुक्त नहीं हैं । कोयंबटूर के सरकारी कॉलेज में इस तरह के परीक्षण सम्पन्न हुए हैं । विदेशों में हुए अनुसंधानों से भी यह पता चलता है कि राग और रागिनियों का प्रभाव गन्ना, धान, शकरकंद, नारियल आदि पर भी पड़ता है । कृषि विज्ञानी डॉ० टी० एन० सिंह ने दस वर्ष तक एक बाग को दो हिस्सों में बाँटकर एक परीक्षण किया । एक हिस्से के पौधों को कु० स्टेला पुनैया वायलिन बजाकर गीत सुनातीं, दूसरे को खाद, पानी, धूप की सुविधाएँ तो समान रूप से दी गईं; किन्तु उन्हें स्वर-माधुर्य से वंचित रखकर दोनों का तुलनात्मक अध्ययन किया । जिस भाग को संगीत सुनने को मिला, उनके फूल-पौधे सीधे, घने, अधिक फूल-फलदार सुन्दर हुए । उनके फूल अधिक दिन तक रहे और बीज निर्माण द्रुत गति से हुआ । डॉ० सिंह ने बताया कि वृक्षों में प्रोटोप्लाजा गड्ढे भरे द्रव की तरह उथल-पुथल की स्थिति में रहता है । संगीत की तरंगें उसमें लहरें उत्पन्न करके प्रभाविकता में बढ़ोत्तरी करती हैं ।

संगीत का इतना व्यापक प्रभाव चर-अचर प्रकृति पर क्यों होता है ? इस प्रश्न का सही उत्तर वे योगी दे पाते हैं, जिन्होंने समाधि की गहराई में उतरकर यह अनुभव किया है कि यह सृष्टि लयबद्ध-संगीतमय है । अलौकिक संगीत का एक दिव्य प्रवाह समूची सृष्टि में सतत संचरित होता रहता है । इसे अनाहत या अनहद नाद के रूप में वर्णित करने का प्रयास भी किया जाता रहा है । ओंकार की ध्वनि 'प्रणव' भी इसी दिव्य संगीत को कहा गया है । इसीलिए शास्त्रों में स्थान-स्थान पर प्रणव की महत्ता गायी गई है । गीता में 'प्रणवः सर्ववेदेषु' (गीता ७.८) तथा महाभारत में भी 'ओंकारः सर्ववेदानाम्' (अश्वमेध पर्व ४४.६) कहा गया है ।

इन उक्तियों से सामवेद का महत्त्व घटता नहीं, बढ़ता ही है । ओंकार का गान और उद्गीथ समानार्थक हैं । उद्गीथ को साम का अविच्छिन्न अंग माना गया है, छान्दोग्योपनिषद् (१.१.२) का कथन है—

"वाचः ऋग्रसः, ऋचः सामरसः, साम्नः उद्गीथो रसः ।"

अर्थात् 'वाणी का रस ऋचा है, ऋचा का रस साम है और साम का रस उद्गीथ है ।' आगे और भी कहा गया है-'सामवेद एव पुष्पम्' (छा० उ० ३.३.१) 'वेदों में सामवेद ही पुष्प है ।' पुष्प छोटा दिखे भले ही; किन्तु वह वृक्ष की सार्थकता का प्रतीक माना जाता है । सामगान के माध्यम से मन को सूक्ष्मतर बनाते हुए दिव्य संगीत-प्रवाह के साथ संयुक्त करने में ऋषियों ने सफलता प्राप्त की थी । साम को-शब्द को-ब्रह्म की गायन रूपी मूर्ति कहा जा सकता है ।

सामवेद का अर्थ और स्वरूप

अपनी अनेकानेक विशेषताओं के कारण इसके अनुशीलन का आकर्षण स्वाभाविक है। तनिक इसके अर्थ व स्वरूप पर भी विचार करें—सामवेद का अर्थ सिर्फ मंत्र संग्रह है अथवा गान भी । इसके उत्तर में छान्दोग्योपनिषद् (१.३.४) का कथन है—

या ऋक् तत् साम ॥ अर्थात् 'जो ऋचा है वही साम है', यह ठीक भी है। ऋचा गेय पद है- गान उन्हीं का हो सकता है । आगे एक स्थान पर कथन है—**ऋचि अध्यूढं साम** ॥ (छा० उ० १.६.१) "साम ऋचा पर आधारित होते हैं। साम ऋचा को छोड़कर और किसी आश्रय में नहीं रह सकता । ऋग्वेद और सामवेद के युग्म को पति-पत्नी के युग्म की तरह माना गया है। ऐसा कहा भी गया है—

अमोऽहमस्मि सा त्वं, सामाहमस्मि ऋक् त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम्। ताविह संभवाव, प्रजामाजनयावहै। (अथर्व० १४.२.७१; ऐत० ब्रा० ८.२७; बृ० उ० ६.४.२०)

'मैं पति "अम" हूँ और तू स्त्री "ऋचा" है, "साम" मैं हूँ, ऋचा तू है, "द्यौ" मैं हूँ और "पृथिवी" तू है, हम दोनों यहाँ मिलकर उत्पन्न होते रहें, प्रजा उत्पन्न करें ।' इसमें साम शब्द की व्युत्पत्ति दी है। **सा + अमः = सामः**। 'सा' का मतलब है ऋचा और 'अम' का मतलब है आलाप, अतः साम का अर्थ है-"ऋचाओं के आधार पर किया गया गान ।"

ऋग्वेद और अथर्ववेद में पादबद्ध मंत्र हैं और इनका गान होता है। "ऋचा रूपी स्त्री और सामगान रूपी पुरुष का विवाह हुआ है। पति-पत्नी के समान साम और ऋचा का सम्बन्ध है। उपनिषदों ने इनका एक और सम्बन्ध बताया है—

"वाक् च प्राणश्च, ऋक् च साम च।"

(छा० उ० १.१.५)

"वागेव सा प्राणोऽमस्तत्साम ॥"

(छा० उ० १.७.१)

"वाणी और प्राण क्रमशः ऋक् और साम हैं। वाणी ऋचा है और प्राण साम है।" वाणी और प्राण का जैसा सम्बन्ध है, वैसा ही सम्बन्ध ऋचा और साम का है।

ऋचा का मतलब है—चरण युक्त मंत्र। इन मंत्रों का षड्ज, मध्यम आदि स्वरों में आलाप होता है। जैमिनि सूत्र में कहा है—**गीतिषु सामाख्या** ॥ (जै० सू० २.१.३६)।

वेद मंत्रों के गान की संज्ञा साम है। न केवल, मंत्र पाठ को ही साम माना जा सकता है और न सिर्फ गाने को ही; बल्कि इन दोनों के मिश्रण को ही 'साम' कहा गया है। छान्दोग्य-उपनिषद् में शालावत्य व दाल्भ्य संवाद में वर्णित है—**का साम्नो गतिरिति ? स्वर इति होवाच** ।(छा० उ० १.८.४) "साम की गति क्या है ? स्वर-आलाप ही साम की गति है।" स्वर अथवा आलाप के बिना साम नहीं होता। बृहदारण्यक उपनिषद् के शब्दों में—**तस्य हैतस्य साम्नो यः स्वं वेद , भवति हास्य स्वं तस्य वै स्वर एव स्वं..**। (१.३.२५)। "साम का स्वरूप आलाप है।"

अतः निश्चित है कि साम शब्द से हमें उन गानों को समझना चाहिए, जो भिन्न-भिन्न स्वरों में ऋचाओं पर गाये जाते हैं। साम शब्द की बड़ी सुन्दर निरुक्ति बृहदारण्यक उपनिषद् में दी गई है—**सा च अमश्चेति तत्साम्नः सामत्वम्** (बृ० उ० १.३.२२)। 'सा' शब्द का अर्थ है- ऋक् और अम् शब्द का अर्थ है-गान्धार आदि स्वर। अतः साम शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ हुआ-ऋक् के साथ सम्बद्ध स्वर प्रधान गायन ।

'तया सह सम्बद्धः अमो नाम स्वरः यत्र वर्तते तत्साम'।

जिन ऋचाओं के ऊपर ये साम गाये जाते हैं, उनको वैदिक लोग "साम योनि" नाम से पुकारते हैं। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि जिसे साम-संहिता कहा गया है, वह इन्हीं साम योनि ऋचाओं का संग्रह है। यही सामवेद के रूप में पुस्तकाकार संकलित है।

सामवेद के दो प्रधान भाग हैं—आर्चिक तथा गान। आर्चिक का शाब्दिक अर्थ है ऋक् समूह, जिसके दो भाग हैं—पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक । पूर्वार्चिक में ६ प्रपाठक या अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में अनेक खण्ड हैं, जिन्हें 'दशति' भी कहा गया है। 'दशति' शब्द से प्रतीत होता है कि इनमें ऋचाओं की संख्या दस होनी चाहिए; परन्तु किसी खण्ड में यह संख्या दस से कम, कहीं दस से अधिक है। इन खण्डों में मंत्रों का संकलन छंद तथा देवता की एकता पर निर्भर है।

प्रथम प्रपाठक या अध्याय को आग्नेय काण्ड (या पर्व) कहते हैं। इसमें अग्नि विषयक ऋक् मंत्रों का समन्वय उपस्थित किया गया है। दूसरे से लेकर चौथे अध्याय तक इन्द्र की स्तुति होने से यह ऐन्द्र पर्व कहलाता है। पञ्चम अध्याय पावमान पर्व है। इसमें सोम विषयक ऋचाएँ संकलित हैं। जो पूरी तरह से ऋग्वेद के नवम मण्डल से ली गई हैं। छठे अध्याय को आरण्य पर्व कहा गया है। इसमें देवताओं तथा छंदों की भिन्नता होने के बावजूद गान विषयक एकता विद्यमान है। पहले से लेकर पाँचवें अध्याय तक की ऋचाओं को तो ग्राम गान कहते हैं, लेकिन छठे अध्याय की ऋचाएँ अरण्य में गेय होने के कारण 'अरण्य गान' कही जाती हैं। अन्त में परिशिष्ट रूप से 'महानाम्नी' नामक ऋचाएँ दी गई हैं। इस तरह पूर्वार्चिक के मंत्रों की संख्या ६५० है।

उत्तरार्चिक में प्रपाठकों की संख्या नौ है। पहले पाँच प्रपाठक में दो-दो भाग हैं। जो प्रपाठकार्ध कहे जाते हैं, जिन्हें अध्याय भी माना गया है। अंतिम चार प्रपाठकों में तीन-तीन अर्ध हैं। यह गणना राणायनीय शाखा के अनुसार है। कौथुम शाखा में इस अर्ध को अध्याय तथा दशतियों को खण्ड कहने का चलन है। नौवें प्रपाठक में तीन अर्ध हैं, किन्तु प्रथम एवम् द्वितीय अर्धों को मिलाकर एक ही अध्याय माना गया है। इस प्रकार प्रथम पाँच प्रपाठकों के दस अध्याय, ६, ७ एवम् ८ प्रपाठकों के तीन-तीन अर्थात् नौ अध्याय तथा नौवें के दो अध्याय इस प्रकार कुल २१ अध्याय हैं। उत्तरार्चिक के सारे मंत्रों की कुल संख्या बारह सौ पच्चीस (१२२५) है। अतः दोनों आर्चिकों की सम्मिलित मंत्र संख्या अठारह सौ पचहत्तर (१८७५) है।

ऊपर बताया जा चुका है कि साम ऋचाएँ ऋग्वेद से ली गई हैं, लेकिन फिर भी कुछ ऋचाएँ पूरी तरह भिन्न हैं, अर्थात् उपलब्ध शाकल्य संहिता में ये ऋचाएँ बिलकुल नहीं मिलतीं। यह भी ध्यान देने की बात है कि पूर्वार्चिक के २६७ मंत्र (लगभग तीन हिस्से से कुछ ऊपर ऋचाएँ) उत्तरार्चिक में फिर से लिए गये हैं। अतः ऋग्वेद की वस्तुतः १५०४ ऋचाएँ ही सामवेद में उद्धृत हैं। सामान्यतया ७५ मंत्र अधिक माने जाते हैं; परन्तु वास्तविक संख्या इससे अधिक है। ९९ ऋचाएँ एकदम नयी हैं। इनका संकलन शायद ऋग्वेद की अन्य शाखाओं की संहिताओं से किया गया होगा। इस तरह-ऋग्वेद की ऋचाएँ १५०४ + पुनरुक्त २६७ = १७७१, नवीन ९९ + पुनरुक्त ५ = १०४ साम संहिता की सम्पूर्ण ऋचाएँ - १८७५।

ऋक् और साम के अन्तर्सम्बन्ध

ऋग्वेद तथा सामवेद के पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट किये बगैर, बात अधूरी रह जायेगी। वैदिक विद्वानो की यह धारणा है कि सामवेद में उपलब्ध ऋचाएँ ऋग्वेद से ही गान के निमित्त संगृहीत की गई हैं; परन्तु कुछ ऐसे प्रमाण भी मिलते हैं, जो इस धारणा पर पुनर्विचार किये जाने के लिए प्रेरित करते हैं।

(१) कहीं-कहीं सामवेद की ऋचाओं में

ऋग्वेद की ऋचाओं से केवल आंशिक साम्य ही देखने को मिलता है। ऋग्वेद का 'अग्ने-युक्ष्वा हि ये तवाऽश्वासो देव साधवः अरं वहन्ति मन्यवे। (६.१६.४३) साम० २५ में—अग्ने युंक्ष्वा हि ये तवाश्वा सो देव साधवः। अरं वहन्त्याशवः रूप में पठित है। इस आंशिक साम्य के तथा मंत्र के पादव्यत्यय के अनेकों उदाहरण सामवेद में यत्र-तत्र बिखरे हैं। यदि इन ऋचाओं को लिया गया होता, तो इन्हें उसी रूप व क्रम में निहित होना था, पर ऐसा नहीं है।

(२) इन ऋचाओं को यदि गायन के लिए सामवेद में लिया गया है, तो सिर्फ उतने ही मंत्रों का ऋग्वेद से संकलन करना चाहिए था, जितने मंत्र गान या साम के लिए अपेक्षित होते। इसके उल्टे दिखाई यह देता है कि साम-संहिता में लगभग ४५० ऐसे मंत्र हैं, जिन पर कोई गान नहीं है। ऐसे गान हेतु अनपेक्षित मंत्रों के संकलन की जरूरत क्यों पड़ी?

(३) यदि साम मंत्रों को ऋग्वेद से लिया गया है, तो इसका रूप ही नहीं, स्वर निर्देश भी तद्नुरूप होना चाहिए था। ऋक् मंत्रों में उदात्त-अनुदात्त तथा स्वरित स्वर पाये जाते हैं। जबकि सामवेद में उनका निर्देश एक, दो तथा तीन अंकों द्वारा करने की प्रथा है। ये नारदीय शिक्षा के अनुसार क्रमशः मध्यम, गान्धार और ऋषभ स्वर हैं। इन्हें अंगुष्ठ, तर्जनी, मध्यमा अँगुलियों के मध्यम पर्व पर अंगुष्ठ का स्पर्श करते हुए दिखाया जाता है। साम मंत्रों के उच्चारण में ऋक् मंत्रों के उच्चारण से पर्याप्त भिन्नता है।

(४) यदि सामवेद, ऋग्वेद के बाद की रचना है, जैसा कि आधुनिक विद्वानों की मान्यता है, तो ऋग्वेद के अनेक स्थानों पर साम का उल्लेख नहीं मिलना चाहिए; जबकि ऋग्वेद के अनेक स्थलों पर साम का उल्लेख देखा जा सकता है। यथा—अंगिरसां सामभिः स्तूयमानः (ऋक्० १.१०७.२) उद्गातेव शकुने साम गायसि (२.४३.२) इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् (८.९८.१) आदि मंत्रों में न केवल सामान्य साम का बल्कि बृहत् साम का उल्लेख भी है। ऐतरेय ब्राह्मण (२.२३) का तो स्पष्ट कथन है कि सृष्टि के आरम्भ में ऋक् और साम दोनों का अस्तित्व था (ऋक् च वा इदमग्रे साम चास्ताम्)। इतना ही नहीं यज्ञ की सफलता-सम्पन्नता के लिए होता, अध्वर्यु तथा ब्रह्मा नामक व्यक्तियों के साथ उद्गाता का काम साम गायन ही तो है; तब साम को अर्वाचीन किस आधार पर माना जाय?

(५) जब साम का नामकरण विशिष्ट ऋषियों के नाम पर किया गया मिलता है, तो क्या ये ऋषि इन सामों के कर्ता नहीं हैं? इसका जवाब है कि जिस साम से सर्वप्रथम जिस ऋषि को इष्ट प्राप्ति हुई, उस साम का वह ऋषि कहलाता है। ताण्ड्य ब्राह्मण में इस तथ्य के द्योतक स्पष्ट प्रमाण देखने को मिलते हैं—"वृषा शोणो अभिकनिक्रदत्" (ऋ० ९.९७.१३) ऋचा पर साम का नाम 'वसिष्ठ' होने का यही कारण है कि विदु के पुत्र वसिष्ठ ने इस साम से स्तुति करके अनायास स्वर्ग प्राप्त कर लिया (वासिष्ठं भवति वसिष्ठो वा एतेन वैद्वः स्तुत्वाऽञ्जसा स्वर्गलोकमपश्यत्-ताण्ड्य ब्रा० ११.८.१३-१४) तं वो दस्म मृतीषहं (ऋक्०८.८८.१) मंत्र पर नौधस साम के नामकरण का ऐसा ही कारण अन्यत्र कथित है (ताण्ड्य ब्रा० ७.१०.१०) फलतः इष्ट सिद्धि निमित्तक होने से ही सामों का ऋषिपरक नाम है, उनकी रचना हेतुक नहीं।

इन बिन्दुओं पर गहन चिन्तन करने पर यह मानना पड़ता है कि साम संहिता के मंत्र ऋग्वेद से उधार लिए नहीं प्रतीत होते। ये उतने ही स्वतंत्र हैं, जितने कि ऋग्वेद के मंत्र, साथ ही उतने ही प्राचीन भी। वेदों के अधिकारी विद्वान् पं० दुर्गादत्त त्रिपाठी ने भी 'सिद्धांत' पत्रिका वर्ष १३ में प्रकाशित अपने लेख "ऋक् साम सम्बन्ध पर कुछ विमर्श" में इसी तथ्य की सत्यता बतायी है। अतएव यही कहना होगा कि साम संहिता की अपनी स्वतंत्र सत्ता है।

सामवेद का शाखा विस्तार

वायु पुराण, भागवत पुराण, विष्णु पुराण के अनुसार भगवान् वेदव्यास ने अपने शिष्य जैमिनि को साम की शिक्षा दी । ये ही साम के आद्य आचार्य के रूप में माने जाते हैं । इस अध्ययन परम्परा में जैमिनि से उनके पुत्र सुमन्तु, सुमन्तु से उनके पुत्र सुन्वान् , सुन्वान् से स्वकीय सूनु सुकर्मा दीक्षित हुए। इस संहिता के व्यापक विस्तार का श्रेय इन्हीं सामवेदाचार्य सुकर्मा को है। इनके दो पट्ट शिष्य हुए (१) हिरण्यनाभ कौसल्य तथा (२) पौष्यञ्जि, जिससे साम गायन की प्राच्य तथा उदीच्य दो धाराओं का विकास हुआ। प्रश्न उपनिषद् (६.१) में हिरण्यनाभ को कोसल देश का राजकुमार बतलाया गया है। भागवत (१२.६.७८) ने सामगानों की दो परम्पराओं का उल्लेख किया है, प्राच्य सामगा: एवं उदीच्य सामगा:। इस नाम निर्देश का कारण भौगोलिक भिन्नता है।

भागवत में भी सुकर्मा के दो शिष्यों का जिक्र आया है। (१) हिरण्यनाभ (या हिरण्यनाभी) कौसल्य (२) पौष्यञ्जि, जो अवन्ति देश के निवासी होने से आवन्त्य कहे गये हैं । इनमें से अंतिम आचार्य के शिष्य उदीच्य सामगा: कहलाते हैं । हिरण्यनाभ कौसल्य की परम्परा वाले सामग प्राच्य सामगा: के नाम से प्रसिद्ध हुए । हिरण्यनाभ का शिष्य पौरव वंशीय सन्नतिमान राजा का पुत्र कृत था, जिसने साम संहिता का चौबीस प्रकार से अपने शिष्यों द्वारा प्रवर्तन किया । इसका वर्णन मत्स्य पुराण (४९.७५-७६), हरिवंश (२०.४१-४४), विष्णु (४.१९-५०), वायु (४१.४४) ब्रह्माण्ड पुराण (३५.४९-५०) तथा भागवत (१२.६.८०) में समान शब्दों में किया गया है। वायु तथा ब्रह्माण्ड में कृत के चौबीस शिष्यों के नाम भी दिये गये है । कृत के अनुयायी होने के कारण ये साम आचार्य कार्त नाम से प्रख्यात हुए—

चतुर्विंशतिधा येन प्रोक्ता वै साम संहिता।
स्मृतास्ते प्राच्य सामान: कार्ता नामेह सामगा: ॥

—मत्स्य पु० ४९.७६

इनके लौगाक्षि, मांगलि, कुल्य, कुसीद तथा कुक्षि नामक पाँच शिष्यों के नाम श्रीमद्‌भागवत (१२.६.७९) में दिये गये हैं। जिन्होंने सौ-सौ साम संहिताओं का अध्यापन प्रचलित कराया । वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार इन शिष्यों के नाम तथा संहिता में पर्याप्त भिन्नता दीख पड़ती है। इनका कहना है कि पौष्यञ्जि के चार शिष्य थे-लौगाक्षि, कुथुमि, कुसीदी तथा लांगलि । इनकी विस्तृत शिष्य परम्परा का वर्णन-विवरण इन पुराणों में विशेष रूप से दिया गया है। नाम-धाम में चाहे कुछ भिन्नता दिखाई पड़े, पर इतना तो निश्चित है ही कि सामवेद की हजार शाखाओं से मंडित होने में सुकर्मा के ही दोनों शिष्य-हिरण्यनाभ तथा पौष्यञ्जि प्रधान कारण थे।

पुराणों में जो विवरण मिलता है, उससे सामवेद की एक सहस्र शाखाएँ होने की जानकारी मिलती है। इसी की पुष्टि व्याकरण महाभाष्य के प्रणेता पतञ्जलि के '**सहस्र वर्त्मा सामवेद:**' वाक्य से भली-भाँति होती है। सामवेद गान प्रधान है। अत: संगीत की विपुलता तथा सूक्ष्मता को ध्यान में रखकर विचार करने पर यह संख्या कल्पित नहीं प्रतीत होती। लेकिन पुराणों में कहीं भी इन शाखाओं की पूरी नामावली देखने को नहीं मिलती। यही कारण है कि कुछ आलोचकों ने 'वर्त्म' शब्द को शाखावाची न मानकर केवल सामगायनों की विभिन्न पद्धतियों को सूचित करने वाला माना है। जो कुछ भी हो, साम की विपुल बहुसंख्यक शाखाएँ किसी समय ज़रूर थीं, परन्तु दैव-दुर्योग से उनमें से अधिकांश का लोप इस

ढंग से हो गया कि उनके नाम भी विस्मृति के गर्त में विलीन हो गये।

आजकल प्रपंच हृदय, दिव्यावदान, चरण-व्यूह तथा जैमिनि गृह्य सूत्र को देखने पर १३ शाखाओं का पता चलता है। सामतर्पण के अवसर पर इन आचार्यों के नाम तर्पण का विधान मिलता है। इन तेरह में से तीन आचार्यों की शाखाएँ मिलती हैं— (१) कौथुमीय (२) राणायनीय (३) जैमिनीय।

एक बात ध्यान देने लायक है कि पुराणों में उदीच्य तथा प्राच्य सामगों के वर्णन होने पर भी इन दिनों उत्तर व पूर्वी भारत में साम शाखाओं का प्रचार देखने में नहीं आता है, लेकिन दक्षिण व पश्चिम भारत में आज भी इन शाखाओं का थोड़ा-बहुत स्वरूप देखने को मिल जाता है। संख्या तथा प्रचार की दृष्टि से कौथुम शाखा विशेष महत्त्व की है। इसका प्रचलन गुजरात के ब्राह्मणों में विशेषकर नागर ब्राह्मणों में देखने को मिलता है। राणायनीय शाखा महाराष्ट्र में, जैमिनीय शाखा कर्नाटक तथा सुदूर दक्षिण के तिन्नेवली एवं तंजौर जिले में देखने को ज़रूर मिलती है; परन्तु इसके अनुयायी कौथुमों की अपेक्षा बहुत कम हैं।

(१) कौथुम शाखा—आद्य शंकराचार्य ने वेदान्त भाष्य के अनेक स्थानों पर इसका नाम निर्देशन किया है। इसी से इसके गौरव व महत्त्व का पता चलता है। इसी की संहिता सर्वाधिक लोकप्रिय है। पच्चीस काण्डात्मक विपुलकाय ताण्ड्य ब्राह्मण इसी शाखा का है।

(२) राणायनीय शाखा— इसकी संहिता कौथुमों जैसी ही है। मंत्र गणना की दृष्टि भी दोनों में समान है। सिर्फ उच्चारण में कहीं-कहीं भिन्नता देखने को मिलती है। कौथुमीय लोग जहाँ 'हाऊ' तथा 'राई' कहते हैं, वहाँ राणायनीय गण 'हावु' तथा 'रायी' का प्रयोग करते हैं। इनकी एक अवान्तर शाखा 'सात्यमुग्रि' है, जिसकी एक उच्चारण विशेषता भाषा विज्ञान की नजर से ध्यान देने योग्य है। आपिशली शिक्षा में-'छान्दोगानां सात्यमुग्रि राणायनीया ह्रस्वानि पठन्ति' कहकर तथा महाभाष्यकार ने स्पष्ट निर्देश दिया है कि सात्यमुग्रि लोग एकार तथा ओकार का ह्रस्व उच्चारण किया करते थे।

आधुनिक भाषाओं के जानकारों को यह याद दिलाने की जरूरत नहीं है कि प्राकृत भाषा तथा आधुनिक प्रांतीय अनेक भाषाओं में ए तथा ओ का उच्चारण ह्रस्व भी किया जाता है। यह विशेषता इतनी प्राचीन है, इसे भाषा विज्ञानी समझ सकते हैं।

(३) जैमिनीय शाखा— इस मुख्य शाखा के समग्र अंश काफी प्रयत्नों के बाद आज उपलब्ध हो सके हैं। संहिता, ब्राह्मण, श्रौत तथा गृह्य सूत्र-इनकी खोज निश्चित ही सराहनीय है। जैमिनीय संहिता में मंत्रों की संख्या १६८७ है। अर्थात् इसमें कौथुम शाखा से १८२ मंत्र कम हैं। दोनों में कई तरह के पाठ भेद भी हैं। उत्तरार्चिक में कई ऐसे नवीन मंत्र हैं, जो कौथुमीय संहिता में नहीं मिलते हैं। परन्तु जैमिनीयों के सामगान कौथुमों से लगभग एक हजार अधिक हैं। कौथुम गान सिर्फ २७२२ हैं, जबकि जैमिनि गान ३६८१ हैं।

ब्राह्मण तथा पुराणों के अध्ययन से पता चलता है कि साममंत्रों-उनके पदों तथा सामगानों की संख्या आज के उपलब्ध अंशों से बहुत अधिक थी। शतपथ में साममंत्रों के पदों की गणना चार सहस्र बृहती बतलाई गई है— **यथा-अथेतरौ वेदौ व्योहत। द्वादशैव बृहती सहस्राणि अष्टौ यजुषा चत्वारि साम्नाम्** (बृह० १०.४.२.२३) अर्थात् ४००० x ३६ = १,४४,०००। इस तरह साम मंत्रों के पद एक लाख चौवालीस हजार थे। पूरे सामों की संख्या थी आठ हजार तथा गायनों की संख्या थी चौदह हजार आठ सौ बीस। अनेक स्थलों पर बार-बार उल्लेख होने से इसकी प्रामाणिकता पर संदेह नहीं किया जा सकता।

साम गान के स्वर

सामयोनि मंत्रों का आश्रय लेकर ऋषियों ने गान मंत्रों की रचना की है। ये गान चार तरह के हैं—(१) ग्राम गेय गान—जिसे प्रकृति गान तथा वेय गान भी कहते हैं। (२) आरण्यक गान (३) ऊह गान (४) ऊह्य गान या रहस्य गान। इन गानों में वेय गान पूर्वार्चिक के प्रथम पांच अध्याय के मंत्रों के ऊपर होता है। अरण्य गान, आरण्य पर्व के निर्दिष्ट मंत्रों पर, ऊह और ऊह्य उत्तरार्चिक में उल्लिखित मंत्रों पर मुख्य-तया होता है। भिन्न शाखाओं में इन गानों की संख्या भिन्न है। सबसे अधिक गान जैमिनीय शाखा में मिलते हैं।

कौथुमीय गान		जैमिनीय गान
वेय गान	११९७	१२३२
अरण्य गान	२९४	२९१
ऊह गान	१०२६	१८०१
ऊह्य गान	२०५	३५६
कुल योग	२७२२	३६८०

भारतीय संगीत शास्त्र का मूल इन्हीं साम गानों पर आधारित है। भारतीय संगीत कितना सूक्ष्म-बारीक तथा वैज्ञानिक है, यह तत्व मर्मज्ञों से छिपा नहीं है। लेकिन मूर्धन्यों की अवहेलना के कारण उसकी इतनी बड़ी दुरवस्था आजकल उपस्थित है कि उसके मौलिक सिद्धांतों को समझना एक समस्या हो गई है। साम गान की पद्धति का ज्ञान उसी तरह दुरूह है। एक तो यों ही साम के जानने वाले कम हैं, उस पर साम गान को ठीक स्वर में गाने वालों की संख्या तो अँगुलियों में गिनने लायक है। यदि गायक के गले में लोच हो और वह उचित मूर्छना, आरोह, अवरोह का विचार कर साम गान करे, तो मंत्रार्थ न जानने पर भी भावों की दिव्य अनुभूति हुए बिना नहीं रहती।

नारद शिक्षा के अनुसार साम के स्वर मंडल इतने हैं- ७ स्वर, ३ग्राम, २१ मूर्छना, ४९ तान। इन सात स्वरों की तुलना वेणु स्वर से इस प्रकार है-

साम	वेणु
१ प्रथम	मध्यम/म
२ द्वितीय	गान्धार/ग
३ तृतीय	ऋषभ/रे
४ चतुर्थ	षड्ज/सा
५ पंचम	निषाद/नि
६ षष्ठ	धैवत/ध
७ सप्तम	पञ्चम/प

साम गानों में ये ही सात तक के अंक तत्त् स्वरों के स्वरूप को सूचित करने के लिए लिखे जाते हैं। सामयोनि मंत्रों के ऊपर दिये गये अंकों की व्यवस्था दूसरे प्रकार की होती है। सामयोनि मंत्रों के सामगानों के रूप में ढालने पर अनेक संगीतानुकूल शाब्दिक परिवर्तन किये जाते हैं। इन्हें साम विकार कहते हैं। जिनकी संख्या ६ है—

(१) **विकार**— शब्द का परिवर्तन 'अग्ने' के स्थान पर ओग्नायि।

(२) **विश्लेषण**— एक-एक पद का पृथक्क-रण, यथा—वीतये के स्थान पर वोयितोया २ यि।

(३) **विकर्षण**— एक स्वर का दीर्घकाल तक विभिन्न उच्चारण जैसे— ये या ३ यि।

(४) **अभ्यास**— किसी पद का बार-बार उच्चारण, यथा-तोयायि का दो बार उच्चारण।

(५) **विराम**— गायन में सुविधा के लिए किसी पद के बीच में ठहर जाना यथा-गृणानो हव्यदातये में 'ह' पर विराम ले लेना।

(६) **स्तोभ**— ओ, होवा, आउवा आदि गानानुकूल पद।

साम के विभाग

साम गायन की पद्धति बहुत कठिन है। उसकी ठीक-ठीक जानकारी हो सके, इसके लिए बहुत सूक्ष्म अध्ययन अपेक्षित है। साधारण ज्ञान के लिए यह जान लेना काफी है कि साम गान के पाँच भाग होते हैं —

(१) प्रस्ताव— यह मंत्र का प्रारम्भिक भाग है, जो 'हुं' से प्रारम्भ होता है। इसे प्रस्तोता नामक ऋत्विज् गाता है।

(२) उद्गीथ— इसे साम का प्रधान ऋत्विज् उद्गाता गाता है। इसके आरम्भ में ओम् लगाया जाता है।

(३) प्रतीहार— इसका मतलब है, दो को जोड़ने वाला। इसे प्रतिहर्त्ता नामक ऋत्विज् गाता है। इसी के कभी-कभी दो टुकड़े कर दिये जाते हैं।

(४) उपद्रव— जिसे उद्गाता गाता है।

(५) निधन— जिसमें मंत्र के दो पद्यांश या ओम् रहता है। इनका गायन तीनों ऋत्विज्, प्रस्तोता, उद्गाता, प्रतिहर्त्ता एक साथ मिलकर करते हैं। उदाहरण के लिए सामवेद का प्रथम मंत्र लें—

अग्न आया हि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ (सामवेद-१)

इसके ऊपर जिस साम का गायन किया जायेगा, उसके पाँचो अंग इस प्रकार होंगे—

(१) हुं ओग्नाइ (प्रस्ताव)

(२) ओम् आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये (उद्गीथ)

(३) नि होता सत्सि बर्हिषि ओम् (प्रतिहार)। इसी प्रतिहार के दो भेद होंगे, जो दो प्रकार से गाये जायेंगे।

(४) निहोता सत्सि बर्हिषि (उपद्रव)

(५) बर्हिर्षि ओम् (निधन)

साम वेद के ब्राह्मण एवं सूत्र ग्रन्थ

(१) ताण्ड्य ब्राह्मण (प्रौढ़ अथवा पंचविंश ब्राह्मण) (२) षड्विंश ब्राह्मण (३) साम विधान ब्राह्मण (४) आर्षेय ब्राह्मण (५) देवताध्याय ब्राह्मण (६) उपनिषद् ब्राह्मण (संहितोपनिषद् ब्राह्मण अथवा मंत्र ब्राह्मण) (७) वंश ब्राह्मण आदि सामवेद के ब्राह्मण हैं। षड्विंश ब्राह्मण ताण्ड्य ब्राह्मण का २६ वाँ भाग है, इसलिए पहला भाग पंचविंश ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध है और उत्तर भाग षड्विंश ब्राह्मण और छांदोग्य उपनिषद् मिलकर तांड्य महाब्राह्मण होता है। षड्विंश ब्राह्मण में अद्भुत कथाओं का संग्रह होने के कारण उसे अद्भुत ब्राह्मण भी कहते हैं। सामवेद के दूसरे ब्राह्मण का नाम अनुब्राह्मण भी है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में "केनोपनिषद्" है।

इस जैमिनीय शाखा का दूसरा नाम तवल्कार शाखा भी है, इसलिए केनोपनिषद् को तवल्कारीय केनोपनिषद् भी कहते हैं।

(१) मशक कल्प सूत्र (२) क्षुद्र सूत्र (३) लाट्यायन सूत्र (४) गोभिलीय गृह्य सूत्र और राणायनीय शाखा के (१) द्राह्यायण श्रौत सूत्र (२) खादिर गृह्य सूत्र (३) पुष्प सूत्र। ये सामवेद के सूत्र ग्रंथ "प्रातिशाख्य" के नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

प्रस्तुत प्रयास के संदर्भ में

वेद मंत्र अनुभूतिजन्य ज्ञान के उद्घोषक हैं। विशुद्ध ज्ञान (प्योर साइंस) के रूप में होने से उनके प्रायोगिक (एप्लाइड) रूप अनेक बनते हैं। जैआध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक सभी

प्रकार के रहस्यों को उजागर करते हैं। किसी एक पक्ष के लिए पूर्वाग्रह रखकर ऋषियों की उक्तियों के साथ न तो न्याय किया जा सकता है और न ही पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सकता है। उसे तो ऋषियों की विवेक-दृष्टि का अनुसरण करते हुए ही समझा जाना चाहिए।

सृष्टि के घटकों को विभिन्न दृष्टि से देखा-समझा जा सकता है। उदाहरण के लिए आधिभौतिक अर्थों में सूर्य आग का जलता हुआ गोला भर है, जिसमें हाइड्रोजन हीलियम की रासायनिक अभिक्रियाएँ चलती रहती हैं; पर जिन्हें व्यापक बोध है, वे जानते हैं, कि यह सूर्यदेव का भौतिक रूप भर है। इसकी संचालक शक्ति के रूप में सूर्यदेव ग्रहों के अधिपति के रूप में वंदित-पूजित किये जाते हैं। आध्यात्मिक अर्थों में सूर्य विश्वात्मा हैं, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की व्यापकता में ये परमात्म-रूप हो व्याप्त हैं। इस तत्त्व को और अधिक सरल अर्थों में समझना हो, तो स्वयं के उदाहरण से जाना जा सकता है। मानव अस्तित्व के भी तीन रूप हैं-आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक। रक्त, मज्जा, मांस से बना शरीर मनुष्य का आधिभौतिक परिचय है। यही अनुभूतियों व अभिव्यक्तियों का माध्यम है; पर यही सब कुछ नहीं। इससे परे जीवात्मा की सत्ता है, जो आधिभौतिक चेतना की संचालक व नियामक है, शुभाशुभ कर्मों की भोक्ता है। आध्यात्मिक बोध का अनुभव आत्मा की व्यापकता में होता है, जो कर्म-बंधन से सर्वथा मुक्त और विश्वात्मा से एक है। तीनों ही स्वरूप अपने आयाम की सीमा और सत्यता में सत्य हैं, तीनों की अनुभूति किये जाने पर ही ज्ञान की समग्रता संभव है।

प्रस्तुत भाषा-भावार्थ का यही वैशिष्ट्य है। इसमें ज्ञान की समग्रता, बोध की व्यापकता अभिप्रेरित है। यही कारण है कि इसमें कोई मताग्रह नहीं रखा गया है। इस प्रयास को उन सुधी जिज्ञासुओं के लिए उन्मुक्त द्वार के रूप में अनुभव किया जाना चाहिए, जिनके हृदय और मन वेदमंत्रों में निहित भावों को जानने के लिए आकुल हैं, पर देव भाषा की अनभिज्ञता के कारण विवश हैं। इस प्रयास का स्पर्श पाकर वे स्वयं को विवशता के बंधनों से मुक्त पायेंगे।

सामान्य अर्थों में भाष्यों के आधार व्याकरण, इतिहास, व्युत्पत्ति बने रहते हैं। इनके विस्तृत कलेवर में बुद्धि, तर्क जाल में उलझती-फँसती रहती है। जबकि वेद मंत्रों का अर्थ जानने के लिए हमें संबोधि अवस्था में प्रवेश करना पड़ेगा। यदि ऐसा न करेंगे, तो वेद सदा के लिए मुहरबंद पुस्तक बने रहेंगे। इसीलिए इस भाषा-भावार्थ में बौद्धिक जाल न बुनकर भावबोध की आधार भूमि तैयार की गई है। सहज व सरल मन वाले अभीप्सु इस प्रशस्त भूमि पर बैठकर मंत्र के भावार्थ पर निदिध्यासन करके गुह्यार्थों को अनुभव कर सकते और दिव्यार्थों से एक हो सकते हैं। जहाँ आवश्यक समझा गया है, वहाँ पाद टिप्पणियाँ भी दी गई हैं। ये टिप्पणियाँ सांकेतिक अनुभूतियाँ हैं। जिनके आधार पर वैज्ञानिक मनोभूमि के सत्यान्वेषी भी वेदज्ञान को पाने का सुयोग पा सकते हैं।

सामान्य क्रम में वेदों पर जो भाष्य किए गये हैं, उनका आधार ऐतिहासिकता, प्रकृतिपरकता अथवा आध्यात्मिकता बनी है। इसमें इन सभी के साथ वैज्ञानिकता का भी समावेश है। अधुनातन चिंतक वैज्ञानिक दृष्टि की भी अपेक्षा रखते हैं। अत: उससे मुख फेर लेना उचित नहीं समझा गया। स्थान-स्थान पर दी गई पाद टिप्पणियों के माध्यम से जिज्ञासुओं की इस चिर अभीप्सा को पूरा किया गया है।

इस संदर्भ में एक-दो उदाहरण देना अनुपयुक्त न होगा—

साम मंत्र क्रमांक २७ का भावार्थ है, 'यह अग्नि द्युलोक से पृथ्वी तक संव्याप्त जीवों तक का पालनकर्त्ता है। यह जल को रूप एवं गति देने में समर्थ है।' इस प्रसंग में वैज्ञानिक टिप्पणी दी गई है—

'हाइड्रोजन + आक्सीजन + ऊर्जा (अग्नि) से जल उत्पन्न होता है । ऊर्जा (अग्नि) ही जल को मेघ बना प्रकृति का पोषण करती है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि $2H_2 + O_2 = 2H_2O$ (हाइड्रोजन की दो तथा आक्सीजन की एक मात्रा = जल) के सिद्धांत से सामान्य विज्ञान का विद्यार्थी परिचित होता है, परन्तु उसमें अग्नि (हीट) का होना ऋषि की दृष्टि से आवश्यक है और यह तथ्य एक रसायन विज्ञानी के लिए अनजान नहीं है । साम क्रमांक ६२ में भावार्थ है—

'हे श्रेष्ठकर्मा, उत्तम ऐश्वर्ययुक्त, निष्पाप, पापनाशक, पानी को नीचे न गिरने देने वाले अग्निदेव ! आपका अपने संरक्षण के लिए प्राप्त करने की कामना हम सभी समान बुद्धि वाले साधक करते हैं ।'

इस प्रसंग में 'पानी को नीचे न गिरने देना'-यह विशेषता अग्नि में किस प्रकार है, यह सहजतया समझ से बाहर है । इस पर टिप्पणी की गई है-'मेघों में जल को अग्नि की ऊर्जा ही सम्हाले रहती है, गुप्त ताप (लेटेण्ट हीट) शान्त हुए बिना वर्षा संभव नहीं होती । इस टिप्पणी से अग्नि की उक्त विशेषता विज्ञान बुद्धि वालों के लिए बोधगम्य हो जाती है। इस प्रकार की वैज्ञानिक सिद्धांतों की प्रतिपादक टिप्पणियाँ स्थान-स्थान पर दी गई हैं, जो अपनी मौलिक विशेषता की निदर्शन हैं ।

विसंगतियों से बचाव

महत्त्वपूर्ण कार्यों को करते समय उनके अनुरूप वातावरण बनाने के लिए गान विद्या का प्रयोग आज भी किया जाता है। पूजन-आरती के समय भक्तिगान, जन्म या विवाहोत्सव के समय उनसे संबंधित परम्परागत गायन उस वातावरण को प्रभावशाली बना देते हैं। पूर्वकाल में सामगान का प्रयोग यज्ञादि सभी शुभ कर्मों के साथ किया जाता रहा है ।

विवाह आदि की तैयारी के समय कूटने-पीसने, भोजन पकाने जैसी क्रियाओं के साथ विवाहपरक गीत गाये जाते हैं। गीतों में विवाह विषयक उल्लास अथवा शिक्षण तो होता है; किन्तु गीत के साथ चल रही क्रियाओं के साथ गीत के अर्थ की संगति होना आवश्यक नहीं । इसी प्रकार यज्ञीय क्रियाओं के साथ मंत्र विशेष गाये तो जाते हैं; पर इतने मात्र से उन मंत्रों के अर्थ उन सामान्य क्रियाओं के साथ जोड़े नहीं जा सकते ।

आचार्य सायण ने अपने भाष्य के साथ मंत्र विशेष के साथ की जाने वाली उस समय की परम्परागत क्रियाओं का उल्लेख किया है। उन क्रियाओं के साथ मंत्रों के अर्थों की संगति बिठाने का प्रयास करने पर वेदार्थ की गरिमा को अप्रिय आघात लगता है। वेद मंत्रों का दृश्य उपयोग यज्ञादि कृत्यों के लिए ही होता दिखता रहा, इसलिए मंत्रों की यज्ञपरक व्याख्या का आग्रह उभरना भी स्वाभाविक है; किन्तु वेद मंत्र निश्चित रूप से किसी दिव्य संदेश के संवाहक हैं। उन दिव्य भावों को छोटी से छोटी क्रिया के साथ भी जागृत रखना तो उचित है, किन्तु उनके अर्थ को उतनी छोटी क्रिया की परिधि में बाँध देने का प्रयास किसी भी प्रकार उचित नहीं कहा जा सकता । जाने-अनजाने में ऐसे प्रयास प्राचीन एवं अर्वाचीन विद्वानों द्वारा हुए भी हैं। इसी कारण आलोचकों को वेद वाङ्मय का उपहास करने का अवसर भी मिल जाता है ।

आज भी पूजन की प्रामाणिक परिपाटी में पुरुष सूक्त के साथ षोडशोपचार पूजन करने का मान्य नियम है। पुरुष सूक्त में परम पुरुष-यज्ञ रूप परमात्मा द्वारा सृष्टि के विकास-विस्तार का वर्णन है । आसन, पाद्य, अर्घ्य अर्पित करने जैसी छोटी क्रियाओं के साथ यह भाव करना तो अच्छा है कि हम किसी चित्र या प्रतीक को नहीं, विराट् ब्रह्म को अपनी श्रद्धा अर्पित कर रहे हैं,

किन्तु चूंकि अमुक मंत्र अमुक क्रिया के साथ बोला जाता है, इसलिए उस गूढ़ मंत्र का अर्थ उस छोटी सी क्रिया तक सीमित करने का प्रयास किया जायेगा, तो न्याय कैसे होगा ? इस भाषानुवाद में ध्यान रखा गया है कि मंत्रों के कर्मकाण्ड का स्वरूप भी बना रहे और उनके व्यापक अर्थों के साथ भी न्याय हो सके।

मंत्र द्रष्टाओं का स्तर

कर्मकाण्ड तथा मंत्रों के व्यापक अर्थों के बीच तारतम्य समझने के लिए आवश्यक है कि मंत्रों को देखने वाले, मंत्र द्रष्टाओं की सूक्ष्म दृष्टि का अनुसरण करते हुए समझने का प्रयास किया जाय। जैसे सोमलता कूटी जा रही है, रस निचोड़ा और छाना जा रहा है। ऋषि देखता है, "इस सोमलता के रस में एक दिव्य पोषक तत्त्व सन्निहित है, जिसके कारण इस रस को महत्त्व दिया जाता है।"

उक्त तत्त्व को देखते ही उसकी दिव्य दृष्टि देखती है कि वही पोषक तत्त्व वृक्षों-वनस्पतियों में भी संचरित हो रहा है, वही जल धाराओं के साथ भी प्रवाहित हो रहा है, वह वनस्पतियों और जल के सहारे प्राणियों में भी प्रवाहित है; वही प्रवाह ऋषि को अंतरिक्ष और द्युलोक में भी दिखाई देता है, वह गा उठता है—

"श्रेष्ठ बुद्धि, द्युलोक, पृथ्वीलोक, अग्नि, सूर्य, इन्द्र तथा विष्णु को उत्पन्न करने वाला सोम शुद्ध किया जा रहा है।" (साम०५२७)

"तीनों स्थानों (अंतरिक्ष, प्रकृति तथा प्राणि--जगत्) में काम्य वर्षक-अन्नदाता सोम की स्तुति ऋत्विज कर रहे हैं...।"

इस प्रकार छोटी-छोटी क्रियाओं के साथ गाये गये मंत्रों के भाव बहुधा व्यापक ही होते हैं। उन्हें उसी दृष्टि से लिया जाना चाहिए। प्रस्तुत प्रयास में ऐसा ही कुछ पिरोया गया है।

अग्नि, इन्द्र और सोम

अग्नि—'लौकिक' अग्नि ऊर्जा का सर्व सुलभ रूप है; किन्तु वह ऊर्जा रूप अग्नि वृक्षों, वनस्पतियों, प्राणियों, समुद्र, पहाड़ों, भूगर्भ, सूर्य एवं अंतरिक्ष में विभिन्न रूपों में सक्रिय है। ऋषियों की सूक्ष्म दृष्टि इन सभी स्थानों- सभी रूपों में अग्नि को सक्रिय देखती है, इसलिए उसके प्रभाव और गुणों का बखान करने में उनकी वाणी संकोच क्यों करे ? उसे न समझने वाले उनके कथन को विसंगत कहें, तो कहें। केवल 'कागज की-लेखी' तक सीमित ज्ञान वाले 'आँखिन की देखी' को समझने का विनम्रता युक्त प्रयास करें, तो वह दिव्य ज्ञान स्वयं अपने को प्रकट करने लगता है।

अग्नि के यज्ञीय प्रयोग भी ऋषि तंत्र ने किये हैं। यज्ञ में वह हव्य-वाहन बन जाता है। हवन से उत्पन्न पर्जन्य-पोषक तत्त्वों को वही ऊर्जा प्रकृति चक्र में प्रवाहित करती है। उस वर्णन में ऋषि उसे अनेक विशेषणों से सम्बोधित करते हुए उसके गुण-धर्मों की प्रशंसा करते हैं। उदाहरणार्थ—सामवेद का प्रथम साम ही 'अग्नि को देवताओं तक हवि पहुँचाने वाला कहता है' — **अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि ॥** (सा० १) तीसरे 'साम' में 'अग्नि' के व्यापक प्रभाव को ऋषि ने व्यक्त किया है—"**अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥**" अर्थात् सबके ज्ञाता देवों को आवाहित करने (बुलाने) में सक्षम, यज्ञ को उत्तम रीति से सम्पन्न करने वाले इन अग्नि देव को, हम (देवों के) दूत रूप में स्वीकार करते हैं। (सामवेद ३)

'अग्नि' को एक स्थान पर सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्ड का आधार माना गया है—'त्वामग्ने....मूर्ध्नो

विश्वस्य वाघत: ॥' (साम० ९) एक अन्य स्थान पर 'अग्नि' को द्युलोक के सर्वोच्च स्थान पर (सूर्य रूप में) अवस्थित, पृथ्वी पर जीवन प्रवाहित करके उसका पालन करने वाला तथा कर्मफल व्यवस्था का नियंत्रक कहते हुए "परमात्म सत्ता" का प्रतीक-प्रतिनिधि स्वीकार किया गया है— **"अग्निर्मूर्धा दिव: ककुत्पति: पृथिव्या अयम्। अपां रेतांसि जिन्वति॥"** (साम० २७) वही 'अग्नि' वायु तथा सूर्य रूप भी है, जिसके द्वारा विश्व ब्रह्माण्ड में जीवन, गति एवं ऊर्जा आदि का संचार संभव हुआ है। सामवेद के ऋषि ने कहा— **"इदं त एकं पर उत एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व। संवेशनस्तन्वे ३ चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ॥** (सा० ६५) इसी प्रकार के अन्य अनेक विशिष्ट गुण-धर्म तथा प्रभावों का व्याख्यान मंत्रद्रष्टा ऋषियों के द्वारा प्रचुर मात्रा में किया गया है, जिसका एकत्र संकलन सामवेद में 'आग्नेय काण्ड या आग्नेय-पर्व' के रूप में जाना जाता है।

इन्द्र— इन्द्र को देवों के संगठक देवता के रूप में मान्यता प्राप्त है। परमाणु में यदि + और — प्रभारों को बाँधकर रखने की क्षमता न हो, तो परमाणु, उपकणों (सब-पार्टिकिल्स) में विखंडित हो जायें। सूर्य में यदि ग्रहों को बाँधकर रखने की क्षमता न हो तो, सौर मंडल का अस्तित्व कैसे रहे? आत्म चेतना में यदि पंचभूतों, पंचप्राणों, पंचकोषों को अपने साथ जोड़े रखने की क्षमता न हो, तो जीवन कैसे रहे? उस चेतना के प्रस्थान के साथ ही पंचप्राण-पंचभूत सभी बिखरने लगते हैं।

ऋषियों ने इन्द्र को इन सभी संदर्भों में देखा और बखाना है। इन्द्र संगठित रखने में समर्थ एक दिव्य चेतन सत्ता है, जिसके आधार पर परमाणु से लेकर ग्रह, नक्षत्रों तक का परिवार अनुशासित ढंग से क्रियाशील है। उदाहरणार्थ— वह अत्यधिक बलशाली 'इन्द्र' बड़े-बड़े जल प्रवाहों को गतिमान करने वाला है, उसके इस कार्य में पूषा देवता का योगदान स्वभावत: रहता है—**"यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तम:। तत्र पूषा भवत्सचा॥"** (सामवेद १४८) एक स्थान पर ऋषि ने कहा— **"अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे। सूनुं सत्यस्य सत्पतिम्॥"** अर्थात् वह इन्द्र गौओं का पालन कर्त्ता, सत्य का प्रचारक और सज्जनों का पालक है। उसकी प्रार्थना करो, जिससे उसकी सहायता से यज्ञ का तथा उस (इन्द्रदेव) का ज्ञान हो सके (सा० १६८)। दूसरे स्थान पर 'इन्द्र' को सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्ड का नियंत्रक-संचालक बताते हुए ऋषि ने कहा—**'ये ते पन्था अधो दिवो येभिर्व्यश्वमैरय:...।'** (सा० १७२) आगे चलकर इस 'इन्द्र' को 'द्युलोक और भूलोक को चमड़े की तरह फैलाने वाला-विकसित करने वाला कहा गया—**'ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत्। इन्द्रश्चर्मेव रोदसी॥"** (सा० १८२)। इसी प्रकार के अनेकानेक श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न होने के कारण सामवेद में 'इन्द्र' को विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त है। इनके हजारों गुणों और प्रभावों के वर्णन प्रयास में सामवेद के 'पूर्वार्चिक' का एक स्वतंत्र काण्ड ही विनिर्मित हो गया है, जिसका नाम 'ऐन्द्र काण्ड या ऐन्द्र पर्व' रखा गया है, जिसमें ३५१ साममंत्र संगृहीत हैं।

'इन्द्र' पर भौतिक विज्ञान की दृष्टि से भी पर्याप्त अध्ययन किया गया है। आर्ष दृष्टि 'इन्द्र' को देवों का राजा या संगठक मानती है, तो वैज्ञानिक दृष्टि उन्हें "इलेक्ट्रॉन, प्रोट्रॉन एवं न्यूट्रॉन का अन्त:-संबंधक या गुप्त संयोजक मानती है। इसे ही ऋषि ने 'त्रित' कहा है। वैज्ञानिक दृष्टि का यह विशद विवेचन 'वेदों में इन्द्र' नामक पुस्तक में देखा जा सकता है।

सोम—ऋषियों की दृष्टि में सोम एक मूलभूत पोषक तत्त्व है। उसे कभी सोमलता के रस के रूप में, कभी सूक्ष्म प्रवाह के रूप में तथा कभी व्यक्तित्व सम्पन्न देवशक्ति के रूप में अनुभव करते हुए विभिन्न मंत्र कहे गये हैं। उन्हें, उन्हीं संदर्भों में देखने-समझने का प्रयास किया जाय, तो वेदों की गरिमा प्रकट होकर आशीर्वाद से मंडित करने में समर्थ हो सकती है।

सोम की उक्त तीनों अवधारणाओं को स्पष्ट

करने के लिए यहाँ कुछ उदाहरण देना समीचीन होगा — 'सोमलता' की उत्पत्ति पर्वतीय उच्च स्थानों (हिमाच्छादित उपत्यिकाओं) में मानी गयी है, जिसका दिव्य-मधुर रस अतिशय आनन्द प्रदान करने में सक्षम है— '**असाव्यं शुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः...** ।' (सा० ४७३) यह सोम रस हरिताभ वर्ण का होता है, बल-वीर्य बढ़ाने वाला है। देवता भी बड़ी रुचि से इसका पान करते हैं— '**पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हेर। मरुद्‌भ्यो वायवे मदः** ।' (सा० ४७४)

शारीरिक बल-वीर्य बढ़ाने के साथ यह सोम रस बुद्धि, मानसिक क्षमता बढ़ाने वाला भी है—**प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त उर्मयः** । (सा० ४७८) इस सोमरस के कतिपय पदार्थगत गुण इस प्रकार बताये गये हैं—**जागृविः**— जागृत रहने वाला (सा० १३५७) **शुक्रः**— वीर्य या तेज बढ़ाने वाला (सा० १३५७), **पीयूषः**—अमृत रूप (सा० १३५७), **दक्षसाधनः**— दक्षता बढ़ाने वाला (सा० १३८८), **प्रियः**— सबको प्रिय (सा० १३९५), **सहावान्**—शत्रुओं को हराने की शक्ति से युक्त (सा० १४०९), **वृषा**—बलवान (सा० १४१९), **सुमेधा**—उत्तम मेधा शक्ति प्रदान करने वाला (सा० १४२०), **तेजिष्ठाः**— तेजस्वी (सा० १४२४), **मनसः पतिः**— मन पर नियंत्रण करने वाला इत्यादि ।

जहाँ सोम को एक लता के रूप में कहा गया है, वहीं उसे एक सूक्ष्म शक्ति-प्रवाह भी कहा गया है। परमात्म शक्तियों का ऐसा प्रवाह, जो सर्वत्र संचरित होकर सृष्टि-संतुलन-विकास आदि में अपना योगदान देता है, क्रान्त-दर्शी ऋषियों ने उसे भी 'सोम' संज्ञा से अभिहित किया है—"**उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्‌भूम्या ददे । उग्रं शर्म महिश्रवः** ॥" अर्थात् हे सोम ! आपके पोषक रस का जन्म सर्वोच्च द्युलोक में हुआ है। आपके उस द्युलोक में होने वाले महिमाशाली सुखद प्रभाव और पोषण शक्ति, भूमि पर रहने वाले प्राणी प्राप्त करते हैं। (साम० ४६७)

'पवित्र तथा पवित्र करने वाला यह 'दिव्य सोम' द्युलोक में दिखाई पड़ने वाले व्यापक वैश्वानर के तेज को उसी तरह उत्पन्न किया, जैसे उसने विद्युत् को उत्पन्न किया था'—**पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम्। ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत्** ॥ (सा० ४८४) एक स्थान पर सोम को 'महान् जल प्रवाहों में मिला हुआ' कहा गया है—'**परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः...** । (सा० ४८६)

'सोम' का तीसरा स्वरूप और भी प्रभावशाली है। त्रिकालदर्शी मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने अनुभव किया कि सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड की संरचना, विकास और विलय की प्रक्रिया का नियामक यह 'सोम' ही है। एक स्थान पर उसे 'सूर्य को प्रकाशित करने वाला' कहा गया है—यया सूर्यमरोचयः... । (सा० ४९३) वह प्रभाव सम्पन्न 'सोम' महान् जल-प्रवाहों को अवरुद्ध कर देने वाले 'वृत्र' को मारने के लिए 'इन्द्र' को प्रेरित-उत्साहित करने वाला है—"**स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे । वव्रिवांसं महीरपः** ॥ (सा० ४९४) उक्त दृष्टियाँ मंत्रद्रष्टा ऋषियों द्वारा अनेकशः उपलब्ध होती हैं, किन्तु अधुनातन पदार्थ विज्ञान, जिसे आज के मनीषियों ने सर्वाधिक महत्व प्रदान किया, ने 'सोम' को किस रूप में प्रतिपादित किया है, इसका निदर्शन 'वेदों में सोम' नामक ग्रंथ में देखा जा सकता है। विद्वान् लेखक ने इस ग्रंथ के दूसरे अध्याय में सोम को वायु और इन्द्र से उत्पन्न हुआ मानकर तीनों को परमाणु 'त्रित' की संज्ञा दी है, जिसे 'ऐटॉमिक पार्टिकिल्स' बताते हुए, उसी से सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड की संरचना मानी है। स्वाध्याय मंडल पारडी से प्रकाशित भाष्य के अंतर्गत श्री सातवलेकर जी ने सामवेद में इन्द्र के १००, अग्नि के ७५ तथा सोम के ३४ गुणों की सूची दी है। स्पष्ट है कि ऋषि इन दिव्य शक्तियों को उन सभी संदर्भों में क्रियाशील देखते हैं। इसीलिए किसी सीमित संदर्भ या पूर्वाग्रह को आगे रखकर उनके द्वारा किये गये विवरण का मर्म नहीं जाना जा सकता ।

इस भाषानुवाद में विभिन्न दृष्टियों को ध्यान में रखकर मंत्र के अनुरूप संदर्भ में उनके अर्थ बोधगम्य बनाने का प्रयास किया गया है।

ऋषि, देवता और छंद

वेदमंत्रों में सन्निहित ज्ञान-निधि प्राप्त करने के इच्छुक- जन, जब संहिता और उसका भाषार्थ पढ़ते हैं, तो प्रारंभ में ही प्रयुक्त ऋषि, देवता तथा छंदों का विवरण पाते हैं । भाषार्थ में यत्र-तत्र ऐसी संज्ञाएँ आती हैं, जो किसी न किसी देवता, ऋषि, उपकरण-पात्र, क्रिया, स्थान आदि की द्योतक होती हैं । उनके विषय में विस्तार से जानने की उत्सुकता सहज ही होती है, विशेषकर ऋषियों-देवताओं के विषय में । इस भाषार्थ में छिट-पुट संज्ञाओं का तो, वहीं टिप्पणियों में परिचय दे दिया गया है, परन्तु ऋषियों, देवताओं तथा छंदों का परिचय 'परिशिष्ट' के रूप में अकारादि क्रम से दे दिया गया है, जो आज तक प्रकाशित हुई वैदिक संहिताओं में तथा वेद भाष्यों में अनुपलब्ध है । प्रत्येक संहिता में जिन-जिन ऋषियों, देवताओं एवं छंदों का नामोल्लेख प्रति मंत्र के साथ हुआ है, उनका अकारादि क्रम से परिचय 'परिशिष्ट' क्रमांक एक, दो तथा तीन में प्रस्तुत किया गया है, जो इस विषय के शोधार्थियों के लिए अत्युपयोगी सिद्ध होगा ।

पाठ के संदर्भ में

प्रस्तुत संहिता में मंत्रों का नितांत परिशुद्ध पाठ छापा गया है । इस दिशा में गवेषणात्मक विचार करने पर कई संहिताओं में कुछ अंतर देखने को मिला है । आजकल की उपलब्ध संहिताओं में, दो संहिताएँ अत्यधिक प्रामाणिक मानी गई हैं— एक है स्वाध्याय मण्डल पारडी, बलसाड़ से प्रकाशित, दूसरी है— वैदिक यंत्रालय, अजमेर से प्रकाशित; किन्तु कुछ मंत्रांश दोनों में अलग-अलग हैं ।

ऐसी स्थिति में हमने मैक्समूलर द्वारा संपादित, अक्टूबर १८४९ ई० में आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी से प्रकाशित प्राचीन पाठ को प्रामाणिक माना है और उसके अनुसार अपने पाठ को शुद्ध करके छापा है ।

आशा है, जिस भाव से यह प्रयास किया गया है, उसे उसी रूप में ग्रहण करते हुए पाठक-गण, इससे विशेष लाभ प्राप्त कर सकेंगे ।

—भगवती देवी शर्मा

"वेद मन्त्र अनुभूतिजन्य ज्ञान के उद्घोषक है। विशुद्ध ज्ञान (प्योर साइंस) के रूप में होने से उनके प्रायोगिक (एप्लाइड) रूप अनेक बनते हैं। वे आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक सभी प्रकार के रहस्यों को उजागर करते हैं। किसी एक पक्ष के लिए पूर्वाग्रह रखकर ऋषियों की उक्तियों के साथ न तो न्याय किया जा सकता है और न ही पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सकता है। उसे तो ऋषियों की विवेक-दृष्टि का अनुसरण करते हुए ही समझा जाना चाहिए।"

* * *

सामवेद-संहिता

पूर्वार्चिक: (छन्द आर्चिक:)

॥ आग्नेयं पर्व ॥

॥अथ प्रथमोऽध्याय: ॥

॥प्रथम: खण्ड: ॥

१. अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१ ॥

हे प्रकाशक एवं सर्वव्यापक अग्निदेव ! हवि को गति देने (वीति) के लिए आप पधारें । आपकी सब स्तुति करते हैं । यज्ञ में हम आपका आवाहन करते हैं; क्योंकि आप सब पदार्थों को प्रदान करने वाले हैं ॥१ ॥

२. त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हित: । देवेभिर्मानुषे जने ॥२ ॥

हे अग्ने ! आप समस्त देव शक्तियों को एकत्रित करते हैं, जिनकी उपस्थिति यज्ञों में अनिवार्य मानी गई है । सभी देवगणों के द्वारा जनमानस के मध्य आपको प्रतिष्ठित किया जाता है ॥२ ॥

३. अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥३ ॥

हे सर्वज्ञाता ! आप यज्ञ के विधाता हैं, समस्त देव शक्तियों को तुष्ट करने की सामर्थ्य रखते हैं । आप यज्ञ की विधि-व्यवस्था के स्वामी हैं— ऐसे समर्थ आपको देवदूत रूप में हम स्वीकार करते हैं ॥३ ॥

४. अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुत: ॥४ ॥

उनके सत्प्रयासों से प्रसन्न होकर याजकों को सम्पन्नता प्रदान करने वाले हे प्रदीप्त अग्निदेव ! हमें बन्धन में रखने वाली दुष्टवृत्तियों का आप विनाश करें ॥४ ॥

५. प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्ने रथं न वेद्यम् ॥५ ॥

हे अग्ने ! उपासकों की अभिलाषा पूरी करने वाले, सदा सब पर कृपा करने वाले, मित्र के समान व्यवहार करने वाले आप हमारी प्रार्थना से प्रसन्न हों ॥५ ॥

६. त्वं नो अग्ने महोभि: पाहि विश्वस्या अराते: । उत द्विषो मर्त्यस्य ॥६ ॥

हे अग्ने ! संसार के, द्वेष करने वाले व्यक्तियों एवं शत्रुओं से आप हमारी रक्षा करें और विषम परिस्थितियों में हमें धैर्यवान् बनायें ॥६ ॥

७. एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिर: । एभिर्वर्धास इन्दुभि: ॥७ ॥

हम आपके लिए ही स्तुति करते हैं, आप इन्हें सुनें, प्रकट हों और इस सोमरस से अपनी महानता का विस्तार करें ॥७ ॥

८. आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् । अग्ने त्वां कामये गिरा ॥८ ॥

हे देव ! हम आपके पुत्र, हृदय से आपकी स्तुति करते हुए अपनी ओर आकर्षित करना चाहते हैं ॥८ ॥

९. त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥९ ॥

परम श्रेष्ठ, अखिल विश्व के धारणकर्त्ता, हे अग्निदेव ! विज्ञान वेत्ताओं (अथर्वा) ने आपको विश्व के महानतम आधार के रूप में अरणिमंथन द्वारा प्रकट किया ॥९ ॥

१०. अग्ने विवस्वदा भरास्मभ्यमूतये महे । देवो ह्यसि नो दृशे ॥१० ॥

हे अग्ने ! हमारी श्रेष्ठता की रक्षा के निमित्त आप हमें उपयुक्त आवास प्रदान करें । आप ही प्रकाशों में श्रेष्ठ प्रकाशवान् देव हैं । आप ही समर्थ एवं शक्तिशाली देवता हैं ॥१० ॥

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

११. नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥१ ॥

हे अग्ने ! आप सामर्थ्यवान् एवं अतुलनीय पराक्रम वाले हैं, इसलिये समस्त साधक जन आपको नमस्कार करते हैं । आप अहितकारियों के विनाशक हैं, उनका संहार करें ॥१ ॥

१२.दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥२ ॥

ज्ञान सम्पन्न हे अग्निदेव ! आप हवि वाहक हैं । समस्त देव शक्तियों के प्रतिनिधि हैं, यज्ञ के साधन रूप हैं । हम आपसे स्तुति के माध्यम से अनुकूल होने की प्रार्थना करते हैं । आप सदा कृपावान् बने रहें ॥२ ॥

१३.उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः । वायोरनीके अस्थिरन् ॥३ ॥

हे अग्ने ! यजमान की वाणी से प्रकट होने वाली प्रिय स्तुतियाँ, आपके गुणों को प्रकट करती हैं और वायु के सहयोग से आपको प्रदीप्त करती हैं ॥३ ॥

१४.उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥४ ॥

हे जाज्वल्यमान देव ! हम आपके सच्चे उपासक हैं । श्रेष्ठ बुद्धि द्वारा आपकी स्तुति करते हैं । दिन और रात्रि में सतत आपका गुणगान करते हैं । हे देव ! हमें आपका सान्निध्य प्राप्त हो ॥४ ॥

१५. जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय । स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥५ ॥

स्तुतियों से समझे जाने वाले हे अग्निदेव ! यजमान, पुनीत यज्ञस्थल में आपके दुष्ट-विनाशक स्वरूप के आवाहन हेतु सुन्दर प्रार्थना करते हैं ॥५ ॥

१६. प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥६ ॥

हे अग्ने ! यज्ञ की गरिमा के संरक्षण के लिए हम आपका आवाहन करते हैं । आपको मरुतों के साथ आमन्त्रित करते हैं । देवताओं के इस यज्ञ में आप पधारें ॥६ ॥

१७.अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः । सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥७ ॥

सूर्य के समान तमनाशक एवं शक्तिशाली हे अग्ने ! निर्विघ्न और हिंसारहित यज्ञ में आप पधारें । हम सभी आपको नमन करते हैं ॥७ ॥

१८. और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदा हुवे । अग्निं समुद्रवाससम् ॥८॥

हे समुद्र में वास करने वाले अग्निदेव ! (बड़वाग्नि) भृगु और अप्नवान् आदि ज्ञानी ऋषियों ने सच्चे मन से आपकी प्रार्थना की है । हम भी हृदय से आपकी स्तुति करते हैं ॥८॥

१९. अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः । अग्निमिन्धे विवस्वभिः ॥९॥

मनोयोगपूर्वक अग्नि प्रदीप्त करने वाला साधक अपनी श्रद्धा को भी प्रदीप्त करता है । अस्तु, सूर्य किरणों के साथ (सूर्योदय के साथ) ही अग्निहोत्र की व्यवस्था करता है ॥९॥

[सूर्य ऊर्जा से शरीर में विशेष पदार्थ का निर्माण होता है-यह विज्ञानसिद्ध सिद्धान्त है । ऋषि प्रतिपादित अग्निहोत्र करने का समय भी यही है ।]

२०. आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम् । परो यदिध्यते दिवि ॥१०॥

द्युलोक से भी परे स्वप्रकाशित (सविता) तथा दिन में दृश्यमान सूर्यदेव इन सभी प्राचीनतम तेजस्वी स्वरूपों में द्रष्टा परमात्मा का ही तेज देखते हैं ॥१०॥

[विज्ञान जगत् में पदार्थ की अनन्तता का आधार अज्ञात है । जबकि ऋषियों ने इस आधार को प्रसूत करने वाली शक्ति को 'सविता' नाम दिया है ।]

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

* * *

॥ तृतीयः खण्डः ॥

२१. अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् । अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥१॥

हे ऋत्विजो ! अपने अहिंसक परमार्थ कार्यों (यज्ञों) में सहायक, अतिश्रेष्ठ, सबके हितैषी, बलशाली अग्निदेव का सान्निध्य प्राप्त करो ॥१॥

२२. अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यं सद्विश्वं न्य१त्रिणम् । अग्निर्नो वंसते रयिम् ॥ २ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपनी प्रज्वलित तीक्ष्ण ज्वालाओं से विघ्नकारक तत्त्वों को-शत्रुओं को नष्ट करें और जो आपकी उपासना तथा स्तुति करते हैं, उनको बल और ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२॥

२३. अग्ने मृड महाँ अस्यय आ देवयुं जनम् । इयेथ बर्हिरासदम् ॥३॥

हे अग्ने ! आप उपासकों को समृद्ध और सुखी बनाएँ, क्योंकि आप सामर्थ्यवान् हैं-महान हैं । उपासक यजमानों के समीप पवित्र आसन पर बैठने के लिए आप पधारें ॥३॥

२४. अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति स्म देव रीषतः । तपिष्ठैरजरो दह ॥४॥

हे अग्ने ! पाप से आप हमें बचाएँ । हमारी रक्षा कर आप अपने अजर-अमर-प्रखर तेज से हिंसक शत्रुओं की कामनाओं को भस्मीभूत करें ॥४॥

२५. अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्त्याशवः ॥५॥

हे अग्ने ! द्रुतिगति से चलने वाले श्रेष्ठ, कुशल अपने अश्वों (बलवान्, कर्मठ, इन्द्रियादिकों) को आप रथ में नियोजित करें । (अपने नियंत्रण में संचालित करें) ॥५॥

२६. नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं धीमहे वयम् । सुवीरमग्न आहुत ॥६॥

हे अग्ने ! हे स्वामी ! हम आपको इस पावन पुनीत स्थल पर प्रतिष्ठापित करते हैं । आप अनेकों यजमानों

द्वारा आहूत किये जाते हैं। कोई भी प्रखर-तेजस्वी, जो आपकी स्तुति करते हैं, उनको सब सुख प्राप्त होते हैं। हम हृदय से आपका वरण करते हैं ॥६॥

२७. अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपां रेतांसि जिन्वति ॥७॥

अग्निदेव द्युलोक से पृथ्वी तक संव्याप्त जीवों के पालनकर्त्ता हैं, जल को रूप एवं गति देने में समर्थ हैं ॥ **[यह भाव वैज्ञानिक सन्दर्भ में भी प्रयुक्त होता है। हाइड्रोजन आक्सीजन ऊर्जा से जल उत्पन्न होता है। ऊर्जा ही जल को मेघ बनाकर प्रकृति का पोषण करती है। विज्ञान जगत् में यह तथ्य 'कण्डेंस्ड सुपर हीटेड स्कीम' के अन्तर्गत आता है।]**

२८. इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम्। अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥८॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे गायत्री परक, प्राण-पोषक स्तोत्रों (भावों) एवं नवीन अन्न (हव्य) को देवों तक (देव वृत्तियों के पोषण हेतु) पहुँचाएँ ॥८॥

२९. तं त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदग्ने अङ्गिरः। स पावक श्रुधी हवम् ॥९॥

गोपवन ऋषि की स्तुति से प्रकट हुए, शरीरावयवों में सूक्ष्मरूप से विद्यमान, सबको पवित्र करने वाले हे अग्निदेव ! आप हमारी प्रार्थना ध्यान से सुनें। मानव शरीरावयवों में चेतना के सूक्ष्म केन्द्र विद्यमान होते हैं, स्वास्थ्य के रहस्य वे ही हैं ॥९॥

३०. परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत्। दधद्रत्नानि दाशुषे ॥१०॥

सर्वज्ञ, अन्नों के स्वामी अग्निदेव, याजकों द्वारा दिये गये हवनीय पदार्थों को स्वीकार करते हैं तथा परमार्थ परायणों को धन-धान्य से परिपूर्ण बनाते हैं ॥१०॥

३१. उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥११॥

संसार को सूर्य का बोध (दर्शन) कराने के लिए, उसकी किरणें, जातवेद (सूर्य) से जिसकी उत्पत्ति समझी जाती है— ऐसे अग्निदेव को भलीप्रकार धारण किये रहती हैं ॥११॥

३२. कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे। देवममीवचातनम् ॥१२॥

हे ऋत्विजो ! लोकहितकारी यज्ञ में रोगों को नष्ट करने वाले, ज्ञानवान् अग्निदेव की स्तुति आप सब विशेष रूप से करें ॥१२॥

३३. शं नो देवीरभिष्टये शं नो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः ॥१३॥

हमें, सुख-शान्ति प्रदान करने वाला जल-प्रवाह प्रकट हो। वह जल पीने योग्य, कल्याणकारी एवं सुखकर हो ॥१३॥

[आग्नेय काण्ड में यहां कल्याणकारी जल की कामना की गयी है; क्योंकि जल की उत्पत्ति अग्नि से ही मानी गई है। (अग्नेरापः सूत्रानुसार तथा पदार्थ विज्ञानानुसार हाइड्रोजन२ + आक्सीजन = ताप + जल) अस्तु, अग्नि से श्रेष्ठ जल की कामना करना उचित ही है।]

३४. कस्य नूनं परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते। गोषाता यस्य ते गिरः ॥१४॥

(प्रश्न है) हे सत्य के रक्षक ! (अग्नि— परमात्मा, आप) किस प्रकार के व्यक्ति की बुद्धि को विशेष रूप से सत्य मार्ग पर प्रेरित करते हैं ? (उत्तर है) जिसकी वाणी ज्ञान का बोध कराने वाली होती है (उसे प्रेरित करते हैं) ॥१४॥

॥इति तृतीयः खण्डः ॥

॥चतुर्थः खण्डः ॥

३५. यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥१ ॥

हम सर्वज्ञ, अमर, हितकारी मित्र की तरह (सहयोग करने वाले) अग्निदेव की प्रशंसा करते हैं। हे उद्‌गातागण ! आप भी प्रत्येक स्तुति एवं यज्ञायोजन में उन बलशाली अग्निदेव की स्तुति करें ॥१ ॥

३६. पाहि नो अग्न एकया पाह्यू३त द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥२ ॥

सबको स्थापित करने वाले हे अग्ने ! आप प्रथम स्तुति से हमारी रक्षा करें, द्वितीय स्तुति से अभय प्रदान कर, तृतीय स्तुति से भी संरक्षण दें । हे ऊर्जाओं के स्वामी ! चतुर्थ स्तुति से आप हम सबका पालन करें ॥२ ॥

[वाणी का प्रेरक अग्नि को ही कहा गया है । वाणियाँ - परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी चार प्रकार की होती हैं। चारों वेद भी चार वाणियों के रूप में प्रसिद्ध हैं। इसलिए यहाँ चार चरण की स्तुतियों का उल्लेख किया गया है ।]

३७. बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवत्पावक दीदिहि ॥३ ॥

हे बड़ी ज्वालाओं से युक्त तरुण अग्ने ! सम्पन्नता एवं पवित्रता प्रदान करने वाले आप महान् हैं । अपने प्रखर तेज से भरद्वाज (पूर्णज्ञानी ऋषि) के लिए अत्यन्त तेजस्वी रूप में आप प्रज्वलित हों ॥३ ॥

३८. त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वं दयन्त गोनाम् ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! उत्तम अग्निकार्य करने वाले विद्वान, धन का नियोजन करने वाले, प्रजा की व्यवस्था बनाने वाले, गौओं के पालक (अर्थात् चारों वर्णों के कर्त्तव्यनिष्ठजन) आपके कृपा पात्र बनें ॥४ ॥

३९. अग्ने जरितर्विश्पतिस्तपानो देव रक्षसः ।
अप्रोषिवान् गृहपते महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥५ ॥

हे ज्ञानस्वरूप अग्निदेव ! आप प्रजा के रक्षण और पोषण करने वाले तथा आसुरी प्रकृति के लोगों को संताप देने वाले हैं । आप घरों के स्वामी, सदा घरों में विद्यमान रहते हैं । हे द्युलोक के रक्षक ! आप वन्दनीय हैं ॥५ ॥

४०. अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥६ ॥

हे अमर अग्ने ! उषाकाल में विलक्षण शक्तियाँ प्रवाहित होती हैं, यह दैवी-सम्पदा नित्य दान करने वाले व्यक्ति को दें । हे सर्वज्ञ ! उषाकाल में जाग्रत् हुए देवताओं को भी यहाँ लाएँ । ।६ ॥

४१. त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥७ ॥

हे सबके आश्रयदाता अग्निदेव ! आपकी शक्ति अद्‌भुत है, अपार है । आप अपनी क्षमता से वैभव लाने में समर्थ हैं । आप समृद्धि को हमारे पास आने दें तथा हमारी संतानों को भी सुसम्मानित बनाएँ-प्रतिष्ठा दें ॥७॥

४२. त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतः कविः ।

त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ॥८ ॥

हे सर्वरक्षक अग्ने ! आप अपने गुणधर्म के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं । आप सत्य रूप तथा ज्ञानी भी हैं । हे तेजस्विता के प्रतीक अग्निरूप, आपके प्रज्वलित होने पर ज्ञानी, श्रेष्ठ याज्ञिक आपकी स्तुति करते हैं तथा सेवा के लिए तैयार रहते हैं ॥८ ॥

४३. आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावक शंस्यम् ।

रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती सुयशस्तरम् ॥९ ॥

हे पवित्र करने वाले अग्ने ! आप धन की वृद्धि करते हैं । हमें आप प्रशंसित धन प्रदान करें, जो उत्तम नीति के मार्ग से प्राप्त हुआ हो तथा हमारे लिए यशदायी हो ॥९ ॥

४४. यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।

मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये ॥१० ॥

याजकों को धन-धान्य के रूप में अपार वैभव देकर आनन्दित करने वाले अग्निदेव की पहले स्तुति करते हैं, जैसे उन्हें सर्वप्रथम सोम का पात्र समर्पित किया जाता है ॥१० ॥

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

॥पञ्चमः खण्डः ॥

४५. एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।

प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥१ ॥

अन्न प्रदान कर शक्ति क्षीण न होने देने वाले, चेतना एवं स्नेह प्रदाता, उत्तम यज्ञ के आधार, ज्ञानदाता सनातन अग्नि देव का आवाहन करते हुए, हम उनकी वन्दना करते हैं ॥१ ॥

४६. शेषे वनेषु मातृषु सं त्वा मर्तास इन्धते ।

अतन्द्रो हव्यं वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि ॥२ ॥

हे अग्ने ! आप वनों में, माता के गर्भ में तथा भूमि में अदृश्यरूप से व्याप्त हैं । याज्ञिक आपको बड़ी श्रद्धापूर्वक (समिधाओं द्वारा) जाग्रत् करते हैं । हे अग्निदेव ! आप आलस्यहीन होताओं के हव्य को देवताओं तक पहुँचाते हैं और स्वयं भी उनके मध्य सुशोभित होते हैं ॥२ ॥

४७. अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः ।

उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥३ ॥

धर्म मार्गों के ज्ञाता अग्निदेव प्रकट हो गये हैं, जिनके माध्यम से यज्ञ के नियम पूरे किये जाते हैं । उत्तम मार्ग से प्रकट हुए, आर्यों के प्रगतिदाता अग्निदेव हमारी स्तुतियाँ स्वीकार करें ॥३ ॥

४८. अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे ।

ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पते देवा अवो वरेण्यम् ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आपको सर्वप्रथम उक्थ नामक यज्ञ (प्रशंसनीय यज्ञ) में स्थापित किया जाता है । यज्ञस्थल में सोम कूटने के पत्थर एवं आसन स्थापित किये जाते हैं, इसलिए हे मरुतो ! हे ब्रह्मणस्पते ! हे देव ! वेद मंत्रों के द्वारा आपसे हम श्रेष्ठ रक्षण की कामना करते हैं ॥४ ॥

४९. अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
अग्निं राये पुरुमीढ श्रुतं नरोऽग्निः सुदीतये छर्दिः ॥५ ॥

हे स्तोताओ ! विस्तृत और विकराल ज्वाला वाले अग्निदेव की स्तुति करो । उद्गातागण, इन प्रसिद्ध अग्नि देव से स्तुतियों द्वारा धन तथा श्रेष्ठ प्रकाशयुक्त आवास प्राप्ति हेतु प्रार्थना करते हैं ॥५ ॥

५०. श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदतु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावभिरध्वरे ॥६ ॥

हे प्रार्थना पर ध्यान देने वाले अग्ने ! आप हमारी स्तुति स्वीकार करें । दिव्य अग्नि के साथ समान गति से चलने वाले मित्र और अर्यमा आदि देवगण भी प्रातःकालीन यज्ञ में (आकर) आसीन हों ॥६ ॥

५१. प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना ।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ॥७ ॥

इन्द्र के समतुल्य शक्तिशाली अग्निदेव, दिवोदास (दिव्य कार्यों के लिए समर्पितों) के लिए पृथ्वी पर प्रकट हुए । अपने यज्ञीय कार्यों के परिणाम स्वरूप वे (दिवोदास) स्वर्ग के अधिकारी बने ॥७ ॥

५२. अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि ।
अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ॥८ ॥

हे उत्तम यज्ञ के आधार अग्ने ! पृथ्वी एवं द्युलोक में आप अपनी आभा का विस्तार करें और अपनी प्रेरणा से हमारे सहयोगियों को पोषण प्रदान करें ॥८ ॥

५३. कायमानो वना त्वं यन्मातृरजगन्नपः ।
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद् दूरे सन्निहाभुवः ॥९ ॥

हे अग्ने ! आप पदार्थों के मूल घटकों को एकत्र (संयुक्त) करने में सक्षम हैं । अतः आपने माता की तरह, जो जल आदि द्रव्यों को जन्म दिया, उसने हमें भ्रमित नहीं किया, क्योंकि आप अदृश्य होकर भी उनमें विद्यमान हैं ॥९ ॥

५४. नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥१० ॥

हे अग्ने ! विचारवान् व्यक्ति ही आपको धारण करते हैं । अनादिकाल से ही मानव जाति के लिये आपकी ज्योति प्रकाशित है । आपका प्रकाश, आश्रमों के ज्ञानवान् ऋषियों में उत्पन्न होता है । यज्ञ में ही आपका प्रज्वलित स्वरूप प्रकट होता है । तभी, सभी मनुष्य आपको नमन करते हैं ॥१० ॥

॥इति पञ्चमः खण्डः ॥

* * *

॥षष्ठः खण्डः ॥

५५. देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम्।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥१ ॥

यज्ञदेव धनादि सम्पत्ति को देने वाले हैं । हे होताओ ! यज्ञ में स्रुवा को पूर्णरूप से भर कर बार-बार आहुति दो, घी डालो, तत्पश्चात् वे देव प्रसन्न होंगे और तुम्हें प्रगति के मार्ग पर बढ़ायेंगे ॥१ ॥

५६. प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥२ ॥

हमें ज्ञान के स्वामी और वाणी की अधिष्ठात्री देवी का आशीर्वाद प्राप्त हो । हमारे यज्ञ में आए देवगण, मानव कल्याण करने वालों के समुदाय को, यश प्रदान करने वाले वीर को, श्रेष्ठ मार्ग से ले जाएँ ॥२ ॥

५७.ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनितायदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप पवित्र स्थल पर उत्तम रीति से आसीन हों । सूर्यदेव के समान प्रखर होकर आप अन्नादि प्रदान करें । हम श्रेष्ठ स्तोत्रों के द्वारा आपके आवाहन के लिए स्तुति करते हैं ॥३ ॥

५८. प्र यो राये निनीषति मर्तो यस्ते वसो दाशत्।
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ॥४ ॥

हे सर्वाधार अग्निदेव ! जो साधक ऐश्वर्य के लिए, आपके उपासक बनकर, हवि प्रदान करते हैं, वे देवाराधक सहस्रों व्यक्तियों के पोषण में सक्षम, वीर पुत्र को उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं ॥४ ॥

५९. प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम्।
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिर्वृणीमहे यं समिदन्य इन्धते ॥५ ॥

व्यक्तियों में देवत्व का विकास करने वाले अग्निदेव की महानता का वर्णन, हम अपने सूक्त-वाक्यों में करते हैं । जिस महानता का जागरण ऋषियों ने भलीप्रकार किया था ॥५ ॥

६०. अयमग्निः सुवीर्यस्येशे हि सौभगस्य ।
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥६ ॥

ये अग्निदेव, सम्पत्ति के स्वामी, पराक्रम और पुरुषार्थ के प्रतीक एवं भाग्य के निर्माता हैं । गौ आदि पशु, सन्तान तथा धनादि के अधिपति हैं । बन्धन में डालने वाले दुष्टों का हनन करने वालों के भी वे अधिपति हैं ॥६ ॥

६१. त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे ।
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम् ॥७ ॥

हे अग्ने ! आप इस यज्ञ के होता रूप और गृहपति हैं, आप सभी के द्वारा स्वीकार करने योग्य हैं तथा सभी को पवित्र करने वाले हैं । आप श्रेष्ठ ज्ञानी भी हैं । आप धनादि प्राप्त करके उसे वितरित भी करते हैं ॥७ ॥

६२. सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये ।
अपां नपातं सुभगं सुदंससं सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥८ ॥

हे श्रेष्ठकर्मा, उत्तम ऐश्वर्य युक्त, निष्पाप, पापनाशक,पानी को नीचे न गिरने देने वाले अग्निदेव ! आपको अपने संरक्षण के लिए प्राप्त करने की कामना हम सभी समान बुद्धि वाले साधक करते हैं ॥८ ॥

[मेघों में जल को अग्नि की ऊर्जा (लेटेण्ट हीट) ही सँभाले रहती है। ऊर्जा शान्त हुए बिना वर्षा संभव नहीं होती।]

॥ इति षष्ठ:खण्ड: ॥

* * *

॥सप्तम: खण्ड: ॥

६३. आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं नि होतारं गृहपतिं दधिध्वम् ।
इडस्पदे नमसा रातहव्यं सपर्यता यजतं पस्त्यानाम् ॥१ ॥

हे ऋत्विजो ! आप सर्वत्र शुद्धता बढ़ाने के लिए यज्ञ करें । हवनीय पदार्थों के साथ ही गृहपति अग्नि की स्थापना करें तथा स्तुति करके उनका सम्मान करें ॥१ ॥

६४. चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावन्वेति धातवे ।
अनूधा यदजीजनदधा चिदा ववक्षत्सद्यो महि दूत्यां ३ चरन् ॥२ ॥

शिशु अवस्था से सीधे ही युवक (प्रखर) हो जाने वाले अग्नि देव का क्रम बड़ा अद्‌भुत है । ये उत्पन्न होने के बाद अपनी स्तनहीन दोनों माताओं (अरणियों) के पास दूध पीने (पोषण पाने) नहीं जाते, वरन् श्रेष्ठ दूतों की भूमिका निभाते हुए देवताओं के पास हवि पहुँचाते हैं ॥२ ॥

६५. इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
संवेशनस्तन्वे ३चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ॥३ ॥

हे मृत्यु के ग्रास होने वाले पुरुष ! अग्नि तेरा एक अंश है, दूसरा वायुरूप शरीर है, तीसरे सूर्यरूप तेज से अपने शरीर को संयुक्त कर दो । उनसे संयुक्त होकर हे पुरुष ! तेजस्वीरूप प्राप्त कर तथा पावन स्थान में जन्म लेकर, देवशक्तियों के प्रिय एवं श्रेष्ठ बनो ॥३ ॥

[यह मृत्यु के पश्चात् की प्रक्रिया को स्पष्ट करने वाला सूत्र है ।]

६६. इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि न: प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥४ ॥

पूजनीय जातवेद (अग्नि) को यज्ञ में प्रकट करने के लिए स्तुतियज्ञ को रथ की तरह विचारपूर्वक प्रयुक्त करते हैं । अग्नि से सम्पन्न होने वाले यज्ञ (स्थल) में हमारी हितकारी बुद्धि सक्रिय है । हे अग्निदेव ! हम आपकी मित्रता के पात्र बने रहें ॥४ ॥

[यज्ञ में श्रेष्ठ पदार्थों को अग्नि द्वारा देवशक्तियों तक पहुँचाया जाता है। स्तुतियों द्वारा साधक अपने श्रेष्ठ भाव देव-शक्तियों तक पहुँचाता है । इस दृष्टि से स्तुति भी यज्ञ है, जो रथ की तरह हमारी भावनाओं को इच्छित स्थान तक पहुँचाने में समर्थ है ।]

६७. मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना: पात्रं जनयन्त देवा: ॥५ ॥

सर्वोपरि द्युलोकवासी, भूलोक के स्वामी, वैश्वानर रूप में सभी प्राणियों में स्थित, ज्ञान एवं प्रकाशयुक्त, यज्ञ में प्रकट होने वाले अतिथि- तुल्य, पूज्य देवों के मुखरूप अग्निदेव, देवों द्वारा प्रकट किये गये ॥५ ॥

६८. वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरग्ने जनयन्त देवाः ।
तं त्वा गिरः सुष्टुतयो वाजयन्त्याजिं न गिर्ववाहो जिग्युरश्वाः ॥६ ॥

पर्वत की ऊँचाई से जिस प्रकार जल नीचे की ओर प्रवाहित होता है, उसी प्रकार विद्वान् याजक अपनी स्तुतियों से हे अग्ने ! आपको प्रकट करते हैं । जिस प्रकार घोड़े संग्राम में जाकर विजयश्री प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार हमारी श्रद्धासिक्त स्तुतियों से आप सामर्थ्यवान् बनते हैं ॥६ ॥

६९. आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥७ ॥

यज्ञ के अधिष्ठाता देवता ने, द्युलोक एवं भू-मण्डल में वास्तविक यज्ञ सम्पन्न करने वाले स्वर्णिम प्रकाश युक्त अग्नि को, अपने (यज्ञीय प्रक्रिया के) संरक्षण के लिए विद्युत् के पहले घोषणापूर्वक प्रकट किया ॥७ ॥

७०. इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
नरो हव्येभिरीडते सबाध आग्निरग्रमुषसामशोचि ॥८ ॥

यह (वैश्वानर-सभी प्राणियों में अन्तर्निहित) अग्नि (पोषक आहार) अन्न और (स्नेह) घृत द्वारा प्रदीप्त होती है । सभी मनुष्य (प्राणिमात्र) इस (स्वतः संचालित) यज्ञ में भागीदार बनते हैं । यह (जीवन-यज्ञ की) अग्नि उषा काल के पूर्व (जन्म ग्रहण करने के पूर्व माता के गर्भ में ही) प्रज्वलित हुई है । ।८ ॥

[प्रकृति में एक स्वतः संचालित यज्ञ चल रहा है, यहाँ उसी का संकेत है ।]

७१. प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥९ ॥

प्रकाशवान् ये अग्निदेव अन्तरिक्ष से प्रकट होकर, द्युलोक और पृथ्वी के बीच अपने स्वरूप को प्रखरता से प्रकट करते हैं । (विद्युत् गर्जना के रूप में) और जल (मेघों) के बीच यह प्रवर्धमान होते हैं ॥९ ॥

७२. अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् ।
दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् ॥१० ॥

प्रशंसनीय, गतिमान्, दूर से परिलक्षित होने वाले, गृहपति अग्नि को याजकों ने अरणि-मन्थन द्वारा प्रकट किया ॥१० ॥

॥इति सप्तमः खण्डः ॥

* * *

॥अष्टमः खण्डः ॥

७३. अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ॥१ ॥

याजकों की समिधाओं (श्रद्धा) से प्रज्वलित, इन (दिव्य) अग्निदेव की ज्वालाएँ, फैली हुई वृक्ष की डालियों के समान, उषाकाल में अपनी किरणों से द्युलोक तक फैल जाती हैं ॥१ ॥

७४. प्र भूर्जयन्तं महां विपोधां मूरैरमूरं पुरां दर्माणम् ।
नयन्तं गीर्भिर्वना धियं धा हरिश्मश्रुं न वर्मणा धनर्चिम् ॥२ ॥

असुरजयी, ज्ञानियों के पोषक, विवेकहीनों के आश्रय को नष्ट करने वाले, ज्ञानवान्, स्तुति करने वाले को ऐश्वर्य प्रदान करने वाले, रक्षा का दायित्व उठाने वाले, स्वर्णिम ज्वालाओं से युक्त, स्तुत्य अग्निदेव की हे मनुष्यो ! स्तुति करो ॥२ ॥

७५. शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावन्भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥३ ॥

परस्पर विरुद्ध स्वरूप वाले दिन और रात आपकी महिमा से ही होते हैं । हे पोषणकर्त्ता पूषन् देवता ! द्युलोक के समान आभावान् आप सम्पूर्ण जीव-जगत् की रक्षा करने वाले हैं । आपका कल्याणकारी अनुदान हमें प्राप्त हो ॥३ ॥

७६. इडामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी सुमति, भलीप्रकार उपासना करने वाले हम लोगों के लिए लाभकारी हो । हमें उपयोगी कार्यों में लगने वाली गौएँ तथा भूमि बराबर प्रदान करें । हमारी सन्तति वंश के विस्तार में सक्षम हो ॥४ ॥

७७. प्र होता जातो महान्नभोविन्नृषद्मा सीददपां विवर्ते ।
दधद्यो धायी सुते वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ॥५ ॥

समस्त घरों में विद्यमान रहने वाली अग्नि, मेघों के बीच विद्युत् के रूप में रहती है, वही यज्ञाग्नि के स्वरूप में प्रतिष्ठित है । वह यज्ञ कुण्ड में भलीप्रकार प्रज्वलित अग्नि उपासकों (याजकों) को अन्न, धन एवं शरीर का संरक्षण प्रदान करने वाली सिद्ध हो ॥५ ॥

७८. प्र सम्राजमसुरस्य प्रशस्तं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दद्वारा वन्दमाना विवष्टु ॥६ ॥

मनुष्यों के पूज्य एवं वन्दनीय, श्रेष्ठ एवं इन्द्रदेव के समान बलवान्, अग्निदेव के श्रेष्ठ-सुशोभित रूप की स्तुति करो । स्तुति एवं वन्दना द्वारा उनकी उपासना का लाभ प्राप्त करो ॥६ ॥

७९. अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इवेत्सुभृतो गर्भिणीभिः ।
दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥७ ॥

यह सर्वज्ञ अग्नि, गर्भिणी के पेट में सुरक्षित गर्भ की तरह अरणियों में समाहित रहती है । यज्ञ के लिए जागरूक रहने वाले होताओं द्वारा नित्य वन्दनीय है ॥७ ॥

८०. सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
अनु दह सहमूरान्कयादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥८ ॥

हे अग्ने ! आपने सदा से राक्षसों का दलन किया है, युद्ध में पराभूत किया है । आप क्रूर प्रकृति के दुष्टों को, जो अभक्ष्य भोजन करते हैं, नष्ट करें । वे आपकी तेजस्विता से बच न सकें ॥८ ॥

॥ इति अष्टमः खण्डः ॥

* * *

॥नवमः खण्डः ॥

८१. अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।
प्र नो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥१ ॥

हे निर्बाध गति वाले अग्ने ! आप ओजस्विता प्रदान करने वाली सम्पदा हमें प्रदान करें । हे देव ! हमें प्रशंसनीय धन और शक्ति-प्राप्ति के मार्ग का दिग्दर्शन कराएँ ॥१ ॥

८२. यदि वीरो अनु ष्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः ।
आजुह्वद्धव्यमानुषक् शर्म भक्षीत दैव्यम् ॥२ ॥

वीर पुत्र की प्राप्ति के लिए मनुष्य अग्नि को प्रदीप्त करे और सदा हवनीय पदार्थों का प्रयोग करके, दिव्य सुख प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करे ॥२ ॥

८३.त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि सञ्छुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥३ ॥

प्रदीप्त होने के पश्चात् अग्नि का धवल धूम, अंतरिक्ष में फैलता हुआ अनुभव होता है । हे पावन अग्ने ! सूर्य के समान, स्तुति के प्रभाव से आप प्रकाशित होते हैं ॥३ ॥

८४ .त्वं हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥४ ॥

सर्वद्रष्टा, सभी को आश्रय प्रदान करने वाले, सूर्य के समान (तेजस्वी) अग्निदेव, आप समिधारूप अन्न को ग्रहण करके, उसे प्रचुर मात्रा में परिपुष्ट करते हैं ॥४ ॥

८५. प्रातरग्निः पुरुप्रियो विश स्तवेतातिथिः ।
विश्वे यस्मिन्नमर्त्ये हव्यं मर्तास इन्धते ॥५ ॥

परम प्रिय लगने वाले, सभी मनुष्यों के घरों में अतिथि स्वरूप, प्रातः स्मरणीय, अमरणशील अग्नि में सभी लोग हविष्यान्नों से आहुति प्रदान करते हैं ॥५ ॥

८६. यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥६ ॥

अग्निदेव की शीघ्र प्रभावकारी स्तोत्रों से स्तुति की जाती है । वे दीप्तिमान् अग्निदेव, हमें अपरिमित धन-धान्य एवं अन्न प्रदान करने की कृपा करें ॥६ ॥

८७. विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥७ ॥

अन्न एवं बल चाहने वाले, हे मनुष्यो ! सर्वप्रिय एवं सर्वपूज्य अग्निदेव की स्तुति करो । हम (ऋत्विग्गण) भी इन (गृहपति) अग्निदेव की सुखदायक स्तोत्रों से स्तुति करते हैं ॥७ ॥

८८. बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
यं मित्रं न प्रशस्तये मर्तासो दधिरे पुरः ॥८ ॥

याजकगण मित्र के समान, तेजस्वी अग्निदेव को, स्तुति के लिए अपने सम्मुख स्थापित करके, उसमें प्रचुर मात्रा में हविष्यान्न की आहुति प्रदान करते हैं ॥८ ॥

८९. अगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।
यः स्म श्रुतर्वन्नार्क्षे बृहदनीक इध्यते ॥९ ॥

ऋक्षपुत्र श्रुतर्वा के (संहार के) लिए, प्रचण्ड ज्वालाओं वाली, वृत्र संहारक, श्रेष्ठ मनुष्यों के लिए हितकारी, अग्निदेव का हम वरण (उपासना) करते हैं ॥९ ॥

९०. जातः परेण धर्मणा यत्सवृद्भिः सहाभुवः ।
पिता यत्कश्यपस्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः ॥१० ॥

जिन अग्निदेव के पिता कश्यप, माता श्रद्धा एवं स्तोता 'मनु' हैं, वे उत्तम कर्मों के द्वारा प्रारम्भ किये गये यज्ञ में प्रकट होते हैं ॥१० ॥

॥ इति नवमः खण्डः ॥

* * *

॥दशमः खण्डः ॥

९१. सोमं राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे ।
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥१ ॥

हम (स्तोतागण), श्रेष्ठ स्तुति के माध्यम से राजा सोम, वरुण, अग्नि, आदित्य, सूर्य, ब्रह्मणस्पति, विष्णु और बृहस्पति का आवाहन करते हैं ॥१ ॥

९२. इत एत उदारुहन्दिवः पृष्ठान्या रुहन् ।
प्र भूर्जयो यथा पथोद्यामङ्गिरसो ययुः ॥२ ॥

अंगिरस् ऋषि ने श्रेष्ठ यज्ञ के प्रभाव से द्युलोक की प्राप्ति की और (उसी प्रभाव से) उसके ऊपर (भी) अवस्थित (प्रतिष्ठित) हो गये ॥२ ॥

९३. राये अग्ने महे त्वा दानाय समिधीमहि ।
ईडिष्वा हि महे वृषं द्यावा होत्राय पृथिवी ॥३ ॥

हे अग्ने ! महान् ऐश्वर्य देने के लिए हम आपको समिधाओं से प्रदीप्त करते हैं । (याजको) महान् (प्रकृति में चल रहे) यज्ञ के लिए पृथ्वी एवं द्युलोक की स्तुति करो ॥३ ॥

९४. दधन्वे वा यदीमनु वोचद्ब्रह्मेति वेरु तत् ।
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभुवत् ॥४ ॥

चक्र (पहिया) को धारण करने वाली धुरी के समान, सम्पूर्ण काव्यों (कर्मों) के ज्ञाता इन अग्निदेव के निमित्त (उनकी प्रसन्नता के लिए) पाठ करते हैं ॥४ ॥

९५. प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणाहि विश्वतस्परि । यातुधानस्य रक्षसो बलं न्युब्जवीर्यम् ॥५ ॥

अपने तेज (पराक्रम) से आततायी असुरों (दुष्टों) को नष्ट करने वाले हे अग्ने ! इन असुरों के बल एवं पराक्रम को आप पूर्णतया विनष्ट कर दें ॥५ ॥

९६. त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत ।
यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥६ ॥

वसु , रुद्र और आदित्य (आदि) देवताओं (की प्रसन्नता) के निमित्त यज्ञ करने वाले हे अग्निदेव ! आप घृताहुति से श्रेष्ठ यज्ञ सम्पन्न करने वाले मनु सन्तानों (मनुष्यों) का (अनुदानादि द्वारा) सत्कार करें ॥६ ॥

॥इति दशमः खण्डः ॥

* * *

॥एकादशः खण्डः ॥

९७. पुरु त्वा दाशिवाँ वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।
तोदस्येव शरण आ महस्य ॥१ ॥

महान् सम्पत्तिशाली की शरण में आये हुए, (धन-याचक) सेवक के सदृश, हम अग्निदेव के निमित्त आहुति प्रदान करते हुए, स्तुतिगान करते हैं ॥१ ॥

९८. प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् ।
विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥२ ॥

हे स्तोताओ ! तत्त्वज्ञानियों के तेज को धारण करने वाले, विधाता आदि देवों का आवाहन करने वाले, अग्निदेव की श्रेष्ठ एवं प्राचीन स्तोत्रों से स्तुति करो ॥२ ॥

९९. अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥३ ॥

(अरणिमन्थन रूप) बल से उत्पन्न हुए, ज्ञान को उत्पन्न करने वाले एवं गौओं से उत्पन्न अन्न (पोषक पदार्थों) के अधिपति हे अग्ने ! आप हमें प्रभूत धन-वैभव प्रदान करें ॥३ ॥

१००. अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवां देवयते यज ।
होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥४ ॥

यज्ञ में पूजनीय, देवों को बुलाने वाले, शत्रुजयी हे अग्निदेव ! आप याजकों एवं देवों के (कल्याण हेतु) यज्ञ करते हुए सुशोभित होते हैं ॥४ ॥

१०१. जज्ञानः सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिये ।अयं ध्रुवो रयीणां चिकेतदा ॥५ ॥

सात माताओं (ज्वालाओं) से समुत्पन्न, (वृद्धि को प्राप्त याजकों की) मेधाशक्ति वर्धन हेतु प्रयत्नशील, ये अग्निदेव धन-सम्पदाओं को भलीप्रकार जानने वाले हैं ॥५ ॥

[प्रस्तुत सन्दर्भ में मातृपद नदी अर्थ का भी बोधक है । सप्त का आशय सात नदियों से है, जो सतलज, व्यास, रावी, चिनाव, झेलम, सरस्वती और सिन्धु को मिलाकर सिद्ध होती हैं ।]

१०२.उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्यागमत् ।सा शन्ताता मयस्करदप स्रिधः ॥६ ॥

हे देवों की माता अदिति ! पूर्ण रक्षा-साधनों सहित आप हमारे समक्ष पधारें तथा शत्रुओं का हनन करें और हमें सुख-शान्ति प्रदान करें ॥६ ॥

१०३. ईडिष्वा हि प्रतीव्यां ३ यजस्व जातवेदसम् । चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् ॥७॥

हे स्तोताओ ! शत्रुजयी अदम्य तेजयुक्त, सर्वव्यापी धूम्र वाले, सर्वज्ञ, अग्निदेव की अर्चना करो ॥७ ॥

१०४ .न तस्य मायया च न रिपुरीशीत मर्त्यः ।यो अग्नये ददाश हव्यदातये ॥८ ॥

अग्निदेव को हविष्यान्न (की आहुति) प्रदान करने वाले यजमान पर, किसी भी दुष्ट की माया (छल-छद्म) का प्रभाव नहीं पड़ता ॥८ ॥

१०५. अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम् । दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥९ ॥

हे सत्यरक्षक अग्निदेव ! आप मायावी शत्रुओं एवं दुर्धर्ष चोरों को दूर हटाते हुए, हमारे श्रेष्ठ कल्याणकारी मार्ग को सुगम बनाएँ ॥९ ॥

१०६. श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते । नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह॥१०॥

हे प्रजापालक अग्ने ! हमारे इस नूतन स्तोत्र को सुनकर उत्साही हुए आप, छली और कपटी दुष्टों को अपने प्रखर तेज से भस्म कर दें ॥१० ॥

॥इति एकादशः खण्डः ॥

* * *

॥द्वादशः खण्डः ॥

१०७. प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे । उपस्तुतासो अग्नये ॥१ ॥

हे स्तोताओ ! आप श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा अग्निदेव की स्तुति करें । वे महान् सत्य और यज्ञ के पालक, महान् तेजस्वी और रक्षक हैं ॥१ ॥

१०८. प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः । यस्य त्वं सख्यमाविथ ॥२॥

हे अग्निदेव ! आप जिसके मित्र बनकर सहयोग करते हैं, वे स्तोतागण आप से श्रेष्ठ संतान, अन्न, बल आदि समृद्धि प्राप्त करते हैं ॥२ ॥

१०९. तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे । देवत्रा हव्यमूहिषे ॥३ ॥

हे स्तोताओ ! स्वर्ग के लिए हवि पहुँचाने वाले अग्निदेव की स्तुति करो । याजकगण स्तुति करते हैं और देवताओं को हवनीय द्रव्य पहुँचाते हैं ॥३ ॥

११०. मा नो हृणीथा अतिथिं वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः । यः सुहोता स्वध्वरः ॥४ ॥

हमारे प्रिय अतिथि स्वरूप अग्निदेव को यज्ञ से दूर मत ले जाओ । वे देवताओं को बुलाने वाले, धनदाता, एवं अनेकों मनुष्यों द्वारा स्तुत्य हैं ॥४ ॥

१११. भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः । भद्रा उत प्रशस्तयः ॥५॥

हवियों से संतुष्ट हुए हे अग्निदेव ! आप हमारे लिए मंगलकारी हों । हे ऐश्वर्यशाली ! हमें कल्याणकारी धन प्राप्त हो और स्तुतियाँ हमारे लिए मंगलमयी हों ॥५ ॥

११२. यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥६ ॥

हे देवाधिदेव अग्ने ! आप श्रेष्ठ याज्ञिक हैं । इस यज्ञ को भलीप्रकार सम्पन्न करने वाले हैं । हम आपकी स्तुति करते हैं ॥६ ॥

११३. तदग्ने द्युम्नमा भर यत्सासाहा सदने कं चिदत्रिणम्। मन्युं जनस्य दूढ्यम् ॥७॥

हे अग्ने ! आप हमें प्रखर तेज प्रदान करें, जिससे यज्ञ में आने वाले अति-भोगी दुष्टों को नियन्त्रित किया जा सके। साथ ही आप दुर्बुद्धि- युक्त जनों के क्रोध को भी दूर करें ॥७ ॥

११४. यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशे।
विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥८ ॥

यजमानों के रक्षक, हविष्यान्न से प्रदीप्त ये अग्निदेव प्रसन्न होकर, याजकों के यहाँ प्रतिष्ठित होते तथा सभी दुष्ट-दुराचारियों का (अपने प्रभाव से) विनाश करते हैं ॥८ ॥

॥इति द्वादशः खण्डः ॥

* * *

—ऋषि, देवता, छन्द विवरण—

ऋषि — भरद्वाज बार्हस्पत्य १- २, ४, ७, ९, २२, २५, ६७, ६८, ७५, ८३-८४। मेधातिथि काण्व ३, १६, ३२। उशना काव्य ५, ३४। सुदीति, पुरुमीढ आंगिरस ६, ४९। वत्स काण्व—८, २०।वामदेव १०, ८२। आयुङ्क्ष्वाहि ११। वामदेव गौतम १२, २३, ३०, ६९। प्रयोग भार्गव १३, १८, १९, २१, १०७। मधुच्छन्दा वैश्वामित्र १४। शुनःशेप आजीगर्ति १५, १७, २८। वसिष्ठ मैत्रावरुणि २४, २६, ३८, ४५, ५५, ६१, ७०, ७२, ७८। विरूप आंगिरस २७। गोपवन आत्रेय २९, ८७, ८९। प्रस्कण्व काण्व ३१, ४०, ५०, ९६। सिन्धुद्वीप आम्बरीष अथवा त्रित आप्त्य ३३। शंयु बार्हस्पत्य ३५, ३७, ४१। भर्ग प्रागाथ ३६, ३९, ४२-४३, ४६। सोभरि काण्व ४४, ४७, ५१, ५८, १०८-१०९, १११-११३। मनु वैवस्वत ४८। मेधातिथि, मेध्यातिथि काण्व ५२। विश्वामित्र गाथिन ५३, ६२, ७६, ७९, ९८, १००। कण्व घौर ५४, ५६-५७, ५९। उत्कील कात्य ६०। श्यावाश्व अथवा वामदेव ६३। उपस्तुत वार्ष्टिहव्य ६४। बृहदुक्थ वामदेव्य ६५। कुत्स आंगिरस ६६। त्रिशिरा त्वाष्ट्र ७१। बुध गविष्ठिर आत्रेय ७३। वत्सप्रि भालन्दन ७४, ७७। पायु भारद्वाज ८०, ९५ ।गय आत्रेय ८१। द्वित मृक्तवाहा आत्रेय ८५। वसूयव आत्रेय ८६। पूरु आत्रेय ८८। वामदेव अथवा कश्यप मारीच अथवा मनु वैवस्वत अथवा दोनों ९०। अग्नि तापस ९१। वामदेव, कश्यप, असित अथवा देवल ९२-९३। सोमाहुति भार्गव ९४। दीर्घतमा औचथ्य ९७। गोतम राहूगण ९९। त्रित आप्त्य १०१। इरिम्बिठि काण्व १०२। विश्वमना वैयश्व १०३-१०४, १०६, ११४। ऋजिश्वा भारद्वाज १०५। प्रयोग भार्गव अथवा सौभरि काण्व ११०।

देवता— अग्नि १-५१, ५३-५५, ५८-७४, ७६-९०, ९३-१००, १०३-१०४, १०६-११४। इन्द्र ५२। ब्रह्मणस्पति ५६। यूप ५७। पूषा ७५। विश्वेदेवा ९१, १०५। आंगिरा ९२। पवमान सोम १०१। अदिति १०२।

छन्द — गायत्री १-३४। बृहती—३५-६२। त्रिष्टुप् ६३, ६५, ६७-७१, ७३-८०। जगती ६४, ६६ अनुष्टुप् ८१-९६। उष्णिक् ९७-११४।

॥इति आग्नेयपर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ ऐन्द्रं पर्व ॥

॥अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

११५. तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद्गवे न शाकिने ॥१ ॥

हे स्तोताओ ! सोमरस तैयार हो जाने के पश्चात् अनेक लोग जिनकी स्तुति करते हैं, उन बलवान् इन्द्रदेव के लिए, एक साथ सब मिलकर स्तुति करें । इससे इन्द्रदेव को वैसा ही सुख प्राप्त होगा, जैसे गाय को घास से मिलता है ॥१ ॥

११६. यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः । तेन नूनं मदे मदेः ॥२ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! आपके लिए अत्यन्त तेजस्वी, अभिषुत किया हुआ सोमरस तैयार है । उसको पान करके आप तृप्त हों और धनादि देकर हमको आनन्दित करें ॥२ ॥

११७. गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥३ ॥

सूर्य रश्मियाँ यज्ञार्थ स्थित, उस पृथ्वी को (अन्नादि उत्पन्न करके) यज्ञीय रूप प्रदान करने वाली हैं, जिसके दोनों छोर चमकीले हैं ॥३ ॥

[पृथ्वी के दोनों ध्रुवों पर चुम्बकीय तरंगों का प्रचण्ड प्रवाह है, चुम्बकीय ऊर्जा के कारण उन्हें चमकीला कहा गया है ।]

११८. अरमश्वाय गायत श्रुतकक्षारं गवे । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥४ ॥

हे श्रुतकक्ष-ऋषि ! आप गौओं, अश्वों और इन्द्रदेव के आवास (स्वर्ग) की प्राप्ति के लिए पर्याप्त स्तोत्रों का गान करें ॥४ ॥

११९. तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥५ ॥

जो वृत्रहन्ता हैं, हम स्तोता उनकी प्रशंसा और स्तुति करते हैं, वे दाता इन्द्र हमें धन-धान्य से पूर्ण करें ॥५ ॥

१२०. त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः । त्वं सन्वृषन्वृषेदसि ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप महान् शक्तिशाली हैं । अपने साहस, बल और सामर्थ्य के कारण सबसे सिद्ध श्रेष्ठ हुए हैं । श्रेष्ठ फलों की वर्षा करने में आप समर्थ हैं ॥६ ॥

१२१. यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ॥७ ॥

जिस यज्ञ प्रक्रिया ने पृथ्वी को आकाश में लटकाकर, घुमाते हुए रखा है, उस यज्ञ ने इन्द्रदेव का यशवर्धन भी किया है ॥७ ॥

[। पृथ्वी का आकाश में घूमना पश्चिम वालों के लिये नवीन खोज हो सकती है, वेदज्ञों के लिए नहीं ।। गीता में कहा गया है— सृष्टि यज्ञसहित बनायी गयी है । इस ऋचा से उसी व्यापक यज्ञ का स्वरूप स्पष्ट होता है ।]

१२२. यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् । स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार आप सारे ऐश्वर्य के स्वामी हैं, वैसा यदि मैं बन जाऊं, तो मेरी स्तुति करने वाले गो आदि, धन-धान्य से युक्त हो जाएँ ॥८ ॥

[यहाँ ऐश्वर्य मिलने पर उसका उपयोग अभावग्रस्तों का अभाव मिटाने के लिये किये जाने का संकेत है ।]

१२३. पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय । सोमं वीराय शूराय ॥९ ॥

हे सोम- शोधन में रत याजको ! पराक्रमी, शूरवीर इन्द्रदेव के लिए आनन्ददायी सोम अर्पित करो ॥९ ॥

१२४. इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् । अनाभयिन्ररिमा ते ॥१० ॥

हे निर्भय इन्द्रदेव ! आप अभिषुत सोम को ग्रहण करें, जिससे आप तृप्त हों । आपको आनन्दित करने के लिए यह सोम अर्पित है ॥१० ॥

॥इति प्रथमःखण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

१२५. उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥१ ॥

जगत् विख्यात, ऐश्वर्य-सम्पन्न, शक्तिशाली, मानव मात्र के हितैषी और (दुष्टों पर) अस्त्रों से प्रहार करने वाले ये उदीयमान सूर्य (इन्द्र) देव हैं ॥१ ॥

१२६. यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥२ ॥

हे वृत्र के संहारक, अभी उदय हुए (सूर्य) इन्द्रदेव ! (आपसे प्रकाशित होने वाला) वह सब कुछ आपके अधिकार में है ॥२ ॥

१२७. य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् । इन्द्रः स नो युवा सखा ॥३ ॥

शत्रुओं के द्वारा तुर्वश और यदु (पराक्रमी राजाओं) को बहुत दूर फेंका गया था । वहाँ से इन्द्रदेव ही उन्हें उत्तम नीति से सरलतापूर्वक लौटा कर लाये थे । वे युवा (स्फूर्तिवान्) इन्द्रदेव हमारे मित्र हैं ॥३ ॥

१२८. मा न इन्द्राभ्या३ दिशः सूरो अक्तुष्वा यमत् । त्वा युजा वनेम तत् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! सर्वत्र विचरणशील, सब ओर शस्त्र फेंकने वाले (राक्षस), रात्रि के समय हमारे निकट न आ सकें । (यदि वे पास में आएँ भी तो) आपके अनुग्रह से वे नष्ट हो जाएँ ॥४ ॥

१२९. एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे जीवन संरक्षण के लिये तथा शत्रुओं को पराभूत करने के निमित्त, हमें धन-धान्य से पूर्ण करें ॥५ ॥

१३०. इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥६ ॥

हम छोटे-बड़े सभी (जीवन) संग्रामों में, वृत्रासुर-संहारक, वज्रपाणि इन्द्रदेव को सहायतार्थ बुलाते हैं ॥६ ॥

१३१. अपिबत्कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे । तत्राददिष्ट पौंस्यम् ॥७ ॥

कद्रु के द्वारा निष्पन्न सोमरस का इन्द्रदेव ने पान किया और हजारों भुजा वाले बलशाली शत्रु का संहार किया, जिससे इन्द्रदेव का दर्शनीय पराक्रम प्रकट हुआ ॥७ ॥

१३२. वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र नोनुमो वृषन् । विद्धी त्वा ३ स्य नो वसो ॥८ ॥

हे श्रेष्ठ वीर इन्द्रदेव ! हम आपकी कामना करते हुए बारम्बार नमन करते हैं । हे सबको आश्रय देने वाले ! आप हमारी प्रार्थनाओं को सुनें-समझें ॥८ ॥

१३३. आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा । ।९ ।।

श्रेष्ठ अग्नि को प्रदीप्त करने वाले याज्ञिकों के मित्र, चिर युवा इन्द्रदेव हैं । वे (याजक) उनके लिए कुश-आसन बिछाते हैं ।।९ ।।

१३४. भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर ।।१० ।।

आप विश्व भर के द्वेष करने वालों को नष्ट करें, विघ्न पैदा करने वाले दुष्टों को पराजित करें और सराहनीय वैभव हमें भरपूर मात्रा में प्रदान करें ।।१० ।।

।। इति द्वितीयः खण्डः ।।

* * *

।।तृतीयः खण्डः ।।

१३५. इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान् । नि यामं चित्रमृञ्जते ।।१ ।।

मरुद्‌गणों के हाथों में स्थित चाबुकों से होने वाली ध्वनियाँ हमें सुनाई देती हैं । जैसे, वे यहीं हो रही हों । वे ध्वनियाँ संघर्ष के समय असामान्य शक्ति प्रदर्शित करती हैं ।।१ ।।

१३६. इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः । पुष्टावन्तो यथा पशुम् ।।२ ।।

जिस प्रकार पशुपालक हाथ में घास लेकर स्नेहपूर्वक पशुओं की ओर देखता है, उसी प्रकार आपको तृप्त करने के लिए याजक सोमादि हाथ में लेकर आपकी ओर देखते रहते हैं ।।२ ।।

१३७.समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ।।३ ।।

समस्त प्रजाएँ (असुरों के प्रति) उग्र इन्द्रदेव के प्रति नमनपूर्वक उसी प्रकार आकर्षित होती हैं, जैसे कि सब नदियाँ समुद्र में मिलने के लिए वेग से जाती हैं ।।३ ।।

१३८. देवानामिदवो महत्तदा वृणीमहे वयम् । वृष्णामस्मभ्यमूतये ।।४ ।।

हे देवगण ! आपका संरक्षण हमारे लिए पूजनीय है । आप सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं । आपके महिमामय संरक्षण को हम स्वीकार करते हैं ।।४ ।।

१३९. सोमानां स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजः ।।५ ।।

हे ब्रह्मणस्पते ! सोमयज्ञ कर्त्ता, उशिज के पुत्र कक्षीवान् को तेजस्विता प्रदान करें ।।५ ।।

१४०.बोधन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः । शृणोतु शक्र आशिषम् ।।६ ।।

जिस देव के लिए बहुत से लोग सोमरस तैयार करते हैं, जो हमारी कामनाओं के ज्ञाता हैं, युद्ध क्षेत्र में शत्रुओं को पराजित करने वाले हैं । वे सामर्थ्यवान्, वृत्र संहारक इन्द्रदेव हमारी स्तुतियों को ध्यान से सुनें ।।६ ।।

१४१.अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् । परा दुःष्वप्न्यं सुव ।।७ ।।

हे सवितादेव ! आप आज हमें पुत्र-पौत्रों सहित पवित्र ऐश्वर्य प्रदान करें । दुःखदायी स्वप्नों की तरह दरिद्रता को हमसे दूर करें ? ।।७ ।।

१४२. क्व ३स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः । ब्रह्मा कस्तं सपर्यति ।।८ ।।

युवा, सशक्त ग्रीवा वाले एवं किसी के सामने न झुकने वाले, वे इन्द्र (परमेश्वर) इस समय कहाँ हैं ? कौन याजक उनका पूजन करता है ? ।।८ ।।

१४३. उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत ॥९ ॥

[पिछले मंत्र १४२ में किये गये प्रश्न का उत्तर यहाँ दिया गया है ।] (परमात्मा) पर्वत की घाटियों (शान्त स्थानों) एवं नदियों के संगम, पवित्र स्थलों पर श्रद्धापूर्वक ध्यान के द्वारा सत्पुरुष (परमात्मा की) आराधना करते हैं और वहीं उन्हें (इन्द्र को) प्राप्त करते हैं ॥९ ॥

१४४. प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥१० ॥

मनुष्यों में भलीप्रकार प्रतिष्ठा प्राप्त, स्तुति किये जाने योग्य, शत्रुजयी नेता, उन महान् इन्द्रदेव की स्तुति करें ॥१० ॥

॥इति तृतीयः खण्डः ॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः ॥

१४५. अपादु शिप्र्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः । इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः ॥१ ॥

मुकुटधारी इन्द्रदेव ने, देवताओं के लिए हवि देने में निपुण याज्ञिकों के जौ के आटे और दूध से मिश्रित सोमरस रूपी हविष्यान्न को ग्रहण किया ॥१ ॥

१४६. इमा उ त्वा पुरूवसोऽभि प्र नोनुवुर्गिरः । गावो वत्सं न धेनवः ॥२ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! दूध देने वाली गौएँ जिस प्रकार अपने बछड़ों के पास जाने के लिए लालायित रहती हैं । उसी लालसा से हम आपके निमित्त स्तवन करते हैं ॥२ ॥

१४७. अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥३ ॥

मनीषियों की मान्यता के अनुसार रात्रि में सूर्य के छिप जाने पर भी संसार को तुष्ट करने वाले सूर्यदेव का दिव्य तेज, गतिमान् चन्द्रमण्डल में दृष्टिगोचर होता है ॥३ ॥

१४८. यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः । तत्र पूषाभुवत्सचा ॥४ ॥

जब महाबली इन्द्रदेव, घनघोर जल वृष्टि के रूप में जल को प्रवाहित करते हैं, तब पोषण करने में समर्थ (पूषा) भी उनके सहयोगी होते हैं ॥४ ॥

[वर्षा के जल में पोषक तत्व संयुक्त हो जाते हैं ।]

१४९. गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम् । युक्ता वह्नी रथानाम् ॥५ ॥

धन-सम्पन्न, मरुतों के साथ अग्निरथ के माध्यम से जुड़ी हुई, अन्नादि उत्पन्न करने की इच्छा रखने वाली पृथ्वी माता दूध (सोम) पान करती हैं ॥५ ॥

१५०. उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते । उप नो हरिभिः सुतम् ॥६ ॥

हे सोमाधिपति इन्द्रदेव ! अपने श्रेष्ठ घोड़ों के द्वारा हमारे सोमयज्ञ में आप बार-बार पधारें ॥६ ॥

१५१. इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे । अच्छावभृथमोजसा ॥७ ॥

इन्द्रदेव की प्रशंसा करने वाले याज्ञिकगण अपनी शक्ति से हमारे यज्ञ में अवभृथ स्नान (यज्ञ की समाप्ति पर होने वाला स्नान) होने तक यज्ञाहुतियाँ देते हैं ॥७ ॥

१५२. अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह। अहं सूर्य इवाजनि ॥८॥

हमने (याजक) पालनकर्ता यज्ञरूपी इन्द्रदेव की बुद्धि को अपनी ओर आकर्षित कर लिया है। इससे हम सूर्यदेव के सदृश तेज से युक्त हो गये हैं ॥८॥

१५३. रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः। क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥९॥

जिन (इन्द्र) की सहायता से हम धन-धान्य से परिपूर्ण होकर प्रफुल्लित होते हैं, उन इन्द्रदेव के प्रभाव से युक्त होकर हमारी गौएँ दुग्धादि देकर हमें अधिक सामर्थ्य देने वाली बन जाती हैं ॥९॥

१५४.सोमः पूषा च चेततुर्विश्वासां सुक्षितीनाम्। देवत्रा रथ्योर्हिता ॥१०॥

देवताओं के रथ में आसीन सोम और पूषादेव मनुष्यमात्र को स्फूर्ति देने वाले हैं ॥१०॥

॥इति चतुर्थः खण्डः॥

* * *

॥पञ्चमः खण्डः॥

१५५. पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत।
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥१॥

हे याजको! सामर्थ्यवान् सैकड़ों प्रकार के कर्म करने वाले, शत्रुनाशक, सोमपायी इन्द्रदेव की विशेष स्तुतियों से प्रार्थना करो ॥१॥

१५६. प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत। सखायः सोमपाव्ने ॥२॥

हे साधको! किरणरूपी घोड़ों के स्वामी, सोमपायी इन्द्र को आनन्द प्रदान करने वाले स्तोत्रों का गान करो ॥

१५७. वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः। कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥३॥

हे इन्द्रदेव! आपसे मित्रता करने के इच्छुक, आपके सखा हम, आपके स्तोता तथा सभी कण्व-वंशी, स्तुतियों द्वारा आपकी प्रशंसा करते हैं ॥३॥

१५८. इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः। अर्कमर्चन्तु कारवः ॥४॥

आनन्दमयी प्रकृति वाले इन्द्रदेव के निमित्त निकाले गये दिव्य सोमरस की, हम वाणी द्वारा प्रशंसा करें। स्तोतागण, इस पूज्य सोम की प्रार्थना करें ॥४॥

१५९. अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि। एहीमस्य द्रवा पिब ॥५॥

हे इन्द्रदेव! वेदिका पर रखे गये आसन पर शोधित सोमरस आपके लिए है। आप शीघ्र ही आकर इसका पान करें ॥५॥

१६०. सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि ॥६॥

प्रतिदिन मधुर दूध प्रदान करने वाली गाय को, जिस प्रकार बुलाया जाता है, उसी प्रकार हम अपने संरक्षण के लिए सौन्दर्य प्रदान करने वाले इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं ॥६॥

१६१. अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये। तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥७॥

हे बलशाली इन्द्रदेव! सोमरस पीने के लिए इस सोमयज्ञ में आपके लिये सोमरस समर्पित करते हैं। आप इस तृप्तिकारक सोमरस का पान करें ॥७॥

१६२. य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥८ ॥

हे सामर्थ्यशाली इन्द्रदेव ! आपके लिए शुद्ध सोमरस (छोटे-बड़े) चमस पात्रों में भरकर रखा हुआ है । आप इस दिव्य रस का पान करें ॥८ ॥

१६३. योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥९ ॥

सत्कर्मों के शुभारम्भ में एवं हर प्रकार के संग्राम में बलशाली इन्द्रदेव का, अपने संरक्षण के लिए मित्रवत् आवाहन करते हैं ॥९ ॥

१६४. आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखायः स्तोमवाहसः ॥१० ॥

हे याज्ञिक मित्रो ! इन्द्रदेव को प्रसन्न करने के लिये, प्रार्थना करने हेतु शीघ्र आकर बैठो और हर प्रकार से स्तुति करो ॥१० ॥

॥इति पञ्चमः खण्डः ॥

* * *

॥षष्ठः खण्डः ॥

१६५. इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्वा३स्य गिर्वणः ॥१ ॥

हे ऐश्वर्यों के स्वामी, स्तुति के योग्य इन्द्रदेव ! बलपूर्वक निकाले (निचोड़े) गये, इस सोमरस का रुचिपूर्वक पान करें ॥१ ॥

१६६. महाँ इन्द्रः पुरश्च नो महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥२ ॥

हमारे ये इन्द्रदेव श्रेष्ठ और महान् हैं । वज्रधारी इन्द्रदेव का यश द्युलोक के समान व्यापक होकर फैले तथा इनके बल की प्रशंसा चतुर्दिक् हो ॥२ ॥

१६७. आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय । महाहस्ती दक्षिणेन ॥३ ॥

महान् भुजाओं वाले हे इन्द्रदेव ! आप हमें न्यायोपार्जित, प्रशंसनीय ऐश्वर्य दाहिने हाथ से (सम्मानपूर्वक) प्रदान करें ॥३ ॥

१६८. अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥४ ॥

हे याजको ! गौ पालक, सत्यनिष्ठ, सज्जनों के संरक्षक इन्द्रदेव की मन्त्रोच्चारण सहित प्रार्थना करो, जिससे उनकी शक्तियों का आभास हो ॥४ ॥

१६९. कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ॥५ ॥

निरन्तर प्रगतिशील इन्द्रदेव ! आप किन-किन तृप्तिकारक पदार्थों के भेंट करने से, किस तरह की पूजा-विधि से प्रसन्न होकर, आप किन दिव्यशक्तियों सहित हमारे सहयोगी बनेंगे ? ॥५ ॥

१७०. त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् । आ च्यावयस्यूतये ॥६ ॥

हे याजको ! अपनी समस्त वाणियों में वर्णित स्तुतियों से, अपने संरक्षण के लिए, असुरजयी इन्द्रदेव का आवाहन करो ॥६ ॥

१७१. सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिषम् ॥७ ॥

इन्द्रदेव को प्रिय, काम्य पदार्थों को देने में समर्थ, लोकों का मर्म समझने में सक्षम, अद्भुत मेधा को हमने प्राप्त किया ॥७ ॥

१७२. ये ते पन्था अधो दिवो येभिर्व्यश्वमैरयः । उत श्रोषन्तु नो भुवः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! द्युलोक से पृथ्वी की ओर उन्मुख आपके मार्ग, जिनसे आप सृष्टि का संचालन करते हैं, वे (मार्ग) हमारे यज्ञ स्थल तक पहुँचते हैं, उन्हीं मार्गों से आप हमारे यज्ञ स्थान में पहुँचें ॥८ ॥

१७३. भद्रंभद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो । यदिन्द्र मृडयासि नः ॥९ ॥

हे शतक्रतु इन्द्रदेव ! सुखकारी, अन्न-बल से युक्त ऐश्वर्य आप हमें भरपूर मात्रा में प्रदान करें, क्योंकि आप ही हमें सुखी बनाते हैं ॥९ ॥

१७४. अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः । उत स्वराजो अश्विना ॥१० ॥

हमारे द्वारा शोधित इस सोमरस का पान, तेजस्वी मरुद्गण तथा अश्विनीकुमार करते हैं ॥१० ॥

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

* * *

॥सप्तमः खण्डः ॥

१७५. ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । वन्वानासः सुवीर्यम् ॥१ ॥

उत्तम बल तथा कार्य की कामना वाली इन्द्रदेव की माता, प्रकट हुए इन्द्रदेव की सेवा करती हैं ॥१ ॥

१७६. न कि देवा इनीमसि न क्या योपयामसि । मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ॥२ ॥

हे देवो ! वेद मन्त्रों के अनुसार आचरण करने वाले हम याजक, न कोई धर्म विरुद्ध कार्य करते हैं और न ही किसी को कोई हानि पहुँचाते हैं ॥२ ॥

१७७. दोषो आगाद् बृहद्गाय द्युमद्गामन्नाथर्वण । स्तुहि देवं सवितारम् ॥३ ॥

हे प्रकाश मार्ग के पथिक अथर्ववेदीय ब्राह्मण ! हे बृहत् नामक साम के स्तोता ! यज्ञ कार्य के दोषों को परिमार्जित करने के लिए सविता देवता का स्तवन करो ॥३ ॥

१७८. एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥४ ॥

यह प्रसन्नता देने वाली उषा अंतरिक्ष से प्रकाशित होती है । हे (उषा के कार्य सहयोगी) अश्विनीकुमारो ! हम आपकी बृहद् (विशेष) स्तुति करते हैं ॥४ ॥

१७९. इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥५ ॥

अपराजित इन्द्रदेव ने दधीचि की हड्डियों से (बने हुए वज्र से) निन्यान्नवे (सैकड़ों-हजारों) राक्षसों का संहार किया ॥५ ॥

१८०. इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ अभिष्टिरोजसा ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! अन्नरूपी समस्त सोमरस से आप प्रफुल्लित होते हैं । आप आएँ और (सोमरस पान करके) अपनी शक्ति से दुर्दान्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने की क्षमता प्राप्त करें ॥६ ॥

१८१. आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि। महान्महीभिरूतिभिः ॥७॥

हे वृत्रहन्ता ! आप महान् बनकर संरक्षण के विविध साधनों सहित हमारे पास आएँ ॥७॥

१८२. ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत्। इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥८॥

इन्द्रदेव का वह ओज प्रकाशित हो उठा है, जिसे वह द्युलोक से पृथ्वीलोक तक (लपेटे हुए) चमड़े के समान फैला देता है ॥८॥

१८३. अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम्। वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥९॥

हे इन्द्रदेव ! जैसे कबूतर, गर्भिणी कबूतरी के साथ बराबर बना रहता है, उसीप्रकार आपके लिए तैयार सोमरस के पास आप जाते हैं और हमारी स्तुति को ध्यानपूर्वक सुनते हैं ॥९॥

१८४. वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे। प्र न आयूंषि तारिषत् ॥१०॥

हमारे हृदय के लिए शान्तिदायक तथा सुखदायी ओषधियों को यह वायुदेव हमारे पास पहुँचाएँ। ये ओषधियाँ हमें दीर्घजीवी बनाएँ ॥१०॥

॥इति सप्तमः खण्डः॥

* * *

॥अष्टमः खण्डः॥

१८५. यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा। न किः स दभ्यते जनः ॥१॥

जिस याजक को, ज्ञानसम्पन्न वरुण, मित्र और अर्यमा देवों का संरक्षण प्राप्त है, उसे कोई भी नहीं दबा सकता ॥१॥

१८६. गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया। वरिवस्या महोनाम् ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! सदैव की तरह हमें उत्तम गौओं, श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त रथ तथा प्रतिष्ठापूर्ण धन देने की इच्छा से हमारे पास आएँ ॥२॥

१८७. इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम्। एनामृतस्य पिप्युषीः ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी ये गौएँ सत्यरूप यज्ञ का विस्तार करने वाली हैं। ये गौएँ हमें घृत और दूध प्रदान करती हैं ॥३॥

१८८. अया धिया च गव्यया पुरुणामन्पुरुष्टुत। यत्सोमेसोम आभुवः ॥४॥

हे बहुत नामों से युक्त, बहु प्रशंसित इन्द्रदेव ! प्रत्येक सोमयज्ञ में जहाँ आप पहुँचते हैं, वहाँ गौओं की कामना वाली बुद्धि से हम आपकी स्तुति करते हैं ॥४॥

१८९. पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥५॥

पवित्र बनाने वाली, पोषण देने वाली, बुद्धिमत्तापूर्वक धन देने वाली सरस्वती, ज्ञान और कर्म से हमारे यज्ञ को सफल बनायें ॥५॥

१९०. क इमं नाहुषीष्वा इन्द्रं सोमस्य तर्पयात्। स नो वसून्या भरात् ॥६॥

मनुष्यों में ऐसा कौन है, जो इन इन्द्रदेव को तृप्त कर सके ? वे इन्द्रदेव हमारे यज्ञ में आएँ और हमें ऐश्वर्य प्रदान करें ॥६॥

१९१. आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे इस यज्ञ में पधारें । अपने लिए निकाले गये इस सोमरस का पान कर, श्रेष्ठ आसन पर विराजें ॥७॥

१९२. महि त्रीणामवरस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥८ ॥

मित्र, वरुण और अर्यमा इन तीनों देवों का संयुक्त तेजस्वी महान् संरक्षण हमें प्राप्त हो, जिससे हम दूसरों को पराजित करने में समर्थ हों ॥८ ॥

१९३. त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः । स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥९ ॥

हे ऐश्वर्य के स्वामी, श्रेष्ठ कर्म करने वाले, घोड़ों पर विराजमान इन्द्रदेव ! आपसे संरक्षित होकर हम हर तरह से सुरक्षित रहें ॥९ ॥

॥इति अष्टमः खण्डः ॥

* * *

॥ नवमः खण्डः ॥

१९४. उत्त्वा मन्दन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपको यह सोमरस आनन्द प्रदान करे । हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप हमें ऐश्वर्य देकर ज्ञान के साथ द्वेष रखने वालों का संहार करें ॥१ ॥

१९५.गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे । इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥२ ॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव !आप हमारे द्वारा शोधित सोमरस पान करें; क्योंकि आप इस आनन्ददायी सोमरस की धाराओं से सिंचित होते हैं । हे इन्द्रदेव ! आपकी कृपा से ही हमें यश मिलता है ॥२ ॥

१९६.सदा व इन्द्रश्चर्कृषदा उपो नु स सपर्यन् । न देवो वृतः शूर इन्द्रः ॥३ ॥

(हे स्तोताओ !) ये इन्द्रदेव सदैव तुम्हारे सहयोगी हैं । वे पूजन के साथ ही तुम्हारे यज्ञ की ओर उन्मुख होते हैं । ऐसे ही महान् वीर इन्द्रदेव, हमारे द्वारा पूज्य हैं ॥३ ॥

**१९७. आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥४ ॥**

हे इन्द्रदेव ! नदियों के समुद्र में मिलने की भाँति, सोमरस आपके अन्दर प्रविष्ट होता है । हे इन्द्रदेव ! आपसे अधिक महान् और कोई नहीं है ॥४ ॥

१९८. इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥५ ॥

सामगान के साधकों ने, गाये जाने योग्य बृहत् साम की स्तुतियों से देवराज इन्द्र को प्रसन्न किया है । इसी तरह याज्ञिकों ने भी मन्त्रोच्चारण के द्वारा इन्द्रदेव की प्रार्थना की है ॥५ ॥

१९९. इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम् । वाजी ददातु वाजिनम् ॥६ ॥

बलवान् इन्द्रदेव हमें श्रेष्ठ धन से सदैव पूर्ण रखें । अन्न प्राप्ति के लिये श्रेष्ठ उत्तराधिकार प्रदान करें । हे बलशाली ! हमें बलवान् बनायें ॥६ ॥

२००. इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत् । स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥७ ॥

युद्ध में स्थिर रहने वाले विश्वद्रष्टा इन्द्रदेव, महान् पराभवकारी भय को शीघ्र ही दूर करते एवं उन्हें स्थायी रूप से हटा देते हैं॥७ ॥

२०१. इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः । गावो वत्सं न धेनवः ॥८ ॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! जिस प्रकार दुधारू गौएँ बछड़ों के पास स्वयं ही जा पहुँचती हैं, उसीप्रकार प्रत्येक यज्ञ में हमारी स्तुतियाँ आपके पास पहुँचती हैं ॥८ ॥

२०२. इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये ॥९ ॥

अन्न प्राप्ति की कामना से, अपने कल्याण के लिए मित्रवत् इन्द्र और पूषा देवताओं को स्तुतियों के द्वारा हम बुलाते हैं ॥९ ॥

२०३. न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् ।
न क्येवं यथा त्वम् ॥१० ॥

हे शत्रु संहारक इन्द्रदेव ! आपसे अधिक श्रेष्ठ और महान् दूसरा कोई नहीं है । आपके समान अन्य और कोई नहीं है ॥१० ॥

॥इति नवमः खण्डः ॥

* * *

॥दशमः खण्डः ॥

२०४. तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः । समानमु प्र शंसिषम् ॥१ ॥

(हे स्तोताओ) लोगों को बाधाओं से पार कराने वाले, शत्रु को भयभीत करने वाले, पशुधन से सम्पन्न अन्न का दान करने वाले, उन्नतिशील इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं ॥१ ॥

२०५. असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । सजोषा वृषभं पतिम् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी स्तुति के लिए हमने स्तोत्रों की रचना की है । बलशाली और पालनकर्ता इन्द्रदेव, इन स्तुतियों से हमने आपकी प्रार्थना की है, जिसे आपने स्वीकार किया है ॥२ ॥

२०६. सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा । मित्रास्पान्त्यद्रुहः ॥३ ॥

द्रोह रहित मरुत्, मित्र और अर्यमा, जिस साधक के रक्षक हैं, वह साधक निश्चित रूप से श्रेष्ठ पथगामी होता है ॥३ ॥

२०७. यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! पुरुषार्थ से उपार्जित, स्थिर एवं मजबूत आधार प्रदान कराने वाला उत्तम धन, जो आपके पास है, वह हमें प्राप्त करायें ॥४ ॥

२०८. श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम् । आशिषे राधसे महे ॥५ ॥

तुमने वृत्र संहारक-बलकी महिमा सुनी ही है । मनुष्य मात्र को श्रेष्ठ धन उपलब्ध कराने की कामना से यह महान् बल तुम्हें उपयोग के लिए देता हूँ ॥५ ॥

२०९. अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः । अरं शक्र परेमणि ॥६ ॥

हे वीर इन्द्रदेव ! आपका यश हमने अनेकों बार सुना है । हे सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव ! आप जैसे महान् देवगणों के सान्निध्य में रहकर हम आनन्दित हों ॥६ ॥

२१०. धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव दही और सत्तू से मिश्रित पकाये हुए पुओं की हवि को मन्त्रोच्चार के साथ हम समर्पित करते हैं, आप प्रातः इसे स्वीकार करें ॥७ ॥

२११. अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजय स्पृधः ॥८ ॥

सभी स्पर्धा करने वालों को पराजित करने के बाद इन्द्रदेव ने नमुचि (रोग) के सिर को जल के झाग (समुद्रफेन ओषधि) से तोड़ा ॥८ ॥

[इस ऋचा में एक सन्दर्भ से रोग निवारक तथा दूसरे सन्दर्भ से चित्तवृत्तियों को जीतने के सूत्र हैं ।]

२१२. इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः । तेषां मत्स्व प्रभूवसो ॥९ ॥

हे महान् ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! यह सोमरस आपके लिये शोधित करके रखा गया है । आप इस शुद्ध किये हुए सोमरस का पान करके आनन्दित हों ॥९ ॥

२१३. तुभ्यं सुतासः सोमाः स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो । स्तोतृभ्य इन्द्र मृडय ॥१० ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपके लिए यह शोधित सोमरस आसन पर स्थापित है । हे इन्द्रदेव ! इस पवित्र कुश-आसन पर पधार कर आप सोमरस का पान करें तथा साधकों को प्रसन्न करें ॥१० ॥

॥इति दशमः खण्डः ॥

* * *

॥ एकादशः खण्डः ॥

२१४. आ व इन्द्रं कृविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् । मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥१ ॥

जिस प्रकार अन्न की इच्छा वाले खेत में पानी सींचते हैं, उसी तरह हम बल की कामना वाले साधक उन महान् इन्द्रदेव को सोमरस से सींचते हैं ॥१ ॥

२१५. अतश्चिदिन्द्र न उपा याहि शतवाजया । इषा सहस्रवाजया ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! सैकड़ों प्रकार के बल से परिपूर्ण, हजारों तरह के पोषक-तत्त्वों एवं रसों सहित, आप अन्तरिक्ष से हमारे यज्ञ में आएँ ॥२ ॥

२१६. आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छाद्विमातरम् । क उग्राः के ह शृण्विरे ॥३ ॥

जन्म लेते ही बाण हाथ में लेकर वृत्र को मारने वाले इन्द्रदेव ने अपनी माता से पूछा, कि अन्य महान् वीर कौन-कौन से प्रसिद्ध हैं ? ॥३ ॥

२१७. बृबदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये । साधः कृण्वन्तमवसे ॥४ ॥

प्रजा की रक्षा के लिए अपने हाथों को फैलाये, साधनों सहित तत्पर इन्द्रदेव का आवाहन, हम अपने संरक्षण के लिए करते हैं ॥४ ॥

२१८. ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयति विद्वान् । अर्यमा देवैः सजोषाः ॥५ ॥

ज्ञानी देव, मित्र और वरुण हमें सरल नीति-पथ पर बढ़ाते हैं । देवों के सहचर अर्यमा हमें सरल मार्ग से उन्नतिशील बनायें ॥५ ॥

२१९. दूरादिहेव यत्सतोऽरुणप्सुरशिश्वितत् । वि भानुं विश्वथातनत् ॥६ ॥

दूर से पास आने वाली अरुणाभ उषा, जब दिखाई देकर रश्मियों को फैलाती है, तब उसके प्रकाश से समूचा विश्व प्रकाशित हो जाता है ॥६ ॥

२२०. आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥७ ॥

हे मित्रावरुण ! हमारी गौओं (इन्द्रियों) को घृत (स्नेह) से युक्त करें और ऊर्ध्वलोकों को भी श्रेष्ठ रसों (भावों) से सिंचित करें ॥७ ॥

२२१. उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा यज्ञेष्वत्नत । वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥८ ॥

शब्दनाद करने वाले मरुतों ने यज्ञार्थ जल को निःसृत किया । प्रवाहित जल का पान करने के लिए रँभाती गौएँ, घुटने तक पानी में जाने के लिए प्रेरित होती हैं ॥८ ॥

[शब्द नाद-शब्दों के एक विशेष आयाम से परिचय कराता है, विज्ञान जगत् अभी इस आयाम से तनिक भी परिचित नहीं ।]

२२२. इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूढमस्य पांसुले ॥९ ॥

इस विश्व को भगवान् विष्णु (वामन) देव ने तीन पगों से नापा । उनके धूल भरे पाँव में समूचा संसार समाया हुआ है ॥९ ॥

[क. परमात्मा ने तीन चरण वाले (त्रिआयामी) विश्व की संरचना की है । इसका वास्तविक स्वरूप आकाश (अदृश्यपद) में छिपा हुआ है । ख. खगोल विज्ञान की नवीनतम शोध (सब पार्टिकल्स) के अनुसार भी उक्त वर्णन युक्तिसंगत सिद्ध होते हैं ।]

॥इति एकादशः खण्डः ॥

* * *

॥द्वादशः खण्डः ॥

२२३. अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपेरय । अस्य रातौ सुतं पिब ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! जो साधक क्रोधित होकर सोमरस निकालता है, आप उसे न ग्रहण करें । उत्तम विधि से जो साधक सोमरस तैयार करता है, उसके यज्ञ में पहुँच कर आप सोमरस का पान करें ॥१ ॥

२२४. कदु प्रचेतसे महे वचो देवाय शस्यते । तदिद्ध्यस्य वर्धनम् ॥२ ॥

इन्द्रदेव के गुणों का गान करने वाले, हमारे तुच्छ से दिखाई देने वाले स्तोत्रों से भी महाज्ञानी इन्द्रदेव प्रसन्न होते हैं ॥२ ॥

२२५. उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानम् ॥३ ॥

स्तुति न करने वाले (आस्थाहीन) के इन्द्रदेव, शत्रु हैं । स्तोता द्वारा पठित स्तोत्रों को वे भली-भाँति जानते हैं । सामवेद के गायक (उद्‌गाता) के गायन को भी वे सुनते और समझते हैं ॥३ ॥

२२६. इन्द्र उक्थेभिर्मन्दिष्ठो वाजानां च वाजपतिः । हरिवांत्सुतानां सखा ॥४ ॥

महाबलशाली, अश्वों से सुसज्जित इन्द्रदेव सोमयज्ञ में साधकों के स्तोत्रों से आनन्दित होकर उनके सहायक बनते हैं ॥४ ॥

२२७. आ याह्युप नः सुतं वाजेभिर्मा हृणीयथाः । महाँ इव युवजानिः ॥५ ॥

पत्नीव्रत धर्म का पालन करने वाले वीर पुरुष की भाँति हे इन्द्रदेव ! आप हमारे ही सोमयज्ञ में पधारकर हविष्यान्न ग्रहण करें । दूसरों के (हीनपुरुषों के) अन्न पर दृष्टि न डालें ॥५ ॥

२२८. कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आ अव श्मशा रुधद्वाः । दीर्घं सुतं वाताप्याय ॥६ ॥

हे स्तुतियों से प्रसन्न होने वाले इन्द्रदेव !जैसे नहरें निकालने के लिए जल रोका जाता है, उसी प्रकार तैयार किया हुआ सोमरस प्रदान करने के लिए आपको कब रोकें ? ॥६ ॥

२२९. ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु । तवेदं सख्यमस्तृतम् ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! ब्रह्म को जानने वाले साधक के पात्र से, मित्रवत् ऋतुओं के अनुसार सोमरस का पान करें, क्योंकि आपकी मित्रता अटूट है ॥७ ॥

२३०. वयं घा ते अपि स्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः । त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥८ ॥

हे प्रशंसा के योग्य इन्द्रदेव ! हम आपके स्तोता हैं । हे सोमपायी इन्द्रदेव ! आप हमें तुष्टि प्रदान करें ॥८ ॥

२३१. एन्द्र पृक्षु कासु चिन्नृम्णं तनूषु धेहि नः । सत्राजिदुग्र पौंस्यम् ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! यज्ञीय कार्य में प्रयुक्त हमारे अंगों में बल प्रदान करें । हे वीर इन्द्रदेव ! एक साथ सभी शत्रुओं को पराजित करने की शक्ति हमें प्रदान करें ॥९ ॥

२३२. एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥१० ॥

हे बलवान् इन्द्रदेव ! रणक्षेत्र में शत्रुओं को पराजित करने वाले, युद्ध में अडिग रहने वाले आप शूरवीर हैं । आपका मन (संकल्पशील) प्रशंसा के योग्य है ॥१० ॥

॥इति द्वादशः खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि—शंयु बार्हस्पत्य ११५ । श्रुतकक्ष अथवा सुकक्ष आङ्गिरस ११६, १५०, १५१, १५५, १५८, १७०, १७३, १८८, २१३ । हर्यत प्रागाथ ११७ । श्रुतकक्ष आङ्गिरस ११८, ११९, १४०, १४५, १९७, १९९, २१५, २३२ । देवजामय इन्द्रमातर ऋषिका १२०, १७५ । गोषूक्ति-अश्वसूक्ति काण्वायन १२१, १२२, २११ । मेधातिथि काण्व और प्रियमेध आङ्गिरस १२३, १२४, १५७, २२५, २२७ । सुकक्ष और श्रुतकक्ष १२५, १२६ । भारद्वाज १२७ । श्रुतकक्ष १२८ । मधुच्छन्दा वैश्वामित्र १२९, १३०, १६०,१६४, १६६, १८०, १८९, १९८, २०५ । त्रिशोक काण्व १३१, १३३, १३४, १३६, १६१, २०४, २०७, २१६ । वसिष्ठ मैत्रावरुणि १३२, १५६ । कण्व घौर १३५, १८५ । वत्स काण्व १३७, १४३, १५२, १८२, १८६, १८७, १९३, २०६ । कुसीदी काण्व १३८, १६२, १६७ । मेधातिथि काण्व १३९, १४६, १७१, २१७, २२२, २२३, २२९, २३० । श्यावाश्व आत्रेय १४१ । प्रगाथ काण्व १४२, १९४ । इरिम्बिठि काण्व १४४, १५९, १९१ । गोतम राहूगण १४७, १७९, २१८ । भरद्वाज बार्हस्पत्य १४८, २०१-२०२ । बिन्दु अथवा पूतदक्ष आङ्गिरस १४९, १७४ । शुनःशेप आजीगर्ति १५३, १६३, १८३, २१४ । शुनःशेप आजीगर्ति अथवा वामदेव १५४ । विश्वामित्र गाथिन १६५, १९५, २१०, २२६ । प्रियमेध आङ्गिरस १६८ । वामदेव गौतम १६९, १७२, १८१, १९०, १९६-२०३, २०९, २१२, २२४ । गोधा ऋषिका १७६ । दध्यङ्ङाथर्वण १७७ । प्रस्कण्व काण्व १७८, २२१ । उलो वातायन १८४ । सत्यधृति वारुणि १९२ । गृत्समद शौनक २०० । सुकक्ष आङ्गिरस २०८ । ब्रह्मातिथि काण्व २१९ । विश्वामित्र गाथिन अथवा जमदग्नि २२० । दुर्मित्र (अथवा सुमित्र) कौत्स २२८ । विश्वामित्र गाथिन अथवा अभीपाद् उदल २३१ ।

देवता – इन्द्र ११५-१४८, १५०-१७०,१७२-२१८, २२०, २२३-२३२ । मरुद्गण १४९, २२१ । सदसस्पति १७१ । अश्विनीकुमार और मित्रावरुण २१९ । विष्णु २२२ ।

छन्द – गायत्री ११५ - २३२ ।

॥इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

॥त्रयोदशः खण्डः ॥

२३३. अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥१ ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! विश्व सृजेता, सर्वज्ञ, आपके दर्शन के लिए हम उसी तरह लालायित हैं, जैसे न दुही हुई गौएँ अपने बछड़े के पास जाने के लिए लालायित रहती हैं ॥१ ॥

२३४. त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम साधक आपको अन्न वृद्धि के लिए आवाहित करते हैं । हे इन्द्रदेव ! विद्वज्जन संघर्ष के समय मदद के लिए आपको ही पुकारते हैं ॥२ ॥

२३५. अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥३ ॥

हे ऋत्विजो ! ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव स्तुति करने वालों को अनेक प्रकार के श्रेष्ठ धन प्रदान करते हैं । अतः उत्तम धन की प्राप्ति के लिएजैसे भी संभव हो उनकी अर्चना करो ॥३ ॥

२३६. तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥४ ॥

हे ऋत्विजो ! शत्रुओं से रक्षा करने वाले, तेजस्वी, सोमरस से तृप्त होने वाले, इन्द्रदेव की हम (उल्लासपूर्वक) उसी प्रकार स्तुति करते हैं, जैसे गौशाला में अपने बछड़ों के पास जाने के लिए गौएँ उल्लसित रहती हैं ॥४ ॥

२३७. तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥५ ॥

जैसे बालक अभिभावक को पुकारता है, वैसे ही हम अपने हितकारी इन्द्रदेव को मदद के लिए बुलाते हैं । हे ऋत्विजो ! अपनी रक्षा के लिए सोमयज्ञ में ऐश्वर्य देने वाले वेगवान् अश्वों से युक्त इन्द्रदेव की आराधना करो ॥५ ॥

२३८ तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा ।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ॥६ ॥

(भव बाधाओं को) पार करने में समर्थ साधक विशाल बुद्धि के संयोग से विवेक बल प्राप्त करने का प्रयास करता है । हे याजको ! तुम्हारे लिए इन्द्रदेव की स्तुतियों के माध्यम से हम वैसे ही नमनशील बनते हैं, जैसे कुशल शिल्पी भलीप्रकार चलने के लिएचक्र को (पहिये पर चढ़ायी जाने वाली धातु की पट्टी को झुकाकर) गोलाई प्रदान करता है ॥६ ॥

२३९. पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! गाय के दूध में मिश्रित, रस रूप में हमारे द्वारा शोधित किये गये सोमरस का आप पान करें और प्रफुल्लित हों । संगठित रूप से किये गये कार्य में हमारे सहचर बनकर, हमें उन्नतिशील मार्ग दिखाएँ । आपकी बुद्धि हमारा संरक्षण करने वाली बने ॥७ ॥

२४०. त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम उत्तम आचरण से युक्त होकर आपका आवाहन करते हैं । हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप गाय, अश्व तथा श्रेष्ठ धन की इच्छा वाली हमारी कामनाओं की पूर्ति करें ॥८ ॥

२४१.न हि वश्चरमं च न वसिष्ठः परिमंसते ।
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबन्तु कामिनः ॥ ९ ॥

हे मरुतो ! वसिष्ठ ऋषि आप में, छोटों की भी स्तुति करते हैं । आज हमारे इस यज्ञ में एक साथ बैठकर आप सभी सोमरस का पान करें ॥९ ॥

२४२. मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥१० ॥

हे याजको ! इन्द्रदेव के अतिरिक्त और किसी की स्तुति करके बेकार श्रम मत करो । इस सोमयज्ञ में संगठित रूप से बलवान् इन्द्रदेव की स्तुति के लिए स्तोताओं से बार-बार कहो ॥१० ॥

॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

* * *

॥चतुर्दशः खण्डः ॥

२४३. नकिष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥१ ॥

स्तुत्य, महा बलशाली, समृद्ध, अपराजित, शत्रु दमन करने वाले इन्द्रदेव को जो साधक यज्ञादि कर्मों से अपना सहचर (अनुकूल) बना लेता है, उस साधक के श्रेष्ठ कर्मों की कोई समानता नहीं कर सकता ॥१ ॥

२४४.य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
सन्धाता सन्धिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥२ ॥

जो इन्द्रदेव गले के स्नायुओं से रक्त निकलने पर बिना सामग्री के ही संधियों को जोड़ देते हैं, वे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव कटे हुए भागों को भी पुनः जोड़ देते हैं ॥२ ॥

२४५. आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥३ ॥

हे इन्द्र (सूर्य) देव ! सुवर्ण रथ में (ब्रह्मयुक्त) मंत्र के प्रभाव से जुड़ जाने वाले सैकड़ों- हजारों श्रेष्ठ घोड़े (किरणें) सोमपान के लिए आपको ले आएँ ॥३ ॥

२४६.आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥४ ॥

जैसे यात्री रेगिस्तान को शीघ्र बिना रुके पार कर जाते हैं, उसी प्रकार हे इन्द्रदेव ! आनन्ददायक मोर पंखों के समान रोम युक्त घोड़ों (सातरंग युक्त सुन्दर किरणों) के साथ मार्ग की रुकावटों को हटाते हुए आप आएँ। जाल फैलाने वाले आपके पथ में रुकावट पैदा न कर सकें ॥४ ॥

[रेगिस्तान में जालों से बचकर चलने का तात्पर्य मृग-मरीचिकाओं से बचने के संदर्भ में भी है।]

२४७. त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम्।

न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥५ ॥

हे प्रशंसनीय बलवान् इन्द्रदेव ! आप अपने तेज से तेजस्वी होकर साधक की प्रशंसा करते हैं। हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपके अलावा अन्य कोई सुखदायी नहीं है, अतः हम आपका स्तवन कर रहे हैं ॥ ५ ॥

२४८ त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः।

त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप बलशाली, सोमपायी तथा कीर्तिमान् हैं। आप मानव मात्र के हित के लिए अत्यधिक बलशाली शत्रुओं को बिना किसी सहायता के अकेले ही नष्ट करने में समर्थ हैं ॥६ ॥

२४९.इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।

इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥७ ॥

दैवी प्रयोजनों के लिए किये गये यज्ञ में हम याजकगण, जिस प्रकार यज्ञ के आरम्भ और उसकी समाप्ति के समय इन्द्रदेव का ही आवाहन करते हैं, वैसे ही धन प्राप्ति की कामना से भी इन्द्रदेव को आवाहित करते हैं ॥७ ॥

२५०. इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।

पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभिस्तोमैरनूषत ॥८ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! हमारी स्तुतियाँ आपकी कीर्ति बढ़ाएँ। अग्नि के समान तेज वाले पवित्रात्मा, विद्वान् साधक स्तोत्रों से आपकी प्रार्थना करते हैं ॥८ ॥

२५१. उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते।

सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥९ ॥

असुरजयी, धन प्रदान करने वाले, समर्थ संरक्षण वाले, वेगवान् रथ के समान उमंग देने वाले स्तोत्रों का विधिपूर्वक उच्चारण किया जाता है ॥९ ॥

२५२.यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।

आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! प्यासे गौर वर्ण के पशु जिस तरह पानी से भरे तालाब के निकट जाते हैं, उसी प्रकार हे इन्द्रदेव ! आप सहचर बनकर इस हमारे -काण्व के यज्ञ में तीव्र गति से आएँ और सोमपान कर तृप्त हों ॥१० ॥

॥इति चतुर्दशः खण्डः ॥

* * *

॥पञ्चदशः खण्डः ॥

२५३. शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥१ ॥

हे शचीपते शूर इन्द्रदेव ! सब प्रकार के रक्षा साधनों के साथ आप हमें अभीष्ट फल प्रदान करें । सौभाग्य युक्त धन प्रदान करने वाले आपकी हम आराधना करते हैं ॥१ ॥

२५४. या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः ।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥२ ॥

हे आत्मशक्ति सम्पन्न इन्द्रदेव ! राक्षसों से जीतकर लाये गये धन से स्तोताओं का संरक्षण करें और जो आपका आवाहन करते हैं, उनकी वृद्धि करें ॥२ ॥

२५५. प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो ।
वरूथ्ये३वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ॥३ ॥

हे परमार्थी याज्ञिको ! मित्र, वरुण और अर्यमा देवों के यज्ञशाला में प्रतिष्ठित होने के बाद छन्दबद्ध गेय स्तोत्रों से उनकी प्रार्थना करो ॥३ ॥

२५६.अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥४ ॥

एकत्रित हुए ऋभुओं, मरुतों आदि पुरुषों के समान हे इन्द्रदेव ! सबसे पहले सोमरस पान के लिए याज्ञिकजन आपकी स्तुति, स्तोत्रों से करते हैं ॥४ ॥

२५७.प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥५ ॥

सैकड़ों धार वाले वज्र से वृत्र को मारने वाले, शतकर्मा इन्द्रदेव को हे याजको ! स्तोत्र सुनाओ ॥५ ॥

२५८. बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥६ ॥

हे याजको ! इन्द्रदेव के निमित्त वृत्र (अज्ञानी) का विनाश करने वाले बृहत् साम का गायन करो । यज्ञ के विशेषज्ञ विद्वानों ने उसी के सहयोग से दिव्य जाग्रति लाने वाली ज्योति उत्पन्न की है ॥६ ॥

२५९. इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमें यज्ञ कर्म में प्रवीण बनाएं । पिता द्वारा पुत्र को दिये जाने वाले शिक्षण की भाँति हमें भी आप मार्गदर्शन दें । प्रजा द्वारा स्मरणीय हे इन्द्रदेव ! नित्य प्रति हम सूर्यदेव के दर्शन करें ॥७ ॥

२६०.मा न इन्द्र परा वृणग्भवा नः सधमाद्ये ।
त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परा वृणक् ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे रक्षक तथा बन्धु हैं । हे इन्द्रदेव ! आप हमारे इस यज्ञ में पधारें, हमें अपने से कभी भी दूर न करें ॥८ ॥

२६१.वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते ॥९ ॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! जिस प्रकार जल नीचे की ओर प्रवाहित होता है, उसी प्रकार शोधित सोमरस सहित हम आपको नमन करते हैं । पवित्र यज्ञ में कुश-आसन पर एक साथ बैठकर याजक आपकी उपासना करते हैं ॥९ ॥

२६२. यदिन्द्र नाहुषीष्वा ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
यद्वा पञ्चक्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! संगठित प्रजा में जो पराक्रम है, पांच जनों (पाँचों वर्गों) में जो धन है, वैसा ही ऐश्वर्य आप हमें प्रदान करें । एकता से उत्पन्न होने वाली शक्ति हमें प्राप्त हो ॥१० ॥

[पंच जनों की संगति समाज के पाँचों वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं निषाद, पंच भूतों तथा पंचकोशों सभी के साथ बैठती है ।]

॥इति पंचदशः खण्डः ॥

* * *

॥षोडशः खण्डः ॥

२६३.सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽविता ।
वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥१ ॥

हे वीर इन्द्रदेव ! दूर और पास के देशों में सर्वत्र शक्तिशाली रूप में आपकी ख्याति फैली हुई है । हे इन्द्रदेव ! आप निश्चित रूप से बलशाली हैं । सोमयज्ञ करने वाले हम याजकों के आवाहन पर आकर, आप हमारा संरक्षण करें ॥१ ॥

२६४.यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् ।
अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः सुतावाँ आ विवासति ॥२ ॥

हे सामर्थ्यवान् वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! आप दूरस्थ हों या निकटस्थ हों, श्रेष्ठ घोड़ों के समान वेगवान् स्तुतियों से सोमयज्ञ में याजक आपका आवाहन करते हैं । ॥२ ॥

२६५अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।
इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ॥३ ॥

हे उद्गाता ! हितकारी, असुरजयी, सोमरस से आनन्दित, वीर, मेधावी तथा कीर्तिमान् इन्द्रदेव की विशेष स्तोत्रों से जैसे भी संभव हो, स्तुति करो ॥३ ॥

२६६. इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तये ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! धनवान् याजक और हमें, तीनों ऋतुओं (त्रिवरूथ) में सुखदायी, आनन्ददायक, उत्तम तीन मंजिलों वाला आवास प्रदान करें तथा इनके लिए शस्त्रों का प्रयोग न करें ॥४ ॥

२६७. आयन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।

वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिम ॥५ ॥

जैसे किरणें सूर्यदेव के आश्रय में रहती हैं, वैसे ही इन्द्रदेव सम्पूर्ण जगत् के आश्रयदाता हैं । पिता से पुत्र को प्राप्त होने वाले धन भाग की भाँति, इन्द्रदेव से हम अपने भाग की कामना करते हैं; क्योंकि इन्द्रदेव ही जन्म लिये हुए तथा जन्म लेने वालों को अपना भाग प्रदान करते हैं ॥५ ॥

२६८. न सीमदेव आप तदिषं दीर्घायो मर्त्यः ।

एतग्वा चिद्य एतशो युयोजत इन्द्रो हरी युयोजते ॥६ ॥

हे दीर्घायु इन्द्रदेव ! ईश्वरीय निष्ठारहित मनुष्य श्रेष्ठ धन प्राप्त नहीं कर सकता है । जो इन्द्र यज्ञ में जाने की कामना से अपने घोड़ों को जोड़ते हैं, ऐसे इन्द्रदेव की जो स्तुति नहीं करता, वह इन्द्रदेव को नहीं पा सकता ॥६ ॥

२६९. आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रं समत्सु भूषत ।

उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन्परमज्या ऋचीषम ॥७ ॥

संग्राम में रक्षा के लिए बुलाने योग्य इन्द्रदेव, हमारे स्तोत्रों से की गई स्तुतियों से सुशोभित होते हैं । हे वृत्र-हन्ता, धनुष की श्रेष्ठ प्रत्यंचा के समान उत्तम मन्त्रों से स्तुत्य इन्द्रदेव ! हमारी तीनों संध्याओं के समय उच्चरित स्तोत्रों को आप सुशोभित करें ॥७ ॥

२७०. तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।

सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि न किष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! निम्न कोटि, मध्यम कोटि तथा उत्तम कोटि के धन के आप अकेले स्वामी हैं । आप जब गवादि धन का दान करते हैं, तो आपको कोई भी नहीं रोक सकता ॥८ ॥

२७१.क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः ।

अलर्षि युध्म खजकृत्पुरंदर प्र गायत्रा अगासिषुः ॥९ ॥

बहुत से स्थानों में मन रमाने वाले, युद्ध कौशल में निपुण, शत्रुओं के नगरों को उजाड़ने वाले, हे योद्धा इन्द्रदेव ! आप कहाँ गये थे ? अब आप कहाँ हैं ? हमारे कुशल स्तोताओं द्वारा किये जा रहे सामगान को सुनने के लिए आप यज्ञ में पधारें ॥९ ॥

२७२. वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।

तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥१० ॥

हम याजकों ने इन्द्रदेव को कल सोमरस से तृप्त किया था, इसलिये इस समय आज के यज्ञ में भी हम उन्हें सोमरस देते हैं । हे याजको ! इस समय स्तोत्र सुनाकर इन्द्रदेव को सुशोभित करो ॥१० ॥

॥इति षोडशः खण्डः ॥

* * *

॥सप्तदशः खण्डः ॥

२७३. यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।

विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥१ ॥

मानवों के अधिपति, वेगगामी, शत्रु सेना के संहारक, वृत्रहन्ता, श्रेष्ठ इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हुए, उन्हें सुशोभित करते हैं ॥१ ॥

२७४. यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमें भयभीत करने वालों से आप भयरहित करें । हे धनवान् इन्द्रदेव ! आप सर्व सामर्थ्यवान् हैं, अतः अपनी सामर्थ्य से हमारे शत्रुओं तथा हिंसक वृत्ति वालों को नष्ट कर हमारा संरक्षण करें ॥२ ॥

२७५. वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसत्रं सोम्यानाम् ।
द्रप्सः पुरां भेत्ता शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥३ ॥

हे गृह स्वामी ! घर के स्तम्भ मजबूत हों, सोमयज्ञ करने वाले याज्ञिकों को देह रक्षक शक्ति की प्राप्ति हो । राक्षसों की अनेक नगरियों को उजाड़ने वाले सोमपायी इन्द्रदेव मुनियों के सखा हैं ॥३ ॥

२७६. बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि ॥४ ॥

हे प्रेरक, अदितिपुत्र इन्द्रदेव ! यह सत्य है कि आप महान् तेजस्वी हैं । हे देव ! आप महान् शक्तिशाली हैं, आपकी महानता का हम गान करते हैं ॥४ ॥

२७७. अश्वी रथी सुरूप इद्गोमान् यदिन्द्र ते सखा ।
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रैर्याति सभामुप ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! मनुष्य जब आपको अपना मित्र बना लेता है, तब वह घोड़ों के रथ से युक्त सौन्दर्यवान्, ऐश्वर्यवान्, तथा धन-धान्य से सदैव पूर्ण रहता है । वह सदैव श्रेष्ठ आभूषणों से सुसज्जित होकर सभागृह में जाता है ॥५ ॥

२७८. यद्द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! सैकड़ों देवलोक, सैकड़ों भूमियाँ तथा हजारों सूर्य भी यदि उत्पन्न हो जाएँ, तो भी सभी आपकी समानता नहीं कर सकते । देवलोक से पृथ्वीलोक तक आपकी बराबरी करने वाला कोई भी नहीं है । आपकी समता करने वाला कोई पैदा ही नहीं हुआ है ॥६ ॥

२७९. यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप चतुर्दिक् से स्तोताओं द्वारा सहायता के लिए आवाहित किये जाते हैं । शत्रुनाशक हे इन्द्रदेव ! अनु और तुर्वश के लिए आपको प्रार्थनापूर्वक बुलाया जाता है ॥७ ॥

२८०. कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा हि ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥८ ॥

हे सबके आश्रयदाता इन्द्रदेव ! भला आपको कौन अपमानित कर सकता है ? हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपके प्रति श्रद्धालुजन बलशाली होते हैं । वे दु:खों से पार होने (अभावों) के समय भी अनुदान की कामना करते हैं ॥८ ॥

२८१. इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः ।

हित्वा शिरो जिह्वया रारपच्चरत् त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत् ॥९ ॥

हे इन्द्र और अग्निदेवो ! बिना पैर की उषा, पैर वाली प्रजा से पूर्व ही आती है और सिर न होते हुए भी जीभ से (जागे हुए मुर्गे आदि की आवाज से) प्रेरणा देती हुई, एक दिन में तीस कदम चलती है ॥९ ॥

[१ कदम=१मुहूर्त, १ मुहूर्त = २ घटी, १ घटी = २४ मिनट, ३० मुहूर्त = २४ घण्टे]

२८२. इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।

आ शंतम शंतमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः ॥१० ॥

हे अत्यन्त शान्तिदायक इन्द्रदेव ! अत्यन्त सुखदायी कामनाओं के साथ, उत्तम भाइयों सहित, समीप ही बनी यज्ञशाला में आप पधारें । मेधावी तथा संरक्षण की कामना वालों के साथ आप आएँ ॥१० ॥

॥इति सप्तदशः खण्डः ॥

* * *

॥अष्टादशः खण्डः ॥

२८३. इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।

आशुं जेतारं होतारं रथीतममतूर्तं तुग्रियावृधम् ॥१ ॥

हे साधको ! शत्रु संहारक, सर्वप्रेरक, द्रुत गति से यज्ञ स्थल में जाने वाले, उत्तम रथी, अहिंसनीय, जल वृष्टि करने वाले, अजर-अमर इन्द्रदेव का, संरक्षण की कामना से आवाहन करो ॥१ ॥

२८४. मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन् ।

आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! यजमान आपको हमसे दूर न कर सकें । अतः आप हमारे यज्ञ में शीघ्रता से आएँ और हमारे पास रहकर हमारी स्तुतियों को सुनें ॥२ ॥

२८५. सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।

पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्नित्पृणते मयः ॥३ ॥

हे याजको ! वज्रधारी-सोमपायी इन्द्रदेव के लिए सोमाभिषव करो । इन्द्रदेव को प्रसन्न करने के लिए पुरोडाश पकाओ तथा यज्ञ करो । यजमान को सुखी बनाने के लिए इन्द्रदेव स्वयं हविष्यान्न ग्रहण करते हैं ॥३ ॥

२८६. यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।

सहस्रमन्यो तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥४ ॥

जो इन्द्रदेव एक साथ शत्रुनाशक तथा सर्वद्रष्टा हैं, उन इन्द्रदेव का हम आवाहन करते हैं । (अनीति से संघर्ष करने वाले) मन्यु से युक्त, धन सम्पन्न, सज्जनों के प्रतिपालक हे इन्द्रदेव ! आप रणक्षेत्र (जीवन- संग्राम) में तथा हमारे ऐश्वर्य की वृद्धि में सहायक बनें ॥४ ॥

२८७. शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दिशस्यतम् ।
मा वां रातिरुपदसत्कदाचनास्मद्रातिः कदाचन ॥५ ॥

पुरुषार्थपूर्वक वैभव अर्जित करने वाले हे अश्विनीकुमारो ! अपनी शक्तियों से आप हमें दिन-रात सम्पन्न करो । आपकी दानशीलता की तरह हमारा भी दान (देने का स्वाभाव) कभी नष्ट न हो ॥५ ॥

२८८. यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः ।
आदिद्वन्देत वरुणं विपा गिरा धर्त्तारं विव्रतानाम् ॥६ ॥

जब भी हविदाता यजमान के लिए स्तोतागण स्तुति करें, तब विशेष रक्षण की कामना से नाना कर्मों को धारण करने वाले, पाप निवारक वरुणदेव की विशेष स्तुतियों से वन्दना करें ॥६ ॥

२८९. पाहि गा अन्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।
यः संमिश्लो हर्योर्यो हिरण्यय इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥७ ॥

हे मेधावान् अतिथि ! जो इन्द्रदेव रथ में दो घोड़ों को जोड़ते हैं, वज्रधारी हैं, रमणीय हैं, सुवर्णरथ में विराजमान हैं, ऐसे इन्द्रदेव को सोमपान से आनन्दित करके अपनी गौओं की रक्षा करो ॥७ ॥

२९०. उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥८ ॥

हमारे शब्द और भाव से की गई दोनों प्रकार की प्रार्थना को समीप आकर सुनें और सामूहिक उपासना से प्रसन्न हे बलवान् और धनवान् इन्द्रदेव ! सोमपान के लिए आप यहाँ आएँ ॥८ ॥

२९१. महे च न त्वाद्रिवः परा शुल्काय दीयसे ।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥९ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! अत्यधिक धन की कीमत पर भी आपको नहीं त्यागा जा सकता । हे वज्रधारी-ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! सौ या दस हजार की (किसी भी) कीमत पर भी आपको नहीं त्यागा जा सकता ॥९ ॥

२९२. वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः ।
माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे पिता जी की अपेक्षा अधिक धनवान् हैं । आहार न देने वाले भाई से भी अधिक महान् हैं । सबके पालनकर्त्ता हे इन्द्रदेव ! आप हमारी माता के समतुल्य हैं । धन-धान्य से पूर्ण करने के लिए आप हमें महान् बनायें ॥१० ॥

॥इति अष्टादशः खण्डः ।

* * *

॥एकोनविंशः खण्डः ॥

२९३. इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥१ ॥

हे वज्रधारक-तेजस्वी इन्द्रदेव ! दही मिले हुए , आनन्ददायक, विशेष रूप से बनाये गये इस सोमरस का पान करने के लिए आप यज्ञ-स्थल पर पधारें ॥१ ॥

२९४. इम इन्द्र मदाय ते सोमाश्चिकित्र उक्थिनः ।

मधोः पपान उप नो गिरः शृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वणः ॥२ ॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! याज्ञिकों द्वारा विशिष्ट विधि से शुद्ध किये गये, आनन्ददायी, मधुर इस सोमरस का सेवन करके स्तोत्रों को सुनते हुए हम याजकों को श्रेष्ठ सम्पदा प्रदान करें ॥२ ।

२९५. आ त्वा३द्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम् ।

इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरङ्कृतम् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! गतिशील, विशिष्ट विधि से सरलतापूर्वक अधिक दुग्ध प्रदान करने वाली अभीष्ट गाय के समान अलंकृत, आपका हम आवाहन करते हैं ॥३ ॥

२९६. न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीडवः ।

यच्छिक्षसि स्तुवते मावते वसु न किष्टदा मिनाति ते ॥४ ॥

विशाल, स्थिर पर्वत के समान, कर्त्तव्य पथ से विचलित न होने वाले हे इन्द्रदेव ! आपके द्वारा प्रदान किया गया वैभव, हम यजमानों को निरन्तर प्राप्त होता रहे ॥४ ॥

२९७. क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे ।

अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥५ ॥

सोमयज्ञ में एक ही स्थान पर विद्यमान होकर सोमपान करने वाले अत्यधिक वैभव-सम्पन्न इन्द्रदेव को कौन (नहीं) जानता है ? सोम-पान से मदोन्मत्त, शिरस्त्राण धारण किये हुए इन्द्रदेव, अपनी शक्ति से विरोधियों के नगरों को विनष्ट कर देते हैं ॥५ ॥

२९८. यदिन्द्र शासो अव्रतं च्यावया सदसस्परि ।

अस्माकमंशुं मघवन्पुरुस्पृहं वसव्ये अधि बर्हय ॥६ ॥

अपराधियों को कठोर दण्ड देने के समान, यज्ञ-स्थल के चारों ओर उपस्थित यज्ञ-विरोधियों को दूर करने वाले, धन-सम्पन्न हे इन्द्रदेव ! आप हमारे श्रेष्ठ सोमरस की वृद्धि करें ॥६ ॥

२९९. त्वष्टा नो दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।

पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं वचः ॥७ ॥

देव शिल्पी त्वष्टा, पर्जन्य देवता, बृहस्पति देवता, सपरिवार-देवमाता अदिति आदि देव शक्तियाँ, दुःखों से मुक्ति दिलाने वाले स्तोत्रों से हमारी रक्षा करें ॥७ ॥

३००. कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।

उपोपेन्नु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥८ ॥

वन्ध्या गाय के समान, कभी भी निष्फल न होने वाले हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आपके दिव्य प्रचुर अनुदान यजमानों को कृपापूर्वक प्राप्त होते हैं ॥८ ॥

३०१. युङ्क्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः ।
अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ॥९ ॥

वृत्रासुर के विनाश में सक्षम, रथ पर आसीन हे ऐश्वर्य-सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप शक्ति-सम्पन्न होकर, मरुद्गणों के साथ, सुदूर (द्युलोक) स्थान से हमारे यज्ञ में पधारें ॥९ ॥

३०२. त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्रिन्भूर्णयः ।
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥१० ॥

याजकों द्वारा प्रदत्त सोमरस का निरन्तर सेवन करने वाले हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप ऋत्विजों द्वारा उच्चारित स्तोत्रों को सुनते हुए यज्ञ-स्थल पर पधारें ॥१० ॥

॥इति एकोनविंशः खण्डः ॥

* * *

॥विंशः खण्डः ॥

३०३. प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥१ ॥

प्रकाशित होकर (पृथ्वीलोक में) आती हुई, सूर्य-पुत्री देवी उषा का दर्शन होने लगा है । आभामयी सुन्दरी उषा अपने प्रकाश से अंधकार का निवारण करती हैं ॥१ ॥

३०४. इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशं विशं हि गच्छथः ॥२ ॥

हे सम्पूर्ण प्राणियों के आश्रय-स्थल अश्विन् देवो ! प्रकाश की कामना करने वाले प्रजाजन आपका आवाहन करते हैं । सम्पूर्ण मानवों के निकट जाने वाले तथा पराक्रम से धनार्जन करने वाले आपका, संरक्षण के निमित्त हम आवाहन करते हैं ॥२ ॥

३०५. कुष्ठः को वामश्विना तपानो देवा मर्त्यः ।
घ्नता वामश्नया क्षपमाणोऽशुनेत्थमु आद्वन्यथा ॥३ ॥

हे आभामय अश्विन् कुमारो ! धरती पर अन्य कौन प्राणी आपको प्रकाशित करने में सक्षम है ? आपके निमित्त पत्थरों से कूटकर सोम तैयार करने वाला, थका हुआ यजमान राजा के समान, अपनी इच्छानुसार (पदार्थों का) भोग करने में सक्षम होता है ॥३ ॥

३०६. अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमो दिविष्टिषु ।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥४ ॥

हे अश्विन् कुमारो ! अत्यन्त मधुर तथा एक दिन पूर्व शोधित सोमरस का, आप सेवन करें एवं यज्ञकर्त्ता यजमान को रत्न एवं ऐश्वर्य प्रदान करें ॥४ ॥

३०७. आ त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं ज्या ।
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥५ ॥

सिंह के समान महान् पराक्रमी, भरण-पोषण करने में समर्थ हे इन्द्रदेव ! यज्ञ में सोमरस प्रदान करते हुए, विजयदायिनी स्तुतियों द्वारा निरन्तर आप से याचना करने वाले, हम कदापि क्रोध के पात्र नहीं हैं; क्योंकि कौन ऐसा व्यक्ति है , जो अपने अधिपति से याचना नहीं करता ? ॥५ ॥

३०८.अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति ।
उपो नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥६ ॥

बलवान् अश्वों वाले रथ पर आरूढ़, वृत्र-संहारक इन्द्रदेव का आगमन हो गया है । अतएव हे अध्वर्यु ! सोम- रस पान के इच्छुक इन्द्रदेव के लिए आप शीघ्र ही सोमरस तैयार करें ॥६ ॥

३०९. अभीषतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।
पुरूवसुर्हि मघवन्बभूविथ भरेभरे च हव्यः ॥७ ॥

हे वैभव-सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप अभीष्ट ऐश्वर्य हम जैसे अकिंचन को प्रदान करने की कृपा करें । आप संग्रामों (जीवन-संग्राम) में सहायता करने के लिए आवाहन करने योग्य हैं ॥७ ॥

३१०. यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ॥८ ॥

हे सम्पत्तिशाली इन्द्रदेव ! हम आपके समान सम्पदाओं के अधिपति होने की कामना करते हैं । स्तोताओं को धन प्रदान करने की हमारी अभिलाषा है; परन्तु पापियों को नहीं ॥८ ॥

३११. त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥९ ॥

हे शत्रुनाशक इन्द्रदेव ! आप कीर्तिरहित दुष्ट-दुराचारियों तथा विघ्नकारियों, असुरों को नष्ट करने वाले हैं ॥

३१२. प्र यो रिरिक्ष ओजसा दिवः सदोभ्यस्परि ।
न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमति विश्वं ववक्षिथ ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अपने प्रभाव से द्युलोक में भली-भाँति प्रतिष्ठित हैं । सम्पूर्ण भू-मण्डल के धूलि-कण भी आपको घेरने में समर्थ नहीं हैं, परन्तु आप सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त करने में सक्षम हैं ॥१० ॥

॥इति विंशः खण्डः ॥

* * *

॥एकविंशः खण्डः ॥

३१३. असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच ।
बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा न स्तोममन्धसो मदेषु ॥१ ॥

हे अश्वपालक इन्द्रदेव ! प्राकृतिकरूप से सबको प्रिय सोमरस, गौओं के दुग्ध-मिश्रण से दिव्यरूप में निर्मित किया जाता है । सोमरस-पान से आनन्दित होते हुए , यज्ञ में उच्चारित की जाती हुई, हमारी इन स्तुतियों पर आप विशेष ध्यान देने की कृपा करें ॥१ ॥

३१४. योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।
असो यथा नोऽविता वृधश्चिद्दो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥२ ॥

अनेक लोगों द्वारा स्तुत्य हे इन्द्रदेव ! यज्ञ-वेदिका पर (निर्धारित स्थान पर) आप अपने सहयोगियों के साथ प्रतिष्ठित होने की कृपा करें । रक्षक, पोषणकर्त्ता, धनदाता आप सोमरस पान से आनन्द की अनुभूति करें ॥२ ॥

३१५. अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्बद्बधानाँ अरम्णाः ।
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजद्धारा अव यद्दानवान्हन् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप बादलों को भेदकर, जल धाराओं को प्रकट करने के लिए, जल मार्ग की बाधाओं को दूर कर, ऊँची तरंगों वाले समुद्र को अधिक जल प्रदान करके प्रसन्न करते हैं । तत्पश्चात् आप राक्षसों (दुष्ट प्रकृति वालों) का संहार करते हैं ॥३ ॥

३१६. सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा सनिष्यन्तश्चित्तुविनृम्ण वाजम् ।
आ नो भर सुवितं यस्य कोना तना त्मना सह्याम त्वोताः ॥४ ॥

हे धन-सम्पन्न इन्द्रदेव ! सोमरस अभिषवण करने वाले तथा पुरोडाश पकाने वाले याजक, आपका स्तवन करते हैं । आपके द्वारा रक्षित अभीष्ट धन की कामना करने वाले, हम स्तोतागण प्रभूत ऐश्वर्य अर्जित करने की आपसे शक्ति प्राप्त करते हैं ॥४ ॥

३१७. जगृह्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।
विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥५ ॥

हे अत्यधिक सम्पत्तिवान् शूरवीर इन्द्र ! ऐश्वर्य की कामना करने वाले अत्यधिक बलवर्धक तथा धन प्राप्त करने के लिये हम आपके दाएँ हाथ (पराक्रम) का आश्रय लेते हैं, आप गो-पालक के रूप में भी प्रसिद्ध हैं ॥५ ॥

३१८. इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।
शूरो नृषाता श्रवसश्च काम आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥६ ॥

विपत्तियों से रक्षा के लिए सेनानायकगण अपनी सहायता के लिये इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं । अतएव आप मनुष्यों के लिए धन-दाता एवं बल-वर्द्धक हैं । आप हमें गोष्ठ में, गौओं से लाभ प्राप्त करने के लिए पहुँचाने की कृपा करें ॥६ ॥

३१९. वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्या३स्मान्निधयेव बद्धान् ॥७ ॥

उत्तम पंखों से युक्त पक्षी (दिव्य प्रकाश-स्वर्णिम किरणों से युक्त) इन्द्रदेव को प्राप्त होता है । मेधावी (यज्ञप्रेमी) ऋषि (इन्द्र के प्रति) याचना रत हैं । हे इन्द्रदेव ! आप बँधे हुओं को मुक्ति दें, अन्धकार को दूर कर हमारी आँखों को दिव्य प्रकाशयुक्त बनायें ॥७ ॥

३२०. नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥८ ॥

पक्षी की तरह आकाश में गतिशील सुनहले पंख वाले, सबको पोषण देने वाले हे वरुण के दूत ! आपको लोग हृदय से चाहते हैं, अग्नि के उत्पत्ति-स्थल अंतरिक्ष में, आपको पक्षी की तरह विचरण करते हुए देखते हैं ॥८ ॥

[ऋषियों ने ऊर्जा (अग्नि) का स्रोत अन्तरिक्ष में (सूर्यशक्ति) बताया है, जिसे विज्ञान ने भी स्वीकारा है ।]

३२१. ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥९ ॥

पूर्व में (सबसे पहले) ब्रह्मतेज उत्पन्न हुआ। वेन ने उसका उपदेश करते हुए, उसकी उपमा के अनुरूप उसके तेज को विशेष रूप से आकाश में स्थापित किया। जो उत्पन्न हुआ है, उसका स्रोत तथा जो उत्पन्न नहीं हुआ है, उसका कारण भी वही (ब्रह्मतेज) है ॥९ ॥

[इस ऋचा के आधार पर शास्त्रों में सर्वप्रथम ब्राह्मण की उत्पत्ति का वर्णन भी मिलता है।]

३२२. अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय ।
विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यस्मै स्थविराय तक्षुः ॥१० ॥

श्रेष्ठ वीर, शक्तिशाली, शीघ्र कार्य करने वाले, स्तुत्य, वज्रधारी, पूज्य इन्द्रदेव के लिए अनेक अनुपम स्तोत्रों द्वारा स्तुति की जाती है ॥१० ॥

॥इति एकविंशः खण्डः ॥

* * *

॥द्वाविंशः खण्डः ॥

३२३. अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नीहितिं नृमणा अधद्राः ॥१ ॥

त्वरित गतिशील, दस हजार सैनिकों सहित आक्रमण करने वाले, सम्पूर्ण संसार को दुःख देने वाले, अंशुमती नदी (यमुना) के तट पर विद्यमान, (सबको आकर्षित करके) अपने चंगुल में फँसा लेने वाले (कृष्णासुर) पर सर्वप्रिय इन्द्रदेव ने प्रत्याक्रमण करके शत्रुओं की सेना को पराजित कर दिया ॥१ ॥

३२४. वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः ।
मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! वृत्रासुर के भय से आपका परित्याग करके सभी सहायक देवगण चारों दिशाओं में पलायन कर गये। तदनन्तर मरुद्गणों का सहयोग लेकर आपने शत्रु-सेना को परास्त किया ॥२ ॥

३२५. विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥३ ॥

युद्ध में शौर्य प्रदर्शित करके शत्रुसेना को खदेड़ देने वाले इन्द्रदेव के प्रभाव से श्वेत केश (शक्तिहीन) वृद्ध भी स्फूर्तिवान् हो जाता है। हे स्तोताओ ! इन्द्रदेव के पराक्रम का विवेचन करने वाले विचित्र काव्य को देखो, जो आज (उच्चारण के बाद) विनष्ट (सा) प्रतीत होता हुआ भी (भविष्य में) नवीन मंत्रों के समान स्तुतियों में प्रयुक्त होता है ॥३ ॥

३२६. त्वं ह त्यत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूळ्हे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥४ ॥

अजातशत्रु हे इन्द्रदेव ! वृत्रादि सात राक्षसों के आप उत्पन्न होते ही शत्रु हो गये। अंधकार में (राक्षसों द्वारा स्थापित किये गये) द्युलोक और पृथ्वीलोक को (उद्धार करके) आपने प्रकाशित किया। अब आपने इन लोकों को ऐश्वर्यशाली और भली-भाँति स्थिर करके सौन्दर्यशाली बना दिया है ॥४ ॥

३२७. मेडिं न त्वा वज्रिणं भृष्टिमन्तं पुरुधस्मानं वृषभं स्थिरप्स्नुम् ।
करोष्यर्यस्तरुषीर्दुवस्युरिन्द्र द्युक्षं वृत्रहणं गृणीषे ॥५ ॥

सत्कर्मों से प्रशंसित, वृत्र संहारक, द्युलोक में प्रतिष्ठित, शत्रुओं का विनाश करने वाले, शक्तिशाली, संग्राम में स्थिर रहने वाले, वज्रधारक, दुष्ट-विनाशक इन्द्रदेव, हमें सर्वदा विजय प्रदान करते हैं । अतः हम उनकी प्रशंसनीय मनुष्य की तरह स्तुति करते हैं ॥५ ॥

३२८. प्र वो महे महे वृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥६ ॥

हे मनुष्यो ! महान् कार्य सम्पन्न करने वाले, प्रख्यात इन्द्रदेव के लिए सोम प्रदान करते हुए, श्रेष्ठ स्तोत्र से स्तुति करो । हे इन्द्रदेव ! आप भी हविदाता प्रजाओं की कामना पूर्ण करते हुए उनका कल्याण करें ॥६ ॥

३२९. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानि ॥७ ॥

अन्न प्राप्ति की सम्भावना वाले, संग्राम में उत्साह सम्पन्न, ऐश्वर्यवान्, श्रेष्ठ वीर, ध्यानपूर्वक प्रार्थना सुनने वाले, शत्रु-संहारक सम्पत्तिजयी इन्द्रदेव का हम अपनी सहायता के निमित्त आवाहन करते हैं ॥७ ॥

३३०. उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि श्रवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥८ ॥

हे इन्द्रियजित (वसिष्ठ) ऋषे ! यश के संवर्धक, उपासकों की प्रार्थना सुनने वाले, अन्न (पोषक आहार) प्राप्ति की कामना से यज्ञ में इन्द्रदेव की महिमा का वर्णन करने वाले स्तोत्रों का पाठ करो ॥८ ॥

३३१. चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात् ।
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥९ ॥

अंतरिक्ष में देदीप्यमान इन्द्रदेव का वज्र उपासकों के लिए मधुर जल (पोषक रस) प्रेरित करता है । पृथ्वी पर प्रवहमान वही जल गौओं में दूध के रूप में और वनस्पतियों में पोषक रस के रूप में विद्यमान है ॥९ ॥

॥इति द्वाविंशः खण्डः ॥

* * *

॥त्रयोविंशः खण्डः ॥

३३२. त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तरुतारं रथानाम् ।
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥१ ॥

हम अपने कल्याण के लिए, देवताओं से सेवित, शक्तिशाली, संग्राम में उद्धार करने में समर्थ, शत्रु सेना पर विजय प्राप्त करने वाले, जिसकी गति रुकती नहीं, उस तीव्र गति से उड़ने वाले तार्क्ष्य (गरुड़-सूर्य-इन्द्र) का आवाहन करते हैं ॥१ ॥

३३३. त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदं हविर्मघवा वेत्विन्द्रः ॥२ ॥

संरक्षक एवं सहायक, युद्ध में आवाहन योग्य, पराक्रमी, सक्षम तथा अनेक स्तोताओं द्वारा स्तुत्य, इन्द्रदेव का हम कल्याण के निमित्त आवाहन करते हैं । ऐश्वर्यवान् वे इन्द्रदेव (याजकों द्वारा समर्पित) हविष्यान्न को ग्रहण करें ॥२ ॥

३३४. यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यां३ विव्रतानाम् ।
प्र श्मश्रुभिर्दोधुवदूर्ध्वधा भुवद्वि सेनाभिर्भयमानो वि राधसा ॥३ ॥

वज्रहस्त, वेगवान् रथ पर आसीन, दाढ़ी एवं मूछों (के प्रदर्शन) से शत्रु को प्रकम्पित करने वाले, सर्वश्रेष्ठ, सेना के माध्यम से शत्रुओं को भयभीत करने वाले इन्द्रदेव उपासकों को धन-वैभव प्रदान करते हैं ॥ ३ ॥

३३५. सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम् ।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥४ ॥

शत्रु-समूह के संहारक, उन्हें भयभीत करने वाले, (पराजित करके) भगा देने वाले, अत्यधिक शक्ति-युक्त, श्रेष्ठ वज्रधारक, वृत्र-हन्ता, अन्नदायक, धन-रक्षक इन्द्रदेव अपने उपासकों को धन देने वाले हैं ॥४ ॥

३३६. यो नो वनुष्यन्नभिदाति मर्त उगणा वा मन्यमानस्तुरो वा ।
क्षिधी युधा शवसा वा तमिन्द्राभी ष्याम वृषमणस्त्वोताः ॥५ ॥

वध की कामना करने वाले, दर्प-युक्त, संहारक अस्त्रों के साथ आक्रमण करने को उद्यत, दृढ़ निश्चयी, आपके द्वारा रक्षित होकर हम (यजमानगण) , शत्रुओं को पराजित करने में सक्षम हों ॥५ ॥

३३७. यं वृत्रेषु क्षितय स्पर्धमाना यं युक्तेषु तुरयन्तो हवन्ते ।
यं शूरसातौ यमपामुपज्मन्यं विप्रासो वाजयन्ते स इन्द्रः ॥६ ॥

युद्ध-रत प्रजाओं द्वारा सहायता के लिए पुकारे जाने वाले, शस्त्र-हस्त होकर संघर्ष करने वाले, योद्धाओं द्वारा बुलाये जाने वाले, जल-वर्षण के निमित्त प्रार्थना किये जाने वाले, विद्वानों द्वारा हवि समर्पित किये जाने वाले देवता एक मात्र इन्द्र हैं ॥६ ॥

३३८. इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतं सुवीराः ।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिडया मदन्ता ॥७ ॥

हे इन्द्र और पर्वत ! स्तुत्य, श्रेष्ठ सन्तान युक्त, यजमान द्वारा समर्पित हविष्यान्न से हर्ष का अनुभव करने वाले, यज्ञ में हवि का भक्षण करने वाले आप हमें अन्न प्रदान करें एवं हमारे स्तोत्रों से यशस्वी हों ॥७ ॥

३३९. इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रैरयत्सगरस्य बुध्नात् ।
यो अक्षेणेव चक्रियौ शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ॥८ ॥

इन्द्र देवता अपनी क्षमता से, चक्र को चारों ओर से घेरे हुए 'हाल ' (लोहे की पट्टी) के समान द्युलोक और पृथ्वीलोक को समावृत करके अवस्थित हैं । उन इन्द्रदेव के लिए उच्च स्वर से उच्चारण की जाने वाली स्तुतियाँ अन्तरिक्ष से जल-प्रवाहित करने में सक्षम होती हैं ॥८ ॥

३४०. आ त्वा सखायः सख्या ववृत्युस्तिरः पुरू चिदर्णवां जगम्याः ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अस्मिन्क्षये प्रतरां दीद्यानः ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! सुदूर अन्तरिक्ष में विद्यमान आपके मित्रजन, श्रेष्ठ स्तोत्रों से आपका आवाहन करते हैं । इस यज्ञ में देदीप्यमान होते हुए आपके प्रभाव से हमें पुत्र-पौत्रों की प्राप्ति हो ॥९ ॥

३४१. को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्
आसन्नेषामप्सुवाहो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥१० ॥

यज्ञ में जाने वाले इन्द्रदेव के रथ की धुरी की सहायता से गतिशील, सामर्थ्यवान् शत्रु पर क्रोधित, सुखदायक, यज्ञ में इन्द्रदेव को ले जाने वाले, स्तोत्र-गान द्वारा घोड़ों को (आपके अतिरिक्त) कौन रथ में जोड़ सकता है ? इन्द्रदेव के अश्वों का भरण-पोषण करने वाला ही जीवन धारण कर सकता है ॥१० ।

॥ इति त्रयोविंशः खण्डः ॥

* * *

॥चतुर्विंशः खण्डः ॥

३४२. गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः । ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे

हे शतक्रतु (सौ यज्ञ या श्रेष्ठकर्म करने वाले) इन्द्रदेव ! उद्‌गाता (उच्च स्वर से गान करके) आपका आवाहन करते हैं । स्तोतागण पूज्य इन्द्रदेव का मंत्रोच्चारण द्वारा आदर करते हैं । बाँस के ऊपर कला प्रदर्शन करने वाले नट के समान ब्रह्म नामक ऋत्विक् आपका स्तवन सर्वश्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा करते हैं ॥१ ॥

३४३. इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः । रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम्

समस्त स्तुतियाँ, समुद्र के समान विस्तृत रथ पर आसीन, श्रेष्ठ योद्धा, बल एवं अन्नों के अधिपति, सज्जनों के संरक्षक देवराज इन्द्र की महिमा का गान करती हैं ॥२ ॥

३४४. इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् । शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥

हे इन्द्रदेव ! अविनाशी, श्रेष्ठ, आनन्दवर्धक, सोमरस का पान करें । यज्ञस्थल में शोधित सोमरस आपकी ओर प्रवाहित हो रहा है (आपको समर्पित है ।) ॥३ ॥

३४५. यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः । राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ।।

हे अद्‌भुत वज्र को धारण करने वाले ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! हमारे पास आपके समर्पण योग्य धन का अभाव है । अतएव मुक्त हस्त से हमें प्रचुर धन प्रदान करें ॥४ ।

३४६. श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति । सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि

हे इन्द्रदेव ! उपासक तिरश्चि ऋषि के स्तोत्रों को आप सुनें । हे महान् इन्द्रदेव ! आप श्रेष्ठ बल एवं गौ प्रदान करते हुए हमें धन-सम्पदा से परिपूर्ण करें ॥५ ॥

३४७. असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।

आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥६ ॥

शक्तिशाली शत्रुओं को पराजित करने वाले हे इन्द्रदेव ! अन्तरिक्ष को अपनी किरणों से परिव्याप्त करने वाले सूर्य के समान, आप में भी सोमपान के बाद अपार शक्ति का संचार हो ॥६ ॥

३४८. एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥७ ॥

हे तेजस्वी इन्द्रदेव ! आप अश्वारूढ़ होकर कण्व की श्रेष्ठ स्तुतियों के श्रवण हेतु पधारें । द्युलोक में वास करने में हमारी तरह आपको भी सुखानुभूति होगी, अतएव आप वहीं आवास के लिए प्रस्थान करें ॥७ ॥

३४९. आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः ।

अभि त्वा समनूषत गावो वत्सं न धेनवः ॥८ ॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! रथारूढ़ होकर सुरक्षित पहुँचने वाले योद्धा के समान तथा बछड़े के पास शीघ्र पहुँचने हेतु गतिशील गाय के समान, "सोम याग" में हमारी स्तुतियाँ आपके पास पहुँच जाती हैं ॥८ ॥

३५०. एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्धैराशीर्वान्ममत्तु ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शीघ्र पधारें । शुद्ध उच्चारित साम और यजुर्मन्त्रों द्वारा हम आपका स्तवन करते हैं । बलवर्द्धक, मंत्रों से शोधित किया गया, गो-दुग्ध मिश्रित सोमरस, आपको आनन्द प्रदान करे ॥९ ॥

३५१. यो रयिं वो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥१० ॥

हे शक्ति-सम्पन्न इन्द्रदेव ! सौन्दर्यशाली, अति देदीप्यमान, उपासकों को धन देने वाला यह सोमरस आपको आनन्द देने वाला है ॥१० ॥

॥इति चतुर्विंशः खण्डः ॥

* * *

ऋषि , देवता, छन्द- विवरण

ऋषि- वसिष्ठ मैत्रावरुणि २३३, २३८, २४१, २५१, २७०, २८०, २८४, २८५, २९३, ३०३, ३०४, ३०९, ३१०, ३१३, ३१४, ३१८, ३२८, ३३० । भरद्वाज बार्हस्पत्य २३४, २६२, २६६, २८१, २८६ । प्रस्कण्व काण्व २३५, ३०६ । नोधा गौतम २३६, २९६, ३१२ । कलि प्रागाथ २३७, २७२ । मेधातिथि काण्व २३९, २५६, २६१ २६३, २९७ । भर्ग प्रागाथ २४०, २५३, २७४, २९० । प्रगाथ घौर काण्व २४२ । पुरुहन्मा आङ्गिरस २४३, २६८, २७२, २७८ । मेधातिथि और मेध्यातिथि काण्व २४४, २४५, २७१, २९१, २९२, ३०७ । विश्वामित्र गाथिन २४६, ३२९, ३३८, ३५० । गोतम राहूगण २४७, ३४१, ३४४, ३४७ । नृमेध और पुरुमेध आंगिरस २४८, २५७, २५८, २६९ । मेधातिथि अथवा मेध्यातिथि काण्व २४९-२५१ । देवातिथि काण्व २५२, २७७, २७९, ३०८ । रेभ काश्यप २५४, २६०, २६४ । जमदग्नि भार्गव २५५, २७६ । वत्स २६५ । नृमेध आङ्गिरस २६७, २८३, ३०२, ३११ । इरिम्बिठि काण्व २७५ । मेध्य काण्व २८२ ।परुच्छेप दैवोदासि २८७ । वामदेव गौतम २८८, २९४, २९८, २९९, ३२७, ३३५-३३७, ३४० । मेध्यातिथि काण्व २८९ । मेधातिथि मेध्यातिथि काण्व अथवा विश्वामित्र २९५ । श्रुष्टिगु काण्व ३०० । अश्विनीकुमार वैवस्वत ३०५ । गातु आत्रेय ३१५ । पृथु वैन्य ३१६ । सप्तगु आङ्गिरस ३१७ ।गौरिवीति शाक्त्य३१९,३३१ ।वेन भार्गव ३२० । बृहस्पति अथवा नकुल ३२१ । सुहोत्र भारद्वाज ३२२ । द्युतान मारुत ३२३, ३२४, ३२६ । बृहदुक्थ वामदेव्य ३२५ । अरिष्टनेमि तार्क्ष्य ३३२ । भरद्वाज ३३३ । विमद ऐन्द्र अथवा वसुकृत् वासुक्र ३३४ । रेणु वैश्वामित्र ३३९ । मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ३४२ । जेता माधुच्छन्दस ३४३ । अत्रि भौम ३४५ । तिरश्ची आङ्गिरस ३४६, ३४९ । नीपातिथि काण्व ३४८ । तिरश्ची आङ्गिरस अथवा शंयु बार्हस्पत्य ३५१ ।

देवता— इन्द्र २३३-२४०, २४२-२९८, ३००-३०२, ३०६-३१९ ३२१-३३१,३३३-३५१ । तार्क्ष्य अथवा सूर्य ३३२ । मरुद्गण २४१ । त्वष्टा, पर्जन्य, ब्रह्मणस्पति, अदिति २९९ । उषा ३०३ । अश्विनीकुमार ३०४, ३०५ । वेन ३२० ।

छन्द— बृहती २३३-३१२ । त्रिष्टुप् ३१३-३४१ । अनुष्टुप् ३४२-३५१ ।

॥इति तृतीयोऽध्यायः ॥

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥पंचविंशः खण्डः ॥

३५२. प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर । अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः ॥१ ॥

हे यजमान ! यज्ञ के संचालक, सोम पीने के इच्छुक, सर्वज्ञ, निश्चित समय पर उचित स्थान को प्राप्त कराने वाले, यज्ञ में जाने की कामना वाले, सर्वप्रथम यज्ञ वेदिका पर उपस्थित होने वाले इन्द्र को सोमरस से तृप्त करो ॥१ ।

३५३. आ नो वयो वयःशयं महान्तं गह्वरेष्ठाम् । महान्तं पूर्विणेष्ठामुग्रं वचो अपावधीः

(हे इन्द्र) विशाल पर्वतों पर स्थित, सर्वत्र प्राप्त होने वाले, सोमरूपी अन्न से हमें परिपूर्ण कर दें । अत्यधिक प्रचलित निन्दित कथनों को आप हमसे दूर करें हम निन्दनीय न बनें ॥२ ॥

३५४. आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रं शविष्ठ सत्पतिम् ॥३ ॥

शत्रुओं को पराजित करने वाले, शौर्ययुक्त, यजमानों के पोषक हे शक्तिशाली इन्द्र ! संरक्षण एवं सुख के निमित्त, गतिशील रथ के समान, सब जगह घुमाते हुए, आप को हम (यजमानगण) यज्ञस्थल पर ले आते हैं ॥३ ॥

३५५. स पूर्व्यो महोनां वेनः क्रतुभिरानजे । यस्य द्वारा मनुः पिता देवेषु धिय आनजे ॥

याज्ञिक की सहायता से हविष्यान्न सेवन करने के लिए, कर्मशील, सभी देवताओं के पोषक, चिन्तनशील, श्रेष्ठ इन्द्रदेव यज्ञ-स्थल पर उपस्थित होते हैं ॥४ ॥

३५६. यदी वहन्त्याशवो भ्राजमाना रथेष्वा ।पिबन्तो मदिरं मधु तत्र श्रवांसि कृण्वते ।।५

हर्षवर्द्धक, मधुर सोमरस को पीने वाले, अन्न उत्पन्न करने वाले, तेजयुक्त, शीघ्र गतिशील मरुद्‌गण, इन्द्रदेव को यज्ञ वेदिका पर पहुँचाते हैं ॥५ ॥

३५७. त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।
इन्द्रं विश्वासाहं नरं शचिष्ठं विश्ववेदसम् ॥६ ॥

यजमानों के हित के लिए कल्याणकारक, बल एवं अन्न के अधिपति, शत्रुओं को पराजित करने वाले, यज्ञ के नायक, शक्तिसम्पन्न, सर्वज्ञ इन्द्रदेव की (हम) स्तुति करते हैं ॥६ ॥

३५८. दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥७ ॥

विजयशील, अश्व के समान तीव्र गतिशील, दधिक्राव (ऋषि) की हम स्तुति करते हैं, जो शारीरिक अंगों के पोषक और हमारी आयु में वृद्धि करने वाले हैं ॥७ ॥

३५९. पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥८ ॥

वह (इन्द्र) शत्रु के नगरों का विध्वंस करने वाला, युवा, ज्ञाता, अतिशक्तिशाली, शुभ कार्यों का आश्रयदाता, सर्वाधिक कीर्तियुक्त होकर उत्पन्न हुआ है ॥८ ॥

॥इति पंचविंशः खण्डः ॥

॥षड्‌विंशः खण्डः ॥

३६०. प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं वन्दद्वीरायेन्दवे । धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति ॥१ ॥

हे याजको ! तीन स्तोत्रों से तैयार किये गये अन्न (भोज्य पदार्थ), श्रेष्ठ वीर इन्द्रदेव को प्रदान करो । यज्ञ-सम्पादन के लिए विवेकपूर्वक किये गये सत्कर्मों का अभीष्ट फल प्रदान करके, 'इन्द्रदेव' यजमानों को सम्मानित करते हैं ॥१ ॥

३६१. कश्यपस्य स्वर्विदो यावाहुः सयुजाविति ।
ययोर्विश्वमपि व्रतं यज्ञं धीरा निचाय्य ॥२ ॥

सर्वज्ञ इन्द्रदेव के दोनों अश्व सर्वदा यज्ञीय कार्यों (इन्द्र को यज्ञ स्थान तक ले जाने) में निरत रहते हैं । ऐसा निश्चय हो जाने पर, उन्हें (निःसंकोच) रथ में नियोजित कर लिया जाता है— ऐसा ज्ञानीजनों का अभिमत है ॥२ ॥

३६२. अर्चत प्रार्चता नरः प्रियमेधासो अर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद् धृष्ण्वर्चत ॥३ ॥

हे मनुष्यो ! यज्ञ-प्रिय सन्तान एवं साधकों की कामना को पूर्ण करने वाले तथा शत्रु को पराजित करने वाले इन्द्रदेव का आप सभी (श्रद्धापूरित होकर) सम्मान करें ॥३ ॥

३६३. उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे ।
शक्रो यथा सुतेषु नो रारणत्सख्येषु च ॥४ ॥

हे स्तोताओ ! शत्रुसंहारक, सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव के लिए (उनके) यश बढ़ाने वाले उत्तम स्तोत्रों का पाठ करो, जिससे उनकी कृपा हमारी सन्तानों एवं मित्रों पर सदैव बनी रहे ॥४ ॥

३६४. विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः ।
एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ॥५ ॥

हे मरुतो ! शत्रु सैनिकों पर आक्रमण करने वाले, शत्रुओं के लिए अजेय, बलशाली इन्द्र देवता का आपके सैनिकों पर होने वाले आक्रमण के समय, उनके रथों की सुरक्षा के लिए आवाहन करते हैं ॥५ ॥

३६५. स घा यस्ते दिवो नरो धिया मर्तस्य शमतः ।
ऊती स बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥६ ॥

साधक की प्रभावशाली स्तुतियों के माध्यम से जो मनुष्य इन्द्रदेव का मित्र बनता है । वह व्यक्ति दिव्य संरक्षण में रहने के कारण पाप तथा शत्रुओं से सुरक्षित रहता है ॥६ ॥

३६६. विभोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
अथा नो विश्वचर्षणे द्युम्नं सुदत्र मंहय ॥७ ॥

हे सर्वज्ञ, श्रेष्ठदानी, सौ अश्वमेध (सैकड़ों सत्कर्म) करने वाले आप, महिमाशाली धन प्रदान कर, हमें भी ऐश्वर्य- सम्पन्न बनाएँ ॥७ ॥

३६७. वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपाच्चतुष्पादर्जुनि ।
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥८ ॥

हे देदीप्यमान उषादेवि ! आपके (आकाश मण्डल पर) उदित होने के बाद, मानव, पशु एवं पक्षी अन्तरिक्ष में दूर-दूर तक स्वेच्छानुसार विचरण करते हुए दिखाई देते हैं ॥८ ॥

प्रातःकाल होते ही सभी प्राणी सक्रिय हो जाते हैं ।

३६८. अमी ये देवा स्थन मध्य आ रोचने दिवः । कद्व ऋतं कदमृतं का प्रत्ना व आहुतिः

हे (इन्द्रादि) देवगण ! सूर्योदय होने के बाद आकाश में दीप्तिमान् हो जाने से आप लोगों तक कोई स्तुति पहुँची है या नहीं ? अथवा किसी विशिष्ट आहुति को आप प्राप्त करते हैं या नहीं ? ॥९ ॥

३६९. ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कृण्वते ।
वि ते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु वक्षतः ॥१० ॥

ऋचा एवं साम-गान की सहायता से यज्ञकर्म सम्पन्न किया जाता है । यज्ञमण्डप में उच्चारित हुए (ऋचा एवं सामगान) मंत्रों की सहायता से ही यज्ञ (हविष्यान्न) देवगणों तक पहुँचता है ॥१० ॥

॥इति षड्विंशः खण्डः ॥

* * *

॥सप्तविंशः खण्डः ॥

३७०. विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥१ ॥

ऋत्विग्गण यज्ञ में श्रेष्ठ स्थान पर आसीन होकर सेनानायक, पराक्रमी-संगठित सेना से युक्त, शस्त्रास्त्र धारणकर्त्ता, शत्रु-हन्ता, उग्र महिमाशाली, तीव्र गति से कार्य करने वाले इन्द्रदेव की स्तुति करते हैं ॥१ ॥

३७१. श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन्यद्दस्युं नर्यं विवेरपः ।
उभे यत्वा रोदसी धावतामनु भ्यसाते शुष्मात्पृथिवी चिदद्रिवः ॥२ ॥

हे वज्रपाणि इन्द्रदेव ! दुष्ट संहारक, प्राणियों के लिए हितकारी जल प्रवाहित करने वाले, द्युलोक एवं पृथ्वी लोक को अपनी इच्छा से गतिशील करने वाले, आपके उस तीव्र मन्यु (अनीति निवारक क्रोध) पर, हम याजकगण श्रद्धा करते हैं ॥२ ॥

३७२. समेत विश्वा ओजसा पतिं दिवो य एक इद्भूरतिथिर्जनानाम् ॥
स पूर्व्यो नूतनमाजिगीषन् तं वर्तनीरनु वावृत एक इत् ॥३ ॥

हे प्रजाओ ! अपने पौरुष से द्युलोक के अधिपति, अकेले ही मानवों में पूजनीय, शत्रुविजय की कामना से नव-नियुक्त सैनिकों को विजय दिलाने वाले, उन इन्द्रदेव की सामूहिक स्तुति करो ॥३ ॥

३७३. इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
न हि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव प्रति तद्धर्य नो वचः ॥४ ॥

हे सम्पत्तिवान् एवं बहुप्रशंसित इन्द्रदेव ! आपके संरक्षण में कार्य करते हुए, निष्ठापूर्वक रहते हुए, आपके समान अन्य स्तुत्य देवता के न रहने के कारण, हम आपकी स्तुति करते हैं । सभी पदार्थों को स्वीकार करने वाली पृथ्वी के समान, आप भी हमारे स्तोत्रों को स्वीकार करें ॥४ ॥

३७४. चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्या३मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।

वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे ॥५ ॥

सभी मानवों के पोषक, ऐश्वर्यशाली, ख्यातियुक्त उपासकों की वृद्धि करने वाले, अमर, अनेक स्तोत्रों से प्रतिदिन प्रशंसित, इन्द्रदेव की हम अनेक दिव्य स्तोत्रों से स्तुति करते हैं ॥५ ॥

३७५. अच्छा व इन्द्रं मतयः स्वर्युवः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परिष्वजन्त जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥६ ॥

अपने संरक्षण के लिए, पवित्र, ऐश्वर्यवान्, इन्द्रदेव की, आत्मशक्ति की वृद्धि करने वाली, एक साथ रहने वाली, उन्नति की कामना करने वाली, हमारी स्तुतियाँ, उसी प्रकार कामना करती हैं, जैसे स्त्रियाँ अपने पति का (स्नेह-श्रद्धायुक्त) आलिङ्गन करती हैं ॥६ ॥

३७६. अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषं भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥७ ॥

(हे स्तोताओ !) शत्रु को पराजित करने वाले, अनेकों द्वारा प्रशंसित किये जाने योग्य, धन के आगार इन्द्रदेव की प्रार्थना करो । द्युलोक के विस्तार के समान-जिसके कल्याणकारी कार्य चतुर्दिक् संव्याप्त हैं, ऐसे ज्ञानवान् इन्द्रदेव की सुखों की प्राप्ति के लिए अर्चना करो ॥७ ॥

३७७. त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभुवः साकमीरते ।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमिन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥८ ॥

जिन इन्द्रदेव के श्रेष्ठ, सैकड़ों, उत्तम स्थान एक साथ ही उन्नति को प्राप्त करते हैं, उन शत्रुओं से स्पर्धा करने वाले, धन-दान के निमित्त अभीष्ट स्थल पर जाने वाले, अश्व के समान शीघ्रता से यज्ञ-स्थल पर पहुँचने वाले, देव के श्रेष्ठ यश को, अपनी रक्षा के लिए, सैकड़ों बार स्तोत्रों के माध्यम से स्तुति करते हुए, व्यक्त करो ॥८ ॥

३७८. घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥९ ॥

दीप्तिमान्, सम्पूर्ण प्राणियों के आधार-स्थल, विशाल, सुविस्तृत, मधुर जल प्रदान करने वाले, श्रेष्ठ परमेश्वर की शक्ति पर टिके हुए, अविनाशी एवं श्रेष्ठ उत्पादक क्षमता से युक्त ये द्युलोक और पृथ्वीलोक हैं ॥९ ॥

३७९. उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव । महान्तं त्वा महीनां सम्राजं
चर्षणीनाम् । देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! तेजस्विनी उषा के समान द्युलोक और पृथ्वीलोक को प्रकाश से पूर्ण करने वाले, महानतम, प्राणियों के स्वामी, आपको कल्याण करने वाली देवमाता अदिति ने जन्म दिया है ॥१० ॥

३८०. प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हुवेमहि ॥११ ॥

हे ऋत्विगण ! श्रेष्ठ इन्द्रदेव की हविष्यान्न देकर अर्चना करो । ऋजिश्व की सहायता से, कृष्णासुर की गर्भिणी स्त्रियों के साथ उसका वध करने वाले, दाँयें हाथ में वज्र धारण करने वाले, मरुद्गणों की सेना के साथ विद्यमान रहने वाले, शक्ति सम्पन्न, उन इन्द्रदेव का, अपने संरक्षण की कामना करने वाले हम (यजमान) मित्रता के निमित्त, आवाहन करते हैं ॥११ ॥

॥ इति सप्तविंशः खण्डः ॥

॥अष्टाविंशः खण्डः ॥

३८१. इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् । विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः ॥१

हे इन्द्रदेव ! तैयार किये गये सोमरस का पान करके (आप) यजमान और स्तोता (दोनों) को, उन्नति की ओर बढ़ानेवाली शक्ति प्राप्त करने के लिए, पवित्र कर देते हैं, (क्योंकि) आप महान् हैं ॥१ ॥

३८२. तमु अभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥२ ॥

हे स्तोताओ ! अनेक यजमानों द्वारा आवाहन किये जाने वाले, प्रशंसा के योग्य, उन इन्द्रदेव की स्तोत्रों से स्तुति और मन्त्रों से मनन (चिन्तन) करो ॥२ ॥

३८३. तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् ।उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥३ ।

हे वज्रपाणि इन्द्रदेव ! शक्तिशाली, संग्राम में शत्रु को पराजित करने वाले, मनुष्यों के लिए कल्याणकारक अश्व, जिसके पास सुशोभित होते हैं, सोमपान के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले उस आपके उत्साह की हम प्रशंसा करते हैं ॥३ ॥

३८४ .यत्सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये ।यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥४

हे इन्द्रदेव ! यज्ञों में विष्णु के उपस्थित होने के बाद आपने जो सोमपान किया अथवा आप्त्य-त्रित के अथवा मरुद्‌गणों के साथ अथवा अन्य यज्ञों में सोमरस के सेवन से आनन्दित होने वाले आप, हमारे यज्ञ में (भी) सोमपान करके आनन्दित हों ॥४ ॥

३८५. एदु मधोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः । एवा हि वीरस्तवते सदावृधः ॥५ ॥

हे ऋत्विग्गण ! मधुर सोमपान से आनन्दित होने वाले इन्द्रदेव को यह रस समर्पित करो । पराक्रमी एवं निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होने वाले इन्द्रदेव ही स्तोताओं द्वारा सर्वदा प्रशंसित होते हैं ॥५ ॥

३८६. एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु । प्र राधांसि चोदयते महित्वना ॥६ ।।

हे ऋत्विजो ! इन्द्रदेव के निमित्त सोमरस समर्पित करो, जिस मधुर सोमरस-पान के बाद वे अपने प्रभाव से याजकों को विपुल धन प्रदान करते हैं ॥६ ॥

३८७. एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् ।कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥७ ॥

हे मित्रो ! शीघ्र आओ, हम उस स्तुत्य, श्रेष्ठ नायक इन्द्रदेव की प्रार्थना करें, जो अकेले ही सभी शत्रुओं को परास्त करने में सक्षम हैं ॥७ ॥

३८८. इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् । ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥८ ॥

हे उद्‌गाताओ ! विवेक सम्पन्न, महान्, स्तुत्य, ज्ञानवान् इन्द्रदेव के निमित्त आप लोग बृहत्साम (नामक स्तोत्रों) का गायन करो ॥८ ॥

३८९. य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे । ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥९ ॥

हे प्रिय याजको ! दानशील होने के कारण मनुष्यों को धन देने वाले, प्रतिकार न किये जाने वाले, वे अकेले इन्द्रदेव ही सभी (प्राणियों) के अधिपति हैं ॥९ ॥

३९०. सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे । स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे ॥१०

हे मित्रो ! वज्रधारण करने वाले इन्द्रदेव की हम स्तोत्रों से स्तुति करते हुए, उनसे आशीर्वाद की याचना करते हैं। श्रेष्ठवीर तथा शत्रुओं को पराजित करने वाले इन्द्रदेव की, हम आप सभी के कल्याण के लिए स्तुति करते हैं ॥१० ॥

॥इति अष्टाविंशः खण्डः ॥

* * *

॥एकोनत्रिंशः खण्डः ॥

३९१. गृणे तदिन्द्र ते शव उपमां देवतातये। यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते ॥१ ॥

हे शचीपते इन्द्रदेव ! हम उस निकट ही सम्पन्न होने वाले यज्ञ में आपकी शक्ति की स्तुति करते हैं, जिसके कारण आप वृत्र वध करने में सक्षम हैं ॥१ ॥

३९२. यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयन्। अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस सोमरस को पी करके मदोन्मत्त आपने, दिवोदास के कल्याण के लिए शम्बरासुर का हनन किया, उस शोधित सोमरस का आप सेवन करें ॥२ ॥

३९३. एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य । गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥३ ॥

हे सर्वप्रिय ! सभी शत्रुओं को जीतने वाले, अपराजेय इन्द्रदेव, पर्वत के सदृश सुविशाल द्युलोक के अधिपति, आप (अनुदान देने हेतु) हमारे पास आएँ ॥३ ॥

३९४. य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति। येना हंसि न्या३त्रिणं तमीमहे ॥४

अत्यधिक सोमपान करने वाले बलशाली इन्द्रदेव आपका उत्साह प्रशंसनीय है । जिससे आप (अहितकारी) घातक असुरों (आसुरी वृत्तियों) को नष्ट करते हैं, ऐसे आपकी हम स्तुति करते हैं ॥४ ॥

३९५. तुचे तुनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे। आदित्यासः समहसः कृणोतन ॥५ ॥

हे महान् आदित्यो ! हमारे पुत्र और पौत्रों को दीर्घायुष्य प्रदान करने की आप कृपा करें ॥५ ॥

३९६. वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम्। अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव। ॥६ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप विघ्नकारक तत्त्वों को दूर करने के मार्ग को जानते हैं । पवित्रता से आपत्तियों (रोगों) को दूर करने वाले मानव के समान, आप भी विपत्तियों को दूर करने में समर्थ हैं ॥६ ॥

३९७. अपामीवामप स्रिधमप सेधत दुर्मतिम्। आदित्यासो युयोतना नो अंहसः ॥७ ॥

हे आदित्यो ! (आप हमें) रोगों, शत्रुओं, पापों एवं दुष्ट बुद्धि के दुष्प्रभावों से दूर रखें ॥७ ॥

[यहाँ सूर्य रश्मियों से शारीरिक एवं मानसिक चिकित्सा के सूत्र-संकेत विद्यमान हैं ।]

३९८. पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥८ ॥

हे अश्वयुक्त इन्द्रदेव ! आप आनन्ददायक सोमरस का पान करें । रस्सी से बँधे हुए, स्थिर घोड़े के समान (यज्ञशाला में) सुरक्षित रखे गये पत्थर से सोमरस आपके लिए निकाला जाता है ॥८ ॥

॥इति एकोनत्रिंशः खण्डः ॥

* * *

॥ त्रिंशः खण्डः ॥

३९९. अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि । युधेदापित्वमिच्छसे ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप जन्म से ही भाइयों के संघर्ष से मुक्त हैं, न आप पर शासन करने वाले कोई बन्धु हैं और न सहायता करने वाले कोई बन्धु । आप युद्ध (जनसंरक्षण) द्वारा अपने सहयोगियों (बन्धुओं) भक्तों को पाने की कामना करते हैं ॥१ ॥

४००. यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे । सखाय इन्द्रमूतये ॥२ ॥

हे मित्रो ! पूर्वकाल से ही जो धन देने वाले हैं, उन इन्द्र की हम आपके कल्याण के लिए स्तुति करते हैं ॥

४०१. आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थात समन्यवः ।
दृढा चिद्यमयिष्णवः ॥३ ॥

गतिशील मरुद्‌गण हमें हानि न पहुँचाते हुए हमारे निकट आएँ । वे मन्यु (प्रतिरोध की क्षमता) युक्त बलशाली शत्रुओं को भी संताप पहुँचाने वाले हैं, वे हमसे दूर न रहें ॥३ ॥

४०२. आ याह्ययमिन्दवेऽश्वपते गोपत उर्वरापते । सोमं सोमपते पिब ॥४ ॥

अश्वों एवं गौओं के स्वामी, भूमिपालक, सोमरस का पान करने वाले हे इन्द्रदेव ! निचोड़े गये सोमरस का पान करने के लिए हम आपका आवाहन करते हैं ॥४ ॥

४०३. त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि ।
संस्थे जनस्य गोमतः ॥५ ॥

हे वृषभ के समान बलशाली इन्द्र ! गौ आदि उपकार करने वाले पशुओं के पालक के प्रति क्रोध व्यक्त करने वालों को, हम आपकी सहायता से उचित प्रत्युत्तर देकर दूर हटा दें ॥५ ॥

४०४. गावश्चिद्घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः ।रिहते ककुभो मिथः ॥६

हे समान उमंगों से युक्त मरुतो ! गौएँ सजातीय होने के कारण परस्पर बहिन के समान, विभिन्न दिशाओं में विचरण करती हुई भी, परस्पर चाटकर प्रेम प्रकट करने वाली हैं ॥६ ॥

[भाव यह है कि मनुष्य-मात्र भी ऐसा ही करें ।]

४०५. त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।आ वीरं पृतनासहम् ॥७ ॥

हे अनेक कार्यों के सम्पादनकर्ता-ज्ञानी इन्द्रदेव ! आप हमें शक्ति एवं ऐश्वर्य से पूर्ण करें तथा शत्रु को जीतने वाला पुत्र भी प्रदान करें ॥७ ॥

४०६. अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे । उदेव ग्मन्त उदभिः ॥८ ॥

जैसे जल के साथ जाते हुए लोग(आवश्यकतानुसार जल से तृप्त होते हैं, वैसे हे प्रशंसा के योग्य इन्द्र !अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए हम आपसे प्रार्थना करते हैं, निकट आकर आपकी स्तुति करते हैं ॥८ ॥

४०७. सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे ।
अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥९ ॥

हे इन्द्र !निचोड़ने के बाद गाए के दूध के साथ संयुक्त, स्फूर्तिवर्द्धक, वाणी को शक्ति देने वाले सोम के निकट, एकत्रित होने वाले पक्षियों के समान, सामूहिक(रूप से) उपस्थित होकर हम आपको नमस्कार करते हैं ॥९ ।

४०८. वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः । वज्रिं चित्रं हवामहे ॥१० ॥

जिस प्रकार स्थूल गुणसम्पन्न (सांसारिक गुण सम्पन्न शक्तिशाली) मनुष्य को लोग बुलाते हैं, उसी प्रकार हे वज्रधारी, अनुपम इन्द्रदेव ! अपनी रक्षा की कामना से, विशिष्ट सोमरस से आपको तृप्त करते हुए, हम आपकी स्तुति करते हैं ॥१० ॥

॥इति त्रिंशः खण्डः ॥

* * *

॥एकत्रिंशः खण्डः ॥

४०९. स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१ ॥

भक्तों पर कृपा वृष्टि करने वाले इन्द्र (सूर्य) देव के साथ आनन्दपूर्वक रहकर (गौर्यः) किरणें शोभा पाती हैं । वे भूमि पर स्वराज्य की मर्यादा के अनुरूप, उत्पन्न सुस्वादु, मधुर सोमरस का पान करती हैं ॥१ ॥

४१०. इत्था हि सोम इन्मदो ब्रह्म चकार वर्धनम् ।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥२ ॥

हे शक्तिशाली-वज्रधारी इन्द्रदेव ! सोमरस में उत्साहवर्द्धक गुणों के कारण उसके गुणों का विवेचन इन स्तोत्रों में किया गया है । स्वराज्य के हित की दृष्टि से पृथ्वी पर आक्रामक शत्रुओं का पूर्णतया नाश हो ॥२ ॥

४११. इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥३ ॥

हर्ष और उत्साहवर्द्धन की कामना से स्तोताओं द्वारा इन्द्रदेव के यश का विस्तार किया जाता है । अतः छोटे और बड़े सभी युद्धों में हम रक्षक इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं । वे इन्द्रदेव युद्धों में हमारी रक्षा करें ॥३ ॥

४१२. इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन्वीर्यम् ।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तव त्यन्माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥४ ॥

हे पर्वतवासी, स्वराज्य की अर्चना करने वालों के सहायक, वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपकी शक्ति शत्रुओं से अपराजेय है । छल-छद्मी वृत्र का हनन करने के लिए आप कूटनीति का भी सहारा लेते हैं ॥४ ॥

४१३. प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं पर चारों ओर से आक्रमण कर उन्हें विनष्ट करें । आपका अनुपम शक्तिशाली वज्र और शक्ति, शत्रुओं का सिर झुकाने वाले हैं । आप अपने अनुकूल स्वराज्य की कामना करते हुए वृत्र का वध करें और विजय प्राप्त करके जल प्राप्त करें (वर्षा के अवरोध को दूर करके वर्षा करें) ॥५ ॥

४१४. यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।
युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥६ ॥

युद्ध प्रारम्भ होने पर शत्रुजयी ही धन प्राप्त करते हैं । हे इन्द्रदेव ! युद्धारम्भ पर मद टपकाने वाले (उमंग में आने वाले) अश्वों को आप अपने रथ में जोड़ें । आप किसका वध करें, किसे धन दें- यह आपके ऊपर निर्भर है । अतः हे इन्द्रदेव ! हमें ऐश्वर्यों से युक्त करें ॥६ ॥

४१५. अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।

अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके अन्न से तृप्त हुए यजमानों ने अपने आनन्द को व्यक्त करते हुए सिर हिलाया । फिर उन तेजस्वी ब्राह्मणों ने नूतन स्तोत्रों का पाठ किया । अब आप अपने अश्वों को यज्ञ में प्रस्थान के लिए योजित करें ॥७ ॥

४१६. उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथा इव ।

कदा नः सूनृतावतः कर इदर्थयास इद्योजान्विन्द्र ते हरी ॥८ ॥

हे धनवान् इन्द्रदेव ! आप हमारे स्तोत्रों को निकट से भलीप्रकार सुनें । आप हमें सत्यभाषी कब बनायेंगे ? हमारी स्तुतियों को ग्रहण करने वाले आप, अश्वों को आगमन के निमित्त योजित करें ॥८ ॥

४१७. चन्द्रमा अप्स्वाऽ३न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।

न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥९ ॥

अन्तरिक्षवासी चन्द्रमा अपनी श्रेष्ठ किरणों सहित आकाश में गतिशील है । हे विद्युत्रूप स्वर्णमयी सूर्य की रश्मियो ! आपके चरणरूपी अग्रभाग को हमारी इन्द्रियाँ पकड़ने में समर्थ नहीं हैं । हे द्यावा-पृथिवि ! मेरी स्तुतियों को स्वीकार करें । रात्रि में सूर्य का प्रकाश आकाश में संचरित रहता है; किन्तु हमारी इन्द्रियाँ उसे अनुभव नहीं कर पातीं । चन्द्रमा के माध्यम से ही प्रकाश मिलता है ॥९ ॥

४१८. प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।

स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥१० ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपके अत्यन्त प्रिय, बलयुक्त, धन वाहक रथ को स्तोता ऋषि अपने स्तोत्रों से विभूषित करते हैं । हे मधुर विद्या के ज्ञाताओ ! आप मेरी स्तुतियों का श्रवण करें ॥१० ॥

॥इति एकत्रिंशः खण्डः ॥

* * *

॥द्वात्रिंशः खण्डः ॥

४१९. आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।

यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! प्रकाशयुक्त एवं जरा-रहित (नित्य युवा) आपको हम प्रज्वलित करते हैं । आपकी श्रेष्ठ ज्योति द्युलोक में प्रकाशित होती है । आप स्तोताओं को अन्न (पोषण) से परिपूर्ण कर दें ॥१ ॥

४२०. आग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।

शीरं पावकशोचिषं वि वो मदे यज्ञेषु स्तीर्णबर्हिषं विवक्षसे ॥२ ॥

श्रेष्ठ मंत्रों से हवि-दान करने वाले, यज्ञस्थल में जिसके लिए कुश-आसन को बिछाया गया है, ऐसे सर्वत्र विद्यमान, पवित्र प्रकाश से युक्त, महान् अग्निदेव ! आपकी प्रार्थना हम विशेष आनन्द के साथ करते हैं ॥२ ॥

४२१. महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥३ ॥

हे उषादेवि ! जैसे आप हमें पहले ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए जगाती रही हैं, वैसे ही प्रकाशित होकर आज भी जाग्रत् करें । हे श्रेष्ठ विधि से उत्पन्न, सत्यप्रिय उषादेवि ! वय के पुत्र सत्यश्रवा पर आप कृपा करें ॥३ ॥

४२२. भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
अथा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणा गावो न यवसे विवक्षसे ॥४ ॥

हे सोमदेव ! आप सोमरस से उल्लसित हमारे मन को बल, कार्यशीलता, कल्याणकारी शक्ति, श्रेष्ठता तथा मित्रता प्राप्त करने के लिए प्रेरित करें । जैसे गौओं की मित्रता हरी घास से है, उसी प्रकार हमें आपकी मित्रता प्राप्त हो ॥४ ॥

४२३. क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृते शवः ।
श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवां दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥५ ॥

भीषण शक्ति से युक्त इन्द्रदेव सोमरस पान कर अपने बल की वृद्धि करते हैं । तदनन्तर, सौन्दर्यशाली, श्रेष्ठ शिरस्त्राण धारण करने वाले, रथ में अश्वों को नियोजित करने वाले इन्द्रदेव दाहिने हाथ में लौह-निर्मित वज्र को अलंकार के रूप में धारण करते हैं ॥५ ॥

४२४. स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।
यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥६ ॥

इन्द्रदेव अन्न, सोम आदि से पूर्ण, गौओं को देने में समर्थ दृढ़ रथ को भलीप्रकार जानते हैं और उसी पर आसीन होते हैं । अतः हे इन्द्रदेव ! आप अपने घोड़ों को रथ में जोड़ें (ताकि सभी वाञ्छित पदार्थ हम तक पहुँचा सकें) ॥६ ॥

४२५. अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥७ ॥

जो अग्नि (लेटेण्ड हीट) मेघों में आवास बनाकर रहती है, यज्ञस्थल में स्थित जिस अग्नि की ओर गौएँ जाती हैं, जिस ओर तीव्र गतिशील घोड़े गमन करते हैं, जिसकी ओर हविष्यान्नधारी यजमान जाते हैं, ऐसे अग्निदेव को मैं अर्चना करता हूँ । याजकों के लिए वे प्रचुर अन्न प्रदान करें ॥७ ॥

४२६. न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयति वरुणो अति द्विषः ॥८ ॥

हे देवो ! एकमत होकर विद्यमान रहने वाले, अर्यमा, मित्र और वरुणदेव दुराचारियों का निराकरण करके मनुष्यों को उन्नति-मार्ग पर अग्रसर करते हैं, वह मानव पाप रहित होकर दुर्गति से दूर रहता है ॥८ ॥

॥इति द्वात्रिंशः खण्डः ॥

* * *

॥ त्रयस्त्रिंशः खण्डः ॥

४२७. परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥१ ॥

हे स्वादिष्ट सोमदेव ! आप इन्द्र, मित्र, पूषा और भग देवताओं के लिए प्रवाहित हों ॥१ ॥

४२८. पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥२ ॥

हे सोमदेव ! आप अन्न को प्राप्त करने के लिए भली-भाँति कलश को पूर्ण करके उसी में अवस्थित रहें । शक्ति-सम्पन्न होकर आप शत्रुओं पर आक्रमण कर दें । हमें ऋणों से विमुक्त करने वाले आप शत्रुओं को परास्त करने के लिए उन पर आक्रमण करने के लिए जाएँ ॥२ ॥

४२९. पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वभि धाम ॥३ ॥

हे सोमदेव ! विस्तृत समुद्र के समान पोषण करने वाले आप देवों के सभी आवास स्थलरूपी पात्रों में विद्यमान रहते हैं ॥३ ॥

४३०. पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥४ ॥

हे सोमदेव ! अश्व के समान (प्रयासपूर्वक) स्वच्छ किये गये, शक्तिवर्द्धक आप बल एवं ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए पात्रों में भरे रहें ॥४ ॥

४३१. इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥५ ॥

श्रेष्ठ ज्ञान-सम्पन्न यह सोम सम्पत्तियुक्त हर्ष की प्राप्ति के लिए जल से संयुक्त किया जाता है ॥५ ॥

४३२. अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥६ ॥

हे सोमदेव ! रस निचोड़ने के बाद हम आपकी विधिपूर्वक अर्चना करते हैं । हे शोधित सोम ! श्रेष्ठ राजा के रक्षण के निमित्त, शक्तिशाली होकर आप विरोधी सेना पर आक्रमण करने के लिए गमन करते हैं ॥६ ॥

यह मन्त्र एक अन्वय से प्रश्नवाचक है तथा दूसरे अन्वय से समाधान वाचक है-

४३३. क ईं व्यक्ता नरः सनीडा रुद्रस्य मर्या अथा स्वश्वाः ॥७ ॥

प्रश्न-हे व्यक्त करने वालो ! (जानकारी देने वालो) एक ही आवास में (एक साथ) निवास करने वाले श्रेष्ठ अश्वों से युक्त मरुद्‌गणों का रुद्र से क्या सम्बन्ध है ?

समाधान-एक ही आवास (शरीर) में रहने वाले श्रेष्ठ अश्वों (इन्द्रियों) से युक्त मरुद्‌गण (प्राण, उदान, व्यान, समान, अपान आदि पंच प्राण) विशेष गतिशील शरीर के नेता रुद्र (महाप्राण) के सहचर हैं ॥७ ॥

४३४. अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! आज हम याजकगण यज्ञ के समान (हितकारी), अश्व के समान गतिशील, आपके यश को बढ़ाने के लिए ऊह नामक हृदय-स्पर्शी स्तोत्रों का प्रयोग करते हैं ॥८ ॥

४३५. आविर्मर्या आ वाजं वाजिनो अग्मन् देवस्य सवितुः सवम् ।
स्वर्गाँ अर्वन्तो जयत ॥९ ॥

मानवों का कल्याण करने वाले तेजस्वी तथा शक्तिशाली सवितादेवता ने तैयार किये गये सोमरस रूपी अन्न (पोषण) को प्राप्त कर लिया है। अतएव हे याजक ! उनसे विजय प्राप्ति के लिए अश्वों तथा स्वर्ग की प्राप्ति करो ॥९ ॥

४३६. पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महाँ अवीनामनुपूर्व्यः ॥१० ॥

हे सोमदेव ! प्रकाशयुक्त, भली-भाँति सरल धारा से पात्र में गिरते हुए, आप पूर्ववत् श्रेष्ठ ही हैं। आप (यज्ञशाला में रखे हुए) पात्र में स्वतः ही भर जाएँ ॥१० ॥

॥इति त्रयस्त्रिंशः खण्डः ॥

* * *

॥चतुस्त्रिंशः खण्डः ॥

४३७. विश्वतोदावन्विश्वतो न आ भर यं त्वा शविष्ठमीमहे ॥१ ॥

शत्रुओं को पूर्णरूप से विनष्ट करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप हमें सभी प्रकार की अभीष्ट सम्पत्ति प्रदान करें, जिसको प्राप्त करने के लिए हम शक्तिशाली की स्तुति करते हैं ॥१ ॥

४३८. एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥२ ॥

ऋतुओं के अनुकूल कार्य करने वाले, ज्ञानयुक्त, इन्द्रदेव नाम से जो प्रख्यात हैं, उनकी हम प्रार्थना करते हैं ॥२ ॥

४३९. ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥३ ॥

अहि नामक असुर के संहार के लिए विवेकयुक्त मंत्रों से अर्चना किये जाने वाले इन्द्र के यज्ञ का हम विस्तार करते हैं ॥३ ॥

४४०. अनवस्ते रथमश्वाय तक्षुस्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! ऋभु देवों ने आपके अश्वों के लिए (अनुकूल) रथ का निर्माण किया है। अनेक ऋषियों द्वारा आवाहन किये जाने वाले हे इन्द्रदेव ! देवशिल्पी त्वष्टा ने आपके लिए चमकते हुए वज्र की रचना की है ॥४ ॥

४४१. शं पदं मघं रयीषिणो न काममव्रतो हिनोति न स्पृशद्रयिम् ॥५ ॥

सम्पत्तिदाता याजकगण सुख, श्रेष्ठ-आवास और ऐश्वर्य की प्राप्ति करते हैं। अयाज्ञिकों को किसी पदार्थ की प्राप्ति नहीं होती तथा वे अभीष्ट ऐश्वर्य को स्पर्श करने में भी सक्षम नहीं होते ॥५ ॥

४४२. सदा गावः शुचयो विश्वधायसः सदा देवा अरेपसः ॥६ ॥

(हे याजको) ! गौएँ सर्वदा पवित्र, सभी प्राणियों को पोषण देने वाली, श्रेष्ठ तथा पाप-रहित होती हैं ॥६ ॥

४४३. आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥७ ॥

हे उषादेवि ! अभीष्ट प्रकाश के साथ (पृथिवी पर) दूध से भरे थनों वाली गौएँ (अथवा पोषण से भरी किरणें) मार्ग में रहती हैं ॥७ ॥

४४४. उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! मधुरस से पूर्ण यज्ञ के चम्मचों से युक्त (यज्ञार्थ प्रस्तुत) धन-धान्य हम प्राप्त करें और आपके पास रहने वाले (आपकी ओर उन्मुख), हम आपका ध्यान करने में समर्थ हों ॥८ ॥

४४५. अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥९ ॥

श्रेष्ठ प्रकाशित मरुद्गण ! हम स्तुत्य इन्द्रदेव की अर्चना करते हैं । वे यौवनयुक्त, प्रख्यात इन्द्रदेव सभी शत्रुओं का वध करने वाले हैं ॥९ ॥

४४६. प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते ॥१० ॥

हे विवेकसम्पन्न मनुष्यो ! वृत्र का वध करने में प्रवीण ज्ञानयुक्त इन्द्रदेव को लक्ष्यकर स्तोत्रों का गायन करो, जिन स्तोत्रों को वे आनन्दित होकर सुनते हैं ॥१० ॥

॥इति चतुस्त्रिंशः खण्डः ॥

* * *

॥पञ्चत्रिंशः खण्डः ॥

४४७. अचेत्यग्निश्चिकितिर्हव्यवाड् न सुमद्रथः ॥१ ॥

समर्पित हविष्यान्नों को देवताओं के प्रति ले जाने वाले, ज्ञान-सम्पन्न, श्रेष्ठ हवि से परिपूर्ण, देवताओं को प्रदत्त सभी पदार्थों को रथ के समान अभीष्ट स्थानों पर पहुँचाने वाले अग्निदेव सर्वज्ञ हैं ॥१ ॥

४४८. अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ॥२ ॥

अग्निदेव आप स्तुत्य, निकटस्थ सहयोगी तथा हितकारी संरक्षक हो गए हैं ॥२ ॥

४४९. भगो न चित्रो अग्निर्महोनां दधाति रत्नम् ॥३ ॥

विशाल पदार्थों में सूर्यदेव के समान, स्तुत्य अग्निदेव स्तोताओं को ऐश्वर्य-सम्पन्न बनाते हैं ॥३ ॥

४५०. विश्वस्य प्र स्तोभ पुरो वा सन्यदिवेह नूनम् ॥४ ॥

सम्पूर्ण शत्रुओं के संहारक वे, यज्ञ-स्थल पर निश्चित रूप से पूर्ण मनोयोग से उपस्थित रहते हैं ॥४ ॥

४५१. उषा अप स्वसुष्टमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ॥५ ॥

यह उषा अपनी बहिनरूपी रात्रि के अन्धकार को, अपनी रश्मियों से दूर करती है और उत्तम प्रकाश से अपने मार्ग को भी प्रकाशित करती है ॥५ ॥

४५२. इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥६ ॥

(मंत्रद्रष्टा ऋषि का कथन है कि) सुख-प्राप्ति की कामना से इस समस्त भूमण्डल को अपने अनुशासन में चलाता हूँ । इस कार्य में इन्द्र आदि सभी देवगण हमारी मदद करते हैं ॥६ ॥

४५३. वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! जैसे छोटे-छोटे रास्ते राजमार्ग में मिल जाते हैं, उसी प्रकार आपसे मिलने वाले दान सभी को प्राप्त होते हैं ॥७ ॥

४५४. अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥८ ॥

इस स्तुति से (प्रसन्न) देव शक्तियों द्वारा प्रदत्त अन्न और बल हमें प्राप्त हो । उत्तम पराक्रमी सन्तानों से युक्त होकर हम आनन्दपूर्वक रहें तथा शतायु हों ॥८ ॥

४५५. ऊर्जा मित्रो वरुणः पिन्वतेडाः पीवरीमिषं कृणुही न इन्द्र ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! मित्रावरुण देवता हमें बलवर्द्धक अन्न प्रदान करते हैं। आप हमारे अन्न को और अधिक पौष्टिक बनाएँ ॥९ ॥

४५६. इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥१० ॥

इन्द्रदेव समस्त विश्वब्रह्माण्ड के शासक हैं ॥१० ॥

॥इति पञ्चत्रिंशः खण्डः ॥

* * *

॥षट्त्रिंशः खण्डः ॥

४५७. त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशम्।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो
देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥१ ॥

अत्यन्त बली, पूजनीय इन्द्रदेव ने तीनों लोकों में व्याप्त, तृप्तिदायक, दिव्य सोम को जौ के आटे के साथ मिलाकर विष्णुदेव के साथ इच्छानुसार पान किया। उस सोम ने महान् इन्द्रदेव को श्रेष्ठ कार्य करने के लिए प्रेरित किया। उत्तम दिव्य गुणों से युक्त वह दिव्य सोमरस इन्द्रदेव को प्राप्त हुआ ॥१ ॥

४५८. अयं सहस्रमानवो दृशः कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्म।
ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयदरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमन्तश्चिता गोः ॥२ ॥

सहस्रों मानवों का हितकारी, दर्शनीय, मेधावी, प्रजा का धारक, तेजस्वी यह सूर्य निर्मल और तमरहित तेजस्वी उषाओं (रश्मियों) को भेजता है। इन सूर्य किरणों के सम्मुख चमकने वाले चन्द्र आदि अन्य नक्षत्र दिन में फीके हो जाते हैं ॥२ ॥

४५९. एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव सत्पतिरस्ता राजेव सत्पतिः ।
हवामहे त्वा प्रयस्वन्तः सुतेष्वा पुत्रासो न पितरं वाजसातये
मंहिष्ठं वाजसातये ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! सज्जनों का पालन करने वाले अग्निदेव जैसे यज्ञशाला में आते हैं, जिस प्रकार शत्रु को पराजित करने वाला राजा घर लौटता है, उसी प्रकार आप अनन्त अन्तरिक्ष से हमारे पास आएँ। अन्न प्राप्ति के लिए जैसे पुत्र, पिता को बुलाते हैं, महान् योद्धा को जैसे युद्ध में बुलाते हैं, उसी प्रकार हविष्यान्न सहित हम आपका सोमयज्ञ में आवाहन करते हैं ॥३ ॥

४६०. तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं श्रवांसि भूरि।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्त राये नो
विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥४ ॥

धनवान्, वीर, अपराजेय इन्द्रदेव को हम सहायतार्थ बुलाते हैं। सबसे महान् यज्ञों में पूज्य इन्द्रदेव की स्तोत्रों द्वारा प्रार्थना करते हैं। वज्रधारी इन्द्रदेव ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए हमारे सभी मार्ग सुगम बनाएँ ॥४ ॥

४६१. अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु त्यच्छर्धो दिव्यं वृणीमह
इन्द्रवायू वृणीमहे । यद्ध क्राणा विवस्वते नाभा सन्दाय नव्यसे ।
अध प्र नूनमुप यन्ति धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥५ ॥

हमने अग्नि को सम्मानपूर्वक उत्तरवेदी में स्थापित किया है । उस दिव्य प्रदीप्त ज्योति की हम आराधना करते हैं । धनवान् और नवीन याज्ञिक की यज्ञवेदी पर आकर हमारे मनोरथ पूरे करने वाले इन्द्र और वायुदेवो की हम प्रार्थना करते हैं । इससे हमारी स्तुति निश्चित ही उनके पास पहुँचेगी । हमारे ये सब यज्ञीय कर्म देवों तक पहुँचाने के उद्देश्य से सम्पन्न हो रहे हैं ॥५ ॥

४६२. प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् ।
प्र शर्धाय प्र यज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥६ ॥

एवयामरुत् नामक ऋषि द्वारा की गई स्तुतियाँ महाबलशाली, इन्द्रदेव आपको तथा मरुत् सहित विष्णुदेव को प्राप्त हों । उत्तम आभूषणों से अलंकृत, कल्याणकारी याज्ञिक को उन्नतिशील मरुतों का बल प्राप्त हो ॥६ ॥

४६३. अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति सयुग्वभिः सूरो
न सयुग्वभिः । धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥७ ॥

हरिताभ, शोधित सोमरस अपने तेज से शत्रुओं का नाश करता है । अन्धकार को दूर करने वाली सूर्य रश्मियों जैसी इस सोमरस की उत्तम दिखाई पड़ने वाली धार चमकती है । शोधित हरिताभ सोमरस भी चमकता है । जो तेज के सात मुखों (सतरंगी किरणों) तथा स्तोत्रों से अनेक रूप धारण करता है ॥७ ॥

[विद्वानों के अनुसार सतरंगी (सप्त आस्य) का अर्थ सात सूर्य माना गया है । ये सात सूर्य वेद में वर्णित हैं ।]

४६४. अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवं
रत्नधामभि प्रियं मतिम् । ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि
हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ॥८ ॥

विवेकपूर्वक कर्म करने वाले, सत्यप्रेरक, धनदाता, अत्यन्त प्रिय एवं मेधावी उन सविता देवता की हम आराधना करते हैं, जिसका प्रकाश पृथ्वी से अन्तरिक्ष तक तीव्र गति से फैलता है । उत्तमकर्मा, सुवर्ण के समान चमकने वाले सविता देवता कृपापूर्वक अपना प्रकाश फैलाते हैं ॥८ ।

४६५. अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं
न जातवेदसम् । य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥९ ॥

धनदाता, पालन की क्षमता प्रदान करने वाले, ज्ञानदाता, परमपूज्य हवनीय यज्ञ की हम स्तुति करते हैं । श्रेष्ठ यज्ञ वाले महानुभाव, देवों की कृपा की कामना से, शुद्ध-तेजस्वी अग्निदेव, घी की आहुति प्रदान करने से प्रसन्न होते हैं ॥९ ॥

४६६. तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम् ।
यो देवस्य शवसा प्रारिणा असु रिणन्नपः ।

भुवो विश्वमभ्यदेवमोजसा विदेदूर्जं शतक्रतुर्विदेदिषम् ॥१० ॥

सभी को अपने अनुशासन पर चलाने वाले हे इन्द्र ! मानव-मात्र के हितकारी, सबसे पहले किये गये आपके सबसे उत्कृष्ट कर्म स्वर्गलोक में प्रशंसित हैं। अपनी शक्ति से आपने राक्षसों का संहार किया, असुरों को हराया तथा जल प्रवाहित किया, इसलिए शतकर्मा (शतक्रतु) इन्द्रदेव बलशाली हों एवं हविष्यान्न प्राप्त करें ॥१० ॥

॥इति षट्त्रिंशः खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि—भरद्वाज बार्हस्पत्य ३५२, ३६५, ३७८, ३९२, ४५४। वामदेव गौतम अथवा शाकपूत ३५३। प्रियमेध आंगिरस ३५४, ३६०, ३६२, ३६४। प्रगाथ काण्व ३५५। श्यावाश्व आत्रेय ३५६। शंयु बार्हस्पत्य ३५७। वामदेव गौतम ३५८, ३६१, ३६९, ३७२, ४३४। जेता माधुच्छन्दस ३५९। मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ३६३। अत्रि भौम ३६६। प्रस्कण्व काण्व ३६७। त्रित आप्त्य ३६८, ४१७। रेभ काश्यप ३७०, ४६०। सुवेदा शैलूषि ३७१। सव्य आंगिरस ३७३, ३७६-३७७। विश्वामित्र गाथिन ३७४। कृष्ण आंगिरस ३७५। मेधातिथि काण्व ३७९। कुत्स आंगिरस ३८०। नारद काण्व ३८१। गोषूक्ति-अश्वसूक्ति काण्वायन ३८२-३८३। पर्वत काण्व ३८४, ३९४। विश्वमनावैयश्व ३८५-३८७, ३९०, ३९६। नृमेध आंगिरस ३८८, ३९३, ४०५, ४०६। गोतम राहूगण ३८९, ४२३, ४२४। प्रगाथ घौर काण्व ३९१। इरिम्बिठि काण्व ३९५, ३९७ वसिष्ठ मैत्रावरुणि ३९८, ४३३, ४५६। सौभरि काण्व ३९९-४०४, ४०७, ४०८। गोतम राहूगण ४०९-४१६। अवस्यु आत्रेय ४१८। वसुश्रुत आत्रेय ४१९, ४२५। विमद ऐन्द्र ४२०, ४२२। सत्यश्रवा आत्रेय ४२१। अंहोमुग्वामदेव्य ४२६। त्र्यरुण त्रसदस्यू ४२७-४३२, ४३५, ४३६। त्रसदस्यु ४३७-४४२, ४४४-४४६। संवर्त आंगिरस ४४३, ४५१। पृषध्र काण्व ४४७। बन्धु सुबन्धु श्रुतबन्धु और विप्रबन्धु गौपायन अथवा लौपायन ४४८-४५०। भुवन आप्त्य साधन अथवा भौवन ४५२। कवष ऐलूष ४५३। आत्रेय ४५५। गृत्समद शौनक ४५७, ४६६। गौरांगिरस ४५८। परुच्छेप दैवोदासि ४५९, ४६१, ४६५। एवयामरुद् आत्रेय ४६२। अनानत पारुच्छेपि ४६३। नकुल ४६४।

देवता— इन्द्र ३५२-३५५, ३५७, ३५९-३६६, ३६९-३७७, ३७९-३९४, ३९६, ३९८-४००, ४०२, ४०३, ४०५-४१६, ४२३-४२४, ४३७-४४१, ४४४-४४६, ४४९-४५०, ४५४, ४५६-४५७, ४५९-४६०, ४६६। मरुद्गण ३५६, ४०१, ४०४, ४३३, ४६२। इन्द्र अथवा दधिक्रा ३५८। उषा ३६७, ४२१, ४४३, ४५१, विश्वेदेवा ३६८, ४१७, ४२६, ४४२, ४५२, ४५३, ४५५, ४६१। द्यावा-पृथिवी ३७८। आदित्यगण ३९५, ३९७। अश्विनीकुमार ४१८। अग्नि ४१९, ४२०, ४२५, ४३४, ४४७, ४४८, ४६५। सोम ४२२। पवमान सोम ४२७-४३२, ४३६, ४६३। वाजिन ४३५। सूर्य ४५८। सविता ४६४।

छन्द— अनुष्टुप् ३५२-३६९। अतिजगती ३७०, ४५८, ४६०, ४६२। जगती ३७१-३७८, ३८०। महापंक्ति ३७९। उष्णिक् ३८१-३९७। विराडुष्णिक् ३९८। ककुप् ३९९-४०८। पंक्ति ४०९-४२५। बृहती ४२६। द्विपदा विराट् गायत्री ४२७, ४२९-४३१, ४३३, ४३६-४५५। त्रिपदा पिपीलिकमध्या अनुष्टुप् ४२८, ४३२। पदपंक्ति ४३४। पुर उष्णिक् ४३५। एकपदा गायत्री ४५६। अष्टि ४५७, ४६६। अत्यष्टि ४५९, ४६१, ४६३, ४६५। अतिशक्वरी ४६४।

॥इत्यैन्द्रपर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥पावमानं पर्व ॥

॥अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

४६७. उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे । उग्रं शर्म महि श्रवः ॥१ ॥

हे सोमदेव ! आपके पोषक रस का जन्म द्युलोक में हुआ है । वहाँ प्राप्त होने वाले कल्याणकारी सुख और महान् अन्न (आपकी कृपा से) हम पृथ्वी पर प्राप्त करते हैं ॥१ ॥

४६८. स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥२ ॥

हे सोमरस ! आप इन्द्रदेव के पीने के लिए निकाले गये हैं । अतः अत्यन्त स्वादिष्ट, हर्षप्रदायक धारसहित प्रवाहित हों ॥२ ॥

४६९. वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः । विश्वा दधान ओजसा ॥३ ॥

हे सोम ! आप उद्गाताओं के लिए वेगवती धारा से कलश में प्रवेश करें और मरुद्गणों से सेवित इन्द्रदेव के लिए सामर्थ्य एवं हर्ष बढ़ाने वाले सिद्ध हों ॥३ ॥

४७०. यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा । देवावीरघशंसहा ॥४ ॥

हे सोमदेव ! देवताओं को आकृष्ट करने वाला, पापी एवं दुष्टों का नाश करने वाला आपका दिव्य रस अत्यन्त हर्षप्रद है । उस पोषक रस सहित आप कलश में प्रतिष्ठित हों ॥४ ॥

४७१. तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः । हरिरेति कनिक्रदत् ॥५ ॥

यजनकाल में जब तीनों वेदों के मंत्र बोले जाते हैं, गौएँ दुहे जाने के लिए रँभाती हैं, तब हरे रंग का सोमरस शब्द करता हुआ शोधित होता है ॥५ ॥

४७२. इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः । अर्कस्य योनिमासदम् ॥६ ॥

अत्यन्त मधुर हे सोम ! आप इस यज्ञ के स्थान (यज्ञशाला) में, जिसके सहायक मरुद्गण हैं, उन इन्द्रदेव के लिए कलश में स्थित हों ॥६ ॥

४७३. असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ॥७ ॥

पर्वत पर उत्पन्न सोम आनन्द के लिए निचोड़ा गया एवं जल के संयोग से व्यापक बना और श्येन पक्षी के समान अपने निश्चित स्थान पर विराजित है ॥७ ॥

४७४. पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे । मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥८ ॥

हे हरिताभ सोम ! आप हर्ष और शक्ति के साधनभूत हैं । देवों और मरुतों के पीने के निमित्त आप कलश में स्थित हों ॥८ ॥

४७५. परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् । मदेषु सर्वधा असि ॥९ ॥

यह सोम पवित्र कलश में निकाला गया है । हे सोमदेव ! आप पर्वत पर उत्पन्न होने वाले हैं, रस निकाले जाने पर आनन्द देने वालों में आप सबसे श्रेष्ठ हैं ॥९ ॥

४७६. परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः । स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥१० ॥

बुद्धि को बढ़ाने वाला यह सोम, सोमरस निकालने के दो फलकों (द्युलोक एवं पृथ्वी) के बीच में स्थित होकर, ब्रह्मनिष्ठों द्वारा सचेतन प्राणियों तक पहुँचाया जाता है ॥१० ॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

४७७. प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् । सुता विदथे अक्रमुः ॥१ ॥

आनन्ददायक सोम अभिषुत होकर हमारे यज्ञ में अन्न और यश प्रदाता बनकर स्थित होता है ॥१ ॥

४७८. प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः । वनानि महिषा इव ॥२ ॥

बुद्धि की अभिवृद्धि करने वाला यह सोमरस, पानी की लहरों के समान तथा स्वाभाविक रूप से पशुओं के वन में जाने के समान, पानी में मिलाया जाता है ॥२ ॥

४७९. पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने । विश्वा अप द्विषो जहि ॥३ ॥

हे अभिषुत सोम ! आप श्रेष्ठ बल को बढ़ाने वाले हैं । लोगों में हमें यशस्वी बनाएँ तथा आप हमारे सभी शत्रुओं (विकारों) को नष्ट करें ॥३ ॥

४८०. वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे । पवमान स्वर्दृशम् ॥४ ॥

हे पवित्र होने वाले, बलवर्द्धक सोम ! आप सबको समान दृष्टि से देखने वाले तथा तेजस्वी हैं । इस यज्ञ में हम आपको बुलाते हैं ॥४ ॥

४८१. इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मतिः । सृजदश्वं रथीरिव ॥५ ॥

उत्साह की अभिवृद्धि करने वाला, सर्वप्रिय सोमरस ज्ञानी लोगों की स्तुति के साथ, बर्तन में छाना जाता है । रथ का सारथी जिस प्रकार घोड़े को (अपने नियंत्रण में) चलाता है, उसी प्रकार यह सोम पात्र में भरा जाता है ॥५ ॥

४८२. असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाशवः ॥६ ॥

बल और स्फूर्ति बढ़ाने वाला यह सोमरस तेजस्वी है । गाय, घोड़े तथा वीर पुत्रों की कामना करने वालों के द्वारा अभिषुत किया जाता है । जो साधक इसका अभिषवण (निचोड़ना) करते हैं, यह उनकी गाय, घोड़े, वीरपुत्र आदि कामनाओं की पूर्ति करता है ॥६ ॥

४८३. पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः । वायुमा रोह धर्मणा ॥७ ॥

हे दिव्य गुण वाले सोम ! आप छनने के लिए पात्र में जाएँ । आपका आनन्ददायी रस इन्द्रदेव को प्राप्त हो । आप दिव्यरूप से वायु में मिल जाएँ ॥७ ॥

४८४.पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥८ ॥

पवित्र होने के बाद इस सोमरस ने दिव्यलोक में विद्यमान, सबको प्रकाशित करने में समर्थ, महान् वैश्वानर ज्योति को बिजली के समान प्रकट किया ॥८ ॥

४८५. परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा । मधो अर्षन्ति धारया ॥९ ॥

अभिषुत होने (निचोड़ने) के बाद अमृत स्वरूप, ज्ञानवर्द्धक, मधुरसोम साधकों के द्वारा स्तुतिगान करते हुए छना जाता है ॥९ ॥

४८६.परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः । कारुं बिभ्रत्पुरुस्पृहम् ॥१० ॥

बुद्धिवर्द्धक, प्रशंसनीय, याजकों का पोषण करने वाला, नदी की लहरों (जल) में मिला हुआ, यह सोम, पात्र (सत्पात्र) में स्थिर होता है ॥१० ॥

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः ॥

४८७.उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥१ ॥

शत्रु-संहारक, भलीप्रकार से तैयार, जल और गोदुग्ध में मिला हुआ, यह सोमरस देवगणों को तृप्ति देने वाला सिद्ध हो ॥१ ॥

४८८.पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥२ ॥

बुद्धिवर्द्धक, पवित्र होने के बाद ज्ञानवर्द्धक यह सोमरस सभी शत्रुओं (विकारों) का शमन करता है । उस सोम की ज्ञानी-जन दिव्य स्तोत्रों से स्तुति करते हैं ॥२ ॥

४८९. आविशन्कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः । इन्दुरिन्द्राय धीयते ॥३ ॥

यह परिष्कृत सोमरस, कलश में भरे जाते समय सुशोभित होता है, जो इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए उन्हें प्रदान किया जाता है ॥३ ॥

४९०. असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः । कार्ष्मन्वाजी न्यक्रमीत् ॥४ ॥

नियन्त्रित रथ के घोड़े की तरह, निचोड़ा गया सोमरस सावधानीपूर्वक पात्र में भरा जाता है । वह बलवान् सोम देवताओं को अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ है ॥४ ॥

४९१ .प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः । घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥५ ॥

प्रकाशयुक्त और तेज गमनशील सोम अपनी काली त्वचा (छाल) को दूर करते हुए, यज्ञ में उसी प्रकार प्रवेश करता है, जिस प्रकार गौएँ (त्वरित गति से) गोष्ठ में जाती हैं । ॥५ ॥

४९२. अपघ्नन्पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः । नुदस्वादेवयुं जनम् ॥६ ॥

हे सोमदेव ! आप आनन्द प्रदायक, यज्ञ विधा के ज्ञाता हैं । जिस प्रकार विकारों का शमन करते हुए आप पवित्र होते हैं, उसी प्रकार देवत्व के विरोधियों का शमन करें ॥६ ॥

४९३. अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः । हिन्वानो मानुषीरपः ॥७ ॥

हे सोम ! मानवों के (हित सम्पादन के) लिए, पानी को (बरसने के लिए) प्रेरणा देते हुए, जिस प्रकार (अपनी क्षमता से) आपने सूर्यदेव को आलोकित किया, उसी धारा (क्षमता) से आप पात्र में पवित्र होकर प्रवेश करें ॥७ ॥

४९४. स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे । वव्रिवांसं महीरपः ॥८ ॥

हे सोमदेव ! आप जल-प्रवाह को (बरसने से) रोकने वाले वृत्र को मारने के लिए, इन्द्रदेव को प्रोत्साहित करें और (वेगवती) धारा के साथ कलश में छनते जाएँ ॥८ ॥

४९५. अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा । अवाहन्नवतीर्नव ॥९ ॥

हे सोम ! इन्द्रदेव के सेवनार्थ आप कलश में स्थित हों । आपका यह रस युद्ध में शत्रुओं के सभी नगरों को नष्ट करने के लिए, इन्द्रदेव को सामर्थ्य प्रदान करता है ॥९ ॥

४९६. परि द्युक्षं सनद्रयिं भरद्वाजं नो अन्धसा । स्वानो अर्ष पवित्र आ ॥१० ॥

(हे सोम !) प्रखरता, बल और श्रेष्ठ धन अपने पुष्टिकारक रस सहित हमें प्रदान करें । आपका पवित्र रस छनने के बाद कलश में स्थिरता प्राप्त करे ॥१० ॥

॥इति तृतीयः खण्डः ॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः ॥

४९७. अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । सं सूर्येण दिद्युते ॥१ ॥

मित्र के समान प्रिय शक्तिमान्, हरिताभ सोम, निचोड़े जाते समय शब्द करता हुआ, उसी प्रकार प्रकाशित होता है, जिस प्रकार से सूर्य प्रकाशित होता है ॥१ ॥

४९८.आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥२ ॥

हे सोमदेव ! आपके हर्ष प्रदान करने वाले, सम्पत्ति देने वाले, रिपुओं से रक्षा करने वाले, अनेक लोगों द्वारा कामना किये जाने वाले बल को, हम धारण करते हैं ॥२ ॥

४९९. अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय । पुनाहीन्द्राय पातवे ॥३ ॥

हे होताओ ! इन्द्रदेव के लिए पीने योग्य बनाने हेतु निचोड़े गये सोमरस को पवित्र करके, पात्र (कलश) के पास ले आओ । ॥३ ॥

५००. तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः । तरत्स मन्दी धावति ॥४ ॥

निकाली गई सोमरस की पुष्टिकारी धारा आनन्द प्रदान करने वाली है । वह निकृष्ट संस्कारों से रहित और उपासकों को ऊर्ध्वगति प्रदान करने वाली है ॥४ ॥

५०१. आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम सुवीर्यम् । अस्मे श्रवांसि धारय ॥५ ॥

हे सोम ! आप सहस्रों प्रकार की श्रेष्ठ, शक्तिवर्द्धक दिव्य सम्पदा तथा पोषक आहार हमें प्रदान करें ॥५ ॥

५०२. अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः । रुचे जनन्त सूर्यम् ॥६ ॥

प्राचीनकाल में लोगों ने प्रखरता को प्राप्त करने के लिए आदित्य के समान तेजस्वी सोम को प्रकट किया और अनुपम श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया ॥६ ॥

५०३. अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदन्योनौ वनेष्वा ॥७ ॥

हे तेजस्वी सोम ! आप शब्द करते हुए(यज्ञ) पात्र (कलश) में शुद्ध होकर स्थित हों । आप तपोवन में स्थित इस यज्ञ मण्डप में पधारें ॥७ ॥

५०४. वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥८ ॥

हे सोमदेव ! आप पराक्रमी और तेजस्वी हैं । बल बढ़ाने की क्षमता से युक्त आप सदैव अपने इस धर्म (गुण) को धारण किये रहते हैं ॥८ ॥

५०५. इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः । इन्दो रुचाभि गा इहि ॥९ ॥

. हे सोम ! आप ज्ञानी ऋत्विजों के द्वारा अभिषुत होकर पोषक रस के लिए धारा के रूप में शुद्ध हों और गोदुग्ध के साथ मिलकर प्रकाशित हों ॥९ ॥

५०६. मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः । अव्या वारेभिरस्मयुः ॥१० ॥

बलवर्द्धक, देवताओं द्वारा अभीष्ट हे सोम ! आप हमें संरक्षण प्रदान करें और छननी में आनन्ददायक धारा के रूप में शोधित हों ॥१० ॥

५०७. अया सोम सुकृत्यया महान्त्सन्नभ्यवर्धथाः । मन्दान इद् वृषायसे ॥११ ॥

हे सोमदेव ! आप अपने श्रेष्ठ कार्य से सम्माननीय होकर, महानता को प्राप्त करते हैं और आनन्द प्रदान कर शक्ति बढ़ाते हैं ॥११ ॥

५०८. अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति । हिन्वान आप्यं बृहत् ॥१२ ॥

विशिष्ट बुद्धिवर्द्धक, बर्तन में स्थित होकर शुद्ध किया हुआ, यह सोमरस पानी में मिलकर प्रचुर अन्न (पोषण) प्रदान करता हुआ यशस्वी होता है ॥१२ ॥

५०९.प्र न इन्दो महे तु न ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि । अभि देवाँ अयास्यः ॥१३ ॥

हे सोम ! प्रचुर सम्पदा की प्राप्ति के लिए आप कलश में छाने जाते हैं । आपके तेज को धारण करने वाले अयास्य ऋषि देव पूजन (देवत्व को धारण) करते हैं ॥१३ ॥

५१०.अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१४ ॥

यह सोम रिपुओं को तथा दान न देने वालों को मारता है । इन्द्रदेव के पास जाता हुआ क्षरित होता है ॥१४ ॥

॥इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

॥पंचमः खण्डः ॥

५११. पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।

आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥१ ॥

सोमरस पवित्र होकर, जल में मिलकर, धारा सहित नीचे कलश में प्रवाहित होता है । रत्नादि देने वाला, यज्ञमण्डप में आसीन, आलोकित होता हुआ, वह सोमरस प्रवाहित होता है ॥१ ॥

५१२.परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।

दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वा३न्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥२ ॥

हे ऋत्विजो ! मनुष्यों के लिए हितकारी, पत्थरों द्वारा शोधित, जल मिश्रित यह सोमरस देवों के लिए उत्तम हवि है ॥२ ॥

५१३.आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।

जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दधिषे ॥३ ॥

पाषाणों द्वारा अभिषुत यह सोमरस शोधन यन्त्र से नीचे के बर्तन में छाना जाता है । हरिताभ सोम इस लकड़ी के बर्तन (द्रोण कलश) में उसी प्रकार प्रवेश करके स्थिर रहता है, जैसे नगर में मनुष्य ॥३ ॥

५१४.प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।

अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥४ ॥

यह सोमरस देवताओं के पानार्थ पानी में मिलाया जाता है । हर्ष प्रदायक होने के साथ-साथ यह सोम स्फूर्ति उत्पन्न करने वाला भी है । यह सोमरस जल से मिलकर मधुर रस टपकाने वाले बर्तन में स्थिर हो ॥४ ॥

५१५.सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।

अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥५ ॥

याजकों द्वारा अभिषुत होता हुआ सोम, पवित्र होकर नीचे बर्तन में प्रवाहित होता है । यह सोम वेगपूर्वक हरे रंग की आनन्ददायक धारा से पात्र में जाता है ॥५ ॥

५१६.तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।

पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीँ रति ताँ इहि ॥६ ॥

हे सोम ! हमें आपकी मित्रता का लाभ प्राप्त हो । जो अनेक प्रकार के दुष्ट व्यक्ति मुझे पीड़ा पहुँचाते हैं, उन सबको आप नष्ट करें ॥६ ॥

५१७. मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।

रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥७ ॥

श्रेष्ठ हाथों द्वारा निकाले गये, पवित्र हुए हे सोम ! शुद्ध किये जाने वाले, आप कलश में शब्द करते हुए प्रवाहित होते हैं और स्तोताओं को प्रिय स्वर्णादि धन प्रदान करते हैं ॥७ ॥

५१८. अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।

समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥८ ॥

मनुष्यों के हितैषी, ज्ञानदाता, आनन्दप्रदायक, शोधन यंत्र से नीचे प्रवाहित होने वाला, आनन्ददायी सोम, जल से भरे हुए पात्र में स्वतः शुद्ध होकर एकत्रित होता है ॥८ ॥

५१९. पुनानः सोम जागृविरव्या वारैः परि प्रियः ।

त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञं मिमिक्ष णः ॥९ ॥

चैतन्ययुक्त, प्रिय और पवित्र सोम, शोधन यंत्र से शुद्ध होकर नीचे गिरता है । हे अंगिरस् (ऋषि) की परम्परा में श्रेष्ठ देव सोम ! आप बुद्धिवर्द्धक होकर हमारे यज्ञ को मधुर रस से पवित्र करें ॥९ ॥

५२०. इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।

सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः ॥१० ॥

हर्षप्रदायक, अभिषुत किया हुआ सोम, मरुत्वान् इन्द्रदेव के लिए पवित्र होता है । यह सोम पहले सहस्रों धाराओं के रूप में शोधन यंत्र से शुद्ध होता है, इसके बाद पुनः स्तोतागण मन्त्रों से इसका शोधन करते हैं ॥१० ॥

५२१. पवस्व वाजसातमोऽभि विश्वानि वार्या ।

त्वं समुद्रः प्रथमे विधर्मन् देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥११ ॥

स्तोत्रों से पवित्र हुए, विशिष्ट अन्न (पोषकता) से युक्त, देवों को आनन्द देने वाले हे सोम ! उदारता आदि विशिष्टगुणों से युक्त होकर आप इस श्रेष्ठ यज्ञ में पवित्र हों ॥११ ॥

५२२. पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।
मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयांसि च ॥१२ ॥

मरुद्गणों का मित्र, हर्ष प्रदाता, इन्द्र प्रिय, बुद्धि और अन्न (पोषकता) से युक्त, यज्ञ में प्रयुक्त होने वाला तथा शुद्ध होने वाला सोमरस शोधन यन्त्र से नीचे गिरता है ॥१२ ॥

॥इति पञ्चमः खण्डः ॥

* * *

॥षष्ठः खण्डः ॥

५२३. प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति ॥१ ॥

हे सोम ! याजकों द्वारा पवित्र किये जाते हुए आप शीघ्र ही पात्र में स्थित हों तथा यजमान को पोषक-तत्त्व प्रदान करें । शक्तिमान् घोड़े की भाँति शुद्ध करते हुए याजक आपको यज्ञमण्डप में ले जाते हैं ॥१ ॥

५२४. प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥२ ॥

ऋषि उशना के सदृश स्तोत्रों का पाठ करने वाले ऋत्विज्, देवताओं के जन्म-वृत्तान्तों का वर्णन करते है । महान् व्रती, तेजस्वी और पवित्र करने वाला श्रेष्ठ सोमरस, शब्द करते हुए बर्तन में प्रवाहित होता है ॥२ ॥

५२५. तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥३ ॥

याजकगण सत्य को धारण करने वाले, तीन वेदों (ऋक्, यजु, साम) के मंत्रों से दिव्य-श्रेष्ठ सोम की स्तुति करते हैं । गौओं के पास जाने वाले बैल (वृषभ- सांड़) की तरह उत्तम सुख की इच्छा करने वाले स्तोतागण सोम के पास पहुँचते हैं ॥३ ॥

५२६. अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥४ ॥

सोने से पवित्र किया हुआ, यज्ञ का प्रेरक, दिव्य सोमरस देवताओं को प्रदान किया जाता है । अभिषुत किया हुआ यह सोमरस, यज्ञशाला में जाने वाले, होता अथवा गोष्ठ में जाने वाले गोपति की भाँति पात्र में स्थिर हो रहा है (पवित्र हो रहा है) ॥४ ॥

५२७. सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥५ ॥

श्रेष्ठ बुद्धि, द्युलोक, पृथ्वीलोक, अग्नि, सूर्य, इन्द्र तथा विष्णु आदि देवों को उत्पन्न करने वाला दिव्य सोम शुद्ध किया जा रहा है ॥५ ॥

५२८. अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः ।
वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥६ ॥

तीन स्थानों (अन्तरिक्ष, वनस्पति एवं शरीर) में निवास करने वाले, काम्यवर्षक और अन्नदाता सोम की तीव्र स्वर से ऋत्विज् की वाणियाँ स्तुति करती हैं। जल में विद्यमान वरुण की भाँति जल में मिलकर सोम स्तोताओं को रत्न और धन प्रदान करता है ॥६ ॥

५२९. अक्रांत्समुद्रः प्रथमे विधर्मं जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥७ ॥

जलयुक्त, गोपालक, बलवर्द्धक, अभिषुत सोम सर्वप्रथम प्रजाजनों का उत्साह बढ़ाकर उनकी उन्नति करते हुए सबसे महान् हो गया ॥७ ॥

५३०. कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः ।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गामतो मतिं जनयत स्वधाभिः ॥८ ॥

मनुष्यों द्वारा दबाकर रस निकाला जाने वाला, हरिताभ सोम पवित्र होता है। काष्ठ के बर्तन (कलश) में गोदुग्ध मिश्रित वह, शब्द करता हुआ गिरता है। याजक इस सोम की हवियुक्त स्तुति करते हैं ॥८ ॥

५३१. एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णः परि पवित्रे अक्षाः ।
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥९ ॥

हे बलशाली इन्द्रदेव ! बलवर्द्धक, आपका यह सोम मधुर और वीर्यवान् होकर पात्र में गिरता है। हजारों-सैकड़ों प्रकार का प्रचुर धन प्रदान करने वाला, यह शक्तिसम्पन्न सोम, लगातार होने वाले यज्ञ में जाकर स्थित होता है ॥९ ॥

५३२. पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये ।
अव द्रोणानि घृतवन्ति रोह मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥१० ॥

हे मधुर सोम ! आप जल में मिलकर, ऊँचे स्थान पर स्थित होकर, छलनी से छनकर पवित्र होते हैं। इसके बाद हर्षदायक और इन्द्रदेव के पीने योग्य आप (सोम) जलयुक्त बर्तन में पहुँचकर स्थित रहते हैं ॥१० ॥

॥इति षष्ठः खण्डः ॥

* * *

॥सप्तमः खण्डः ॥

५३३. प्र सेनानीः शूरो अग्ने रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।
भद्रान् कृण्वन्निन्द्रहवांत्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥१ ॥

सेना के नायक, शूरवीर सोम गाय (के दूध) की कामना करते हुए, रथों के आगे चलता है, जिससे इसकी सेना हर्षित होती है। यह सोम इन्द्रदेव की प्रार्थना को मित्रों और याजकों के लिए मंगलमय बनाते हुए तेजस्विता को धारण करता है ॥१ ॥

५३४. प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्वारं यत्पूतो अत्येष्यव्यम् ।
पवमान पवसे धाम गोनां जनयंत्सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥२ ॥

हे सोम ! पवित्र होते समय आपकी दुग्ध-मिश्रित मधुर धाराएँ, ऊन की छलनी से छनकर पात्र में स्थिर होती हैं। उस समय पवित्रता को प्राप्त हुए आप सूर्यदेव जैसी तेजस्विता को धारण करते हैं ॥२ ॥

५३५. प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमं हिनोत महते धनाय ।
स्वादुः पवतामति वारमव्यमा सीदतु कलशं देव इन्दुः ॥३ ॥

मधुर- तेजस्वी सोमरस छन्ने से छनकर पवित्रता को धारण करते हुए पात्र में स्थिर रहे । वैभव प्राप्ति की कामना से हम स्तुत्य सोम को प्रेरित करते हुए देवताओं की अर्चना करें ॥३ ॥

५३६. प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिषन्नयासीत् ।
इन्द्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥४ ॥

द्युलोक एवं पृथ्वीलोक को उत्पन्न करने वाले, शस्त्रों की प्रखरता को बढ़ाने वाले, देवताओं के पोषक सोमदेव वेगपूर्वक इन्द्रदेव के समीप पहुँचते हुए मानो विश्व का अपार वैभव हमें (याजकों को) प्रदान करने के लिए आए हैं ॥४ ॥

५३७. तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग् ज्येष्ठस्य धर्मं द्युक्षोरनीके ।
आदीमायन्वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥५ ॥

उन्नति की कामना से युक्त, स्तोता के मन में विचारों के द्वारा अभिप्रेरित स्तुति, जिस सोम को तैयार करती है, उस यज्ञ के उत्तम हवि के निकट उसकी प्रशंसा होती है । इसके पश्चात् भलीप्रकार तैयार, सबके पोषक और कलशस्थ इस सोम में गाय का मधुर दूध मिलाया जाता है ॥५ ॥

५३८. साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥६ ॥

कर्म करने वाली अँगुलियाँ सोमरस को पवित्र करती हैं । ये दस अँगुलियाँ वीर्यवान् सोम को हिलाती तथा ग्रहण करती हैं । यह हरिताभ सोमरस सब दिशाओं में जाता हुआ, तेज गति से दौड़ने वाले जोड़े के समान कलश में स्थित होता है ॥६ ॥

५३९. अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूरे न विशः ।
अपो वृणानः पवते कवीयान्व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥७ ॥

जिस तरह अश्व को आभूषणों से सजाते हैं, उसी तरह सूर्य की किरणें उस सोम (सूर्य) की शोभा बढ़ाती हैं । रस निकालने में अँगुलियाँ बुद्धिमत्ता के साथ स्पर्धा करती हैं । जिस प्रकार पशु संवर्धन के लिए गोपाल चरागाह में (गौओं को ले) जाता है, उसी प्रकार जल में मिलकर और स्तोत्रों को सुनते हुए सोम कलश में छनता है ॥७ ॥

५४०. इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ॥
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥८ ॥

इन्द्रदेव की शक्ति बढ़ाने वाला, होताओं को धन देने वाला, शक्ति का स्वामी सोम हर्ष बढ़ाने के लिए बर्तन में छाना जाता है । वह सोमरस राक्षसों को नष्ट करता है तथा दुष्टों को मार भगाता है ॥८ ॥

५४१. अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥९ ॥

हे सोम ! पवित्र हुई धारा से आप हमें ऐश्वर्य प्रदान करें । जिस प्रकार प्रकृति के मूल आधार सूर्यदेव, वायु को प्रवाहित करते हैं, उसी प्रकार आप वसतीवरी नामक कलश में प्रवाहित होकर बुद्धिशाली इन्द्रदेव को प्राप्त हों और हमें सुसन्तति प्रदान करें ॥९ ॥

५४२. महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥१० ॥

महान् शक्तिशाली दिव्य सोम द्वारा महान् कार्य सम्पादित होते हैं । वही जल का गर्भ (धारण करने वाला) और देवताओं को पोषण देने वाला है । शुद्ध होकर वही इन्द्रदेव को सामर्थ्य प्रदान करता है और वही सूर्यदेव में तेज स्थापित करता है ॥१० ॥

५४३. असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमा मनीषा ।
दश स्वसारो अधि सानो अव्ये मृजन्ति वह्निं सदनेष्वच्छ ॥११ ॥

जिस प्रकार युद्ध में घोड़े भेजे जाते हैं, उसी प्रकार सबको प्रिय लगने वाला, सबसे पहले स्तुत्य सोम शब्द करता हुआ, स्तोत्रपाठ के साथ कलश के जल में मिश्रित होता है । दस बहिनें (अँगुलियाँ) सोम को ऊपर स्थापित शोधन यंत्र में से प्रवाहित करती हैं ॥११ ॥

५४४. अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चाच विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥१२ ॥

पानी की द्रुतगामी तरंगों के सदृश, बोलने में शीघ्रता करने वाले स्तोतागण, स्तुतियों को सोम के पास जल्दी प्रेषित करते हैं । उन्नति की कामना वाली नमनशील स्तुतियाँ कामना करने वाले सोम के निकट जाती हैं और उसी में समाहित हो जाती हैं ॥१२ ॥

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

* * *

॥अष्टमः खण्डः ॥

५४५. पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥१ ॥

हे मित्रो ! आप आगे रखे हुए, आनन्द प्रदान करने वाले, इस सोमरस के निकट जाने की इच्छा वाले, लम्बी जीभ वाले (जूठा करने वाले) कुत्ते को दूर भगाओ ॥१ ॥

५४६. अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥२ ॥

परिपोषक, सेवनीय, सुन्दर, यह दिव्य सोम छनते हुए नीचे बर्तन (भू- मण्डल) में प्रवाहित होता है । सभी जीवों का पालक यह सोमरस अपने तेज से दोनों लोकों (द्यावा-पृथिवी) को प्रकाशित करता है ॥२ ॥

५४७. सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥३ ॥

मधुर और हर्ष-प्रदायक सोमरस पवित्र होकर इन्द्रदेव के लिए तैयार होता है। हे सोम ! आपका यह आनन्ददायक रस देवगणों के पास पहुँचे ॥३ ॥

५४८. सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।

मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥४ ॥

श्रेष्ठ मार्ग को ठीक ढंग से जानने वाला, मित्र के सदृश,-रस निचोड़े हुए, पाप रहित मन को भलीप्रकार से एकाग्र करने वाला, आत्मविद् यह सोमरस हमारे लिए शुद्ध किया जाता है ॥४ ॥

५४९. अभी नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम् ।

इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ॥५ ॥

सैकड़ों द्वारा प्रशंसित, हजारों का पोषक, विशेष तेजस्वी, बल बढ़ाने वाला यह सोम हमें धन प्रदान करे ॥५ ॥

५५०. अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।

वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥६ ॥

गौएँ जिस प्रकार नवजात बछड़े को चाटती हैं, उसी प्रकार विद्रोह न करने वाले जल समूह, इन्द्रदेव को प्रिय लगने वाले और चाहने योग्य सोम को प्राप्त होते हैं ॥६ ॥

५५१. आ हर्यताय धृष्णवे धनुष्टन्वन्ति पौंस्यम् ।

शुक्रा वि यन्त्यसुराय निर्णिजे विपामग्रे महीयुवः ॥७ ॥

जिस प्रकार योद्धाजन धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाते हैं, उसी प्रकार मनुष्यों में अग्रणी, पूजन की कामना वाले ऋत्विग्गण, विकारनाशक, पूजनीय सोम के पोषण के लिए उसे पवित्र गाय के दूध से आच्छादित (मिश्रित) करते हैं। (उसे प्रयोग हेतु तैयार करते हैं।) ॥७ ॥

५५२. परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।

यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥८ ॥

हरित और भूरे रंग के सुन्दर सोम को भेड़ों के बालों की छलनी से छानते हैं। यह सोम इन्द्र आदि देवताओं के निकट अपने हर्ष- प्रदायक गुणों के साथ जाता है ॥८ ॥

५५३. प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।

अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥९ ॥

शोधित होते समय सोम का नाद विघ्न-संतोषी मनुष्य न सुनें। भृगुओं ने जिस प्रकार मख नाम के दानव को हटा दिया था, उसी प्रकार कुत्तों को यज्ञ स्थल से हटाएँ ॥९ ॥

॥इति अष्टमः खण्डः ॥

* * *

॥नवमः खण्डः ॥

५५४. अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।

आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥१ ॥

दिव्य सोम, सर्वत्रगामी सूर्य के रथ पर आरूढ़ होकर संसार का द्रष्टा बन जाता है । वह प्रिय जल के साथ संयुक्त होकर, अन्नो के लिए हितकारी बनकर, विस्तार पाता-प्रवाहित होता है ॥१ ॥

५५५. अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र स्वानासो बृहद्देवेषु हरयः ।
वि चिदश्नाना इषयो अरातयोऽर्यो नः सन्तु सनिषन्तु नो धियः ॥२ ॥

दूसरों के द्वारा प्रभावित न होने वाला, ठीक ढंग से निकाला गया हरित सोमरस, स्तोताओं के यज्ञ में आए । दान न करने वाले यज्ञ के शत्रु, याजकों के शत्रु, अन्न की इच्छा करने पर भी उसे न प्राप्त करें । हमारे स्तोत्र देवगणों को प्राप्त हों ॥२ ॥

५५६. एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टमः ।
अभ्यृ३तस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसा च धेनवः ॥३ ॥

दुधारू गौओं के घृत-युक्त श्रेष्ठ दूध की धार की तरह ध्वनि करता हुआ, इन्द्रदेव के वज्र के समान शक्तिशाली, सुन्दरतम बीजों को अंकुरित करने वाला सोमरस, कोश में (कलश में-पदार्थों में) प्रवेश करता है ॥३ ॥

[प्रकृति के जटिलतम पदार्थों में संचरित होने की क्षमता के कारण सोम को वज्र के समान सशक्त तथा पोषण में श्रेष्ठ दुग्ध की तरह कहा गया है ।]

५५७. प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम् ।
मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना पथा ॥४ ॥

मित्र की तरह यह सोमसखा इन्द्रदेव के पेट में पहुँच कर वहाँ कोई पीड़ा नहीं देता । जिस प्रकार युवा पुरुष युवा स्त्रियों के साथ घुल-मिलकर रहता है, उसी प्रकार यह सोम पानी के साथ मिलकर, शोधक यंत्र के सैकड़ों छिद्रों से निकलकर कलश में प्रविष्ट होता है (सोम, इन्द्र एवं जल के साथ एकरस होकर उन्हें शक्ति देने में समर्थ हैं) ॥४ ॥

५५८. धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा ॥५ ॥

धारक शक्ति से सम्पन्न, कर्मनिष्ठ, देवशक्ति संवर्द्धक सोम, कलश में छनता हुआ प्रवेश करता है । स्तोताओं द्वारा निष्पन्न यह सोमरस बलवान् अश्व के समान सहजता से ही अपने आप नदी के पानी में मिल जाता है ॥५

५५९. वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
प्राणा सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः ॥६ ॥

स्तोताओं की कामना को पूर्ण करने वाला, द्रष्टा, दिन, उषा और आदित्य का शक्ति-संवर्द्धक यह सोम छाना जाता है । नदियों के प्राणस्वरूप जल में मिलाकर, मनीषी उद्गाताओं द्वारा निष्पन्न यह सोमरस इन्द्रदेव के पेट में प्रवेश करने की इच्छा से पात्र में ध्वनि करता हुआ जाता है ॥६ ॥

५६०. त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥७ ॥

परमव्योम में स्थित इस सोम को इक्कीस गौएँ उत्तम दुग्ध प्रदान करती हैं । जब यह सोम यज्ञादि से वर्द्धित होता है, तो अन्य चार प्रकार के भुवनों (जल) को शोधनार्थ कल्याणकारी क्रम में प्रवाहित (गतिमान) करता है ॥७ ॥

[वेदों में गौएँ, पोषक शक्तियों को भी कहा गया है । त्रिसप्त का अर्थ ऋषि दयानन्द ने तीन (वेदत्रयी) सात (गायत्री आदि सात छन्द) किया है ।सायणाचार्य के मतानुसार यह ३ x ७ = २१ (१२ माह + ५ ऋतु + ३लोक एवं + १ आदित्य) हैं । उन्होंने ही तीनों लोकों में प्रवाहित सप्त धाराओं से भी इक्कीस की गणना मानी है ।]

५६१. इन्द्राय सोम सुषुत: परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह ।
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दव: ॥८ ॥

हे सोम ! आप श्रेष्ठ रीति से रस निकालने के बाद इन्द्रदेव के पीने के लिए प्रवाहित हों और रोग-राक्षसों से रहित हों । दो प्रकार का (छलयुक्त) व्यवहार करने वाले दुष्टों को सोमरस न प्राप्त हो । इस यज्ञ में यह सोमरस ऐश्वर्ययुक्त बने ॥८ ॥

५६२. असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।
पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ॥९ ॥

ओजस्वी, शक्तिवर्द्धक, हरितवर्ण का सोमरस निकाला गया है । वह सोम सम्राट् के सदृश सौन्दर्ययुक्त है । गो- दुग्ध मिश्रित करने के बाद ध्वनि करता हुआ, पवित्र होकर भी यह छलनी से शोधित किया जाता है । उसके बाद श्येन पक्षी के सदृश पानी से युक्त पात्र में गिरकर स्थित रहता है ॥९ ॥

५६३. प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनव: ।
बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभि: परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे ॥१० ॥

मधुर सोमरस देवगणों के लिए प्रवाहित होकर, पात्र में उसी प्रकार जाता है, जिस प्रकार दुधारू गौएँ अपने बछड़ों के लिए दुग्ध टपकाती हैं । यज्ञमण्डप में विराजित तथा रँभाती हुई गौएँ थनों से टपकने वाले दुग्ध में सोमरस को ग्रहण करती हैं ॥१० ॥

५६४. अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुछ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावा: पशुमप्सु गृभ्णते ॥११ ॥

स्तोता, सोमरस को गौ के दुग्ध में विशेष ढंग से, भलीप्रकार मिलाते हैं, जिसका स्वाद देवगण लेते हैं । उस सोम में गोघृत तथा शहद मिश्रित करते हैं । इसके बाद नदी के जल में स्थित सोम को स्वर्ण से शुद्ध करके तेजस्वी रूप प्रदान करते हैं ॥११ ॥

५६५. पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वत: ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्त: सं तदाशत ॥१२ ॥

हे वेदपते सोम ! आपके पवित्र अंग (अंश) सर्वत्र विद्यमान हैं । आप शक्तिशाली होने के कारण पान करने वालों के देह में स्फूर्ति की वृद्धि करते हैं । तप से जिसका शरीर तेजयुक्त नहीं हुआ है, उसे यह फल प्राप्त नहीं होता । साधना परिपक्व होने के पश्चात् ही साधक उसे प्राप्त करने में समर्थ होता है ॥१२ ॥

॥इति नवम: खण्ड: ॥

* * *

॥दशमः खण्डः ॥

५६६. इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः । श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥१ ॥

तुरन्त तैयार हुआ, आत्मिक ज्ञान की वृद्धि करने वाला, यह हरिताभ सोमरस पराक्रमी इन्द्रदेव को शीघ्र प्राप्त हो ॥१ ॥

५६७. प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परि स्रव । द्युमन्तं शुष्ममा भर स्वर्विदम् । ।२ ॥

हे सोम ! स्फूर्ति से सम्पन्न होकर आप, इन्द्रदेव के निमित्त कलश में प्रवाहित हों । हमें तेजोवर्द्धक एवं ज्ञानवर्द्धक शक्ति से परिपूरित कर दें ।२ ।

५६८. सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत । शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥३ ॥

हे मित्रो ! (ऋत्विजो) आप आकर बैठें । सोम को शोधित करते समय स्तुति करो । जिस प्रकार शिशु को आभूषणों से सजाते हैं, उसी प्रकार यज्ञ से- यज्ञीय साधनों से इस सोमरस को विभूषित करो ॥३ ॥

५६९. तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत । शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥४

आनन्ददायी, सोमरस का अभिषवण करते समय हे मित्रो ! इसकी प्रार्थना करो । शिशु को जिस प्रकार से अलंकृत करते हैं, उसी प्रकार यज्ञों और स्तुतियों से आप इसे ग्राह्य बनाओ ॥४ । ।

५७०. प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥५ ॥

यह सोम, यज्ञ का प्राण तथा महान् जल का पुत्र है । यह यज्ञ को प्रकाशित करने वाले, अपने रस को प्रेरित करता है । यह सभी हविष्यान्नों (आहुतियों) में व्याप्त होता हुआ, द्युलोक तथा पृथ्वीलोक में व्याप्त रहता है ॥५ ॥

५७१. पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा । आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥६ ॥

हे सोम ! देवगणों के सेवनार्थ, वेगपूर्वक धाराओंसहित आप कलश में प्रवाहित हों । आनन्ददायक हे सोम ! आप हमारे इस कलश में आकर स्थित हों ॥६ ॥

५७२. सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति ।अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥७ ॥

पवित्र होने वाला, स्तुति के पश्चात् ध्वनि करता हुआ, शोधित होने वाला यह सोम, प्रवाह के साथ बालों की छलनी से छनता चला जाता है ॥७ ॥

५७३. प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उच्यते । भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥८ ॥

शुद्ध होने वाले कर्म प्रेरक सोम के निमित्त (हे स्तोतागण) स्तुति करो । प्रार्थना से प्रसन्न होकर जिस प्रकार दास को धन प्रदान किया जाता है, उसी प्रकार (स्तुति से सोम को प्रसन्न करने के लिए) विशेष स्तुति करो ॥८ ॥

५७४. गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव । शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥९ ॥

रस निकालने के पश्चात् हे बलशाली सोम ! आप हमें गौओं- घोड़ों से युक्त धन प्रदान करें । तत्पश्चात् आप गो-दुग्ध में मिलकर पवित्र वर्ण (श्वेत वर्ण) वाले बन जाएँ ॥९ ॥

५७५. अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत ।गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि । ।१०

हे सोम ! आप धन देने वाले हैं, आपका धन हमें प्राप्त हो, इसलिए हमारी वाणी आपकी प्रार्थना करती है । हम आपके रस को गो- दुग्ध से आवृत करते हैं (गोदुग्ध में मिलाते हैं) ॥१० ॥

५७६. पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रं ह्या । अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥११॥

अभिनन्दनीय हरित वर्ण का सोम, अपने वेगयुक्त प्रवाह से, अपने अशुद्ध भाग को शुद्ध करता हुआ, नीचे कलश में टपकता है । हे सोम ! आप ऋत्विजों को पुत्र सम्बन्धी या अन्न सम्बन्धी कीर्ति प्रदान करें ॥११॥

५७७. परि कोशं मधुश्चुतं सोमः पुनानो अर्षति ।
अभि वाणीर्ऋषीणां सप्ता नूषत ॥१२॥

पवित्र होता हुआ सोम, अपने मधुर रस को पात्र में पहुँचाता है । ऋषियों की सात पदों वाली वाणियाँ (गायत्री आदि सातों छन्द) इस सोम की प्रार्थना करती हैं ॥१२॥

॥इति दशमः खण्डः॥

* * *

॥एकादशः खण्डः॥

५७८. पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः । महि द्युक्षतमो मदः ॥१॥

हे सोम ! अत्यंत मधुर हवि (यज्ञ) के विषय में सर्वविद्, श्रेष्ठ तेजस्वी, आनन्द बढ़ाने वाले, आप इन्द्रदेव को आनन्दित करने के लिए पवित्र हों ॥१॥

५७९. अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् । वि कोशं मध्यमं युव ॥२॥

हे अन्नाधिपति एवं देदीप्यमान सोमदेव ! आप देवगणों को प्राप्त होने वाले हैं । आप हमें तेजोमय एवं महान् कीर्ति प्रदान करें तथा मधु के पात्र में जाकर उसे पूर्ण कर दें ॥२॥

५८०. आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् । वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥३॥

हे स्तोताओ ! अश्व के सदृश तीव्र गतिशील, प्रार्थना के योग्य, पानी की तरह प्रवहमान, प्रकाश की किरणों की तरह शीघ्र गमन करने वाले, पानी में मिश्रित, जलयुक्त सोम का रस अभिषुत करें और उसमें दुग्ध का मिश्रण करें ॥३॥

५८१. एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवोदुहम् । विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥४॥

आनन्ददायी, सहस्रों धाराओं के साथ कलश में टपकने वाले, शक्तिवर्द्धक, सम्पूर्ण धन के स्वामी, इस सोम का तेजस्वी ऋत्विग्गण रस निचोड़ते हैं ॥४॥

५८२. स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम् । सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥५॥

ऋत्विजों ने सम्पत्ति, दुग्ध आदि पदार्थ, भूमि तथा श्रेष्ठ सन्तान प्रदान करने वाले उस सोम का रस निकाल लिया है ॥५॥

५८३. त्वं ह्या३ङ्ग दैव्यं पवमान जनिमानि द्युमत्तमः । अमृतत्वाय घोषयन् ॥६॥

हे पवित्र सोम ! आप अत्यन्त तेजयुक्त, दिव्य जन्मों को जानने वाले तथा अमृतत्व की उद्घोषणा करने वाले हैं ॥६॥

५८४. एष स्य धारया सुतोऽव्या वारेभिः पवते मदिन्तमः । क्रीळन्नूर्मिरपामिव ॥७॥

अत्यन्त हर्षप्रदायक, पानी की तरंगों- सदृश क्रीड़ा करते हुए यह सोमरस बालों की छलनी से धाररूप में अर्जन से छाना जाना है ॥७॥

५८५. य उस्रिया अपि या अन्तरश्मनि निर्गा अकृन्तदोजसा ।
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज ।
ॐ वर्मीव धृष्णवा रुज [१] ॥८ ॥

यह सोम, बढ़ने के स्वभाव वाले आकाश में बादलों के भीतर जल को अपनी शक्ति से छिन्न-भिन्न करता है तथा गौओं और अश्वों को सब ओर से घेरता है । हे शत्रुहन्ता सोम ! कवच से युक्त वीरों की तरह आप रिपुओं का विनाश करें ॥८ ॥

१. [यह अंश प्रायः संहिताओं में पठित नहीं है। स्वाध्याय-मण्डल, पारडी से प्रकाशित सामवेद-संहिता में यह पाठ उपलब्ध है । ऐसा प्रतीत होता है कि उपनिषदों की तरह प्रकरण के समापन पर अन्तिम पाद को दुहरा दिया गया है। हमने भी यही मानकर स्वीकार कर लिया है ।]

॥इति एकादशः खण्डः

* * *

--ऋषि, देवता, छन्द-विवरण —

ऋषि– अमहीयु आङ्गिरस ४६७, ४७०, ४७९, ४८४, ४८७, ४९४, ४९५, ५१० । मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ४६८ । भृगुवारुणि अथवा जमदग्नि भार्गव ४६९, ४८०, ४९८, ५०३ । त्रित आप्त्य ४७१, ४७८, ५७० । कश्यप मारीच ४७२, ४८१-४८२, ५०४-५०५, ५४३ । जमदग्निभार्गव ४७३, ४८९, ५०८ । दृढच्युत आगस्त्य ४७४ । असित काश्यप अथवा देवल ४७५, ४७६, ४८५-४८६, ५०२, ५०६ । श्यावाश्व आत्रेय ४७७ । निध्रुवि काश्यप ४८३, ४९२, ४९३, ५०१ । बृहन्मति आङ्गिरस ४८८ । प्रभूवसु आङ्गिरस ४९० । मेध्यातिथि काण्व ४९१, ४९७ । उचथ्य आङ्गिरस ४९६, ४९९ । अवत्सार काश्यप ५०० । कवि भार्गव ५०७, ५५४-५५६, ५५८ । अयास्य आङ्गिरस ५०९ । सप्तर्षिगण ५११-५२२ । उशना काव्य ५२३, ५३१ । वृषगण वसिष्ठ ५२४ । पराशर शाक्त्य ५२५, ५२९, ५३४, ५४२ । वसिष्ठ मैत्रावरुणि ५२६, ५२८, ५३६ । प्रतर्दनो दैवोदासि ५२७, ५३२-३३ । प्रस्कण्व काण्व ५३०, ५४४ । इन्द्रप्रमति वासिष्ठ ५३५ । कर्णश्रुत् वासिष्ठ ५३७ । नोधा गौतम ५३८ । कण्व घौर ५३९ । मन्यु वासिष्ठ ५४० । कुत्स आङ्गिरस ५४१ । अभीगु श्यावाश्वि ५४५ । नहुष मानव ५४६ । ययाति नाहुष ५४७ । मनु सांवरण ५४८ । अम्बरीष वार्षागिर और ऋजिश्वा भारद्वाज ५४९, ५५२ । रेभसूनू काश्यप ५५०-५५१, ५६२ । प्रजापति वैश्वामित्र अथवा वाच्य ५५३ । सिकता निवावरी ५५७, ५५९ । रेणु वैश्वामित्र ५६० । वेन भार्गव ५६१ । वसु भारद्वाज ५६२ । वत्सप्रि भालन्दन ५६३ । गृत्समद शौनक ५६४ । पवित्र आङ्गिरस ५६५ । अग्नि चाक्षुष ५६६, ५७२, ५७६ । चक्षु मानव ५६७ । पर्वत और नारद काण्व ५६८-५६९, ५७४-५७५ । मनु आप्सव ५७१ । द्वित आप्त्य ५७३, ५७७ । गौरवीति शाक्त्य ५७८ । ऊर्ध्वसद्मा आंगिरस ५७९ । ऋजिश्वा भारद्वाज ५८०, ५८५ । कृतयशा आंगिरस ५८१ । ऋणंचय राजर्षि ५८२ । शक्ति वासिष्ठ ५८३ । ऊरु आङ्गिरस ५८४ ।

देवता – पवमान सोम ४६७-५८५ ।

छन्द – गायत्री ४६७-५१० । बृहती ५११-५२९, ५५१ । त्रिष्टुप् ५३०-५४४ । अनुष्टुप् ५४५-५५०, ५५२-५५३ । जगती ५५४-५६५ । उष्णिक् ५६६-५७७ । ककुप् ५७८-५८१, ५८३-५८५ । यवमध्या गायत्री ५८२ ।

॥इति पावमानपर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ॥

॥ आरण्यं पर्व ॥

॥अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

५८६. इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर ओजिष्ठं पुपुरि श्रवः ।

यद्दिधृक्षेम वज्रहस्त रोदसी उभे सुशिप्र पप्राः ॥१ ॥

हे वज्रपाणि, देवेन्द्र ! आप हमें ओज एवं बल प्रदान करने वाला अन्न (पोषक तत्त्व) प्रदान करें । जो पोषक अन्न द्युलोक एवं पृथ्वीलोक दोनों को पोषण देते हैं, उन्हें हम अपने पास रखने की कामना करते हैं ॥१ ॥

५८७. इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमा विश्वरूपं यदस्य ।

ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतं चिदर्वाक् ॥२ ॥

इन्द्रदेव ही समस्त जीवधारियों के स्वामी तथा सभी पदार्थपरक वसुओं (धनो) के राजा हैं, इसीलिए दानवृत्ति वालों को वे जीवनोपयोगी वस्तुएँ प्रदान करते हैं । वे श्रेष्ठ (लौकिक एवं दैवी) सम्पदा हमारी ओर भेजें ॥२ ॥

५८८. यस्येदमा रजोयुजस्तुजे जने वनं स्वः । इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥३ ॥

तेजस्विता से पूर्ण जिन इन्द्रदेव का दान स्वर्गलोक में तथा दानी जनों के बीच भी स्तुत्य है, उनका यह दान उत्कृष्ट और तुष्टिदायक है ॥३ ॥

५८९. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।

अथादित्य व्रते वयं तवानागसो अदितये स्याम ॥४ ॥

हे वरुणदेव ! उच्चबन्धनों को हमसे ऊपर की ओर से, निम्न बन्धनों को नीचे की ओर से तथा मध्यम बन्धनः को शिथिल करके आप हमें मुक्त करें; ताकि हम आपके नियम के अनुसार चलकर निष्पाप और क्लेशरहित जीवन जी सकें ॥४ ॥

५९०. त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥५ ॥

हे संसार को शुद्ध (पवित्र) करने वाले सोम ! आपकी सहायता से हम जीवन-संग्राम में निरन्तर उत्तम कर्मों का चयन करें (चुनें) । जिसके कारण अदिति, मित्र, वरुण, पृथिवी, सिन्धु और द्युलोक हमें यश-सम्पन्न बनाएँ ॥५ ॥

५९१. इमं वृषणं कृणुतैकमिन्माम् ॥६ ॥

हे देवगण ! आप इस अकेले (विश्वेदेवा-विश्वकल्याण में निरत) को बलिष्ठ बनाएँ और हमें भी देवोपम कार्यों में सफलता प्रदान करें ॥६ ॥

५९२. स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः वरिवोवित्परिस्रव ॥७ ॥

हमें ऐश्वर्यशाली बनाने वाले हे सोम ! हम लोग जिनके लिए यज्ञ करते हैं, उन इन्द्र, मरुद्गण और वरुणदेवों के निमित्त आप भलीप्रकार परिशुद्ध हों ॥७ ॥

५९३. एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् । सिषासन्तो वनामहे ॥८ ॥

इस (सोम) की सहायता से मनुष्यों के लिए आवश्यक सभी प्रकार के अन्नादि हमें प्राप्त हों । हम उनके श्रेष्ठ उपयोग की कामना करते हैं ॥८ ॥

५९४. अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम ।
यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ॥९ ॥

मैं (अन्नदेव) सनातन यज्ञ के द्वारा देवताओं से भी पहले उत्पन्न हुआ हूँ । जो मुझे सत्पात्रों को प्रदान करते हैं, वे निश्चय ही सभी का कल्याण करते हैं । केवल स्वयं ही, मेरा उपभोग करने वाले कृपणों को तो, मैं ही खा जाता हूँ ॥९ ॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

५९५. त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च । परुष्णीषु रुशत्पयः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! अनेकानेक रंगों वाली गौओं में (यथा-काले, लाल आदि रंग की गौओं में) देदीप्यमान श्वेत दुग्ध को आपने स्थापित किया है । यह आपकी अद्‌भुत सामर्थ्य ही है ॥१ ॥

५९६. अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः ॥२ ॥

(सृष्टि चक्र से सम्बन्धित इस ऋचा में) उषा का सम्बन्धी सूर्य ही अग्रणी (प्रमुख) है । वही स्वप्रकाशित है । वर्षा करने में सक्षम मेघ, जगत् को अन्नादि पोषण देने की इच्छा से गर्जन करते हैं । मायावी (कर्म कुशल) देवों ने, अपनी माया (कुशलता) से जगत् का सृजन किया । निरीक्षण करने वाले पितरों (पालनकर्ता देवों) ने गर्भ स्थापित किये (भिन्न संदर्भ में— जगत्-पोषक रश्मियों ने वनस्पतियों में गर्भ स्थापित किये) अथवा जल को वर्षा के लिए गर्भ की तरह धारण किया ॥२ ॥

५९७. इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥३ ॥

वज्रधारी, सोने के आभूषणों से अलंकृत, इन्द्रदेव के संकेत मात्र से ही रथ के घोड़े रथ में एक साथ जुड़ जाते हैं । ॥३ ॥

[इन्द्र के रथ में बल और वैभव रूपी दो घोड़े हैं, जो संकेत मात्र से एक साथ जुड़ जाते हैं अर्थात् सारथी के पूर्ण नियंत्रण में रहते हैं ।]

५९८. इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव !आप हजारों प्रकार के धन-लाभ वाले, छोटे-बड़े संग्रामों में, वीरतापूर्वक हमारी रक्षा करें ॥४ ॥

५९९. प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः ॥५ ॥

प्रथ (वसिष्ठ पुत्र) एवं सप्रथ (भरद्वाज पुत्र) के लिये अनुष्टुप् छन्द में स्तुति का पाठ करके तथा श्रेष्ठ हवि को अर्पित करके, वसिष्ठ ने रथन्तर साम को तेजस्वी धाता (सविता या विष्णु या ब्रह्मा) के पास से प्राप्त किया ॥५ ॥

६००. नियुत्वान्वायवा गह्ययं शुक्रो अयामि ते । गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥६ ॥

याज्ञिकों के पास नियुत (रथ) में सवार होकर पहुँचने वाले हे वायुदेव ! आपके निमित्त यह देदीप्यमान सोमरस तैयार किया गया है । इस हेतु हम आपका आवाहन करते हैं ॥६ ॥

६०१. यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय ।
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥७ ॥

हे अद्‌भुत वैभवशाली इन्द्रदेव ! वृत्र (असुरता) का संहार करने के लिए, आपने पृथ्वी को विस्तृत करने के साथ-साथ द्युलोक को भी स्थिर किया ॥७ ॥

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः ॥

६०२.मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः ।
परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥१ ॥

द्युलोक वासी प्रजापालक परमेश्वर हममें तेज, यश एवं पोषक तत्त्वों की वृद्धि करें । दिव्य प्रकाश से संव्याप्त अंतरिक्ष की भाँति हमारा जीवन आलोकित हो ॥१ ॥

६०३. सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥२ ॥

हे शत्रु-संहारक सोम ! आप दूध, अन्न, बल को धारण करें । अपने अमरत्व के लिए द्युलोक में श्रेष्ठ अन्न (दिव्य पोषक तत्त्वों को अर्थात् उच्च स्थिति को) प्राप्त करें ॥२ ॥

६०४.त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमातनोरुर्वा३न्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥३ ॥

अपने तेज से अन्धकार को नष्ट करने वाले एवं अंतरिक्ष को विस्तार देने वाले हे दिव्य सोम ! आपने ही पृथ्वी पर सभी ओषधियों, गौओं एवं जल को उत्पन्न किया है ॥३ ॥

[सोम ओषधियों, जल, सूर्य- रश्मियों और गो- दुग्ध से युक्त होकर आरोग्यवर्द्धक बनता है ।]

६०५.अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥४ ॥

हम जगत् के हितैषी उन अग्निदेव की स्तुति करते हैं, जो यज्ञ को प्रकाशित करते हैं, देवताओं को बुलाने में समर्थ हैं एवं याजकों को बहुमूल्य रत्न (वैभव) प्रदान करते हैं । ॥४ ॥

६०६. ते मन्वत प्रथमं नाम गोनां त्रिः सप्त परमं नाम जानन् ।
ता जानतीरभ्यनूषत क्षा आविर्भुवन्नरुणीर्यशसा गावः ॥५ ॥

वाणी के शब्द स्तुत्य हैं, यह सर्वप्रथम समझकर, ऋषियों ने (गायत्री आदि) इक्कीस छन्दों में होने वाले स्तोत्रों को जाना । तत्पश्चात् उस वाणी से उषा की स्तुति की, जिस तेज से अरुण किरणें (सूर्य किरणें) प्रकट हुईं ॥५ ॥

[यहाँ सूर्योदय का स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया गया है ।]

६०७. समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यस्पृणन्ति ।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपान्नपातमुप यन्त्यापः ॥६ ॥

जिस प्रकार वृष्टि-जल, धरती में गिरकर, धरती के जल में मिलकर नदी का रूप धारण करके सागर में पहुँचता है, वहाँ उसकी अग्नि (बड़वानल) को आनन्दित करती है, जल को ऊर्ध्वगति देने वाले अग्नि के पास सम्पूर्ण जल पहुँचता है, उसी प्रकार सोमरस में जल मिश्रित किया जाता है ॥६ ॥

६०८.आ प्रागाद्भद्रा युवतिरह्नः केतून्त्समीर्त्सति ।
अभूद्भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्री ॥७ ॥

कल्याणकारी स्त्री के रूप में रात्रि का आगमन दिन के प्रकाशमय स्वरूप को प्रतिबन्धित करता है । सम्पूर्ण जगत् को विश्रामावस्था में पहुँचाने वाली यह रात्रि सबके लिए हितकारक है ॥७ ॥

६०९.प्रक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू महः प्र नो वचो विदथा जातवेदसे ।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसे शुचिः सोम इव पवते चारुरग्नये ॥८ ॥

दीप्तिमान्, तेजस्वी, सर्वव्यापी अग्निदेव की हम स्तुति करते हैं । याज्ञिक कृत्यों में अग्निदेव के लिए बोले जाने वाले ये पवित्र और सुन्दर स्तोत्र, सभी होताओं के हितकारक अग्निदेव के समीप उसी प्रकार जाते हैं, जैसे यज्ञ के समीप सोमदेव पहुँचते हैं ॥८ ॥

६१०.विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञमुभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म ।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥९ ॥

पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं अग्निसहित समस्त देवशक्तियाँ हमारे द्वारा पूज्य श्रेष्ठ स्तोत्रों का श्रवण करें । हम कभी भी देवों को अप्रिय लगने वाले वचन न बोलें एवं देवों द्वारा प्रदत्त अनुदानों से ही प्रमुदित हों ॥९ ॥

६११.यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती ।
यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रतिमुच्यताम् ।
यशस्व्या३स्याः संसदोऽहं प्रवदिता स्याम् ॥१० ॥

हमें (स्तोताओं को) समस्त लोकों से एवं इन्द्र, बृहस्पति आदि देवताओं से यश की प्राप्ति हो, हम कभी यश से दूर न रहें एवं संसद में विचार व्यक्त करने की क्षमता प्राप्त हो ॥१० ॥

[वैदिक काल में संसदीय प्रणाली भी थी ।]

६१२. इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥११ ॥

मेघों को विदीर्ण कर पानी बरसाने वाले, पर्वतीय नदियों के तटों को निर्मित करने वाले, वज्रधारी, पराक्रमी इन्द्रदेव के कार्य वर्णनीय हैं । उन्होंने जो प्रमुख वीरतापूर्ण कार्य किये, वह ये ही हैं ॥११ ॥

६१३. अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
त्रिधातुरर्को रजसो विमानोऽजस्रं ज्योतिर्हविरस्मि सर्वम् ॥१२ ॥

मैं (आत्मा) जन्म से ही अग्निस्वरूप, सर्वज्ञ, तेज रूप हूँ, (घृत के जलने से होने वाला प्रकाश) मेरे नेत्र हैं। मेरे मुख में अमरता प्रदान करने वाली वाणी है। मैं तीनों प्राणों (प्राण, अपान, व्यान) में संव्याप्त प्राण हूँ, अन्तरिक्ष का मापक वायु हूँ। सतत तेजयुक्त सूर्य, हवि एवं हविवाहक (अग्नि) मैं ही हूँ ॥१२॥

[(अग्नि=अग्रणी, शरीर में अग्रणी आत्मा है।) यहाँ आत्मा में विद्यमान दैवी शक्तियों की विवेचना की गई है।]

६१४.पात्यग्निर्विपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य ।

पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥१३॥

अग्निदेव, भूमि के प्रमुख स्थानों का, सूर्य मार्गों का, अंतरिक्षवासी मरुद्गणों एवं देवप्रिय यज्ञों का संरक्षण करते हैं ॥१३॥

[यह अग्नि-पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक का क्रमशः अग्नि, विद्युत् एवं सूर्य के रूप में संरक्षण करती है।]

॥इति तृतीयः खण्डः॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः॥

६१५. भ्राजन्त्यग्ने समिधान दीदिवो जिह्वा चरत्यन्तरासनि ।

स त्वं नो अग्ने पयसा वसुविद्रयिं वर्चो दृशेऽदाः ॥१॥

हे जाज्वल्यमान अग्निदेव ! आपके तेजस्वी मुख में जिह्वा सदृश ज्वाला हवि को ग्रहण करती है। हे समिद्धमान् अग्ने ! आप हमें उपयोगी धन-धान्य एवं प्रखर-दर्शनीय तेज प्रदान करें ॥१॥

६१६.वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः ।

वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः ॥२॥

वसन्त ऋतु निश्चय ही आनन्दप्रद है। ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त एवं शिशिर भी आनन्ददायी हैं ॥२॥

६१७.सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

स भूमिं सर्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥३॥

सहस्रों शिर वाले, सहस्रों नेत्र वाले और सहस्रों चरण वाले विराट् पुरुष हैं। वे सारे ब्रह्माण्ड को आवृत करके भी दस अंगुल शेष रहते हैं ॥३॥

[दशांगुलम्-माप में पूर्णांक अर्थात् ९ से भी एक अधिक है।]

६१८.त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।

तथा विष्वङ् व्यक्रामदशनानशने अभि ॥४॥

जड़ और चेतन विविध रूपों में, चार भागों वाले-विराट् पुरुष के एक भाग में यह सारा संसार समाहित है। इसके तीन भाग अनन्त अन्तरिक्ष में समाये हुए हैं ॥४॥

६१९. पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।

पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥५॥

जो सृष्टि बन चुकी है और जो बनने वाली है, यह सब विराट् पुरुष ही है । इसके एक चरण में ये सभी प्राणी हैं, और तीन भाग अनन्त अन्तरिक्ष में स्थित हैं ॥५ ॥

६२०.तावानस्य महिमा ततो ज्यायाँश्च पूरुषः ।

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥६ ॥

इस जगत् (जड़) का — इस संसार (चेतन) का — जितना भी विस्तार है, उससे भी बड़ा वह विराट् पुरुष है। इस अमर जीव-जगत् का भी वही स्वामी है। जो अन्न द्वारा वृद्धि प्राप्त करते हैं, उनका भी वही स्वामी है ॥६ ॥

६२१. ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।

स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥७ ॥

उस विराट् पुरुष से यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। उस विराट् से समष्टि — जीव-समुदाय — उत्पन्न हुए। वही देहधारी रूप में सबसे श्रेष्ठ हुआ, जिसने सबसे पहले पृथ्वी, फिर शरीरधारियों को उत्पन्न किया ॥७ ॥

६२२.मन्ये वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ ये अप्रथेथाममितमभि योजनम् ।

द्यावापृथिवी भवतं स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥८ ॥

हे द्यावा- पृथिवि ! पालनकर्त्ता के रूप में हम आपको जानते हैं। आप हमें अपरिमित धन प्रदान करें। हे द्युलोक और पृथ्वीलोक ! आप हमारे लिए सुखदायी बनकर हमें पापों से मुक्त करें ॥८ ॥

६२३.हरी त इन्द्र श्मश्रूण्युतो ते हरितौ हरी ।

तं त्वा स्तुवन्ति कवयः पुरुषासो वनर्गवः ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! (हरिताभ सोमरस पान से) आपकी मूँछें हरिताभ हो गई हैं और दोनों घोड़े भी हरिताभ हैं। हे उत्तम गौओं के पालक ! विवेकीजन आपकी स्तुति करते हैं ॥९ ॥

६२४.यद्वर्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्चो गवामुत ।

सत्यस्य ब्रह्मणो वर्चस्तेन मा सं सृजामसि ॥१० ॥

जो तेज सुवर्ण में है, गौओं में है तथा सत्य स्वरूप ब्रह्म में है, उस तेज से सम्पन्न होने की हम कामना करते हैं ॥१० ॥

६२५.सहस्तन्न इन्द्र दद्ध्योज ईशे ह्यस्य महतो विरप्शिन् ।

क्रतुं न नृम्णं स्थविरं च वाजं वृत्रेषु शत्रून्त्सहना कृधी नः ॥११ ॥

हे महान् बल के स्वामी, ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! हमारे श्रेष्ठ यज्ञ के अनुरूप ऐश्वर्य, बल एवं सामर्थ्य हमें प्रदान करें और युद्ध में शत्रुओं को पराजित करने की शक्ति प्रदान करें ॥११ ॥

६२६.सहर्षभाः सहवत्सा उदेत विश्वा रूपाणि बिभ्रतीर्द्व्यूध्नीः ।

उरुः पृथुरयं वो अस्तु लोक इमा आपः सुप्रपाणा इह स्त ॥१२ ॥

वृषभों और बछड़ों सहित, बड़े थन वाली, अनेक रूप रंगवाली हे गौओं ! तुम हमारे पास आओ। यह महान् लोक तुम्हारे वास के योग्य हो, यह जल तृप्तिकारक होकर तुम्हें प्राप्त हो ॥१२ ॥

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

॥पञ्चमः खण्डः ॥

६२७.अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमें लम्बी आयु प्रदान करें, हमें अन्न और बल से पूर्ण करें तथा श्वान-वृत्ति वाले शत्रुओं को हमसे दूर करें ॥१ ॥

६२८.विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा वि राजति ॥२ ॥

अत्यन्त तेजस्वी सूर्यदेव प्रचुर मात्रा में सोमपान करें, याजकों को बाधारहित आयु प्रदान करें । ये सूर्यदेव वायु से प्रेरित रश्मियों के माध्यम से सम्पूर्ण जगत् का पोषण करते हैं और उन्हें आभा आदि से पुष्ट करके विविध रूपों में प्रकाशित होते हैं ॥२ ॥

६२९.चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥३ ॥

जंगम, स्थावर जगत् की आत्मारूपी सूर्यदेव, दैवी शक्तियों के अद्‌भुत तेज के समूह के रूप में उदित हो गये हैं । इन सूर्यदेव ने मित्र, वरुण आदि देवों के चक्षु रूप में उदय होते ही द्युलोक, पृथ्वीलोक तथा अन्तरिक्ष को अपने तेज से भर दिया है ॥३ ॥

६३०.आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥४ ॥

गतिमान् ये तेजस्वी सूर्यदेव प्रकट हो गये हैं । सबसे पहले वे माता पृथ्वी को और फिर पिता स्वर्ग तथा अन्तरिक्ष को प्राप्त होते हैं ॥४ ॥

[सूर्य क्षितिज से उदित होकर आकाश मध्य तक पहुँचता है, उसी का आलंकारिक वर्णन यहाँ किया है ।]

६३१.अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥५ ॥

इन सूर्यदेव का प्रकाश (आकाश में रश्मियों के रूप में) संचरित होता है । ये रश्मियाँ उदित होने पर प्रकाशित होती हैं और अस्त होने पर विलीन हो जाती हैं । ये महान् सूर्यदेव द्युलोक को विशेष रूप से प्रकाशमान करते हैं ॥५ ॥

६३२.त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते ।
प्रति वस्तोरह द्युभिः ।६ ॥

ये सूर्यदेव दिन की तीस घड़ियों तक अपनी रश्मियों से प्रकाशित होते हैं । इन प्रकाशित सूर्यदेव की प्रार्थना की जाती है ॥६ ॥

[ज्योतिष् के सिद्धान्तानुसार ६० घटी का अहोरात्र,उसमें दिन ३० घटी, रात्रि ३० घटी ।]

६३३. अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः ।
सूराय विश्वचक्षसे ॥७ ॥

सबको प्रकाश देने वाले सूर्यदेव के उदित होते ही रात्रि के साथ तारामण्डल छिप जाते हैं, जैसे दिन में चोर छिप जाते हैं ॥७ ॥

६३४. अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥८॥

प्रज्वलित हुई अग्नि की किरणों के समान इन सूर्यदेव की प्रकाश-रश्मियाँ सम्पूर्ण प्राणि-जगत् को देखती हैं ॥८॥

६३५. तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।
विश्वमाभासि रोचनम् ॥९॥

हे सूर्यदेव ! आप साधकों का उद्धार करने वाले हैं, समस्त संसार में एक मात्र दर्शनीय और प्रकाशक हैं। चन्द्रमा, तारागण आदि चमकने वाले पदार्थों को भी आप ही प्रकाशित करते हैं ॥९॥

६३६. प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् ।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥१०॥

हे सूर्यदेव ! आप देवों के सहयोगी मरुतों, मनुष्यों तथा समस्त संसार को देखने का सुअवसर प्रदान करने के लिए (दर्शनीय-ज्योति के रूप में) सभी के समक्ष उदित होते हैं ॥१०॥

६३७. येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥११॥

हे सबको पवित्र करने वाले तेजस्वी सूर्यदेव ! आपके पोषणकारी, सर्वलोक-प्रकाशक, दिव्य प्रकाश की हम स्तुति करते हैं ॥११॥

६३८. उद्द्यामेषि रजः पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥१२॥

हे सूर्यदेव ! आप दिन को रात्रि से नापते हुए शरीरधारियों को प्रकाशित करते हैं और स्वर्ग तथा अन्तरिक्ष को भी प्रकाश से भर देते हैं ॥१२॥

६३९. अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥१३॥

सूर्यदेव शुद्ध करने वाले सात घोड़ों (सतरंगी किरणों) को अपने रथ में जोड़े हुए हैं। रथ चलाने वाली, घोड़े रूपी किरणों से अपनी शक्तियों के द्वारा सूर्यदेव सब जगह जाते हैं ॥१३॥

[वैज्ञानिक सन्दर्भ में सूर्य की सात किरणों को निम्न प्रकार बताया है "बैनीआहपीनाला" बैंगनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी, लाल। मन्त्र में इसे ही सूर्य के सात घोड़े कहा गया है।]

६४०. सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ॥१४॥

हे प्रकाशक सूर्यदेव ! शुद्ध करने वाली सात रंग की सात किरणें आपके रथ को ले जाती हैं ॥१४॥

॥इति पञ्चमः खण्डः ॥

* * *

॥इत्यारण्यपर्वणि षष्ठोऽध्यायः ॥

॥ पूर्वार्चिकः समाप्तः ॥

॥अथ महानाम्न्यार्चिक: ॥

६४१.विदा मघवन् विदा गातुमनुशंसिषो दिश: ।
शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरूवसो ॥१ ॥

हे परमात्मन् (सम्पत्तिशाली) इन्द्रदेव ! आप सब कुछ जानते हैं, अत: लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग दिखाएँ। हे शक्तियों के स्वामी ! हे ऐश्वर्यवान् प्रभो !आप हमें उपदेश दें ॥१ ॥

६४२.आभिष्ट्वमभिष्टिभि: स्वा३र्न्नांशु: । प्रचेतन प्रचेतयेन्द्र द्युम्नाय न इषे ॥२ ॥

हे त्रैलोक्यपते इन्द्रदेव ! सूर्यदेव के समान तेजस्वी आप तेजयुक्त, पोषक अन्न प्राप्त करने की दिशा में प्रेरित करते हुए हमें संरक्षण प्रदान करें ॥२ ॥

६४३.एवा हि शक्रो राये वाजाय वज्रिव: । शविष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जस ।
आ याहि पिब मत्स्व ॥३ ॥

हे महान् वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप शक्तिवान् हैं। अत: हे बलशाली इन्द्रदेव ! आप हमें धन और बल प्राप्त करने के लिए समर्थ बनाएँ। आप हमें सामर्थ्यवान् बनाएँ। आप हमारे पास आकर सोमरस के पान से आनन्दित हों ॥३ ॥

६४४.विदा राये सुवीर्यं भवो वाजानां पतिर्वशाँ अनु ।
मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे य: शविष्ठ: शूराणाम् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! उत्तम सामर्थ्य से धन प्राप्त करने का मार्ग आप जानते हैं। पुरुषों में बलवान् शूर की तरह हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप सर्व-शक्तियों के स्वामी हैं। आपके अनुवर्ती साधक, आपके अनुकूल होकर सामर्थ्यवान् बनते हैं ॥४ ॥

६४५.यो मंहिष्ठो मघोनाम शुर्न्न शोचि: । चिकित्वो अभि नो नयेंद्रो विदे तमु स्तुहि ॥

जो समर्थ, ऐश्वर्यशालियों में सबसे बड़ा है, वही अपनी किरणों से व्यापक सूर्यदेव के समान कान्तिमान् है। वैसे ही हे ज्ञानवान् इन्द्रदेव ! आप हमें ज्ञान सम्पन्न बनाने के लिए उपयुक्त मार्ग दिखाएँ। हे साधक ! ज्ञान मार्ग के पथिक की ही स्तुति करो ॥५ ॥

६४६.ईशे हि शक्रस्तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम् ।
स न: स्वर्षदति द्विष: क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत् ॥६ ॥

सर्व शक्तिमान् इन्द्रदेव, ही सबके संरक्षक हैं, इसलिए अपराजेय और विजयी इन्द्रदेव को अपने संरक्षण के लिये बुलाते हैं। वे शत्रुओं को मार भगाने वाले, सत्कर्म करने वाले, सबके रक्षक, ज्ञान स्वरूप और महान् हैं ॥६ ॥

६४७.इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे जेतारमपराजितम् ।
स न: स्वर्षदति द्विष: स न: स्वर्षदति द्विष: ॥७ ॥

धन प्राप्ति की कामना से अपराजेय, विजयी इन्द्रदेव को हम मदद के लिए बुलाते हैं, वे इन्द्र देवता हमारे शत्रुओं को हमसे दूर करें ॥७ ॥

६४८.पूर्वस्य यत्ते अद्रिवोंऽशुर्मदाय । सुम्न आ धेहि नो वसो पूर्ति: शविष्ठ

शस्यते। वशी हि शक्रो नूनं तन्नव्यं संन्यसे ॥८॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपका जो आदि स्वरूप है, वह आनन्दवर्द्धक है। हे सबके पालनकर्त्ता इन्द्रदेव ! वह हमारे सुख के लिए हमें प्रदान करें। हे बलशाली इन्द्रदेव ! आपके पोषणकारी स्वरूप की ही सर्वत्र प्रशंसा होती है। आप निश्चित रूप से शक्तिमान् और सबको अपने वश में करने वाले हैं, अत: अपनी नवीन स्तुतियों के योग्य आपको अपने पूजा-स्थल पर स्थापित करते हैं ॥८॥

६४९.प्रभो जनस्य वृत्रहन्त्समर्येषु ब्रवावहै।
शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवो अद्वयुः ॥९॥

हे वृत्रहन्ता प्रभो ! हम श्रेष्ठ मनुष्यों में आपकी ही प्रशंसा करते हैं। आप हमारे लिए गोरूप (आत्मा) हैं, मित्र रूप हैं। आप उत्तम प्रकार से सेवा के योग्य तथा अद्वितीय एवं महान् हैं ॥९॥

६५०.एवाह्योऽ३ऽ३ऽ३ व। एवा ह्यग्ने। एवाहीन्द्र।
एवा हि पूषन्। एवा हि देवाः ॐएवाहि देवाः ॥१०॥

हे इन्द्र !आप शत्रु का संहार करने वाले हैं। हे अग्निदेव ! आप ज्योति स्वरूप हैं। हे पूषन् ! आप पोषणकर्ता हैं ।हे समस्त देवगण !आप सभी दिव्य गुणों से सम्पन्न हैं।आप सभी ऐसे ही (इन गुणों से सम्पन्न) हैं ॥१०॥

॥इति महानाम्न्यार्चिकः॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि - शंयु बार्हस्पत्य भरद्वाज ५८६। वसिष्ठ मैत्रावरुणि ५८७। वामदेव गौतम ५८८, ५९१, ६०२, ६०६, ६०८, ६११, ६१५-६१६, ६२२-६२६। शुन:शेप आजीगर्ति अथवा कृत्रिम देवरात वैश्वामित्र ५८९। कुत्सआङ्गिरस(गृत्सपद) ५९०।अमहीयुआङ्गिरस ५९२-५९३।आत्मा ५९४।श्रुतकक्ष आङ्गिरस ५९५।पवित्र आङ्गिरस ५९६। मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ५९७-५९८, ६०५। प्रथ वासिष्ठ ५९९। गृत्समद शौनक ६००, ६०८। नृमेध और पुरुमेध आङ्गिरस ६०१। गोतम राहूगण ६०३, ६०४। भरद्वाज बार्हस्पत्य ६०९। ऋजिश्वा भारद्वाज ६१०। हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ६१२। विश्वामित्र गाथिन (ब्रह्म) ६१३-६१४। नारायण ६१७-६२१। शतं वैखानस ६२७। विभ्राट् सौर्य ६२८। कुत्स आङ्गिरस ६२९। सार्पराज्ञी ६३०-६३२। प्रस्कण्व काण्व ६३३-६४०। प्रजापति ६४१-६५०।

देवता- इन्द्र ५८६-५८८, ५९५, ५९७-५९८, ६०१, ६१२, ६२३-६२५। वरुण ५८९। पवमान सोम ५९०, ५९२, ५९३, ५९६। विश्वदेवा ५९१, ५९९, ६१०। अन्न ५९४। वायु ६००। प्रजापति ६०२। सोम ६०३, ६०४। अग्नि ६०५, ६०६, ६०९, ६१४-६१६। अपांनपात् ६०७। रात्रि ६०८। लिङ्गोक्त ६११। आत्मा अथवा अग्नि ६१३। पुरुष ६१७-६२१। द्यावापृथिवी ६२२। गौ ६२६। अग्नि पवमान ६२७। सूर्य ६२८, ३२९, ६३३-६४०। सूर्य अथवा आत्मा ६३०-६३२। इन्द्र त्रैलोक्यात्मा ६४१-६५०।

छन्द- बृहती ५८६। त्रिष्टुप् ५८७, ५८९-५९० ५९४, ५९९, ६०३-६०४, ६०६-६०७, ६१२-६१४, ६२२, ६२५-६२६, ६२९। गायत्री ५८८, ५९२-५९३, ५९५, ५९७, ५९८, ६००, ६०५, ६२७, ६३०-६४०। एकपाद् जगती ५९१। जगती ५९६, ६०९-६१०, ६२८। अनुष्टुप् ६०१-६०२, ६०८, ६१७-६२१, ६२३-६२४। महापंक्ति ६११। पंक्ति ६१५, ६१६। शक्वरी सोपसर्गा ६४१-६५०।

सामवेद-संहिता

उत्तरार्चिक:

॥अथ प्रथमोऽध्याय: ॥

॥प्रथम: खण्ड: ॥

६५१.उपास्मै गायता नर: पवमानायेन्दवे। अभि देवाँ इयक्षते ॥१ ॥

हे याजको ! देव शक्तियों के निमित्त, यज्ञार्थ प्रयुक्त होने वाले, शुद्ध हुए इस सोम की स्तुति करो ॥१ ॥

६५२.अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयु:। देवं देवाय देवयु: ॥२ ॥

यह दिव्य रस देवों ने देव पुरुषों के लिए प्रकट किया है। इसे अथर्वा ऋषियों (विज्ञान-वेत्ताओं) ने तुम्हारे (याजकों) लिए मधुर गो- दुग्ध के साथ मिलाया है। ॥२ ॥

६५३.स न: पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते। शं राजन्नोषधीभ्य: ॥३ ॥

हे कल्याणकारी सोम ! आप स्वयं शुद्ध होकर पशुधन, प्रजाधन तथा अश्वादि सैन्यबल का कल्याण करें और ओषधियों को पवित्र बनाएँ ॥३ ॥

६५४.दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा। सोमा: शुक्रा गवाशिर: ॥४ ॥

कान्तिमान्, तेजस्वी शब्दयुक्त धारा से शुद्ध हुए सोमरस को गाय के दूध में मिलाकर तैयार किया जाता है ॥४ ॥

६५५. हिन्वानो हेतृभिर्हित आ वाजं वाज्यक्रमीत्। सीदन्तो वनुषो यथा ॥५ ॥

जैसे युद्ध भूमि में यशस्वी शूरवीर घूमते हैं, उसी प्रकार याजकों से प्रशंसित, बलवर्द्धक, सबका हितकारी, संस्कारित सोम यज्ञ भूमि में प्रतिष्ठा पाता है ॥५ ॥

६५६.ऋधक्सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवा कवे। पवस्व सूर्यो दृशे ॥६ ॥

हे ज्ञानयुक्त सोमदेव ! आप तेजस्वी सूर्य के सदृश, दिव्य आभा युक्त होकर सबके कल्याण के लिए संस्कारित हों ॥६ ॥

६५७.पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत। अर्वन्तो न श्रवस्यव: ॥७ ॥

हे बलवर्द्धक सोम ! शुद्ध होते समय आपकी यशस्वी धारा घुड़साल से निकलने वाले द्रुतगामी अश्वों के समान वेगवती होती है ॥७ ॥

६५८.अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये। अवावशन्त धीतय: ॥८ ॥

मधुररस के कलश में इस सोमरस को छानते है, जिसे हमारी अंगुलियाँ बार-बार शुद्ध करती हैं ॥८ ॥

६५९.अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः। अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥९ ॥

जल युक्त कलश में छाना गया सोमरस यज्ञ स्थान में उसी प्रकार (स्वभावतः) जाता है, जैसे दुधारू गाय अपने स्थान में जाती है ॥९ ॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

६६०.अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप स्तुति के बाद आहुतियों को ग्रहण कर, उन्हें देवों तक पहुँचाने के लिये, देवों के प्रतिनिधि रूप में आसन ग्रहण करें ॥१ ॥

६६१.तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥२ ॥

हे प्रकाश स्वरूप परमात्मन् ! हम आपको समिधाओं तथा घृत द्वारा प्रदीप्त करते हैं। अतः हे सामर्थ्यवान् ! आप अधिक प्रखर हों ॥२ ॥

६६२.स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि। बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप ऐसी कृपा करें कि हमें महान् पराक्रम और श्रेष्ठ यशदायी सामर्थ्य प्राप्त हो ॥३ ॥

६६३.आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्। मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥४ ॥

हे मित्रावरुण ! हमारी इन्द्रियों के आवास (देह) को तेजस्विता से युक्त करें और ऊर्ध्वलोकों को भी श्रेष्ठ रसों (भावों) से सिंचित करें ॥४ ॥

६६४.उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः । द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥५ ॥

हे पवित्रकर्मा मित्रावरुणो ! आप हविष्यान्न एवं महान् स्तुतियों द्वारा पुष्ट होकर अपने गरिमामय श्रेष्ठ यश को प्राप्त करते हैं ॥५ ॥

६६५.गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम्। पातं सोममृतावृधा ॥६ ॥

जमदग्नि ऋषि द्वारा स्तुति किये गये हे मित्रावरुणो ! आप यज्ञ स्थान पर विराजें और हमारे द्वारा सिद्ध किये गये सोमरस का पान करें ॥६ ॥

६६६.आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप पधारें और हमारे द्वारा निकाले गये सोमरस का पान कर श्रेष्ठ आसन पर विराजें ॥७ ॥

६६७.आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! मंत्र सुनते ही रथ में जुड़ जाने वाले श्रेष्ठ अश्वों के माध्यम से आप निकट आकर हमारी प्रार्थनाओं पर ध्यान दें ॥८ ॥

६६८.ब्रह्माणस्त्वा युजा वयं सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम ब्रह्मनिष्ठ सोमयज्ञकर्ता और सोमरस तैयार करने वाले साधक, सोमरस पीने वाले आपको उपयुक्त स्तुतियों द्वारा बुलाते हैं ॥९ ॥

६६९.इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम्। अस्य पातं धियेषिता ॥१० ॥

हे इन्द्र एवं अग्निदेव ! हमारी स्तुतियों से प्रभावित, आकाश से- ऊँचे पर्वत शिखरों से- आया हुआ यह श्रेष्ठ सोमरस है । हमारे भक्ति-भाव को स्वीकार कर इस सोमरस का पान करें ॥१० ॥

६७०.इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः । अया पातमिमं सुतम् ॥११ ॥

हे इन्द्राग्ने ! आप स्तुति करने वालों के सहायक बनें । स्तुतियों द्वारा बुलाये गये आप स्फूर्तिदाता एवं यज्ञ के साधनभूत सोमरस का पान करें ॥११ ॥

६७१.इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे । ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥१२ ॥

यज्ञीय प्रेरणा से स्तुति करने वालों के लिए योग्य फलदाता इन्द्र और अग्निदेव की हम पूजा करते हैं । वे दोनों देव इस यज्ञ में सोमरस पान से संतुष्ट हों ॥१२ ॥

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः ॥

६७२.उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे । उग्रं शर्म महि श्रवः ॥१ ॥

हे सोमदेव ! शौर्यवर्द्धक, सुखदायक, महान् यशस्वी, पोषक तत्व के रूप में आपको, भू लोक में हम प्राप्त करते हैं ॥१ ॥

६७३.स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित्परि स्रव ॥२ ॥

हे ऐश्वर्य प्रदाता सोमदेव ! हमारे पूज्य इन्द्र, वरुण और मरुतों के लिए आप स्रवित हों ॥२ ॥

६७४.एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् । सिषासन्तो वनामहे ॥३ ॥

हे सोमदेव ! मानवोचित ऐश्वर्य प्राप्त करके हम आपकी सेवा की इच्छा से आपकी अभ्यर्थना करते हैं ॥३ ॥

६७५.पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥४ ॥

हे ऐश्वर्यदाता, स्वर्ण के समान दमकने वाले, स्वच्छ, सोमदेव ! शोधन क्रम में जल से संयुक्त होकर, अविरल धारा के रूप में आप निश्चित ही यज्ञ- पात्र में प्रतिष्ठित होते हैं ॥४ ॥

६७६.दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत् ।
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षसि नृभिर्धौतो विचक्षणः ॥५ ॥

यज्ञ कर्ताओं द्वारा परिष्कृत किया गया मधुर, आह्लादक, दिव्यरस सोम, यज्ञ वेदी पर स्थापित है । साधकों का निरीक्षक यह सोम, श्रेष्ठ यज्ञीय-भाव-सम्पन्न याजकों को प्राप्त होता है ॥५ ॥

६७७.प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति ॥६ ॥

याजकों द्वारा शोधित हे सोमदेव ! हविरूप पोषक आहार के रूप में आप शीघ्र ही कलश में स्थापित हों । बलवान् घोड़े को स्वच्छ करने वालों की तरह आपको शोधित करने वाले ऋत्विज, अँगुलियों के माध्यम से आपको यज्ञ स्थान पर ले आते हैं ॥६ ॥

६७८.स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजना रक्षमाणः ।

पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः ॥७ ॥

उत्तम आयुधों से युक्त, शत्रुनाशक, विघ्नों को दूर कर उनसे रक्षा करने वाला, पालक, दिव्यता का विकास करने वाला, उत्तम बलवान्, आकाश तथा पृथ्वी का धारक दिव्य सोम शोधित किया जाता है ॥७ ॥

६७९. ऋषिर्विप्रः पुर एता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन ।
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यां३ गुह्यं नाम गोनाम् ॥८ ॥

नेतृत्त्व प्रदान करने वाले, प्रखर, परमज्ञानी, धैर्यवान् उशना ऋषि द्वारा, गौओं में गुप्त रूप से रहने वाले सोम को यत्नपूर्वक प्राप्त किया गया ॥८ ॥

॥इति तृतीयः खण्डः ॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः ॥

६८०. अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥१ ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! विश्व सृजेता, सर्वज्ञ आपके दर्शन के लिए हम उसी तरह लालायित हैं, जैसे न दुही हुई गौएँ अपने बछड़े के पास जाने के लिए लालायित रहती हैं ॥१ ॥

६८१. न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥२ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! आपके समान इस पृथ्वीलोक या दिव्यलोक में, न कोई है, न कभी हुआ है और न कभी होगा । हे इन्द्रदेव ! अश्व, गौ तथा धन-धान्य की कामना वाले हम आपकी प्रार्थना करते हैं ॥२ ॥

६८२. कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥३ ॥

निरन्तर प्रगतिशील वीर इन्द्र ! किन-किन तृप्तिकारक पदार्थों की भेंट से, किस प्रकार की पूजा पद्धति से प्रसन्न होकर, आप किन शक्तियों सहित हमारे सहयोगी बनेंगे ? ॥३ ॥

६८३. कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा चिदारुजे वसु ॥४ ॥

सत्यनिष्ठों को आनन्द प्रदान करने वालों में सोम सर्वोपरि है; क्योंकि हे इन्द्रदेव ! यह आपको दुर्धर्ष शत्रुओं के ऐश्वर्य को नष्ट करने की प्रेरणा देता है ॥४ ॥

६८४. अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतये ॥५ ॥

स्तुतियों से प्रसन्न करने वाले, अपने मित्रों के रक्षक हे इन्द्रदेव ! हमारी हर प्रकार से रक्षा करने के लिए आप उच्चकोटि की तैयारी से प्रस्तुत हों ॥५ ॥

६८५. तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥६ ॥

गौएँ जिस प्रकार गौशाला में अपने बछड़ों के पास जाने के लिए लालायित रहती हैं, उसी प्रकार हे ऋत्विजो ! शत्रुओं से रक्षा करने वाले, तेजस्वी, सोमरस से तृप्त होने वाले इन्द्र की हम स्तुति करते हैं ॥६ ॥

६८६.द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम्।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥७॥

देवलोक वासी, उत्तम दानदाता, सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव से सब प्रकार के ऐश्वर्य, सैकड़ों गौओं तथा पोषक अन्न की हम कामना करते हैं ॥७॥

६८७.तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये।
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥८॥

जैसे अभिभावक को बालक पुकारता है, वैसे ही हम अपने हितकारी इन्द्रदेव को सहायता के लिये बुलाते हैं। हे ऋत्विजो ! अपनी रक्षा के लिए सोमयज्ञ में ऐश्वर्य देने वाले वेगवान् अश्वों से युक्त इन्द्रदेव की आराधना करो ॥८॥

६८८.न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदेषु शिप्रमन्धसः।
य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् ॥९।

सुन्दर आकृति वाले इन्द्रदेव को, प्राणों की बाजी लगाने वाले असुर भी नहीं हरा सकते। ऐसे ऐश्वर्यदाता इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं, जो सोमरस के आनन्द में सोमयज्ञ करने वाले, भावपूर्ण स्तुतियाँ करने वाले याजकों को श्रेयस्कर अनुदान देते हैं ॥९॥

॥इति चतुर्थः खण्डः॥

***

॥पंचमः खण्डः॥

६८९.स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुतः ॥१॥

हे स्वादिष्ट एवं आनन्दवर्द्धक सोमदेव ! आप इन्द्रदेव के पीने के लिए स्रवित और परिष्कृत हों ॥१॥

६९०.रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते। द्रोणे सधस्थमासदत् ॥२॥

दुष्ट-नाशक, मानव-हितकारी सोम शुद्ध होकर सुवर्ण पात्र में रखा हुआ यज्ञ स्थल में प्रतिष्ठित हो गया ॥२॥

६९१.वरिवोधातमो भुवो मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः। पर्षि राधो मघोनाम् ॥३॥

हे सोमदेव ! आप महान् ऐश्वर्य दाता हैं तथा शत्रुओं का पूर्णतया नाश करने वाले हैं, इसलिये दुष्ट प्रयोजनों में धन न लगने देकर, उसे सत्प्रयोजनों में नियोजित करने के लिए प्रदान करें ॥३॥

६९२.पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः। महि द्युक्षतमो मदः ॥४॥

हे सोमदेव ! आप कर्मयोगी, सुखकारी, महान् तेजस्वी, आनन्ददायक एवं अत्यन्त मधुर हैं, इसलिए इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिये आप शुद्ध होकर प्रतिष्ठित हों ॥४॥

६९३.यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीत्वा स्वर्विदः।
स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः ॥५॥

हे सोमदेव ! बलशाली इन्द्रदेव आपका पान करके अधिक बलशाली हो जाते हैं। आत्मज्ञानी भी आपका पान करके अत्यधिक आनन्दित होते हैं। ऐसे उत्तम ज्ञानी इन्द्रदेव, आपके बल से संग्राम में विजयी अश्व की भाँति, शीघ्रता से शत्रुओं के धन को अपने अधिकार में ले लेते हैं ॥५॥

६९४.इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।
श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥६ ॥

शीघ्रता से शोधित हुआ, देदीप्यमान, ज्ञानवर्द्धक, शुद्ध हरिताभ सोमरस, बलशाली इन्द्रदेव को शीघ्र प्राप्त हो ॥६ ॥

६९५.अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः ।
सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥७ ॥

युद्ध के समय सेवन योग्य यह सोमरस इन्द्रदेव के लिए तैयार किया जाता है । जैसा कि सभी जानते हैं, विजय के लिए इच्छुक इन्द्रदेव को यह सोमरस विशेष स्फूर्ति देता है ॥७ ॥

६९६. अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णाति सानसिम् ।
वज्रं च वृषणं भरत्समप्सुजित् ॥८ ॥

सेवन योग्य सोमपान से आनन्दित हुए इन्द्रदेव जल प्रवाह को स्तम्भित करके अपने धनुष और वज्र को धारण कर लेते हैं ॥८ ॥

६९७.पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥९ ॥

हे स्तोताओ ! निश्चित रूप से विजय दिलाने वाले, आनन्ददायक इस सोमरस को श्वान (वृत्तिवालों) से बचाओ ॥९ ॥

६९८.यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः । इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ॥१० ॥

यज्ञ में सहयोगी यह सोमरस शोधित होते समय अश्व वेग जैसी गति से पात्र में गिरता है ॥१० ॥

६९९.तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया । यज्ञाय सन्त्वद्रयः ॥११ ॥

हे ऋत्विजो ! दुष्टनाशक उस सोम को आवाहित करो और यज्ञ का सम्मान करते हुए मानव- मात्र के कल्याण की कामना करो ॥११ ॥

७००.अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥१२ ॥

तृप्तिदायी जल को पवित्र करने वाला, हितकारी सोम, जिस जल में मिलाया जाता है, उसमें यह महान् और सर्वज्ञ सोमरस सूर्य के प्रकाश से अधिक प्रखर हो उठता है ॥१२ ॥

७०१.ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः ।
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यां३नाम तृतीयमधि रोचनं दिवः ॥१३ ॥

यज्ञ की जिह्वा सदृश, छाने जाते समय शब्द करता हुआ यह सोमरस प्रिय और मधुर रूप में तैयार होता है । यज्ञ कार्य का रक्षक यह सोम अभय है । माता-पिता के नाम से अपरिचित, यजमान द्वारा तैयार किया गया, लोक-लोकान्तरों में ख्यातिसिद्ध यह सोम तीसरी संज्ञा (सोमजयी के रूप में) धारण करता है ॥१३ ॥

७०२. अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमाणः कोश आ हिरण्यये ।
अभी ऋतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजसि ॥१४ ॥

ऋत्विग्गण स्वर्ण कलश में शोधित होते समय, शब्द करने वाले तेजस्वी सोमरस की स्तुति करते हैं । यह सोम तीनों ही संध्याओं (प्रातः, मध्याह्न, सायं) में प्रकाशित होता है ॥१४ ॥

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

* * *

॥षष्ठः खण्डः ॥

७०३. यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।

प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥१ ॥

हे प्रार्थना करने वाले साधको ! आप प्रत्येक यज्ञ में प्रज्वलित अग्निदेव की अपनी वाणी से स्तुति करो । हम भी उन अविनाशी, सर्वज्ञ अग्निदेव की, सखा के समान प्रशंसा करते हैं ॥१ ॥

७०४. ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।

भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥२ ॥

बल-पराक्रम को सतत बनाये रखने वाले अग्निदेव की हम प्रार्थना करते हैं ! वे निश्चय ही हमारे लिए हितकारी हैं । वे हमारे हव्य को देवताओं तक पहुँचाते हैं । युद्ध में वे हमारी रक्षा करते हुए उन्नति में सहायक और हर प्रकार से हमारी रक्षा करने वाले सिद्ध हों ॥२ ॥

७०५. एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥३ ॥

उत्तम विधि से की गई हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर हे अग्निदेव ! आप प्रकट हों । यह सोमरस आपको वृद्धि प्रदान करने वाला है ॥३ ॥

७०६. यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् । तत्र योनिं कृणवसे ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप जिस याजक से प्रसन्न होते हैं, उसे बल और श्रेष्ठ आवास प्रदान करते हैं ॥४ ॥

७०७. न हि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां पते । अथा दुवो वनवसे ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आपका तेज चक्षुओं के लिए हानिकारक नहीं है । हे व्रतपालक, मानवों के स्वामी ! आप हमारी प्रार्थना स्वीकार करें ॥५ ॥

७०८. वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः । वज्रिं चित्र हवामहे ॥६ ॥

हे वज्रपाणि इन्द्रदेव ! सोमप्रदाता हम, आपको अपनी रक्षा के लिए उसी प्रकार आवाहित करते हैं, जैसे निर्बल व्यक्ति द्वारा सामर्थ्यवान् को बुलाया जाता है ॥६ ॥

७०९. उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।

त्वामिध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥७ ॥

हे शत्रु-संहारक देवेन्द्र ! हम कर्मशील रहते हुए सहायता के लिए तरुण और शूरवीर रूप में विद्यमान आपका आश्रय लेते हैं । मित्रवत् सहायता के लिए हम आपको पुकारते हैं ॥७ ॥

७१०.अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे । उदेव ग्मन्त उदभिः ॥८ ॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! पानी ले जाते हुए, जल फेंककर खेलते मनुष्य की भाँति, हम आपके पास आकर अपनी इच्छा- तृप्ति की प्रार्थना करते हैं ॥८ ॥

७११.वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।
वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥९ ॥

हे वज्रधारी-शूरवीर इन्द्रदेव ! जैसे नदियों के जल से समुद्र की गरिमा बढ़ती है, उसी तरह हम अपनी स्तुतियों से आपकी गरिमा का विस्तार करते हैं ॥९ ॥

७१२.युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे वचोयुजा ।
इन्द्रवाहा स्वर्विदा ॥१० ॥

गतिशील इन्द्रदेव के महान् रथ में आज्ञा मात्र से ही श्रेष्ठ घोड़े जुड़ जाते हैं । वे स्तुति करने वालों के स्तोत्र से उत्साहित हो गन्तव्य तक पहुँचाते हैं ॥१० ॥

॥इति षष्ठः खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- असित काश्यप अथवा देवल ६५१-६५३ । कश्यप मारीच ६५४-६५६ । शतं वैखानस ६५७-६५९ । भरद्वाज बार्हस्पत्य ६६०-६६२, ७०२-७०७ । विश्वामित्र गाथिन ६६३-६६४, ६६९-६७१ । विश्वामित्र गाथिन अथवा जमदग्नि ६६५ । इरिम्बिठि काण्व ६६६-६६८ । अमहीयु आङ्गिरस ६७२-६७४ । सप्तर्षिगण ६७५-६७६ । उशना काव्य ६७७-६७९ । वसिष्ठ मैत्रावरुणि ६८०-६८१ । वामदेव गौतम ६८२-६८४ । नोधा गौतम ६८५-६८६ । कलि प्रागाथ ६८७-६८८ । मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ६८९-६९१ । गौरवीति शाक्त्य ६९२, ६९३ । अग्नि चाक्षुष ६९४-६९६ । अन्धीगु श्यावाश्वि ६९७- ६९९ । कवि भार्गव ७००-७०२ । शंयु बार्हस्पत्य (तृणपाणि) ७०३-७०४ । सोभरि काण्व ७०८-७०९ । नृमेध आङ्गिरस ७१०-७१२ ।

देवता- पवमान सोम ६५१-६५९, ६७२-६७९, ६७२-६७९, ६८९-७०२ । अग्नि ६६०-६६२, ७०३-७०७ । मित्रावरुण ६६३-६६५ । इन्द्र ६६६-६६८, ६८०-६८८, ७०८-७१२ । इन्द्राग्नी ६६९-६७१ ।

छन्द- गायत्री ६५१-६७४, ६८२, ६८३, ६८९-६९१, ६९८, ६९९, ७०५-७०७ । बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ६७५-६७६, ६८०-६८१, ६८५-६८८, ७०३-७०४ । त्रिष्टुप् ६७७-६७९ । पादनिचृत् गायत्री ६८४ । काकुभ प्रगाथ (विषमा ककुप्‌समा सतोबृहती) ६९२-६९३, ७०८-७०९ । उष्णिक् ६९४-६९६, ७११ । अनुष्टुप् ६९७ । जगती ७००-७०२ । ककुप् ७१० । पुर उष्णिक् ७१२ ।

॥इति प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

७१३.पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥१ ॥

हे ऋत्विजो ! शत्रुनाशक, ऐश्वर्यदाता, शतक्रतु (सौ यज्ञ करने वाले) , आपके द्वारा उपलब्ध कराये गये अन्नरूप सोमरस का पान करने वाले इन्द्रदेव की प्रार्थना करो ॥१ ॥

७१४.पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यां३ सनश्रुतम् । इन्द्र इति ब्रवीतन ॥२ ॥

सहायता के लिए बहुतों द्वारा बुलाये जाने वाले, अनेकों द्वारा जिनकी स्तुति की जाती है, हे ऋत्विजो ! सनातन काल से प्रसिद्ध, उन इन्द्रदेव की वन्दना करो ॥२ ॥

७१५.इन्द्र इन्नो महोनां दाता वाजानां नृतुः । महाँ अभिज्ञ्वा यमत् ॥३ ॥

सभी को गति प्रदान करने वाले, महान् इन्द्रदेव हमारे सामने प्रकट हों और हमें ऐश्वर्य प्रदान करें ॥३ ॥

७१६.प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत । सखायः सोमपाव्ने ॥४ ॥

हे स्तोताओ ! सोमरस का पान करने वाले श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त, इन्द्रदेव को आनन्दित करने वाले स्तोत्र सुनाओ ॥४ ॥

७१७.शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः । चकृमा सत्यराधसे ॥५ ॥

हे ऋत्विजो ! उत्तम दानदाता, न्यायोपार्जित सम्पत्ति वाले इन्द्रदेव की प्रार्थना करो । हम भी उत्तम विधि से उनकी अभ्यर्थना करते हैं ॥५ ॥

७१८.त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो । त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥६ ॥

हे पराक्रमी इन्द्रदेव ! आप हमें अन्न, गौ तथा स्वर्ण प्रदान करें ॥६ ॥

७१९.वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम (साधक) आपको प्राप्त करने की इच्छा से सन्ततिसहित दिव्य स्तोत्रों से आपकी स्तुति करते हैं ॥७ ॥

७२०.न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमैश्चिकेत ॥८ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! यज्ञ कर्म में आपके आवाहन के सिवाय हम अन्य दूसरे की प्रार्थना नहीं करेंगे । हम स्तोत्रों द्वारा आपकी ही स्तुति करना जानते हैं ॥८ ॥

७२१.इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥९ ॥

सोमयज्ञ करने वालों से देवगण प्रसन्न रहते हैं, आलसियों से नहीं । परिश्रमी साधक ही परम आनन्दायी सोम प्राप्त करते हैं ॥९ ॥

७२२.इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥१० ॥

आनन्ददायी सोमरस के इच्छुक इन्द्रदेव के लिए सोमरस को शोधित करने वाले हे साधको ! हमारी वाणी इन्द्रदेव की स्तुति कर रही है, स्तोतागण प्रशंसनीय सोमरस की स्तुति करें ॥१० ॥

७२३.यस्मिन्विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः । इन्द्रं सुते हवामहे ॥११ ॥

उन कान्तिवान् इन्द्रदेव का हम सोमयज्ञ में आवाहन करते हैं, जिनकी स्तुति यज्ञ के सातों 'ऋत्विज्' करते हैं ॥११ ॥

[सप्त ऋत्विज्, यज्ञस्थल पर विद्यमान सप्त संसद (होतृ, पोतृ, नेष्ट्, आग्नीध्र, प्रशास्तृ, अध्वर्यु और ब्रह्मन्) का बोध कराते हैं ।]

७२४.त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥१२ ॥

प्रेरणादायी, उत्साह बढ़ाने वाले, तीन चरणों में सम्पन्न होनेवाले, यज्ञ का विस्तार देवगण करते हैं, जिसकी साधकगण प्रशंसा करते हैं ॥१२ ॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

७२५.अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके लिए शोधित सोमरस तैयार है । इसके पान के लिए आप शीघ्र ही यज्ञवेदी पर पधारें ॥१ ॥

७२६.शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः । आखण्डल प्र हूयसे ॥२ ॥

शत्रुनाशक, शक्तिवान्, पूज्य, सामर्थ्यवान्, तेजस्वी हे इन्द्रदेव ! आपके आनन्द के लिए ही सोमरस तैयार किया गया है । इसलिए हम आपका आवाहन करते हैं ॥२ ॥

७२७.यस्ते शृङ्गवृषो णपात्प्रणपात्कुण्डपाय्यः । न्यस्मिन् दध्र आ मनः ॥३ ॥

हे प्रखर तेजस्वी इन्द्रदेव ! सरलता से पान करने योग्य सोम के लिए इस कुण्डपायी सोमयज्ञ की ओर आप उन्मुख हों ॥३ ॥

७२८.आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय । महाहस्ती दक्षिणेन ॥४ ॥

महान् भुजाओं वाले हे इन्द्रदेव ! आप हमें न्यायोपार्जित ऐश्वर्य दाहिने (सम्मानपूर्वक) हाथ से प्रदान करें ॥४ ॥

७२९.विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम् । तुविमात्रमवोभिः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपको ऐश्वर्यशाली, बहुमुखी पराक्रम करने वाले, व्यापक आकार युक्त संरक्षणकर्ता के रूप में जानते हैं ॥५ ॥

७३०.न हि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम् । भीमं न गां वारयन्ते ॥६ ॥

जैसे बलिष्ठ बैल को कोई नहीं हटा सकता, उसी प्रकार हे वीरेन्द्र ! दान देने में प्रवृत्त आपको देवता या मनुष्य कोई भी नहीं डिगा सकता ॥६ ॥

७३१.अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये। तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥७ ॥

हे बलशाली इन्द्रदेव ! सोमयज्ञ में आपके लिए सोमरस शोधित किया है। उस आनन्ददायी रस का पानकर आप तृप्त हों ॥७ ॥

७३२.मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन्। मा कीं ब्रह्मद्विषं वनः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपसे रक्षण की कामना करने वाले तथा उपहास करने वाले अज्ञानियों का आप पर प्रभाव न पड़े। ज्ञान द्वेषियों की आप मदद न करें ॥८ ॥

७३३.इह त्वा गोपरीणसं महे मन्दन्तु राधसे। सरो गौरो यथा पिब ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! गौ दुग्ध मिश्रित सोमरस की हवि देकर, होता ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए आपकी प्रार्थना करते हैं। तालाब में जल पीने वाले मृग की भाँति आप सोमरस का पान करें ॥९ ॥

७३४.इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम्। अनाभयिन्ररिमा ते ॥१० ॥

हे आश्रयदाता, निर्भय इन्द्रदेव ! जी भर कर पीने के लिए हम आपको शोधित सोमरस देते हैं, आप उसका पान करें ॥१० ॥

७३५.नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या वारैः परिपूतः। अश्वो न निक्तो नदीषु ॥११ ॥

जिस प्रकार घोड़े को जलाशय में स्वच्छ किया जाता है, उसी प्रकार याजकों द्वारा सोम (सोमलता को) स्वच्छ करके, पत्थरों से कूटकर, छलनी में छान कर यह सोमरस तैयार किया गया है ॥११ ॥

७३६.तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः। इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! पुरोडाश की भाँति गाय के दूध में मिला कर शोधित यह मधुर सोमरस आपके लिए तैयार किया गया है। इस आनन्ददायी सोमपान के लिए हम आपका आवाहन करते हैं ॥१२ ॥

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः ॥

७३७. इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते। पिबा त्वाऽ३स्य गिर्वणः ॥१ ॥

हे धनपति, स्तुत्य, बलशाली इन्द्रदेव ! आप रुचिपूर्वक इस सोमरस का पान करें ॥१ ॥

७३८.यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ तन्वम्। स त्वा ममत्तु सोम्य ॥२ ॥

हे सोमपान के योग्य इन्द्रदेव ! आपके शरीर के लिए यह सोम अन्नतुल्य है। यज्ञ में उपस्थित होकर आप इसके पान से आनन्दित हों ॥२ ॥

७३९.प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः। प्र बाहू शूर राधसा ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके दोनों पार्श्वों में वह सोम भली-भाँति रम जाए। स्तुति के प्रभाव से वह आपके समस्त शरीर में संचरित हो। हे वीर इन्द्र ! ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए आपकी भुजाएँ भी समर्थ हों ॥३ ॥

७४०.आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत। सखाय स्तोमवाहसः ॥४ ॥

हे याज्ञिको ! इन्द्रदेव को प्रसन्न करने के लिए प्रार्थना करने हेतु शीघ्र आकर बैठो और स्तवन करो ॥४ ॥

७४१.पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम्। इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥५ ॥

एकत्रित होकर, संयुक्तरूप से सोमयज्ञ में शत्रुओं को पराजित करने वाले ऐश्वर्य के स्वामी इन्द्रदेव की अभ्यर्थना करो ॥५ ॥

७४२.स घा नो योग आ भुवत्स राये स पुरन्ध्या। गमद्वाजेभिरा स नः ॥६ ॥

वे इन्द्रदेव हमारे पुरुषार्थ को प्रखर बनाने में सहायक हों, हमें धन-धान्य से परिपूर्ण करें, ज्ञानप्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करते हुए पोषक अन्न सहित हमारे निकट आएँ ॥६ ॥

७४३.योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये ॥७ ॥

हे ऋत्विजो ! सत्कर्मों के शुभारम्भ में, हर प्रकार के संग्राम में, संरक्षण के लिए बलशाली इन्द्रदेव का हम आवाहन करते हैं ॥७ ॥

७४४.अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम्। यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥८ ॥

स्वर्गधाम के वासी, बहुतों के पास पहुँचकर, उन्हें नेतृत्व प्रदान करने वाले इन्द्रदेव का हम सहायता के लिए आवाहन करते हैं। हमारे पिता ने भी ऐसा ही किया था ॥८ ॥

७४५. आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् ॥९ ॥

हमारी प्रार्थना से प्रसन्न होकर वे इन्द्रदेव निश्चित ही सहस्रों रक्षा-साधनों तथा अन्न-ऐश्वर्य आदि सहित हमारे पास आयेंगे ॥९ ॥

७४६.इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम्।विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! महान् बल प्राप्ति के लिए सोमरस तैयार करके, किये जाने वाले यज्ञ एवं स्तोत्रों को आप पवित्र करते है। आप महान् हैं ॥१० ॥

७४७.स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः। सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥११ ॥

साधकों को प्रगति देने वाले, कष्टों से भलीप्रकार त्राण देने वाले, श्रेष्ठ यशदाता, असुरजयी वे इन्द्रदेव, उच्च आकाश में, देवों के आवास में रहते हैं। हम उनका आवाहन करते हैं ॥११ ॥

७४८.तमु हुवे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम्।भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥१२ ॥

हम उन बलवान् इन्द्रदेव को अन्न की वृद्धि करने के लिए यज्ञ में बुलाते हैं। हे इन्द्रदेव ! सुख एवं उन्नति के समय मार्गदर्शक के रूप में आप हमारे पास रहें ॥१२ ॥

॥इति तृतीयः खण्डः ॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः ॥

७४९.एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥१ ॥

अपनी स्तुतियों से, ऋत्विजों के दूत रूप, बल क्षय न करने वाले, प्रगतिशील, अमर अग्निदेव का तुम्हारे (यजमान के) लिए आवाहन करते हैं ॥१ ॥

७५०.स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः ।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ॥२ ॥

वे अग्निदेव विश्व के सभी पदार्थों का सेवन करके समर्थ तेज को नियोजित करते हैं । तब वे उत्तम ज्ञानी, संयमी, पवित्र अग्निदेव श्रेष्ठ आहुतियों से प्रदीप्त होकर तेमान् होते हैं । यह अग्नि विद्वानों का श्रेष्ठ धन है ॥२ ॥

७५१.प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥३ ॥

देवलोक से आने वाली (उषादेवी) की प्रकाशित किरणें, घने अन्धकार को पराजित करती हैं । नेतृत्त्व की क्षमता सम्पन्न द्युलोक की यह पुत्री सम्पूर्ण जगत् को प्रकाश से भर देती हैं ॥३ ॥

७५२.उदुस्त्रियाः सृजते सूर्यः सचा उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥४ ॥

ग्रह, नक्षत्र और सूर्य, आकाश को प्रकाशित करते हैं । सूर्यदेव सहसा अपनी किरणों को फैलते हैं । हे उषे ! आपके और सूर्य के प्रकाश को पाकर हम अन्नादि से परिपूर्ण हों ॥४ ॥

७५३.इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! सबके आश्रयदाता, आपको स्वर्ग की कामना वाली प्रजा मदद के लिए बुलाती है । अपनी क्षमता से स्वर्ग में स्थान बनाने वाले हे देवो ! ये साधक आश्रय के लिए आपका आवाहन करते हैं; क्योंकि आप ही स्तुति करने वालों के लिए जाते हैं ॥५ ॥

७५४.युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ॥६ ॥

हे नेतृत्त्व प्रदान करने वाले अश्विनीकुमारो ! आप दिव्य आहार देने वाले हैं । स्तुति करने वालों के प्रेरक हे देव ! रथ रोककर मनोयोगपूर्वक यहाँ मधुर रस का पान करें ॥६ ॥

॥इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

॥पंचमः खण्डः ॥

७५५. अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥१ ॥

तेजस्वी, सभी इच्छाओं की पूर्ति करने वाले, ज्ञानवर्द्धक इस सोमरस को उसके शाश्वत स्वरूप का स्मरण करते हुए, विद्वानों ने तैयार किया है ॥१ ॥

७५६.अयं सूर्य इवोपदृगयं सरांसि धावति । सप्त प्रवत आ दिवम् ॥२ ॥

देवलोक तक सप्तधाराओं (सप्तकिरणों के रूप) में प्रवाहित, सूर्यदेव के समान सभी लोकों का द्रष्टा, यह सोम जल-पात्रों में शोधित किया जाता है ॥२ ॥

७५७.अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि । सोमो देवो न सूर्यः ॥३ ॥

पवित्र होने वाला यह सोमरस, सूर्यदेव के समान सभी लोकों में प्रकाशित होता है ॥३ ॥

७५८.एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ॥४ ॥

सनातन रीति से संस्कारित किया गया यह हरिताभ सोमरस, देवों के लिए छलनी से छानकर शोधित किया जाता है ॥४ ॥

७५९. एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि । कविर्विप्रेण वावृधे ॥५ ॥

सनातन स्तुतियों की सहायता से यह देदीप्यमान, ज्ञानी सोम ब्रह्मवेत्ताओं द्वारा देवगणों के लिए प्रकाशित किया जाता है ॥५ ॥

७६०.दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यसे । क्रन्दं देवाँ अजीजनः ॥६ ॥

बर्तन में निचोड़ा गया यह सोमरस छलनी में छाना जाता है । शब्दायमान यह सोम देवगणों को यज्ञ में आवाहित करता प्रतीत होता है ॥६ ॥

७६१.उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रवे । पवमान विदा रयिम् ॥७ ॥

हे सोमदेव ! अहितकारियों को भयभीत करके, आप अपने पास बैठने वालों को सन्मार्ग दिखाएँ और धन-धान्य से पूर्ण करें ॥७ ॥

७६२.उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥८ ॥

निकालने के बाद सोमरस को जल में मिलाया जाता है । इस शत्रुनाशक, गाय के दूध से मिले सोमरस का आवाहन देवगण भी करते हैं ॥८ ॥

७६३.उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ इयक्षते ॥९ ॥

हे ऋत्विजो ! देवगणों की प्रार्थना (इच्छा) करने की अपेक्षा शोधित किये जा रहे सोमरस के गुणों का वर्णन करो ॥९ ॥

॥इति पञ्चमः खण्डः ॥

* * *

॥षष्ठः खण्डः ॥

७६४.प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः । वनानि महिषा इव ॥१ ॥

जलाशयों में जिस प्रकार लहरें समाहित होती हैं, उसी प्रकार यह ज्ञानवर्द्धक सोमरस जल के साथ मिल जाता है ॥१ ॥

७६५.अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥२ ॥

गौदुग्ध रूपी अन्न (पोषक पदार्थ) के साथ भूरे रंग का यह सोमरस जल की धारा के साथ बर्तन में मिलाया जाता है ॥२ ॥

७६६.सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥३ ॥

शोधित सोमरस इन्द्र, पवन, मरुत् तथा विष्णु आदि देवगणों को प्राप्त हों ॥३ ॥

७६७.प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥४ ॥

जल-पूरित नदियों की भाँति हे सोमदेव ! आपको देवगणों के लिए जल में मिलाया जाता है । आप आनन्ददायी पदार्थों के समान उत्साहवर्द्धक हैं । अतः हे ऋत्विजो ! इस मधुर सोमरस को दूध में मिलाकर पात्र में उत्तम-विधि से भरो ॥४ ॥

७६८.आ हर्यतो अर्जुनो अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः ।
तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥५ ॥

प्रिय शिशु के समान संस्कारित इस स्वच्छ सोमरस को उसी प्रकार वेगपूर्वक हाथों से जल पात्र में मिलाते हैं, जैसे द्रुतगामी रथ युद्ध में जाता है ॥५ ॥

७६९.प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् । सुता विदथे अक्रमुः ॥६ ॥

आनन्दवर्द्धक यह सोम, शोधित होने के बाद यज्ञ में कीर्ति एवं अनादि प्रदान करने में सहायक होता है ॥६ ॥

७७०.आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् ।
अत्यो न गोभिरज्यते ॥७ ॥

हंस जिस प्रकार (सहज भाव से) अपने समूह में (गतिपूर्वक) जाता है, उसी गति के साथ यह सोमरस, विवेकवानों की बुद्धि को प्रभावित करता है ॥७ ॥

७७१. आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥८ ॥

इस शुद्ध हरिद्वर्ण सोम को साधक अपनी अँगुलियों से निचोड़कर इन्द्रदेव के पीने योग्य बनाता है ॥८ ॥

७७२.अया पवस्व देवयू रेभन्पवित्रं पर्येषि विश्वतः । मधोर्धारा असृक्षत ॥९ ॥

हे सोमदेव ! देवगणों से मिलने की इच्छा से शोधित होते समय, अविरल धार के साथ शब्द-नाद करते हुए मधुर होकर, आप प्रचुर मात्रा में स्रवित हों ॥९ ॥

७७३.पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या ।
अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥१० ॥

वीरसन्तान तथा यशप्राप्ति के इच्छुक साधकों के लिए यह हरिताभ प्रिय सोमरस, शुद्धरूप में स्रवित होता है ॥१० ॥

७७४.प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥११ ॥

शोधित होते समय सोम के शब्द-नाद को हीन कर्म की इच्छा वाले न सुनें । हे साधको ! अयोग्य कुत्तों (श्वान -वृत्ति वालों) को इस श्रेष्ठ कार्य से दूर रखो ॥११ ॥

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- श्रुतकक्ष अथवा सुकक्ष आङ्गिरस ७१३-७१५, ७२२-७२४। वसिष्ठ मैत्रावरुणि ७१६-७१८, ७३४-७३६, ७४९-७५४। मेधातिथि काण्व और प्रियमेध आङ्गिरस ७१९-७२१। इरिम्बिठि काण्व ७२५-७२७। कुसीदी काण्व ७२८-७३०। त्रिशोक काण्व ७३१-७३३। विश्वामित्र गाथिन ७३७-७३९। मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ७४०-७४२। शुनःशेप आजीगर्ति ७४३-७४५। नारद काण्व ७४६-७४८। अवत्सार काश्यप ७५५-७५७। शुनःशेप आजीगर्ति (कृत्रिम देवरात वैश्वामित्र) ७५८। मेध्यातिथि काण्व ७५९-७६०। असित काश्यप अथवा देवल ७६१, ७६३। अमहीयु आङ्गिरस ७६२। त्रित आप्त्य ७६४-७६६। सप्तर्षिगण ७६७-७६८। श्यावाश्व आत्रेय ७६९-७७१। अग्नि चाक्षुष ७७२, ७७३। प्रजापति वैश्वामित्र अथवा वाच्य ७७४।

देवता- इन्द्र ७१३-७४८। अग्नि ७४९-७५०। उषा ७५१-७५२। अश्विनीकुमार ७५३-७५४। पवमान सोम ७५५-७७४।

छन्द- अनुष्टुप् ७१३, ७७४। गायत्री ७१४-७४५, ७५५-७६६, ७६९-७७१। उष्णिक् ७४६-७४८, ७७२, ७७३। बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ७४९-७५४, ७६७-७६८।

॥इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

७७५. पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः । अभि विश्वानि काव्या ॥१ ॥

हे सोमदेव ! आप सर्वश्रेष्ठ हैं । अतः विभिन्न रक्षा साधनों से युक्त होकर हमारी हर प्रकार की स्तुतियों को सुनकर उनके शब्दों पर ध्यान दें ॥१ ॥

७७६.त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन् । पवस्व विश्वचर्षणे ॥२ ॥

हे सर्व हितकारी सोमदेव ! आप अग्रणी होकर हमारी स्तुतियों से प्रसन्न हुए, देवलोक के जल का आवाहन करें । यही पवित्र जल सोमरस में मिलाया जाता है ॥२ ॥

७७७.तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे । तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥३ ॥

हे दूरदर्शी सोमदेव ! आपकी महत्ता के प्रभाव से यह विश्व स्थित है । आपके लिए दूध उपलब्ध कराने हेतु, देवगणों को तृप्त करने वाली गौएँ आपके पास आ रही हैं ॥३ ॥

७७८.पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने । विश्वा अप द्विषो जहि ॥४ ॥

बलवर्द्धक, शोधित किये गये हे सोमदेव ! पवित्र होकर आप हमें यशस्वी बनाएँ । हमारे शत्रुओं को आप पराजित करें ॥४ ॥

७७९.यस्य ते सख्ये वयं सासह्याम पृतन्यतः । तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ॥५ ॥

हे सोमदेव ! मित्र-भाव से आपने हमें तेजस्वी बनाया है, अतः (आपकी कृपा से) आक्रमणकारी शत्रुओं से हम विजय प्राप्त कर सकते हैं ॥५ ॥

७८०.या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे । रक्षा समस्य नो निदः ॥६ ॥

हे सोमदेव ! शत्रुओं का नाश करने वाले अपने तीक्ष्ण शस्त्रों के द्वारा शत्रुओं की निन्दा से आहत होने से आप हमें बचाएँ ॥६ ॥

७८१.वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥७ ॥

हे सोमदेव ! आप तेजस्वी और बलशाली हैं । हे स्वामी ! आप कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं, बलवर्द्धक हैं, ऐसे व्रती आप अपनी क्षमता से आचरण योग्य धर्मों के धारणकर्त्ता हैं ॥७ ॥

७८२.वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा सुतः । स त्वं वृषन्वृषेदसि ॥८ ॥

हे बलशाली सोमदेव ! आपकी बहुत ही प्रभावशाली सामर्थ्य है । आपका पान करने वाले साधक, निश्चित रूप से उत्तम बल एवं उत्तम सामर्थ्य से युक्त होते हैं ॥८ ॥

७८३.अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः ।
वि नो राये दुरो वृधि ॥९ ॥

हे सोमदेव ! आप बलशाली हैं, पशुधन की वृद्धि करने वाले हैं । अतः आप हमें धर्म-मार्ग से ऐश्वर्य दिलाएँ ॥९ ॥

७८४.वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे । पवमान स्वर्दृशम् ॥१० ॥

हे सोमदेव ! आप निश्चित ही बलवर्द्धक हैं । सुख के द्रष्टा, सूर्य जैसे दीप्तिमान्, हे शोधित सोमदेव ! हम आपका आवाहन करते हैं ॥१० ॥

७८५.यदद्भिः परिषिच्यसे मर्मृज्यमान आयुभिः । द्रोणे सधस्थमश्नुषे ॥११ ॥

ऋत्विजों द्वारा शोधित हे सोमदेव ! जल में मिलाये जाने के बाद आपको कलश में स्थापित किया जाता है ॥११ ॥

७८६.आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध । इहो ष्विन्दवा गहि ॥१२ ॥

हे उत्तम आयुधों से युक्त सोम ! आनन्ददायी बनकर हमें श्रेष्ठ पराक्रम की क्षमता से युक्त करें और हमारे यज्ञ में आकर सुशोभित हों ॥१२ ॥

७८७.पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः । सखित्वमा वृणीमहे ॥१३ ॥

हे सोमदेव ! परिष्कृत और शोधित होने वाले आपसे, हम मित्र के रूप में सहयोग पाने की कामना करते हैं ॥१३ ॥

७८८.ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया । तेभिर्नः सोम मृडय ॥१४ ॥

हे सोमदेव ! आपकी लहरों में से जो धारा शोधित हो रही है, उसके द्वारा हमें उल्लसित करने का अनुग्रह करें ॥१४ ॥

७८९.स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् । ईशानः सोम विश्वतः ॥१५ ॥

हे सोमदेव ! आप जगत् नियन्ता हैं। शोधित होने के बाद आप हमें धन-धान्य के साथ सुसन्तति प्रदान करें ॥१५ ॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

७९०.अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१ ॥

दैवी शक्तियों को श्रेष्ठ कार्य की ओर प्रेरित करने वाले, ऐश्वर्यवान्, इस यज्ञ को उत्तम विधि से सम्पन्न कराने वाले, हविवाहक अग्निदेव का हम आवाहन करते हैं ॥१ ॥

७९१.अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥२ ॥

प्रजापालक, देवों तक हवि पहुँचाने वाले, परम प्रिय, कुशल नेतृत्त्व प्रदान करने वाले हे अग्निदेव ! हम याजक हवनीय मंत्रों से आपको सदा बुलाते हैं ॥२ ॥

७९२.अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ॥३ ॥

हे स्तुत्य, सखा, देवाराधक अग्निदेव ! अरणियों से उत्पन्न हुए आप देवावाहन करने वाले साधकों के लिए देवशक्तियों को इस यज्ञ में बुलाएँ ॥३ ॥

७९३.मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये । या जाता पूतदक्षसा ॥४ ॥

यज्ञ में आवाहित दैवीशक्तियों, परम पवित्र एवं बलशाली मित्र और वरुण देवों का हम आवाहन करते हैं ॥४ ॥

७९४.ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती । ता मित्रावरुणा हुवे ॥५ ॥

सत्यमार्ग पर चलने वालों का उत्साह बढ़ाने वाले हे तेजस्वी मित्रावरुणो ! हम आपका आवाहन करते हैं ॥५ ॥

७९५.वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः । करतां नः सुराधसः ॥६ ॥

सभी रक्षा साधनों से युक्त होकर मित्रावरुण हमें आश्रय प्रदान करें और हमें परम पवित्र धन प्रदान करें ॥६ ॥

७९६.इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥७ ॥

सामगान के साधकों ने गाये जाने योग्य बृहत् साम की स्तुतियों से देवराज इन्द्र का स्तवन किया है । इसी तरह ऋत्विजों ने भी मन्त्रोच्चारण के द्वारा इन्द्रदेव की प्रार्थना की है ॥७ ॥

७९७.इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥८ ॥

वज्रधारी (विघ्ननाशक) स्वर्णाभूषणों (श्रेष्ठगुणों) से युक्त इन्द्रदेव, श्रेष्ठ घोड़ों (शक्तिशाली प्रवृत्तियों) को वाणी के साथ प्रयुक्त करते हैं ॥८ ॥

७९८.इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥९ ॥

हे वीरेन्द्र ! हजारों प्रकार के ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए होने वाले युद्ध (जीवन समर) में आप अपने प्रबल रक्षा साधनों से युक्त होकर हमारे रक्षक बनें ॥९ ॥

७९९.इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥१० ॥

(देवशक्तियों के संगठक) इन्द्रदेव ने विश्व को प्रकाशित करने के महान् उद्देश्य से सूर्यदेव को उच्चाकाश में स्थापित किया । उसी प्रकार किरणों से बादलों को प्रेरित किया ॥१० ॥

८००.इन्द्रे अग्ना नमो बृहत्सुवृक्तिमेरयामहे । धिया धेना अवस्यवः ॥११ ॥

इन्द्र और अग्निदेवों के पास अपने संरक्षण की कामना से हम अन्न (आहुतियों के माध्यम से) पहुँचाते हैं और पूर्ण मनोयोग से उनकी प्रार्थना करते हैं ॥११ ॥

८०१.ता हि शश्वन्त ईडत इत्था विप्रास ऊतये । सबाधो वाजसातये ॥१२ ॥

अन्नादि पोषक पदार्थों के लिए जब (सामान्य जन) झगड़ते हैं, तब ज्ञानीजन, इन्द्र और अग्निदेवों से ऐसी (यज्ञों में की जाने वाली) प्रार्थनाएँ करते हैं ॥१२ ॥

८०२.ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वन्तो हवामहे । मेधसाता सनिष्यवः ॥१३ ॥

हम याज्ञिक स्तोता, धन प्राप्ति की इच्छा से, हविष्यान्न आदि पदार्थों के साथ, आप दोनों (इन्द्र और अग्नि) को प्रार्थना द्वारा आवाहित करते हैं ॥१३ ॥

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

॥तृतीयः खण्डः ॥

८०३.वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः। विश्वा दधान ओजसा ॥१ ॥

हे सोमदेव ! आप बलवर्द्धक बनकर शोधित हों। सभी ऐश्वर्यों सहित मरुतों के सखा इन्द्रदेव को आप आनन्द प्रदान करें ॥१ ॥

८०४.तं त्वा धर्तारमोण्यो३ः पवमान स्वर्दृशम्। हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥२ ॥

हे शोधित सोमदेव ! आप आत्मदर्शी बलवान्, द्युलोक से पृथ्वीलोक तक सभी को संरक्षण प्रदान करने वाले हैं। ऐसे सोम को हम संग्राम (जीवन-संग्राम) के लिए प्रेरित करते हैं ॥२ ॥

८०५.अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया। युजं वाजेषु चोदय ॥३ ॥

हे हरे रंग वाले सोम ! अँगुलियों से परिष्कृत किये गये आप दिव्य कलश में शोधित होने के लिए, स्रवित हों और अपने सखा इन्द्रदेव को संग्राम में जाने के लिए प्रेरित करें ॥३ ॥

८०६.वृषा शोणो अभिकनिक्रदद्गा नदयन्नेषि पृथिवीमुत द्याम्।
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचोदयन्नर्षसि वाचमेमाम् ॥४ ॥

निरन्तर गतिशील, सुखों की वर्षा करने वाले, हे दिव्य सोमदेव ! द्युलोक से पृथ्वी तक किरणों के बीच मेघ जैसी गर्जना (प्रतिध्वनियाँ) उत्पन्न करते हुए आप संव्याप्त हैं। हम इन्द्रदेव (स्वामी) की तरह आपके निर्देशों को सुनते हैं। आप भी अपनी उपस्थिति का बोध कराते हुए हमारी स्तुतियों को स्वीकार करते हैं ॥४ ॥

८०७.रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।
पवमान सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥५ ॥

अपने आप में मधुर, गाय के दूध में मिश्रित होने के बाद अधिक सुस्वाद हुए हे सोमदेव ! पानी में शोधित होकर धाररूप में (निरन्तर) आप इन्द्रदेव को प्राप्त हों ॥५ ॥

८०८.एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन्वधस्नुम् ।
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ॥६ ॥

हे उत्साहवर्द्धक सोमदेव ! छाये हुए मेघों को जल वृष्टि के लिए प्रेरित करते हुए आप आनन्ददायी बनें। पानी के साथ श्वेत वर्ण धारण कर, गाय के दूध के रूप में, हमारे चारों ओर स्रवित हों ॥६ ॥

॥इति तृतीयः खण्डः ॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः ॥

८०९.त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम स्तोता आपको अन्न वृद्धि के लिए आवाहित करते हैं। हे इन्द्रदेव ! विज्ञजन संघर्ष के समय आपको ही मदद के लिए पुकारते हैं ॥१ ॥

८१०.स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः ।

गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥२ ॥

हे विपुल पराक्रमी, वज्रधारी, बलधारक इन्द्रदेव ! अपनी असुर जयी शक्ति से महान् हुए आप, हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर हम साधकों को पशुधन तथा ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२ ॥

८११.अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।

यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥३ ॥

हे ऋत्विजो ! ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव स्तोताओं को अनेक प्रकार के श्रेष्ठ धन से सम्पन्न बनाते हैं, अत: उत्तम धन की प्राप्ति के लिए, जिस प्रकार भी सम्भव हो उनकी अर्चना करो ॥३ ॥

८१२.शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।

गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥४ ॥

जिस प्रकार शूरवीर शत्रु सेना पर चढ़ाई करते समय अपनी सेना का संरक्षण करता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ कार्यों में अपने साधन लगाने वालों का इन्द्रदेव संरक्षण करते हैं । ऐसे साधन लोगों को तृप्तिदायक पर्वत के झरने के जल के समान लाभदायक होते हैं । ॥४ ॥

८१३.त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्रिन् भूर्णयः ।

स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥५ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! पूर्व में ही हवि देने वाले यजमान आपके लिए सोम प्रस्तुत करते हैं । इस यज्ञ में सामगान करने वाले साधकों की प्रार्थना को सुनकर आप यज्ञवेदी में प्रतिष्ठित हों ॥५ ॥

८१४.मत्स्वा सुशिप्रिन्हरिवस्तमीमहे त्वया भूषन्ति वेधसः ।

तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्य सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥६ ॥

हे शिरस्त्राण धारक, अश्वपालक, स्तुति के योग्य इन्द्रदेव ! आपका पूजन करने वाली विविध सामग्री से हम आपको सज्जित करते हैं । आप सोमरस से तृप्त हों । हे स्तुति योग्य इन्द्रदेव ! सोमरस के बाद आपके अनुरूप अन्न (हविष्य) भी आपको प्रदान करते हैं ॥६ ॥

॥इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

॥पंचमः खण्डः ॥

८१५.यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा । देवावीरघशंसहा ॥१ ॥

हे सोमदेव ! आपका रस देवगणों के योग्य, असुरजयी शक्ति देने वाला तथा परमानन्द देने वाला है । ऐसी शक्ति के साथ आप पात्र में शोधित हों ॥१ ॥

८१६. जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे । गोषातिरश्वसा असि ॥२ ॥

हे सोमदेव ! आप अमित्र (अहितकारी) वृत्र (अज्ञानरूपी वृत्ति) के नाशक हैं । आप सतत संघर्षशील रहते हैं । आप गो-धन और अश्वों की भी वृद्धि करते हैं ॥२ ॥

८१७.सम्मिश्लो अरुषो भुवः सूपस्थाभिर्न धेनुभिः । सीदं च्छ्येनो न योनिमा ॥३ ॥

हे सोमदेव ! जैसे बाज़ पक्षी अपने घोंसले पर शोभायमान होता है, उसी प्रकार आप श्रेष्ठ गाय के दूध में मिलने पर चमकते हैं ॥३ ॥

८१८.अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।

पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥४ ॥

पुष्टिकारक, सौभाग्य को बढ़ाने वाला, धनदाता यह सोमरस शोधित होते समय कलश में स्रवित होता है । समस्त प्राणियों का पालनकर्ता यह सोम सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है ॥४ ॥

८१९.समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः ।

सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥५ ॥

हे सोमदेव ! आनन्द प्राप्ति के लिए प्रेम और स्पर्धा प्रदर्शित करने वाली वाणियाँ आपकी स्तुति करती हैं । शोधित हुआ ऐश्वर्यवान् सोमरस भी आनन्द के लिए संचरित होता है ॥५ ॥

८२०.य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम् ।

यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे ॥६ ॥

हे सोमदेव ! पंचजनों (समाज के पांचों वर्गों अर्थात् सम्पूर्ण समाज) को प्राप्त होने वाला शक्तिवर्द्धक, प्रशंसा के योग्य रस, भरपूर मात्रा में हमें प्रदान करें ॥६ ॥

८२१.वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।

प्राणा सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः ॥७ ॥

मेधावर्द्धक, विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न, दिन, उषा एवं द्युलोक का ज्ञाता, तन्त्रिकाओं में चेतना का संचार करने वाला, विद्वज्जनों द्वारा स्तुत्य, यह सोमरस, इन्द्रदेव के उपयोग के लिए, शब्दनाद करता हुआ पात्र में शोधित होता है ॥७ ॥

८२२.मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशाँ असिष्यदत् ।

त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरन्निन्द्रस्य वायुं सख्याय वर्धयन् ॥८ ॥

सर्वज्ञ सोम याजकों द्वारा शोधित उनके द्वारा कलश में एकत्रित किया जाता है । त्रैलोक्य पूजित इन्द्रदेव की ख्याति बढ़ाता हुआ यह मधुर सोमरस इन्द्रदेव को तृप्त करने के लिए, वायुदेव के साथ बर्तन में स्रवित होता है ॥८ ॥

८२३.अयं पुनान उषसो अरोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।

अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥९ ॥

जनहितकारी यह पवित्र सोम (अपने दिव्यरूप में) उषा को प्रकाशित करता है, (अपने प्राकृतिकरूप में) नदियों को बढ़ाने वाला है और (अपने जीव गतरूप में) हृदयस्थ होने के लिए इक्कीस घटकों (१० प्राण + १० इन्द्रियाँ + १ मन = २१) को पुष्ट करता हुआ प्रवाहित होता है ॥९ ॥

॥इति पञ्चमः खण्डः ॥

* * *

॥षष्ठः खण्डः ॥

८२४.एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः ।
एवा ते राध्यं मनः ॥१ ॥

युद्ध में वीरों का सदुपयोग करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप शूरवीर हैं, युद्ध में डटे रहने वाले हैं, इसलिए आपका मनोबल प्रशंसा के योग्य है ॥१ ॥

८२५. एवा रातिस्तुविमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः ।
अधा चिदिन्द्र नः सचा ॥२ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! साधकों द्वारा दैवी प्रवृत्तियों के लिए नियोजित किये गये आपके द्वारा प्रदत्त साधन कभी समाप्त नहीं होते, इसलिए हे इन्द्रदेव ! आप हमें ऐश्वर्यवान् बनाकर हमारी सहायता करें ॥२ ॥

८२६.मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते ।
मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥३ ॥

हे अन्नाधिपति, बलवान् इन्द्रदेव ! गाय के दूध में मिलाये गये मधुर सोमरस का पान करके आप आनन्दित हों । आलसी ब्राह्मण की भाँति निष्क्रिय न रहें ॥३ ॥

८२७.इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥४ ॥

समुद्र के समान विशाल, महारथी, बलों के स्वामी, दैवी शक्तियों के संरक्षक इन्द्रदेव की प्रशंसा सभी स्तुतियों द्वारा की जाती है जिनसे उनका यश बढ़ता है ॥४ ॥

८२८.सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्र नोनुमो जेतारमपराजितम् ॥५ ॥

हे बलरक्षक इन्द्रदेव ! आपकी मित्रता में हम बलशाली होकर किसी से न डरें । हे अपराजित विजयी इन्द्रदेव ! हम साधकगण आपको प्रणाम करते हैं ॥५ ॥

८२९.पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।
यदा वाजस्य गोमत स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥६ ॥

देवराज इन्द्र की दानशीलता सनातन है । सूर्य रश्मियों के माध्यम से उत्पन्न अन्नादि पोषक तत्त्व, जब वह स्तोताओं को देते हैं, तब याजक का दान क्षीण नहीं होता ॥६ ॥

॥इति षष्ठः खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- जमदग्नि भार्गव ७७५-७७७ । अमहीयु आङ्गिरस ७७८-७८०, ७८७-७८९, ८१५-८१७ । कश्यप मारीच ७८१-७८३ । भृगु वारुणि अथवा जमदग्नि भार्गव ७८४-७८६, ८०३-८०५ । मेधातिथि काण्व ७९०-९९५ । मधुच्छन्दावैश्वामित्र ७९६-७९९ । वसिष्ठमैत्रावरुणि ८००-८०२ । उपमन्यु वासिष्ठ ८०६-८०८ । शंयु बार्हस्पत्य ८०९-८१० । वालखिल्य प्रस्कण्व काण्व ८११-८१२ । नृमेध आङ्गिरस ८१३, ८१४ । नहुष मानव ८१८-८२० । सिकता निवावरी ८२१-८२२ । पृश्निययोऽजा ८२३ । श्रुतकक्ष अथवा सुकक्ष आङ्गिरस ८२४-८२६ । जेता माधुच्छन्दस ८२७-८२९ ।

देवता- पवमान सोम ७७५-७८९, ८०३-८०८, ८१५-८२९ । अग्नि ७९०-७९२ । मित्रावरुण ७९३-७९५ । इन्द्र ७९६-७९९, ८०९-८१४ । इन्द्राग्नी ८००-८०२ ।

छन्द- गायत्री ७७५-८०५, ८१५-८१७, ८२४-८२९ । त्रिष्टुप् ८०६-८०८ । बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ८०९-८१४ । अनुष्टुप् ८१८-८२३ ।

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥

॥अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

८३०.एते असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः । विश्वान्यभि सौभगा ॥१ ॥

छन्ने की ओर द्रुतगति से जाते हुए सोमरस को, सभी सौभाग्यों की प्राप्ति के लिए, ऋत्विजों द्वारा शोधित किया जाता है ॥१ ॥

८३१.विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः । त्मना कृण्वन्तो अर्वतः ॥२ ॥

बलवर्धक, पापनाशक यह सोमरस हमारे व हमारी सन्तति के लिए पशुधन प्रदान करने का मार्ग स्वयं बनाता है ॥२ ॥

८३२.कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् । इडामस्मभ्यं संयतम् ॥३ ॥

हमारे लिए एवं हमारी गौओं के लिए उत्तम धन तथा पौष्टिक अन्न के प्रदाता सोमदेव, हमारी सुन्दर प्रार्थनाओं को स्वीकार करते हैं ॥३ ॥

८३३.राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ॥४ ॥

मानवों द्वारा किये गये यज्ञों से शुद्ध होने वाला यह राजा (रसराज) सोम, विचारपूर्वक की गयी स्तुतियों के प्रभाव से अंतरिक्ष में संचरित होता हुआ कलश (धारण करने वाले माध्यमों) की ओर बढ़ता है ॥४ ॥

८३४.आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर । सुष्वाणो देववीतये ॥५ ॥

दैवी शक्तियों के लिए शोधित हे सोमदेव ! आप बलवर्द्धक बनकर हमें ऐसी शक्ति प्रदान करें, जिससे हमारी तेजस्विता बढ़े ॥५ ॥

८३५.आ न इन्दो शातग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम् । वहा भगत्तिमूतये ॥६ ॥

हे सोम आप सैकड़ों गौओं एवं श्रेष्ठ घोड़ों की प्राप्ति और उनका पोषण करने में समर्थ हैं । आप हमें सौभाग्य प्रदान करें ॥६ ॥

८३६.तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः । चारुं सुकृत्ययेमहे ॥७ ॥

देवलोक में व्याप्त नाना प्रकार के ऐश्वर्यों से युक्त, सुन्दर हे सोमदेव ! उत्तम कर्मों (यज्ञों) के द्वारा आपको प्राप्त करने की हमारी कामना है ॥७ ॥

८३७.संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम् । शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥८ ॥

हे असुरजयी सोमदेव ! आप उत्तम कर्म करने वाले आनन्ददायी तथा शत्रुओं के सैकड़ों नगरों को ध्वंस करने वाले हैं । आपसे हम ऐश्वर्य की याचना करते हैं ॥८ ॥

८३८.अतस्त्वा रयिरभ्ययद्राजानं सुक्रतो दिवः । सुपर्णो अव्यथी भरत् ॥९ ॥

हे उत्तम कर्मों के अधिष्ठाता, ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी सोमदेव ! कष्ट एवं पीड़ा को महत्त्व न देने वाले गरुड़ आपको द्युलोक से पृथ्वी पर लाएँ ॥९ ॥

८३९.अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे । अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥१० ॥

इसके बाद (पृथ्वी पर आकर) ज्ञानसम्पन्न एवं इष्ट फलदायी सोम, शोधित होकर अपनी क्षमता को, और अधिक बढ़ाकर, और भी श्रेष्ठ बन जाता है ॥१० ॥

८४०.विश्वस्मा इत् स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम् । गोपामृतस्य विर्भरत् ॥११ ॥

यज्ञ रक्षक, जल- प्रेरक, स्वयं प्रकाशित देव शक्तियों को सहजता से प्राप्त होने वाला दिव्य सोम आकाश को संव्याप्त कर लेता है ॥११ ॥

८४१.इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः । इन्दो रुचाभि गा इहि ॥१२ ॥

प्रज्ञावान् साधकों द्वारा शोधित हे सोमदेव ! आप अपने तेज से पौष्टिक अन्न तथा सुन्दर गौएँ प्रदान करने के लिए स्रवित हों ॥१२ ॥

८४२.पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः । हरे सृजान आशिरम् ॥१३ ॥

हे हरिताभ, स्तुत्य सोमदेव ! दूध के साथ मिलाकर शोधित आप, याजकों को अन्नादि से भरपूर करें ॥१३ ॥

८४३.पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् । द्युतानो वाजिभिर्हितः ॥१४ ॥

दिव्यशक्तियों से युक्त तेजस्वी हे सोमदेव ! देवशक्तियों के लिए हितकारी शोधित, आप इन्द्रदेव को प्राप्त हों ॥१४ ॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

८४४.अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥१ ॥

यज्ञस्थल के रक्षक, दूरदर्शी, युवा, आहुतियों को देवों तक पहुँचाने वाले ज्वालायुक्त यज्ञाग्नि को, अरणि-मंथन द्वारा उत्पन्न अग्निदेव से प्रज्वलित किया जाता है ॥१ ॥

८४५.यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति । तस्य स्म प्राविता भव ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! देवगणों तक हविष्यान्न पहुँचाने वाले जो याजक, आप (देव-दूत) की उत्तम-विधि से अर्चना करते हैं, आप उनकी भली-भाँति रक्षा करें ॥२ ॥

८४६.यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति । तस्मै पावक मृडय ॥३ ॥

हे शोधक अग्निदेव ! देवों के लिए हवि प्रदान करने वाले यजमान आपकी प्रार्थना करते हैं । आप उन्हें सुखी बनाएँ ॥३ ॥

८४७.मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीं साधन्ता ॥४ ॥

जल उत्पादक मित्र और वरुणदेवों का हम आवाहन करते हैं । मित्रदेव हमें बलशाली बनाएँ तथा वरुणदेव हिंसक शत्रुओं का नाश करें ॥४ ॥

८४८.ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा । क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥५ ॥

सत्य को फलितार्थ करने वाले, सत्य यज्ञ के पुष्टिकारक देव मित्रावरुणो ! आप दोनों हमारे पुण्यदायी कार्यों को सत्य से परिपूर्ण करें ॥५ ॥

८४९.कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया । दक्षं दधाते अपसम् ॥६ ॥

अनेक कर्मों को सम्पन्न कराने वाले, विवेकशील, अनेक स्थलों में निवास करने वाले मित्रावरुणदेव हमारी क्षमताओं और कार्यों को पुष्ट बनाते हैं ॥६ ॥

८५०.इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥७ ॥

सदा प्रसन्न रहने वाले, तेजस्वी, मरुद्गण, निर्भय रहने वाले पराक्रमी इन्द्रदेव के साथ (संगठित हुए) अच्छे लगते हैं ॥७ ॥

[विभिन्न वर्गों के समान प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति परस्पर सहयोग करें, तो समाज सुखी होता है ।]

८५१.आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥८ ॥

वे पूज्य, नाम धारण करने में समर्थ मरुत्, शीघ्र ही अन्नादि (पोषक पदार्थों) को लक्ष्य करके, पुनः गर्भ को प्राप्त करके (उपयुक्त आकार) ग्रहण करते हैं ॥८ ॥

[यह सूक्त प्रकृति के चक्र को स्पष्ट करता है । पदार्थ उपयोग के बाद विखण्डित होकर (सड़-गलकर) वायुरूप हो जाता है । शीघ्र ही प्रकृति चक्र में घूमकर पुनः अन्नादि के रूप में प्रकट हो जाता है ।]

८५२.वीडु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द उस्रिया अनु ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! सुदृढ़ किलेबंदी को ध्वस्त करने में समर्थ, तेजस्वी मरुद्गणों ने अवरुद्ध किरणों को प्रकट किया ॥९ ॥

८५३.ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् । इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥१० ॥

सनातन, पराक्रमी, शत्रुनाशक, स्तोताओं के कष्टों को दूर करने वाले, इन्द्र और अग्निदेवों का हम आवाहन करते हैं ॥१० ॥

८५४.उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृडात ईदृशे ॥११ ॥

शत्रुनाशक, महाबली, इन्द्र और अग्निदेवों का संग्राम (जीवन-समर) में सहायता के लिए हम आवाहन करते हैं, वे हमें सुखी बनायें ॥११ ॥

८५५.हथो वृत्राण्यार्या हथो दासानि सत्पती । हथो विश्वा अप द्विषः ॥१२ ॥

भद्र पुरुषों के पालनकर्त्ता हे श्रेष्ठ इन्द्र और अग्निदेवो ! आप विघ्नों को दूर करें, कर्महीनों और द्वेष करने वालों का विनाश करें और समस्त शत्रुओं को नष्ट करें ॥१२ ॥

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः ॥

८५६.अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥१ ॥

आनन्दवर्द्धक, स्फूर्तिदायक सोमरस को, आनन्द प्राप्त करने तथा उत्साह बढ़ाने के लिए, याजकगण, जलपात्र पर स्थापित छन्ने में से छानते हैं ॥१ ॥

८५७.तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत्।

अर्षा मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ॥२ ॥

प्रेरणादायी दिव्य सोमरस शुद्ध होकर, प्रकृति में स्थित विशाल सोम (ऋत) के समुद्र में मित्र और वरुणदेवों द्वारा प्रयुक्त किये जाने के लिए स्थापित किया जाता है ॥२ ॥

[मित्र (सूर्य) के और वरुण (जल) के माध्यम से ही प्राणरस (सोम का) संचार होता है ।]

८५८.नृभिर्येमाणो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्र्यः ॥३ ॥

ऋत्विजों द्वारा शोधित, सबका प्रेम पात्र, विशेष ज्ञानवर्द्धक, राजा दिव्य सोम, इन्द्रदेव के निमित्त शोधित होकर जल में मिलता है ॥३ ॥

८५९.तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।

गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥४ ॥

ब्राह्मण-मनीषी याजकगण तीन वाणियों (ऋक्, यजु, साम) का यज्ञीय रीति से उच्चारण करते हैं । सोम की कामना करने वाली बुद्धियाँ शब्द करती हुई (उन्हें पूछती हुई), उनके पास जाने का प्रयास उसी प्रकार करती हैं, जैसे गौएँ (रँभाती हुई) गोपाल के पास जाती हैं ॥४ ॥

[जिस प्रकार गौओं का पालक गोपाल होता है, वैसे ही बुद्धियों का पोषक सोम है ।]

८६०.सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।

सोमः सुत ऋच्यते पूयमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥५ ॥

निकालने के बाद शोधित हुआ सोम पात्र में गिरता है । ज्ञानीजन अपनी बुद्धियों द्वारा त्रिष्टुप् छन्द के मंत्र से उसकी स्तुति करते हैं । दुधारू गौएँ (परमार्थनिष्ठ बुद्धियाँ) सोम की इच्छा करती हैं ॥५ ॥

८६१.एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।

इन्द्रमा विश बृहता मदेन वर्धया वाचं जनया पुरंधिम् ॥६ ॥

हे सोमदेव ! जल मिश्रित तथा शुद्ध होते हुए आप हमारे कल्याण के लिए शोधित हों , आनन्दपूर्वक इन्द्रदेव को तृप्त करें । हमारी प्रार्थना को स्वीकार करते हुए सद्बुद्धि प्रदान करें ॥६ ॥

॥इति तृतीयः खण्डः ॥

* * *

॥ चतुर्थः खण्डः ॥

८६२.यद्द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।

न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! सैकड़ों देव-लोक, सैकड़ों भूमियाँ तथा हजारों सूर्य भी यदि उत्पन्न हो जाएँ तो भी आपकी बराबरी नहीं कर सकते । आपकी बराबरी का कोई पैदा नहीं हुआ । देवलोक से पृथ्वीलोक तक आपकी समता करने वाला कोई भी नहीं है ॥१ ॥

८६३.आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन्विश्वा शविष्ठ शवसा ।

अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिं चित्राभिरूतिभिः ॥२ ॥

हे बलशाली इन्द्रदेव ! आप अपनी सामर्थ्य से सभी की इच्छा पूरी करते हैं । हे बलवान्, धनिक, वज्रधारी इन्द्रदेव ! अनेक संरक्षण के साधनों सहित गौओं से भरी हुई गौशालाएँ हमें प्रदान करें ॥२ ॥

८६४.वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।

पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते ॥३ ॥

हे शत्रुनाशक इन्द्रदेव ! हम जल-प्रवाह के समान सोमरस आपके पास लाते हैं । शोधित सोमरस लेकर स्तोतागण आसन देकर आपकी उपासना करते हैं ॥३ ॥

८६५.स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।

कदा सुतं तृषाण ओक आ गमदिन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥४ ॥

हे सबको वास देने वाले इन्द्रदेव ! सोमरस निकालकर याजक आपकी स्तुति करते हैं । सोमपान की इच्छा वाले आप , वृषभ जैसा नाद करते हुए कब हमारे यहाँ पधारेंगे ? ॥४ ॥

८६६.कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्त्रिणम् ।

पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥५ ॥

हे धनवान्, ज्ञानी इन्द्रदेव ! शत्रुनाशक, सुवर्णकांतियुक्त, गाय के समान पवित्र धन हम आपके पास से शीघ्र पाने के इच्छुक हैं । हे शूरवीर इन्द्रदेव ! कण्ववंशियों (मेधावी पुरुषों) द्वारा स्तुति किये जाने के बाद आप उन्हें हजारों प्रका के बल तथा ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥५ ॥

८६७.तरणिरित्सिषासति वाजं पुरंध्या युजा ।

आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्र्वम् ॥६ ॥

(भव-बाधाओं को) पार करने में समर्थ साधक, विशाल (व्यापक) बुद्धि के संयोग से विवेक बल प्राप्त करने का प्रयास करता है । हे याजको ! तुम्हारे लिए इन्द्रदेव की स्तुतियों के माध्यम से हम वैसे ही नमनशील बनते हैं, जैसे कुशल शिल्पी भलीप्रकार चलने के लिए चक्र को (पहिये पर चढ़ाये जाने वाली धातु की पट्टी को झुकाकर) गोलाई प्रदान करता है ॥६ ॥

८६८.न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।

सुशक्तिरिन्मघवन् तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ॥७ ॥

श्रेष्ठ कार्य में धन लगाने वाले, दाताओं की निन्दा करने वालों की प्रशंसा कोई भी नहीं करता । ऐसे दान-दाताओं की प्रशंसा न करने वालों को धन नहीं मिलता । हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! सोमयज्ञ के समय उत्तम-शक्तिशाली साधकों को ही आपसे देने योग्य धन प्राप्त होता है । ॥७ ॥

॥इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

॥पञ्चमः खण्डः ॥

८६९.तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः । हरिरेति कनिक्रदत् ॥१ ॥

याज्ञिकों के द्वारा तीन वाणियों (ऋक्, यजु, साम) का उच्चारण करने पर हरिताभ सोमरस, दुधारू गौओं के रँभाने की भाँति शब्दनाद करता हुआ स्रवित होता है ॥१ ॥

८७०.अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः । मर्जयन्तीर्दिवः शिशुम् ॥२ ॥

अन्तरिक्ष से उत्पन्न सोम को पवित्र करने के लिए यज्ञों में विशिष्ट वेदमंत्रों द्वारा स्तवन किया जाता है ॥२ ॥

८७१.रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणः ॥३ ॥

हे सोमदेव ! हमारी हजारों इच्छाओं की पूर्ति के लिए, ऐश्वर्य से परिपूर्ण, उन्नति के चारों समुद्र (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि साधन) हमें हस्तगत कराएँ ॥३ ॥

८७२.सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरं देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥४ ॥

अत्यन्त मधुर, आनन्दवर्द्धक, शुद्ध हुआ सोमरस, कलश में इन्द्रदेव के लिए स्रवित होता है । हे सोम राजा ! आपका रस देवशक्तियों के लिए आनन्ददायक हो ॥४ ॥

८७३.इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसः ॥५ ॥

स्तोताओं के अनुसार सोमरस इन्द्रदेव के लिए शोधित किया जाता है । ज्ञानरक्षक, सर्वसमर्थ सोम, यज्ञ में प्रयुक्त होता है ॥५ ॥

८७४.सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
सोमस्पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥६ ॥

वाणी का प्रेरक, ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव का मित्र, जल में मिश्रित सोम सहस्रों धाराओं से प्रतिदिन कलश में शोधित होता है ॥६ ॥

८७५.पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत ॥७ ॥

हे मंत्रों के स्वामी सोमदेव ! आपका शुद्ध हुआ भाग सब जगह व्याप्त है । सामर्थ्यवान् साधकों को ही आप उपलब्ध होते हैं । परिपक्व तपस्वी साधक यज्ञ करते हुए आपको प्राप्त करते हैं । शरीर को तप से बिना तपाये, आपका सुख कोई नहीं प्राप्त कर सकता ॥७ ॥

८७६.तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदेऽर्चन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन् ।
अवन्त्यस्य पवितारमाशवो दिवः पृष्ठमधि रोहन्ति तेजसा ॥८ ॥

सोम के पवित्र अंग शत्रु को संताप देने के लिए द्युलोक में फैले हैं । इनकी चमकती हुई रश्मियाँ द्युलोक के पृष्ठ भाग पर विशेष रीति से स्थिर हो गई हैं । यह रश्मियाँ याज्ञिकों की रक्षा करती हैं ॥८ ॥

८७७.अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ॥९ ॥

ग्रहों में अग्रणी सूर्यदेव प्रकाशित होकर सभी लोकों में अपनी किरणें फैलाते हैं । समस्त संसार को अन्नादि प्रदान करते हैं । सबको प्रकाशित करने वाली किरणें, गर्भ के समान जल को (अदृश्यरूप से) धारण करती हैं ॥९ ॥

॥इति पञ्चमः खण्डः ॥

* * *

॥षष्ठः खण्डः ॥

८७८.प्र मंहिष्ठाय गायत ऋतान्वे बृहते शुक्रशोचिषे ।
उपस्तुतासो अग्नये ॥१ ॥

श्रेष्ठ याज्ञिक, महान् तेजस्वी अग्निदेव की हे स्तोताओ ! स्तुति करो ॥१ ॥

८७९. आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः ।
कुविन्नो अस्य सुमतिर्भवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत् ॥२ ॥

सम्पत्तिशाली, तेजस्वी, प्रज्वलित यज्ञाग्नि, पौत्रादि से सम्बद्ध यश प्रदान करती है । इस श्रेष्ठ अग्नि की अनुकूलता हमें प्रचुर मात्रा में अन्न प्रदान करे ॥२ ॥

८८०.तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् ।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥३ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! कामनापूरक, असुरजयी, लोकोपकारी, अश्वों से सुसज्जित आपके सोमरस-पान से उत्पन्न हुए उत्साह की हम प्रशंसा करते हैं ॥३ ॥

८८१.येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! दीर्घजीवी मनुष्य के हित के लिए सूर्यसहित अन्य अनेक तेजस्वी पदार्थ आपने जिस उत्साह से प्रकाशित किये, उसी उत्साह से आनन्दित होकर साधक के इस यज्ञासन पर आप विराजमान होते हैं ॥४ ॥

८८२.तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ।
वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! सनातन स्तुतिकर्त्ता आज भी आपके बल की स्तुति करते हैं । इस प्रकार बल नामक असुर के पालनकर्त्ताओं पर आप विजय प्राप्त करें ॥५ ॥

८८३.श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥६ ॥

हे महान् इन्द्रदेव ! आप प्रार्थनारत तिरश्चि ऋषि की प्रार्थना सुनें । उत्तम सन्तति और गौओं से युक्त ऐश्वर्य से आप हमें पूर्ण करें ॥६ ॥

८८४.यस्त इन्द्र नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।
चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् ।।७ ।।

हे इन्द्रदेव ! जो भी साधक नवीन आनन्ददायी स्तुतियों से आपका स्तवन करता है, उस स्तोता को सनातन यज्ञ से वृद्धि को प्राप्त हुई तथा मन को पवित्र करने वाली बुद्धि प्रदान करें ।।७ ।।

८८५.तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थानि वावृधुः ।
पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे ।।८ ।।

जिन इन्द्रदेव की महिमा, मंत्र और स्तोत्रों द्वारा गायी गई है, उन महान् पराक्रमी इन्द्रदेव की हम भक्ति-भाव से स्तुति करते हैं ।।८ ।।

।।इति षष्ठः खण्डः ।।

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- जमदग्नि भार्गव ८३०-८३२ । कश्यप मारीच ८४१-८४३ । भृगु वारुणि अथवा जमदग्नि भार्गव ८३३-८३५ । कवि भार्गव ८३६-८४० । मेधातिथि काण्व ८४४-८४६ । मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ८४७-८५२ । भरद्वाज बार्हस्पत्य ८५३-८५५ । सप्तर्षिगण ८५६-८५८ । पराशर शाक्त्य ८५९-८६१ । पुरुहन्मा आङ्गिरस ८६२-८६३ । मेध्यातिथि काण्व ८६४-८६६ । वसिष्ठ मैत्रावरुणि ८६७, ८६८ । त्रित आप्त्य ८६९-८७१ । ययाति नाहुष ८७२-८७४ । पवित्र आङ्गिरस ८७५-८७७ । सोभरि काण्व ८७८-८७९ । गोषूक्ति-अश्वसूक्ति काण्वायन ८८०-८८२ । तिरश्ची आङ्गिरस ८८३-८८५ ।

देवता- पवमान सोम ८३०-८४३, ८५६-८६१, ८६९-८७७ । अग्नि ८४४-६४६, ८७८, ८७९ । मित्रावरुण ८४७-८४९ । इन्द्र ८५०, ८५२, ८६२-८६८, ८८०-८८५ । मरुद्गण ८५१ । इन्द्राग्नी ८५३-८५५ ।

छन्द- गायत्री ८३०-८५५, ८६९-८७१ । बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ८५६, ८५७, ८६२, ८६३, ८६७, ८६८ । द्विपदा विराट् गायत्री ८५८ । त्रिष्टुप् ८५९-८६१ । बृहती ८६४-८६६ । अनुष्टुप् ८७२-८७४, ८८३-८८५ । जगती ८७५-८७७ । काकुभ प्रगाथ (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती) ८७८, ८७९ । उष्णिक् ८८०-८८२ ।

।।इति चतुर्थोऽध्यायः ।।

॥अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

८८६.प्र त आश्विनीः पवमान धेनवो दिव्या असृग्रन्पयसा धरीमणि ।
प्रान्तरिक्षात्स्थाविरीस्ते असृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः ॥१ ॥

हे पवित्र सोमदेव ! दिव्य रस से परिपूर्ण आपकी धाराएँ वाणी के प्रवाह के साथ कलश में पहुँचती हैं । संस्कारित करने वाले विद्वान् ऋषि आपको ऊपर के पात्र से नीचे के पात्र में डालते हैं ॥१ ॥

८८७.उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः ।
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योनौ कलशेषु सीदति ॥२ ॥

पवित्रता को प्राप्त हुआ, संस्कारित, हरिताभ सोम पात्रों में स्थिर होता है । उसकी सुवास चतुर्दिक् फैलती एवं पवित्रता का संचार करती है ॥२ ॥

८८८.विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोष्टे सतः परि यन्ति केतवः ।
व्यानशी पवसे सोम धर्मणा पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥३ ॥

हे सर्वदर्शी, व्यापक स्वभाव वाले सोमदेव ! आपकी दीर्घ रश्मियों का प्रभाव सर्वत्र फैला हुआ है । अपने स्वाभाविक धर्म से शुद्ध होने वाले आप अखिल विश्व के स्वामी के रूप में सुशोभित हो रहे हैं ॥३ ॥

८८९.पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥४ ॥

पवित्रता को प्राप्त हुआ सोम, द्युलोक में तेजस्वी वैश्वानर की विलक्षण शक्ति को विद्युत् की तरह प्रकट करता हुआ, देदीप्यमान होता है ॥४ ॥

८९०.पवमान रसस्तव मदो राजन्नदुच्छुनः । वि वारमव्यमर्षति ॥५ ॥

हे सुशोभित होने वाले पवित्र सोमदेव ! दुराचारियों के लिए दुर्लभ, उत्साह बढ़ाने वाला आपका दिव्य रस ऊन के छन्ने से भलीप्रकार शुद्ध किया जाकर, संगृहीत होता है ॥५ ॥

८९१.पवमानस्य ते रसो दक्षो वि राजति द्युमान् । ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥६ ॥

पवित्रता को प्राप्त होने वाले हे सोमदेव ! आपका शक्तिवर्द्धक एवं तेजस्वी रस सुशोभित होता है । समस्त विश्व में उसकी प्रकाश किरणें दिखाई देती हैं ॥६ ॥

८९२.प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः । घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥७ ॥

सूर्य की किरणों की तरह तेजस्वी गतिमान् सोम, जो त्वचा की कालिमा दूर करता है, सत्पात्रों में संगृहीत होकर प्रशंसा प्राप्त करता है ॥७ ॥

८९३.सुवितस्य वनामहेऽति सेतुं दुराय्यम्। साह्याम दस्युमव्रतम् ॥८ ॥

हे सुख प्रदान करने वाले सोमदेव ! असह्य बन्धनों को दूर करने तथा (सत्कर्म से विरत) दुष्कर्म में निरत शत्रुओं का शमन करने के लिए हम आपकी वन्दना करते हैं ॥८ ॥

८९४.शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः। चरन्ति विद्युतो दिवि ॥९ ॥

पवित्र किये जाते समय (पात्र में गिरती हुई धार से उत्पन्न) सोम की ध्वनि, वर्षा के समय होने वाली जल की ध्वनि के समान मधुर है। उस तेजस्वी सोम की किरणें आकाश में सर्वत्र फैलती हैं ॥९ ॥

८९५.आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत्। अश्ववत्सोम वीरवत् ॥१० ॥

सुपात्र में स्थित हे सोमदेव ! आप अन्न के भण्डार प्रदान करें, साथ ही साथ पुत्र-पौत्र, गौएँ, अश्व एवं स्वर्णादि अपार वैभव भी प्रदान करें ॥१० ॥

८९६.पवस्व विश्वचर्षण आ मही रोदसी पृण। उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥११ ॥

उषाकाल के बाद अपनी स्वर्णिम रश्मियों से जगत् को आलोकित करने वाले सूर्यदेव की भाँति हे विश्व द्रष्टा सोमदेव ! अपने तृप्तिदायक पवित्र हुए रस से आप धरती और आकाश को भर दें। (सारे संसार में पवित्रता का संचार करें) ॥११ ॥

८९७.परिणः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः। सरा रसेव विष्टपम् ॥१२ ॥

हे सोमदेव ! जल से घिरी हुई पृथ्वी की भाँति आप अपनी सुखद रसधार से हमें चारों ओर से घेर लें। (जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आपकी अनुकम्पा से सुखद अनुभूति का लाभ मिले) ॥१२ ॥

[पृथ्वी समुद्र से घिरी है, यह ज्ञान वैदिककाल से ही ऋषियों को है।]

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

८९८.आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना। यत्रा देवा इति ब्रुवन् ॥१ ॥

हे मतिमान् सोमदेव ! आप अपनी प्रिय सरसधार सहित शीघ्र ही उपस्थित हों। जहाँ देवताओं का निवास है, वहाँ (यज्ञीय वातावरण में) आप पधारें, ऐसा हमारा आग्रह है ॥१ ॥

८९९.परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः। वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥२ ॥

हे सोमदेव ! संस्काररहित क्षेत्र को संस्कारवान् बनाते हुए, मानवमात्र के निमित्त अन्न आदि उत्पन्न करने के लिए आप आकाश से वर्षा करें। (प्राण-पर्जन्य के रूप में आपका अनुग्रह जल के साथ प्राप्त हो।) ॥२ ॥

९००.अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ। सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥३ ॥

आकाश में मन्दगति से विचरण करने वाला, पवित्र किया जाता हुआ सोमरस, सागर (नदी) जलाशय आदि की लहरों को प्राप्त होता है ॥३ ॥

९०१.सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा। विचक्षाणो विरोचयन् ॥४ ॥

सबका निरीक्षक, सबका प्रकाशक, दिव्य सोम अंतरिक्ष से प्राकृतिक छन्ने से छनता हुआ तीव्रगति से अवतरित होता है ॥४ ॥

१०२.आविवासन्परावतो अथो अर्वावतः सुतः । इन्द्राय सिच्यते मधु ॥५ ॥

तैयार किया हुआ सोमरस, दूर एवं समीप से (समुचित रीति से) संस्कारित (पवित्र) करके, इन्द्रदेव को समर्पित किया जाता है ॥५ ॥

१०३.समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥६ ॥

शिलाओं के द्वारा पीसकर निकाले गये, ताजे हरे रंग वाले सोमरस को, पान करने हेतु, देवराज इन्द्र को समर्पित किया जाता है ! इस समय एक स्थान पर एकत्रित साधक उनकी स्तुति करते हैं ॥६ ॥

१०४.हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् । महामिन्दुं महीयुवः ॥७ ॥

बहिनों की तरह साथ-साथ स्नेहपूर्वक रहने वाली, सब जगह पहुँचने वाली अँगुलियाँ, अपने श्रेष्ठ त्यागी सोमरस को निकालने का महान् कार्य करती हैं ॥७ ॥

१०५.पवमान रुचारुचा देव देवेभ्यः सुतः । विश्वा वसून्या विश ॥८ ॥

शुद्ध किये गये हे तेजस्वी सोमदेव ! आप देवताओं को समर्पित करने के लिए तैयार किये गये हैं । सब प्रकार की (सांसारिक एवं दैवी) सम्पदाएँ आप हमें प्रदान करें ॥८ ॥

१०६.आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः । इषे पवस्व संयतम् ॥९ ॥

हे पवित्र सोमदेव ! जिस प्रकार से देवताओं के आशीर्वाद मिलते हैं, उसी प्रकार स्तुति करने योग्य आप (अपने रस की) वर्षा करें । वह वर्षा हमें अन्न प्रदान करने वाली हो ॥९ ॥

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः ॥

१०७.जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।

घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥१ ॥

प्रजा की रक्षा करने वाले, जागृति एवं दक्षता प्रदान करने वाले, अग्निदेव याजकों को प्रगति का नवीन पथ प्रशस्त करने के लिए प्रकट हुए हैं । घृत की आहुतियों से अधिक प्रदीप्त होकर, विराट् आकाश का स्पर्श करने में समर्थ तेज से युक्त, पवित्रता प्रदान करने वाले आप साधकों के लिए (अनुदान देने हेतु) चमकते हैं ॥१ ॥

१०८.त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने ।

स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥२ ॥

वृक्षों के आश्रय (काष्ठ) में अदृश्य दावानल के रूप में व्याप्त हे अग्निदेव ! अंगिरस ऋषियों ने गुह्य रूप में स्थित आपको गहन शोध के उपरान्त प्राप्त किया । आप बलपूर्वक कठिन मंथन (अरणि मंथन) द्वारा प्राप्त होते हैं, अतः हे अंगिरः ! आपको सामर्थ्य का पुत्र कहा जाता है ॥२ ॥

१०९.यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समिन्धते ।

इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥३ ॥

यज्ञ की पताका वाले रथ पर, देवताओं के साथ बैठने वाले, पुरोहित अग्निदेव को याजक तीन स्थानों (अन्त:करण, गृह प्रकोष्ठ एवं यज्ञशाला) में भली-भाँति प्रज्वलित करते हैं । सत्कर्म में निरत, यज्ञ करने के इच्छुक अग्निदेव अपने स्थान पर (यज्ञकुण्ड में) यज्ञ करने के लिए स्थित होते हैं ॥३ ॥

११०.अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतं हवम् ॥४ ॥

यज्ञ को (अर्थात् सत्कर्म की वृत्ति को) बढ़ाने वाले हे मित्र और वरुण देवो ! उत्तम रीति से तैयार व शुद्ध किया गया यह सोमरस आपके निमित्त प्रस्तुत है । आप इसे ग्रहण करें, ऐसी हमारी प्रार्थना है ॥४ ॥

१११.राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे । सहस्रस्थूण आशाते ॥५ ॥

आपस में कभी द्रोह न करने वाले हे तेजस्वी मित्र और वरुण देवो ! हजार स्तम्भों पर स्थिर, सशक्त, श्रेष्ठ यज्ञ मण्डप में आप विराजें ॥५ ॥

११२.ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती । सचेते अनवह्वरम् ॥६ ॥

आज्याहुति के रूप में प्राप्त होने वाला घृत ही जिनका आहार है, ऐसे अदिति पुत्र, वैभव के स्वामी सम्राट, मित्र और वरुणदेव, कुटिलता से रहित, सरल हृदय वाले साधकों (याजकों) की ही सहायता करते हैं ॥६ ॥

११३.इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥७ ॥

सभी देवताओं का स्नेह और सम्मान पाने वाले, जिनका किसी से भी विरोध नहीं, ऐसे ऐश्वर्यशाली इन्द्र देव ने ऋषि दधीचि की हड्डियों से निर्मित शस्त्रबल से, बाधाएँ उत्पन्न करने वाले ९९ शत्रुओं का दमन किया ॥७ ॥

११४.इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद्विदच्छर्यणावति ॥८ ॥

अन्तरिक्ष में स्थित मेघों के अन्दर विद्यमान विद्युत् शक्ति को इन्द्रदेव ने प्राप्त किया और उससे आसुरी शक्तियों (अनाचारियों) का संहार किया ॥८ ॥

११५.अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥९ ॥

गतिशील चन्द्रमण्डल में परोक्ष रूप से विद्यमान सूर्यदेव की तेजस्वी किरणें ही रात्रि में प्रकाशित होती हैं—ऐसी मान्यता है ॥९ ॥

[चन्द्रमा में स्वयं का प्रकाश न होने और सूर्य द्वारा उसके प्रकाशित होने का विज्ञान- सिद्ध तथ्य प्रकट किया गया है ।]

११६.इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः । अभ्राद्वृष्टिरिवाजनि ॥१० ॥

हे इन्द्र और अग्निदेव ! श्रेष्ठ सम्माननीय विद्वानों द्वारा , आप दोनों की प्रथम बार की गई यह स्तुति, मेघों से होने वाली वर्षा की भाँति (सहज रूप से) उत्पन्न हुई है ॥१० ॥

११७.शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः । ईशाना पिप्यतं धियः ॥११ ॥

हे इन्द्राग्नी ! स्तुति करने वाले साधकों की प्रार्थना को आप सुनें । आप दोनों समर्थ शासक के रूप में उनके (स्तोता के, श्रेष्ठ) कर्मों के (श्रेष्ठ) फल प्रदान करें ॥११ ॥

११८.मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये । मा नो रीरधतं निदे ॥१२ ॥

प्रगति की ओर ले जाने वाले नेता स्वरूप, हे इन्द्र और अग्निदेव ! आप हमें हिंसा और पाप कर्मों से बचाएँ । निन्दनीय कार्यों से हमें दूर रखें ॥१२ ॥

॥इति तृतीयः खण्डः ॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः ॥

११९.पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे। मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥१ ॥

शक्ति व उल्लास बढ़ाने वाले, हे हरिताभ सोम ! आप वायु एवं मरुत् देवताओं को तृप्त करने के लिए पवित्र हों ॥१ ॥

१२०.सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः। पवमानो अदाभ्यः ॥२ ॥

ज्ञान और बल से सम्पन्न, शुद्ध-संस्कारित होने के कारण सभी के परमप्रिय, किसी के बन्धन में न रहने वाले सोमदेव, देवताओं के मध्य शोभा को प्राप्त हो रहे हैं ॥२ ॥

१२१.पवमान धिया हितो३ऽभि योनिं कनिक्रदत्। धर्मणा वायुमारुहः ॥३ ॥

भली- भाँति विचारपूर्वक स्थापित किये गये, हे संस्कारित सोम ! आप अपने स्वाभाविक गुणं से वायुदेव के साथ संयुक्त होकर, कलश में प्रतिष्ठित हों ॥३ ॥

१२२.तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीँ रति ताँ इहि ॥४ ॥

हे दीप्तिमान् सोम ! आपसे मित्रता करने के लिए हम निरन्तर प्रयत्नशील हैं। दुष्ट-दुराचारी हमें पीड़ित कर रहे हैं। आप उन शत्रुओं का विनाश करें ॥४ ॥

१२३.तवाहं नक्तमुत सोम ते दिवा दुहानो बभ्र ऊधनि।
घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥५ ॥

हे समुज्ज्वल सोम ! हमें दिन-रात आपका सामीप्य प्राप्त हो । हम, सुदूर चमकने वाले सूर्यदेव तथा आपको, पक्षी की भाँति (प्रत्यक्ष गतिशील) देखते हैं ॥५ ॥

१२४.पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः।
शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥६ ॥

याजकगण, शुद्ध होने वाले, सबकी समीक्षा करके शत्रुओं का विनाश करने वाले, सोमदेव की विभिन्न स्तुतियों से शोभा बढ़ाते हैं ॥६ ॥

१२५. आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रो वृषा सुतम्। ध्रुवे सदसि सीदतु ॥७ ॥

विधिवत् तैयार किया गया अरुणाभ सोम, कलश में स्थिर होता है। इसके बाद सभा मण्डप में श्रेष्ठ स्थान पर बैठने वाले शक्तिमान् इन्द्रदेव, उस सोमरस के पास (पीने के लिए) जाते हैं ॥७ ॥

१२६.नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः।
आ पवस्व सहस्रिणम् ॥८ ॥

हे तृप्तिदायक सोम ! आप हमें शीघ्र ही, हजारों प्रकार का महान् वैभव, सभी ओर से प्रदान करें ॥८ ॥

॥इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

॥पंचमः खण्डः ॥

१२७.पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥१ ॥

हे अश्वपति इन्द्रदेव ! याजक द्वारा अपने हाथों से, पत्थर के सहयोग से निकाला गया सोमरस, आपके लिए अश्व-शक्ति जैसे गुणों से युक्त एवं आनन्दवर्द्धक सिद्ध हो । आप इसका पान करें ॥१ ॥

१२८.यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥२ ॥

घोड़ों के स्वामी, हे समृद्धिशाली इन्द्रदेव ! जिस सोमरस के उत्साह द्वारा आप वृत्रासुर (दुष्टों) का हनन करते हैं, वह श्रेष्ठ रस आपको आनन्द प्रदान करे ॥२ ॥

१२९.बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥३ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! विशिष्ट याजक (वसिष्ठ) गुणगान करते हुए, जिस श्रेष्ठ वाणी से आपकी अर्चना कर रहे हैं, उसे आप भली-भाँति विचारपूर्वक स्वीकार करें । यज्ञस्थल पर इस (ज्ञानरूपी) हविष्य को आप ग्रहण करें ॥३ ॥

१३०.विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥४ ॥

युद्धस्थल पर अपने प्रचण्ड पराक्रम द्वारा शत्रुओं का विनाश कर, उन पर विजय प्राप्त करने वाले इन्द्रदेव की, सभी स्तुति करते हैं । सत्कर्मों के बल पर उच्चपद प्राप्त करने वाले, त्वरित गति से कार्य सम्पन्न करने वाले, इन्द्रदेव की महिमा का गान करके उनकी सामर्थ्य को बढ़ाते हैं ॥४ ॥

१३१.नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरे ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥५ ॥

शक्तिशाली इन्द्रदेव की उत्तमवाणी से स्तुति करने वाले ऋत्विज् अति विनम्र हैं (इन्द्रदेव को देखते ही पहले नमस्कार करते हैं) । किसी से द्रोह न करने वाले हे श्रेष्ठ तेजस्वी स्तोताओ ! आप भी इन्द्रदेव के कानों को प्रिय लगने वाली ऋचाओं से उनकी स्तुति करो ॥५ ॥

१३२.समु रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्वः पतिर्यदी वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥६ ॥

सोमपायी व्रतशील आचरण वाले, देवलोक के स्वामी, बल एवं वैभवशाली इन्द्रदेव, याजकों को महानता प्रदान करना चाहते हैं । ऋत्विग्गण ऐसे इन्द्रदेव की विधिपूर्वक स्तुति करते हैं । ।६ ॥

१३३.यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥७ ॥

जो रथ के द्वारा तीव्रगति से आगे आने वाले हैं, शत्रुओं का विनाश कर उनसे अपने भक्तों की रक्षा करने वाले हैं, उन प्रजा के स्वामी श्रेष्ठ इन्द्रदेव का हम गुणगान करते हैं ॥७ ॥

९३४.इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्त्तरि ।
हस्तेन वज्रः प्रति धायि दर्शतो महान्देवो न सूर्यः ॥८ ॥

हे साधक ! अपनी रक्षा के लिए देवराज इन्द्र की उपासना करो । जिनके संरक्षण में (देवत्व की) रक्षा एवं (असुरता के) विनाश की दोहरी शक्ति है । वह दर्शनीय इन्द्रदेव सूर्यदेव के समान तेजस्वी वज्र को हाथ में धारण करते हैं ॥८ ॥

॥इति पञ्चमः खण्डः ॥

* * *

॥ षष्ठः खण्डः ॥

९३५.परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः । स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥१ ॥

बुद्धिबल से कर्मों का सम्पादन करने वाला, काष्ठ वेदी पर स्थापित, अन्तरिक्ष से परमप्रिय दीर्घ आयु प्रदान करने वाला, दिव्य सोमरस अध्वर्युगणों (रस निकालने वालों) से प्राप्त होता है । ।१ ॥

९३६.स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् । महान्मही ऋतावृधा ॥२ ॥

संस्कारित होता हुआ वह सोम रूपी महान् पुत्र, यज्ञ को पोषण देने वाले प्रसिद्ध माता-पिता अन्तरिक्ष और पृथ्वी को सुशोभित करता है ॥२ ॥

९३७.प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहः । वीत्यर्ष पनिष्टये ॥३ ॥

हे सोमदेव ! आपके स्थायित्व के लिए प्रयत्नशील, द्रोह रहित, मित्र भाव से गुणगान करने वाले मनुष्य के लिए, पोषक आहार के रूप में उपयोग किये गये आप स्तुति के योग्य हैं ॥३ ॥

९३८.त्वं ह्या३ङ्ग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः । अमृतत्वाय घोषयन् ॥४ ॥

तेजस्विता को धारण करने वाले हे दिव्य सोमदेव ! आप अपने जन्म की दिव्यता के आधार पर शीघ्र ही अमरता को प्राप्त करें ॥४ ॥

९३९.येना नवग्वा दध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।
देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्याशत ॥५ ॥

नवीन किरणों वाले सूर्यदेव, जिस सोम से सभी को सत्कर्म के लिए प्रेरित करते हैं, विप्र जिसकी सहायता से विपुल वैभव प्राप्त करते हैं, जो याजकों को प्राण-पर्जन्य की वर्षा करके अन्न के भण्डार प्रदान करते हैं, वह सुखदायी सोम सभी देवताओं को प्राप्त हो ॥५ ॥

९४०.सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति । अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् । ।६ ॥

शुद्ध किया जाता हुआ सोमरस, स्तुति गान के बाद संस्कारित होकर मधुर ध्वनि के साथ सुपात्र में स्थिर होता है ॥६ ॥

९४१.धीभिर्मृजन्ति वाजिनं वने क्रीडन्तमत्यविम् । अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥७ ॥

जल में मिश्रित होने वाला, शक्तिशाली सोम स्तुति गान करते हुए ऋत्विजों (साधकों) द्वारा शोधन यन्त्रों से शोधित किया जाता है । अन्तरिक्ष, वनस्पति एवं जीव जगत् रूपी तीन पात्रों में विद्यमान उस दिव्य सोम की ज्ञानीजन वन्दना करते हैं ॥७ ॥

९४२.असर्जि कलशाँ अभि मीढ्वांत्सप्तिर्न वाजयुः ।
पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥८ ॥

पोषक तत्त्वों से युक्त, जल में मिलने वाला सोम पात्रों में स्थिर होता है । संस्कारित होता हुआ वह, युद्ध स्थल पर जाते हुए अश्व की भाँति (ध्वनि करता हुआ) तीव्र वेग से बर्तन में पहुँचता है ॥८ ॥

९४३.सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥९ ॥

जो दिव्य सोम द्युलोक, पृथ्वीलोक, अग्निदेव, सूर्यदेव, इन्द्रदेव, विष्णुदेव एवं स्तुतियों का जनक है, ऐसा वह सोम संस्कारित किया जा रहा है ॥९ ॥

[यज्ञशाला में सोम के होने पर ही ये सभी देवता उपस्थित (प्रकट) होते हैं, अतः सोम को इन सबका जनक माना गया है ।]

९४४.ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥१० ॥

देवताओं, कवियों, विप्रों, पशुओं, पक्षियों एवं हिंसा करने वालों में विभिन्न रूपों से संव्याप्त दिव्य सोम, संस्कारित होते हुए ध्वनि के साथ कलश में स्थिर हो रहा है ॥१० ॥

[सोम की दिव्य क्षमता देवों में सृजनशक्ति, कवियों में शब्द विन्यास, विप्रों में ऋषित्व (ज्ञान) , पशुओं में बलिष्ठता, पक्षियों में शीघ्रगामिता, हिंसकों में विनाशक शक्ति के रूप में पाई जाती है ।]

९४५.प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिर स्तोमान्पवमानो मनीषाः ।
अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥११ ॥

प्रवाहित नदी की लहरों द्वारा उठ रही मधुर ध्वनि की भाँति , पवित्र होता हुआ सोम मनोरम ध्वनि कर रहा है । अन्तर्दृष्टि से छिपी हुई शक्तियों को जानकर, वह सोम कभी कम न होने वाली सामर्थ्य को प्राप्त करता है ॥११ ॥

॥इति षष्ठः खण्डः ॥

* * *

॥सप्तमः खण्डः ॥

९४६.अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् । अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥१ ॥

हे ऋत्विज्‌गणों ! आप सब अक्षय शक्ति के भण्डार, पराक्रम को बढ़ाने वाले, परम श्रेष्ठ, तेजस्वी अग्निदेव के समीप पहुँचें ॥१ ॥

९४७.अयं यथा न आभुवत्त्वष्टा रूपेव तक्ष्या । अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥२ ॥

विश्वकर्मा (बढ़ई) जिस प्रकार लकड़ी को संस्कारित करके उत्तम स्वरूप प्रदान करता है, उसी प्रकार इन अग्निदेव के कर्म से हम यशस्वी होते हैं एवं श्रेष्ठ स्वरूप प्राप्त करते हैं ॥२ ॥

९४८.अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते । आ वाजैरुप नो गमत् ॥३ ॥

सभी प्रकार के ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाले हे अग्निदेव ! आप हमारे पास अन्न एवं धन के साथ पधारें ॥३ ॥

९४९.इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम्।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! यज्ञशाला में आनन्दवर्द्धक दिव्य सोमरस की धाराएँ, आपको प्राप्त करने के लिए प्रवाहित हो रही हैं। आप इस तेजस्वी सोमरस का पान करें ॥४॥

९५०.न किष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे।
न किष्ट्वानु मज्मना न किः स्वश्व आनशे ॥५॥

अश्वशक्ति से चालित रथ में बैठने वाले हे इन्द्रदेव ! आपसे अधिक पराक्रमी कोई दूसरा वीर नहीं है। आप जैसा कोई अन्य शक्तिशाली, अश्व पालक, घोड़े का स्वामी नहीं है ॥५॥

९५१.इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥६॥

हे ऋत्विजो ! आनन्दवर्द्धक, पवित्र सोमरस समर्पित करके विभिन्न स्तोत्रों से गुणगान करते हुए सब इन्द्र देव की ही पूजा करो। सामर्थ्यशाली उन इन्द्रदेव को नमस्कार करो ॥६॥

९५२.इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिह।
पिबा सुतस्य मतिर्न मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ॥७॥

हे अश्वपति शूरवीर इन्द्रदेव ! यज्ञशाला में पधार कर आप हमारे द्वारा समर्पित हविष्यान्न को ग्रहण करें। आनन्दवर्द्धक, श्रेष्ठ, मधुर सोमरस का इच्छानुसार पान करें ॥७॥

९५३.इन्द्र जठरं नव्यं न पृणस्व मधोर्दिवो न।
अस्य सुतस्य स्वा३र्नोप त्वा मदाः सुवाचो अस्थुः ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार अन्तरिक्ष से ध्वनित दिव्य स्तुतियों को सुनकर, आप अनुपम स्वर्ग के आनन्द से लाभान्वित होते हैं, उसी प्रकार इस मधुर पवित्र सोमरस को पीकर तृप्त हों ॥८॥

९५४. इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो न जघान वृत्रं यतिर्न।
बिभेद वलं भृगुर्न ससाहे शत्रून्मदे सोमस्य ॥९॥

शत्रुओं पर शीघ्र विजय पाने वाले हे इन्द्रदेव ! सूर्य की तरह मेघ (वृत्र) को, संयमी वीर की भाँति वल राक्षस को एवं सोमरस की शक्ति से सम्पन्न आप भृगु की तरह हमारे शत्रुओं का विनाश करें ॥९॥

॥इति सप्तमः खण्डः॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- अकृष्टा माषा ८८६-८८८ । अमहीयु आङ्गिरस ८८९-८९१ । मेध्यातिथि काण्व ८९२-८९७ ॥ बृहन्मति आङ्गिरस ८९८-९०३, ९२४-९२६ । भृगु वारुणि अथवा जमदग्नि भार्गव ९०४-९०६ । सुतंभर आत्रेय ९०७-९०९ । गृत्समद शौनक ९१०-९१२ । गोतम राहूगण ९१३-९१५, ९४९-९५१ । वसिष्ठमैत्रावरुणि ९१६-९१८, ९२७-९२९ । दृढच्युत आगस्त्य ९१९-९२१ । सप्तर्षिगण ९२२-९२३ । रेभ काश्यप ९३०-९३२ । पुरुहन्मा आङ्गिरस ९३३-९३४ । असित काश्यप अथवा देवल ९३५-९३७ । शक्ति वासिष्ठ ९३८ । ऊरु आङ्गिरस ९३९ । अग्नि चाक्षुष ९४०-९४२ । प्रतर्दन दैवोदासि ९४३-९४५ । प्रयोग भार्गव अथवा पावक अग्नि अथवा अग्नि बार्हस्पत्य अथवा सहस् पुत्र गृहपति-यविष्ठ अथवा अन्य ९४६-९४८ । सन्दिग्ध ९५२-५४ ।

देवता - पवमान सोम ८८६-९०६, ९१९-९२६, ९३५-९४५ । अग्नि ९०७-९०९, ९४६-९४८ । मित्रावरुण ९१०-९१२ । इन्द्र ९१३-९१५, ९२७-९३४, ९४९-९५४ । इन्द्राग्नी ९१६-९१८ ।

छन्द- जगती ८८६-८८८, ९०७-९०९ । गायत्री ८८९-९०६, ९१०-९२१, ९२४-९२६, ९३५-९३७, ९४६-९४८ । बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ९२२-९२३, ९३३-९३४ । विराट् ९२७-९२९ । अतिजगती ९३० । उपरिष्टाद् बृहती ९३१-९३२ । काकुभ प्रगाथ (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती) ९३८, ९३९ । उष्णिक् ९४०-९४२ । त्रिष्टुप् ९४३-९४५ । अनुष्टुप् ९४९-९५१ । तृचात्मक सूक्त ९५२-९५४ ।

॥इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- अकृष्टा माषा ८८६-८८८। अमहीयु आङ्गिरस ८८९-८९१। मेध्यातिथि काण्व ८९२-८९७॥ बृहन्मति आङ्गिरस ८९८-९०३, ९२४-९२६। भृगु वारुणि अथवा जमदग्नि भार्गव ९०४-९०६। सुतंभर आत्रेय ९०७-९०९। गृत्समद शौनक ९१०-९१२। गोतम राहूगण ९१३-९१५, ९४९-९५१। वसिष्ठमैत्रावरुणि ९१६-९१८, ९२७-९२९। दृढच्युत आगस्त्य ९१९-९२१। सप्तर्षिगण ९२२-९२३। रेभ काश्यप ९३०-९३२। पुरुहन्मा आङ्गिरस ९३३-९३४। असित काश्यप अथवा देवल ९३५-९३७। शक्ति वासिष्ठ ९३८। ऊरु आङ्गिरस ९३९। अग्नि चाक्षुष ९४०-९४२। प्रतर्दन दैवोदासि ९४३-९४५। प्रयोग भार्गव अथवा पावक अग्नि अथवा अग्नि बार्हस्पत्य अथवा सहस् पुत्र गृहपति-यविष्ठ अथवा अन्य ९४६-९४८। सन्दिग्ध ९५२-५४।

देवता - पवमान सोम ८८६-९०६, ९१९-९२६, ९३५-९४५। अग्नि ९०७-९०९, ९४६-९४८। मित्रावरुण ९१०-९१२। इन्द्र ९१३-९१५, ९२७-९३४, ९४९-९५४। इन्द्राग्नी ९१६-९१८।

छन्द- जगती ८८६-८८८, ९०७-९०९। गायत्री ८८९-९०६, ९१०-९२१, ९२४-९२६, ९३५-९३७, ९४६-९४८। बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ९२२-९२३, ९३३-९३४। विराट् ९२७-९२९। अतिजगती ९३०। उपरिष्टाद् बृहती ९३१-९३२। काकुभ प्रगाथ (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती) ९३८, ९३९। उष्णिक् ९४०-९४२। त्रिष्टुप् ९४३-९४५। अनुष्टुप् ९४९-९५१। तृचात्मक सूक्त ९५२-९५४।

॥इति पञ्चमोऽध्यायः॥

॥अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

९५५.गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः ।
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा नर उप गिरेम आसते ॥१ ॥

स्वर्ण-सम्पदा से युक्त, पराक्रम बढ़ाने वाले, सभी भुवनों में व्याप्त हे गो-दुग्ध मिश्रित सोम ! आप पवित्र हैं । हे सोमदेव ! आप सर्वज्ञ, शूरवीर, एवं श्रेष्ठ पथ पर ले जाने वाले हैं । सभी ऋत्विज् (साधक) आपकी स्तुतियों द्वारा प्रार्थना करते हैं ॥१ ॥

९५६.त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि ।
स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥२ ॥

हे शक्तिवर्द्धक पवित्र सोम ! सभी में व्याप्त, साक्षी रूप, आप संस्कारित होते हुए हमारे पास पधारें । आपके अनुग्रह से हम सभी धन-सम्पदा से सम्पन्न होकर सुखी जीवन जिएँ ॥२ ॥

९५७.ईशान इमा भुवनानि ईयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः ।
तास्ते क्षरन्तु मधुमद्घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥३ ॥

हरे वर्ण के तीव्रगामी अश्वों (किरणों) से सभी लोकों में संव्याप्त, जगत् के स्वामी, हे तेजस्वी सूर्यरूप सोम ! मधुर स्निग्ध जलधाराओं में आपका रस (शक्ति) स्थिर रहे । हे दिव्य सोम ! आपकी प्रेरणा से याजक गण सत्कर्म में निरत रहें ॥३ ॥

९५८.पवमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत । सूर्यस्येव न रश्मयः ॥४ ॥

हे विश्व के ज्ञाता दिव्य सोम ! पवित्र होती हुई आपकी धाराएँ सूर्य की रश्मियों की भाँति तीव्र वेग से नीचे आ रही हैं ॥४ ॥

९५९.केतुं कृण्वन्दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि । समुद्रः सोम पिन्वसे ॥५ ॥

हे विश्वव्यापी सोम ! अन्तरिक्ष में ज्ञान चेतना (विचार-तरंगों) के रूप में संव्याप्त आप (प्राण-पर्जन्य वर्षा के रूप में) जल के माध्यम से हमें विभिन्न प्रकार का वैभव प्रदान करते हैं ॥५ ॥

९६०.जज्ञानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि । क्रन्दन्देवो न सूर्यः ॥६ ॥

सूर्य रश्मियों की भाँति प्रकाशित होने वाले हे सोमदेव ! स्तुति-गान के साथ पवित्र होते हुए, आप ध्वनिपूर्वक पात्र में स्थिर हो रहे हैं ॥६ ॥

९६१.प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः । श्रीणाना अप्सु वृञ्जते ॥७ ॥

दुग्ध आदि पोषक तत्त्वों से युक्त, शीतल सोमरस पवित्र होते समय, जल के साथ नीचे रखे हुए पात्र में एकत्र हो रहा है ॥७ ॥

९६२.अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः । पुनाना इन्द्रमाशत ॥८ ॥

शुद्धता को प्राप्त होने वाला सोमरस अधः पात्र (नीचे के बर्तन) में पहुँच कर स्थिर हो रहा है । देवराज इन्द्र इस पवित्र रस का पान करते हैं ॥८ ॥

९६३.प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय मादनः । नृभिर्यतो वि नीयसे ॥९ ॥

इन्द्रदेव का उत्साहवर्द्धन करने वाले, हे पवित्र सोम ! शुद्धिकरण की प्रक्रिया के बाद आप ऋत्विजों (याजकों) द्वारा यज्ञ वेदी पर पहुँचाए जाते हैं ॥९ ॥

९६४.इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिदीयसे । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥१० ॥

हे सोमदेव ! पत्थरों से कुचलकर निकालने के बाद आपको छन्ने द्वारा शुद्ध किया जाता है, तब आप इन्द्रदेव के लिए पीने योग्य होते हैं ॥१० ॥

९६५.त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीधृतिः । सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥११ ॥

प्रशंसा के योग्य हे संस्कारित सोम ! मानव मात्र के आनन्द को बढ़ाने वाले, याजकों के द्वारा धारण किये गये, आप पवित्रता को प्राप्त करें ॥११ ॥

९६६.पवस्व वृत्रहन्तम उक्थेभिरनुमाद्यः । शुचिः पावको अद्‌भुतः ॥१२ ॥

आश्चर्यजनक रीति से शत्रुओं का विनाश करने वाले, श्रेष्ठ वचनों द्वारा वन्दना करने योग्य हे सोमदेव ! आप शुद्धता और पवित्रता को प्राप्त करें ॥१२ ॥

९६७.शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतः स मधुमान् । देवावीरघशंसहा ॥१३ ॥

विधिपूर्वक तैयार किया गया, शुद्ध, संस्कारित और मधुर सोमरस, देवताओं को तृप्ति देने वाला एवं दुष्टों का विनाश करने वाला (विकारों का शमन करने वाला) कहा गया है ॥१३ ॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

९६८.प्र कविर्देववीतयेऽव्या वारेभिरव्यत । साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ॥१ ॥

देवताओं को प्रदान करने के लिए यह ज्ञानवर्द्धक सोम उत्तम रीति से संस्कारित किया जाता है । विकारनाशक यह सोम सभी शत्रुओं को परास्त करता है ॥१ ॥

९६९.स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति । पवमानः सहस्रिणम् ॥२ ॥

पवित्रता को प्राप्त होने वाले दिव्य सोम, स्तुति करने वाले याजकों को धन-धान्य प्रदान करके हर प्रकार से संतुष्ट करते हैं ॥२ ॥

९७०.परि विश्वानि चेतसा मृज्यसे पवसे मती । स नः सोम श्रवो विदः ॥३ ॥

हे संस्कारित हुए वन्दनीय सोम ! आप हमें विचारपूर्वक अन्न के भण्डार प्रदान करें ॥३ ॥

९७१.अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम् । इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४ ॥

हे दिव्य सोम ! स्तुति करने वाले धनवान् साधकों के लिए भी आप महान् यश, स्थायी निधि एवं अन्न के भंडार प्रदान करें ॥४ ॥

९७२.त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ । पुनानो वह्ने अद्‌भुत ॥५ ॥

सत्कर्म में निरत, सद्‌भावना सम्पन्न, पवित्र हृदय वाले, स्वामी के समान हे दिव्य सोम ! याजकों द्वारा प्रस्तुत श्रेष्ठ वचनों (स्तुतियों) को आप स्वीकार करें ॥५ ॥

९७३.स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः । सोमश्चमूषु सीदति ॥६ ॥

यज्ञ सम्पन्न कराने वाला, हथेलियों की सहायता से शुद्ध किया जाता हुआ, जल मिश्रित सोम, पात्र में स्थिर होता है ॥६ ॥

९७४.क्रीडुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि । दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥७ ॥

यज्ञ की भाँति निरंतर परमार्थ में निरत, क्रीड़ा करने वाले हे सोमदेव ! आप स्तोताओं को शौर्य-पराक्रम प्रदान करते हुए शुद्धता को प्राप्त होते हैं ॥७ ॥

९७५.यवंयवं नो अन्धसा पुष्टंपुष्टं परि स्रव । विश्वा च सोम सौभगा ॥८ ॥

हे सोमदेव ! अपने दिव्य पोषक रस को, अन्न एवं वनस्पतियों के साथ हमें उपलब्ध कराते रहें । हमें सम्पूर्ण वैभव प्रदान करें ॥८ ॥

९७६.इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः । नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥९ ॥

देवताओं के प्रिय आहार, हे सोमदेव ! याजकों द्वारा जिस भावना से आपकी स्तुति की जाती है, उसी स्नेह के साथ आप यज्ञशाला में श्रेष्ठ आसन ग्रहण करें ॥९ ॥

९७७.उत नो गोविदश्ववित्पवस्व सोमान्धसा । मक्षूतमेभिरहभिः ॥१० ॥

हे सोमदेव ! आप हमें गाय, घोड़े, अन्न आदि के रूप में अपार वैभव शीघ्र प्रदान करें ॥१० ॥

९७८.यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य । स पवस्व सहस्रजित् ॥११ ॥

शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले, हे सोमदेव ! अपने प्रहारों से असुरों का विनाश करके आप उन पर विजय प्राप्त करते हैं । कभी पराजित न होने वाले आप पवित्रता को प्राप्त हों ॥११ ॥

९७९.यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये । ताभिः पवित्रमासदः ॥१२ ॥

अपनी मधुर रस की धाराओं से सभी को संरक्षण देने वाले, हे सोमदेव ! आप उन धाराओं के साथ शुद्धता को धारण करें ॥१२ ॥

९८०.सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो वाराण्यव्यया । सीदन्नृतस्य योनिमा ॥१३ ॥

ऊन के छन्ने द्वारा शुद्ध होने वाले हे सोमदेव ! यज्ञ के मूल स्थान पर स्थापित होकर, आप इन्द्रदेव की तृप्ति के लिए तैयार हों ॥१३ ॥

९८१.त्वं सोम परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः । वरिवोविद्‌घृतं पयः ॥१४ ॥

धन-वैभव प्रदान करने वाले हे स्वादिष्ट सोम ! आप अंगिरादि ऋषियों के लिए घृत-दुग्धयुक्त पौष्टिक आहार प्रदान करें ॥१४ ॥

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः ॥

१८२.तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतोऽग्नेश्चिकित्र उषसामिवेतयः ।
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमासनि ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! जब आप मुख में डाले गये अन्न (आहार) के रूप में ओषधियों, वृक्ष-वनस्पतियों को जलाते हैं, तब आपकी रश्मियाँ वर्षाकाल की विद्युत् अथवा उषाकाल के प्रकाश की भाँति प्रतीत होती हैं ॥१ ॥

१८३.वातोपजूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे
आ ते यतन्ते रथ्योऽ३यथा पृथक् शर्धांस्यग्ने अजरस्य धक्षतः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! वायु के द्वारा प्रकम्पित, आप अपने प्रिय आहार वनस्पतियों की ओर प्रेरित होकर जब उसे लपटों द्वारा चारों ओर से घेर लेते हैं, उस समय आपका अदम्य तेज सब कुछ भस्म कर देने की इच्छा से, सभी दिशाओं में उसी प्रकार बढ़ता है, जैसे कोई रथ पर सवार शूर-वीर हो ॥२ ॥

१८४.मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं होतारं परिभूतरं मतिम् ।
त्वामर्भस्य हविषः समानमित्त्वां महो वृणते नान्यं त्वत् ॥३ ॥

विवेक बुद्धि को बढ़ाने वाले, शत्रुओं का विनाश करने वाले, यज्ञ एवं देवताओं के आधारभूत साधन अग्निदेव की हम वन्दना करते हैं । हे अग्निदेव !(थोड़ा अथवा बहुत) हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए हम आपका समवेत स्वर में आवाहन करते हैं । आपके अतिरिक्त किसी अन्य का नहीं ॥३ ॥

१८५.पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण ।
मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥४ ॥

हे सूर्य और वरुण देवता ! आप दोनों के पास प्रचुर मात्रा में उपयोगी साधन उपलब्ध हैं । आपकी श्रेष्ठ बुद्धि की अनुकूलता हमें सदैव प्राप्त रहे ॥४ ॥

१८६.ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धाम च । वयं वां मित्रा स्याम ॥५ ॥

द्वेष न करने वाले आप दोनों (सूर्य और वरुण) की हम भली-भाँति वन्दना करते हैं । हमें आपकी मित्रता का लाभ मिले तथा धन-धान्य की प्राप्ति हो ॥५ ॥

१८७.पातं नो मित्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा ।
साह्याम दस्यून् तनूभिः ॥६ ॥

हे मित्र और वरुण देवो ! आप श्रेष्ठ संरक्षक के रूप में अपने साधनों से हमारा संरक्षण एवं पालन करें । उस सामर्थ्य के बल पर हम भी शत्रुओं को पराजित कर सकें ॥६ ॥

१८८.उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! पात्र में रखे हुए सोमरस को ग्रहण करें तथा सामर्थ्यशाली होकर उठें और ठोड़ी को हिलाएँ अर्थात् अपना पराक्रम प्रदर्शित करने के लिए तैयार हो जाएँ ॥७ ॥

१८९.अनु त्वा रोदसी उभे स्पर्धमानमदददेताम् । इन्द्र यद्दस्युहाभवः ॥८ ॥

शत्रुओं के प्रति स्पर्धा का भाव रखने वाले हे इन्द्रदेव ! आपके द्वारा शत्रुओं का नाश किये जाने पर द्युलोक एवं पृथ्वीलोक दोनों ही आनन्द को प्राप्त करते हैं ॥८ ॥

९९०.वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतावृधम् । इन्द्रात्परितन्वं ममे ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! सत्य को बढ़ाने वाली, नवीन कल्पनाओं वाली, आठ पदों वाली, हम आपकी छोटी सी स्तुति करते हैं ॥९ ॥

९९१.इन्द्राग्नी युवामिमे३ऽभि स्तोमा अनूषत । पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥१० ॥

हे सुख प्रदाता इन्द्र और अग्निदेव ! ये स्तोतागण आप दोनों की वन्दना करते हैं । आप दोनों सोमरस का पान करें ॥१० ॥

९९२.या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥११ ॥

जगत् के नायक हे इन्द्र और अग्नि देवो ! याजकों द्वारा प्रशंसा किये जाते हुए, आप दोनों उनसे प्रदत्त हविष्यान्न के लिए, यज्ञशाला में अपने द्रुतगामी वाहनों (अश्वों) की सहायता से पधारें तथा दानदाताओं की सहायता करें ॥११ ॥

९९३.ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥१२ ॥

हे सृष्टि के नायक इन्द्र और अग्नि देवो ! विधिपूर्वक पवित्रता को प्राप्त इस सोमरस के पास इसका पान करने के लिए, आप अपने वाहनों के साथ पधारें ।१२ ॥

॥इति तृतीयः खण्डः ॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः ॥

९९४.अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदन्योनौ वनेष्वा ॥ १ ॥

हे अति तेजस्वी सोम ! पवित्र हुए आप, जल के साथ मिश्रित (अथवा काष्ठ-पात्र में पहले से विद्यमान) शब्द (ध्वनि) करते हुए द्रोण कलश में स्थिर हों ॥१ ॥

९९५.अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥२ ॥

जल-मिश्रित शुद्ध सोमरस इन्द्र वायु, वरुण, मरुत् एवं विष्णुदेवों की तृप्ति के लिए कलश में स्थिर हो ॥२ ॥

९९६.इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ॥३ ॥

हे दिव्य सोम ! हमारी सन्तानों के लिए आप सहस्रों प्रकार का अन्न, धनादि वैभव सभी ओर से लाकर प्रदान करें ॥३ ॥

९९७.सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥४ ॥

ऋत्विजों द्वारा निचोड़ा गया, आनन्दवर्द्धक, हरिताभ सोमरस, अश्व के समान वेगपूर्वक छनते हुए, कलश में स्थिर होता है ॥४ ॥

९९८.अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।
समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते ॥५ ॥

आनन्द प्राप्ति के लिए तैयार किया जाने वाला, प्रकाशित, गो- दुग्ध मिश्रित, आनन्दवर्द्धक यह सोमरस, अपने पोषक तत्वों के साथ पात्र में उसी प्रकार स्थिर हो रहा है, जिस प्रकार सभी नदियाँ अपने आश्रयदाता समुद्र के पास पहुँचती और स्थिर होती हैं ॥५ ॥

९९९.यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु । तन्नः पुनान आ भर ॥६ ॥

पवित्रता को प्राप्त होने वाले हे दिव्य सोम ! इस पृथ्वी पर जो भी अद्‌भुत प्रशंसनीय दिव्य वैभव है, वह सब आप हमें प्रदान करें ॥६ ॥

१०००. वृषा पुनान आयूंषि स्तनयन्नधि बर्हिषि । हरिः सन्योनिमासदः ॥७ ॥

याजकों के जीवन को पवित्र करने वाले हे हरिताभ सोम ! शब्दायमान होते हुए आप अपने आसन (पात्र) पर स्थिर हों ॥७ ॥

१००१. युवं हि स्थः स्वःपती इन्द्रश्च सोम गोपती । ईशाना पिप्यतं धियः ॥८ ॥

गौओं के स्वामी, ऐश्वर्यशाली, हे सोम और इन्द्र देवो ! आप दोनों निश्चित रूप से इस जगत् के रक्षक हैं । हम सबकी बुद्धि को श्रेष्ठ मार्ग में नियोजित करें ॥८ ॥

॥इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

॥पंचमः खण्डः ॥

१००२. इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥१ ॥

सुख-सामर्थ्य की कामना से साधनों द्वारा सबल बनाये गये, दुष्टों का नाश करने वाले इन्द्रदेव से हम छोटे अथवा बड़े युद्धों में अपनी सुरक्षा का आश्वासन चाहते हैं । वे युद्धों में हमारी रक्षा करें ॥१ ॥

१००३.असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादद‍िः ।
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥२ ॥

शत्रुओं का विनाश कर उनका वैभव नष्ट करने वाले, वीर सैनिक हे इन्द्रदेव ! आप याजकों को अपार वैभव प्रदान करें, आप महान् ऐश्वर्यप्रदाता हैं ॥२ ॥

१००४.यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।
युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥३ ॥

युद्धकाल में विजेता को अपार वैभव प्राप्त होता है । शक्तिशाली एवं गतिशील अश्वों से युक्त रथ वाले हे इन्द्रदेव ! संग्राम में किसको मारना है और किसको नहीं ? इसका विचार करते हुए हमको (याजकों को) महान् वैभव प्रदान करें ॥३ ॥

१००५.स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥४ ॥

स्वादिष्ट और मधुर सोमरस का पान करती हुई उज्ज्वल किरणें, इन्द्रदेव (सूर्य) के समीप सुशोभित होती हैं । [illegible]शाली इन्द्रदेव के पास आनन्दपूर्वक रहने वाली किरणें स्वराज्य में ही निवास करती हैं ॥४ ॥

१००६.ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।

प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥५ ॥

इन्द्र (सूर्य) देव को स्पर्श करने वाली धवल किरणें, इन्द्रदेव की प्रिय किरणें वज्र को प्रेरणा देती हैं और पोषण प्रदान करती हुई स्वराज्य में ही रहती हैं ॥५ ॥

१००७.ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।

व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥६ ॥

ज्ञानयुक्त वे (किरणें) उस (इन्द्र) के प्रभाव का पूजन करती हैं । पूर्व में हो चुके को समझने वाली वे, इन्द्र देव द्वारा पहले किये गये कार्यों का स्मरण दिलाती हैं और स्वराज्य के अनुशासन में ही रहती हैं ॥६ ॥

॥इति पंचमः खण्डः ॥

* * *

॥षष्ठः खण्डः ॥

१००८.असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ॥१ ॥

पर्वत शिखरों पर उपलब्ध होने वाला, आनन्दवर्द्धक सोमरस, जल में मिश्रित होकर बाज़ पक्षी की भाँति वेगपूर्वक पात्र में प्रविष्ट होता है ॥१ ॥

१००९.शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धौतं नृभिः सुतम् । स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥२ ॥

याजकों द्वारा अभिषुत, देवों के श्रेष्ठ आहार, जल मिश्रित, पवित्र सोमरस को गौएँ अपना दुग्ध मिलाकर अधिक स्वादिष्ट बना रही हैं ॥२ ॥

१०१०.आदीमश्वं न हेतारमशूशुभन्नमृताय । मधो रसं सधमादे ॥३ ॥

इसके उपरान्त, अश्व के समान स्फूर्तिदायक इस सोमरस को याजकगण अमरत्व प्राप्ति की कामना से यज्ञ-स्थल पर स्थापित करते हैं ॥३ ॥

१०११.अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् ।वि कोशं मध्यमं युव ॥४ ॥

वनस्पतियों के स्वामी हे सोमदेव ! देवताओं के द्वारा वांछित महान् ऐश्वर्य आप हमें प्रदान करें आप यज्ञशाला (मध्य कोश) में श्रेष्ठ स्थान पर स्थिर रहें ॥४ ॥

१०१२.आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः ।

वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपो जिन्वन् गविष्टये धियः ॥५ ॥

राजा की भाँति सबका पालन करने वाले, बुद्धिशाली हे सोमदेव ! याजकों की बुद्धियों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हुए, अन्तरिक्ष से बरसने वाले पर्जन्य-वर्षा की तरह नीचे के पात्र में स्थिर होने की कृपा करें ॥५ ॥

१०१३.प्राणाःशिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।

विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥६ ॥

जल से उत्पन्न होने वाले हे दिव्य सोम ! यज्ञ के प्रकाशक, प्राण रूप अपने रस को प्रेरित करें । सर्वप्रिय हवि को ग्रहण करते हुए पृथ्वी और अन्तरिक्ष को प्रकाशित करें ॥६ ॥

१०१४.उप त्रितस्य पाष्योऽरभक्त यद्गुहा पदम् ।
यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥७ ॥

त्रित (महान्) ऋषि की गुफा में चट्टान के समान, कठोर दो फलकों के मध्य से प्राप्त होने वाले सोमरस की ऋत्विजों ने गायत्री आदि सात छन्दों से स्तुति की ॥७ ॥

१०१५.त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वैरयद्रयिम् ।
मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥८ ॥

त्रित (तीन भुवनों) के तीनों सवनों (कालों) में व्याप्त हे दिव्य सोम ! अपनी रस की धारा से इन्द्रदेव को प्रेरित करें । श्रेष्ठ याजक उनका (इन्द्र का) उत्तम स्तोत्रों से गुणगान करते हैं ॥८ ॥

१०१६.पवस्व वाजसातये पवित्रे धारया सुतः ।
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तरः ॥९ ॥

रस रूप में निष्पन्न हे सोमदेव ! अपनी मधुर-पोषक धारा से इन्द्र तथा विष्णु आदि सभी देवताओं की तृप्ति के लिए पवित्र होकर आप सुपात्र में स्थिर हों ॥९ ॥

१०१७.त्वां रिहन्ति धीतयो हरिं पवित्रे अद्रुहः ।
वत्सं जातं न मातरः पवमान विधर्मणि ॥१० ॥

संस्कारित होने वाले (छनने वाले) हे हरिताभ सोमदेव ! आपस में द्वेष न करने वाली अँगुलियाँ आपको उसी प्रकार निचोड़ती हैं, अर्थात् साफ करती हैं, जैसे कोई गाय नवजात बछड़े को प्यार से चाटती है ॥१० ॥

१०१८.त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे ।
प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ॥११ ॥

पवित्रता को प्राप्त करने वाले हे महान् व्रती सोमदेव ! अन्तरिक्ष और पृथ्वी को भली-भाँति धारण करते हुए आप अपनी महिमा के अनुरूप कवच को धारण करते हैं ॥११ ॥

१०१९.इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥१२ ॥

अपनी सशक्त रसधार से इन्द्रदेव के पराक्रम को बढ़ाते हुए, उन्हें आनन्दित करने वाला सोमरस पवित्र होता है । शक्तिशाली यह सोमरस दुराचारी शत्रुओं को पीड़ित करते हुए उनका नाश करता है तथा साधकों को वैभव प्रदान करता है ॥१२ ॥

१०२०.अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥१३ ॥

पत्थरों की सहायता से निकाला गया, तेजस्वी, सुखदायी, सोमरस, अपनी मधुर धार से पवित्रता को प्राप्त हो रहा है । इन्द्रदेव का सान्निध्य पाने की इच्छा वाला, वह सोमरस उनके उत्साह को बढ़ाते हुए सभी को तृप्त कर रहा है ॥१३ ॥

१०२१.अभि व्रतानि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन् ।
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये ॥१४ ॥

ऋतुओं को धारण करने वाला, व्रतशील, तेजस्वी सोम, अपने मधुर रस से देवताओं को तृप्त करता है। इस समय अँगुलियों द्वारा पवित्र होते हुए पात्र में स्थिर हो रहा है ॥१४ ॥

॥इति षष्ठः खण्डः ॥

* * *

॥सप्तम खण्डः ॥

१०२२.आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम्।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१ ॥

हे अजर-अमर तेजस्वी अग्निदेव ! हम याजकगण आपको उत्तम समिधाओं से प्रज्वलित करते हैं। जब आपके दिव्य प्रकाश से अनन्त अन्तरिक्ष प्रकाशित हैं, तो स्तुति करने वालों को भी अपार वैभव प्रदान करें ॥१ ॥

१०२३.आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिषस्पते।
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥२ ॥

विश्व का पोषण करने वाले, शत्रुओं का विनाश करने वाले, देवताओं को हवि पहुँचाने वाले, आनन्दवर्द्धक, सुप्रकाशित हे अग्निदेव ! ऋचाओं का उच्चारण करते हुए, याजकगण आपकी ज्वालाओं में आहुति दे रहे हैं, आप उन स्तोताओं को ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२ ॥

१०२४.ओभे सुश्चन्द्र विश्पते दर्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३ ॥

प्रजा का पालन करने वाले, शक्ति-सम्पन्न, देदीप्यमान, हे अग्निदेव ! आहुति प्रदान करते समय दोनों पात्र आपके मुख तक पहुँचते हैं। हविष्यान्न द्वारा आपको प्रसन्न करने वाले स्तोताओं को आप महान् ऐश्वर्य प्रदान करें ॥३ ॥

१०२५.इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्। ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥४ ॥

ज्ञान की साधना एवं ज्ञान का विस्तार करने वाले हे विद्वान् उद्गाताओ ! प्रशंसनीय इन्द्रदेव के लिए विस्तारपूर्वक साम-गायन करो ॥४ ॥

१०२६.त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः।
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥५ ॥

सूर्य को प्रकाशित करने वाले, दुष्ट-दुराचारियों को पराजित करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप विश्वकर्मा आदि देवताओं की तरह महान् हैं ॥५ ॥

१०२७.विभ्राजं ज्योतिषा स्व३रगच्छो रोचनं दिवः।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥६ ॥

अपने तेज का विस्तार करते हुए सूर्य को प्रकाशित करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप पधारें। समस्त देवतागण आपसे मित्रतापूर्वक सम्पर्क स्थापित करना चाहते हैं ॥६ ॥

१०२८.असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥७ ॥

शत्रुओं को पराजित करने वाले हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! आप पधारें, आपके लिए सोमरस प्रस्तुत है । जैसे सूर्यदेव अपनी रश्मियों से अन्तरिक्ष को प्रकाशित करते हैं, वैसे ही (इस सोम का पान करके) आप महान् शक्ति को प्राप्त करेंगे ॥७ ॥

१०२९.आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥८ ॥

शत्रुओं को पराजित करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप मंत्रों द्वारा जोड़े गये घोड़ों वाले अपने रथ पर बैठें । सोम कुचलते हुए पत्थर की ध्वनि आपके मन को उसकी ओर आकर्षित करे । (अर्थात् आप सोमरस पीने की इच्छा से यहाँ आएँ) ॥८ ॥

१०३०.इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् ।
ऋषीणां सुष्टुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥९ ॥

अपराजेय शक्ति से सम्पन्न इन्द्रदेव को उसके अश्व यज्ञशाला में पहुँचाएँ, जहाँ याजकों-ऋषियों द्वारा स्तुति-गान हो रहा है ॥९ ॥

॥इति सप्तमः खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- (अकृष्टा माषादि) तीन ऋषिगण ९५५-९५७ । कश्यप मारीच ९५८-९६० । असित काश्यप अथवा देवल ९६१-९७४, ९९९-१००१, अवत्सार काश्यप ९७५-९७८ । जमदग्नि भार्गव ९७९-९८१, १००८-१०१० । अरुण वैतहव्य ९८२-९८४ । उरुचक्रि आत्रेय ९८५-९८७ । कुरुसुति काण्व ९८८-९९० । भरद्वाज बार्हस्पत्य ९९१-९९३ । भृगु वारुणि अथवा जमदग्नि भार्गव ९९४-९९६ । सप्तऋर्षिगण ९९७-९९८ । गोतम राहूगण १००२-१००७, १०२८-१०३० । ऊर्ध्वसद्मा आङ्गिरस १०११ । कृतयशा आङ्गिरस १०१२ । त्रित आप्त्य १०१३-१०१५ । रेभसूनू काश्यप १०१६-१०१८ । मन्यु वासिष्ठ १०१९-१०२१ । वसुश्रुत आत्रेय १०२२-१०२४ । नृमेध आङ्गिरस १०२५-१०२७ ।

देवता- पवमान सोम ९५५-९८१, ९९४-१००१, १००८-१०२१ । अग्नि ९८२-९८४, १०२२-१०२४ । मित्रावरुण ९८५-९८७ । इन्द्र ९८८-९९०, १००२-१००७, १०२५-१०३० । इन्द्राग्नी ९९१-९९३ ।

छन्द- जगती ९५५-९५७, ९८२-९८४ । गायत्री ९५८-९८१, ९८५-९९६, ९९९-१००१, १००८-१०१० । बृहती ९९७-९९८ । पंक्ति १००२-१००७, १०२२-१०२४ । काकुभ प्रगाथ (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती १०११, १०१२ । उष्णिक् १०१३-१०१५, १०२५-१०३० । अनुष्टुप् १०१६-१०१८ । त्रिष्टुप् १०१९-१०२१ ।

॥इति षष्ठोऽध्यायः ॥

॥अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

१०३१.ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।
दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥१ ॥

यज्ञों के प्रकाशक, देवताओं के लिए प्रिय, मधुर रस प्रदायक, पोषक, जनक, वैभवशाली, आनन्दवर्द्धक, उत्साहवर्द्धक, इन्द्रदेव को प्रिय, इन गुणों से युक्त हे सोमदेव ! आप अन्तरिक्ष और भूलोक के गुप्त वैभव को यजमानों के लिए प्रदान करते हैं ॥१ ॥

१०३२.अभिक्रन्दन्कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः ।
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥२ ॥

दिव्यलोक के अधिपति सैकड़ों विधियों (धाराओं) द्वारा शोधित, बुद्धिवर्द्धक और बलशाली हरिताभ सोमरस ध्वनियुक्त होकर कलश में स्थापित होता है । जलमिश्रित होकर शोधनयन्त्र से शोधित, ऐसा शौर्यशाली सोम अभीष्ट पूर्ति हेतु मित्र के समान यज्ञ के पात्र में प्रतिष्ठित होता है ॥२ ॥

१०३३.अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षस्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छसि ।
अग्रे वाजस्य भजसे महद्धनं स्वायुधः सोतृभिः सोम सूयसे ॥३ ॥

हे सोमदेव ! जल मिश्रित होने से पूर्व शोधित होने के लिए और स्तुतियों को प्राप्त करने के लिए आप पूज्यभाव से आमन्त्रित किये जाते हैं । श्रेष्ठ आयुधों से युक्त होकर, आप गौओं का संरक्षण करते हुए जाते हैं और प्रचुर वैभव प्रदान करते हैं । हे सोमदेव ! आप याजकों द्वारा शोधित किये जाते हैं ॥३ ॥

१०३४.असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाशवः ॥४ ॥

शौर्यवान्, प्रकाशमान् और वेगवान् सोमरस गौ, अश्वादि एवं सन्तान प्राप्ति हेतु यजमान द्वारा परिशोधित किया जाता है ॥४ ॥

१०३५.शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः । पवन्ते वारे अव्यये ॥५ ॥

याजकों द्वारा अपने हाथों से तैयार किया गया विशेष शोभायमान, सोमरस शोधक यन्त्र द्वारा संस्कारित किया जाता है ॥५ ॥

१०३६.ते विश्वादाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा । पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥६ ॥

दिव्य सोम हविदाता को स्वर्गस्थ, अन्तरिक्षीय और भौतिकी सभी प्रकार की विभूतियों से युक्त करें ॥६ ॥

१०३७. पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या । इन्द्रमिन्दो वृषा विश ॥७ ॥

हे सोमदेव ! देवशक्तियों का सान्निध्य पाने की इच्छा वाले आप अति गतिशील स्थिति में शोधित हों । हे सोमदेव ! बलवर्द्धक आप इन्द्रदेव के लिए प्रतिष्ठित हों ॥७ ॥

१०३८.आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः । आ योनिं धर्णसिः सदः ॥८ ॥

हे सोमदेव ! शौर्यवान्, दीप्तिमान् और सर्वधारक गुणों से युक्त आप हमें प्रचुर मात्रा में अन्न और बल प्रदान करें एवं निर्धारित स्थल पर पधारें ॥८ ॥

१०३९.अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः । अपो वसिष्ट सुक्रतुः ॥९ ॥

शोधित सोमरस की धाराएँ, प्रिय मधुर रस को पात्र में संगृहीत करती हैं । सत्कर्मों से युक्त याज्ञिक, सोमरस को जल में मिश्रित करते हैं ॥९ ॥

१०४०.महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः । यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥१० ॥

हे सोमदेव ! जिस समय आप में गाय का दूध मिश्रित करते हैं, इससे पूर्व, विशिष्ट गुणों से युक्त नदियों का जल अथवा अन्य शुद्ध जल मिलाये जाने का प्रावधान है ॥१० ॥

१०४१. समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः । सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥११ ॥

जलयुक्त, देवलोक का धारक, आधारभूत, इच्छित सोम, पात्र के जल में बार-बार शोधित किया जाता है ॥

१०४२.अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । सं सूर्येण दिद्युते ॥१२ ॥

शक्तिवर्द्धक, हरितवर्ण, महानता युक्त तथा मित्र के समान दर्शन योग्य सोम, आवाज करते हुए सूर्यदेव की तरह प्रकाशित होता है ॥१२ ॥

१०४३.गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भसे ॥१३ ॥

हे सोमदेव ! आपकी शक्ति-सामर्थ्य से ही कर्म की प्रेरणा पाने वाले स्तोतागण वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हैं और स्तुति-मन्त्रों द्वारा आनन्दवृद्धि के लिए आपको सुशोभित करते हैं ॥१३ ॥

१०४४.तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे । तव प्रशस्तये महे ॥१४ ॥

संसार के कल्याण की इच्छा से शत्रुओं का संहार करने वाले हे सोमदेव ! महान् स्तोत्रों से युक्त हम, आनन्दवृद्धि के लिए आपकी स्तुति करते हैं ॥१४ ॥

१०४५. गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत । आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥१५ ॥

हे सोमदेव ! यज्ञ के मूल तथा प्रमुख आत्मा के रूप में आप गौ, अश्व, अन्न और सुसन्तति प्रदान करने वाले हैं ॥१५ ॥

[वैदिक कालीन यज्ञों में सोम को अनिवार्य माना गया था । सोम न हो तो यज्ञ भी सम्भव नहीं, अतएव इसे यज्ञ की आत्मा कहा गया है ।]

१०४६.अस्मभ्यमिन्दविन्द्रियं मधोः पवस्व धारया । पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ॥१६ ॥

हे सोमदेव ! प्राण-पर्जन्य की वर्षा के समान हमारी इन्द्रियों की शक्ति-सामर्थ्य को आप अपनी अमृत रूपी मधुर धारा से बढ़ाएँ ॥१६ ॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

१०४७.सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥१ ॥

अतिस्तुत्य, पवित्र हे सोमदेव ! आप देवशक्तियों को उपलब्ध हों तथा शत्रुओं पर विजय प्राप्ति के बाद हमें कीर्तिमान् बनाएँ ॥१ ॥

१०४८.सना ज्योतिः सना स्व३र्विश्वा च सोम सौभगा ।अथा नो वस्यसस्कृधि ॥२ ॥

हे सोम ! हमें तेजस्विता प्रदान करें । सभी स्वर्गोपम सुख और सौभाग्य देते हुए हमारा कल्याण करें ॥२ ॥

१०४९.सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥३ ॥

हे सोमदेव ! आप हमें बल और यज्ञीय कर्तव्य-शक्ति प्रदान करें, शत्रुपक्ष को पराजित करके आप हमारा कल्याण करें ॥३ ॥

१०५०.पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥४ ॥

हे सोमरस शोधित करने वाले याजको ! इन्द्रदेव के पान हेतु सोमरस को पवित्र करो । (जिसे पीकर) वे हमारा कल्याण करें ॥४ ॥

१०५१.त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥५ ॥

हे सोमदेव ! आप अपने सत्कर्मों और संरक्षण युक्त साधनों से हमें सूर्योपासना की ओर प्रेरित करें, जिससे हमारा श्रेष्ठ हित हो ॥५ ॥

१०५२.तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक्पश्येम सूर्यम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥६ ॥

हे सोमदेव ! आपके द्वारा प्रदत्त सद्ज्ञान से एवं आपके संरक्षण से युक्त हम बहुत वर्षों तक सूर्य दर्शन से लाभान्वित हों अर्थात् दीर्घायुष्य प्राप्त करें और हमें कल्याण की प्राप्ति हो ॥६ ॥

१०५३.अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥७ ॥

हे श्रेष्ठ शस्त्रधारी सोमदेव ! लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के धन से आप हमें सम्पन्न करें, जिससे हम सुख प्राप्त करें ॥७ ॥

१०५४.अभ्य३र्षानपच्युतो वाजिन्त्समत्सु सासहिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥८ ॥

हे शक्ति-सम्पन्न सोमदेव ! युद्धभूमि में विजयी होने वाले और बैरियों को पराजित करने वाले आप कलश में स्थापित हों और हमें कल्याण की प्राप्ति हो ॥८ ॥

१०५५.त्वां यज्ञैरवीवृधन्पवमान विधर्मणि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥९ ॥

हे पवित्रता से युक्त सोमदेव ! अति फलदायक यज्ञ में यजमान उत्तम स्तोत्रों का गान करते हुए आपकी महिमा को बढ़ाते हैं, इसलिए हमें आप कल्याण से युक्त बनाएँ ॥९ ॥

१०५६.रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥१० ॥

हे सोमदेव ! हमें विचित्र अश्वों से सम्पन्न और सर्वलोक-हितकारी वैभव पर्याप्त मात्रा में प्रदान करें, जिससे हम सुख को प्राप्त करें ॥१० ॥

१०५७.तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः । तरत्स मन्दी धावति ॥११ ॥

हर्षदायक, उत्तम पोषक तत्त्वों से युक्त सोमरस धारा, शोधन यन्त्र द्वारा पवित्र होकर तीव्र वेग से प्रवाहित होती है । आनन्द से युक्त वह सोमरस शोधित स्थिति में प्रवाहित होता है ॥११ ॥

१०५८.उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः । तरत्स मन्दी धावति ॥१२ ॥

सभी प्रकार के वैभव से युक्त, देदीप्यमान-धाराएँ याजक का हर प्रकार से संरक्षण करना जानती हैं; ऐसी आनन्द प्रदायक धाराएँ तेज गति से प्रवाहित होती हैं ॥१२ ॥

१०५९.ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे । तरत्स मन्दी धावति ॥१३ ॥

ध्वस्र और पुरुषन्ति नामक दुष्ट प्रकृति के राजाओं के अपार वैभव को हम प्राप्त करें । ऐसा करने में समर्थ आनन्दप्रद सोम अतिवेग से प्रवाहित हो रहा है ॥१३ ॥

[दुष्ट प्रकृति के ये ध्वस्र और पुरुषन्ति नामक दोनों राजा पाप और ध्वंस प्रधान थे, जिन्होंने अनीतिपूर्वक बहुत सा धन एकत्रित कर लिया था।]

१०६०. आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे । तरत्स मन्दी धावति ॥१४ ॥

ध्वस्र और पुरुषन्ति के तीन सौ तथा हजार वस्त्रों को (प्रचुर मात्रा में आच्छादन हेतु) हम ग्रहण करते हैं। आनन्दप्रद सोम शीघ्रता से पात्र में प्रवाहित हो रहा है ॥१४ ॥

[यहाँ तीन सौ और हजार वस्त्रों का अर्थ प्रचुर मात्रा में वस्त्रों को ग्रहण करना लिया गया है।]

१०६१. एते सोमा असृक्षत गृणानाः शवसे महे । मदिन्तमस्य धारया ॥१५ ॥

परमानन्दयुक्त यह सोमरस स्तुतिगान के बाद हमें श्रेष्ठ शक्ति सम्पन्न करने के लिए धारा के साथ कलश-पात्र में गिरता है ॥१५ ॥

१०६२.अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि । सनद्वाजः परि स्रव ॥१६ ॥

मानव मात्र को सुख देने वाले हे सोमदेव ! आप देवताओं के सेवन हेतु, गोदुग्धादि मिश्रण से पवित्र गुणों से युक्त होकर पात्र में जाते हैं । अन्न प्रदान करते हुए आप कलश में गिरते हैं ॥१६ ॥

१०६३.उत नो गोमतीरिषो विश्वाअर्ष परिष्टुभः । गृणानो जमदग्निना ॥१७ ॥

हे सोमदेव ! जमदग्नि ऋषि द्वारा की गई स्तुति से युक्त होकर आप हमें गौओं के साथ अन्य सभी प्रशंसनीय पोषक आहार प्रदान करें ॥१७ ॥

१०६४.इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।

भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१८ ॥

स्तुति के योग्य अग्निदेव की महिमा के विस्तार हेतु, विचारपूर्वक की गई स्तुतियों को हम (उन तक अपनी श्रद्धा-भावना पहुँचाने के लिए) रथ की तरह प्रयुक्त करते हैं । इन अग्निदेव की स्तुति से हमारी बुद्धि प्रखर होती है । हे अग्निदेव ! आपकी मित्र भावना से हम निश्चय ही कष्टमुक्त हों ॥१८ ॥

१०६५.भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।

जीवातवे प्रतरां साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१९ ॥

हे अग्निदेव ! प्रत्येक शुभ अवसर पर हम समिधाएँ एकत्र कर आपको प्रज्वलित करते हैं एवं आहुतियाँ प्रदान करते हैं ।आप हमारे दीर्घायुष्य की कामना से यज्ञ सफल करें । आपकी मित्रता से हम कभी कष्ट न पाएँ ।

१०६६.शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।

त्वमादित्याँ आ वह तान्ह्य३श्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥२० ॥

हे अग्निदेव ! आपको समिधाओं आदि से भली-भाँति प्रज्वलित कर, हम देवताओं के लिए आहुतियाँ प्रदान करते हैं । आप हवि ग्रहण करने हेतु देवों को बुलाएँ और हमारा यज्ञ भलीप्रकार सम्पन्न करें । यहाँ हम उनके आगमन के लिए उत्सुक हैं । हे अग्निदेव ! आपकी मित्रता से हमें कल्याण की प्राप्ति हो ॥२० ॥

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः ॥

१०६७. प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम्। अर्यमणं रिशादसम् ॥१ ॥

(हे मित्र और वरुणदेव !) हम सूर्योदय के अवसर पर आप दोनों मित्र और वरुण तथा शत्रु-संहारक अर्यमा के साथ-साथ समस्त देवताओं की स्तुति करते हैं ॥१ ॥

१०६८.राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे । इयं विप्रा मेधसातये ॥२ ॥

हे विद्वान् मित्र और वरुणदेव ! कल्याणकारी श्रेष्ठ धन तथा दुष्टतारहित बल एवं सद्‌बुद्धि पाने के लिए हम आपकी वन्दना करते हैं। आप इसे स्वीकार करें ॥२ ॥

१०६९. ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह। इषं स्वश्च धीमहि ॥३ ॥

हे वरुणदेव ! ज्ञानवानों के साथ आपकी स्तुति करते हुए हम वैभवयुक्त हों। हे मित्र ! आपकी स्तुति से हम अन्न, धन और स्वर्गोपम सुखों की प्राप्ति करें ॥३ ॥

१०७०. भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सभी दुरात्माओं का संहार करें। श्रेष्ठकर्मों के अवरोधक शत्रुओं का विनाश करें और इच्छित धन से हमें युक्त करें ॥४ ॥

१०७१.यस्य ते विश्वमानुषग्भूरेर्दत्तस्य वेदति । वसु स्पार्हं तदा भर ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप द्वारा प्रदत्त जिस वैभव को सभी मानव उचित ढंग से जानते हैं, उस वाञ्छित ऐश्वर्य को हमें पर्याप्त मात्रा में प्रदान करें ॥५ ॥

१०७२. यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! सुरक्षित अभेद्य कोष में रखे गये, स्थिर स्थान पर रखे गये, किसी के स्पर्श से मुक्त स्थान पर रखे गये तथा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके लाये गये; ऐसे सभी धन को जो हमारे द्वारा वांछनीय है, हमें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराएँ ॥६ ॥

१०७३.यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु। इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥७ ॥

हे इन्द्राग्ने ! आप ही यज्ञ के ऋत्विज् हैं। युद्ध की तरह यज्ञ कर्मों में भी आपकी पवित्रता रहती है; अतएव हमारी प्रार्थना के अभिप्राय को दृष्टिगत रख करके आप स्वीकारें ॥७ ॥

१०७४.तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता। इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥८ ॥

हे इन्द्र और अग्निदेव ! आप शत्रुहनन कर्त्ता, रथ से यात्रा करने वाले, घेरा डालने वाले दुष्टों के संहारक और कभी परास्त न होने वाले हैं; ऐसे आप हमारी स्तुति को स्वीकार करें ॥८ ॥

१०७५. इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः। इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥९ ॥

हे इन्द्राग्ने ! ऋत्विजों ने आपके लिए आनन्दप्रद मधुर सोमरस तैयार किया है। इसके लिए आप हमारी प्रार्थना स्वीकार करें ॥९ ॥

॥इति तृतीयः खण्डः ॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः ॥

१०७६.इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः । अर्कस्य योनिमासदम् ॥१ ॥

हे मधुर सोमदेव ! यज्ञशाला के श्रेष्ठ स्थान पर आसीन होने के लिए, मरुद्‌गणों के साथ आने वाले इन्द्रदेव के निमित्त, आप पवित्र होकर स्थिर हों ॥१ ॥

१०७७. तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् । सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥२ ॥

अखिल विश्व को धारण करने वाले, हे सोमदेव ! वाणी के विशेषज्ञ याजक, स्तुतियों से आपकी शोभा-बढ़ाते हुए भली-भाँति पवित्र कर रहे हैं ॥२ ॥

१०७८.रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्तु वरुणः कवे । पवमानस्य मरुतः ॥३ ॥

हे नूतन तत्त्वदर्शी सोम ! पवित्रतायुक्त आपके रस को मित्र,वरुण,अर्यमा और मरुद्‌गण सेवन करें ॥३ ॥

१०७९. मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥४ ॥

श्रेष्ठ हाथों से शोधित सोमरस कलश पात्र में शब्द करते हुए गिरता है । हे पावन सोमदेव ! आप स्वर्ण-रंग से युक्त तथा अनेक लोगों द्वारा इच्छित प्रचुर धन हमें प्रदान करते हैं ॥४ ॥

१०८०.पुनानो वारे पवमानो अव्यये वृषो अचिक्रदद्वने ।
देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥५ ॥

बलवर्द्धक, पवित्रतायुक्त, शोधक द्वारा शोधित हुआ सोमरस, जल में अतिवेग से प्रवाहित होता है । हे शुद्धता से युक्त सोमदेव ! आप देवों के लिए गो-दुग्ध के साथ मिश्रित किये जाते हैं और पवित्र पात्र (द्रोण कलश) में स्थापित किये जाते हैं ॥५ ॥

१०८१.एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् । समादित्येभिरख्यत ॥६ ॥

जिस सोम की जननी समुद्र है, ऐसे सोम को शुद्ध करने में दसों अँगलियाँ सहायक हैं । ऐसा सोम, देवताओं को उपलब्ध होता है ॥६ ॥

१०८२. समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ । सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥७ ॥

सूर्य रश्मियों से प्रकाशित हे सोम ! सुपात्र में स्थिर हुए आप इन्द्रदेव और वायुदेव को प्राप्त होते हैं ॥७ ॥

१०८३.स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् । चारुर्मित्रे वरुणे च ॥८ ॥

हे मधुर और मनोहर सोम ! हमारे यज्ञ में भग, वायु, पूषा, मित्र और वरुण देवों के लिए आप शुद्ध हों ॥८ ॥

॥इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

॥पंचमः खण्डः ॥

१०८४.रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥१ ॥

जिन गौओं के सान्निध्य में रहकर हम अन्न से युक्त सुखोपभोग करते हैं । इन्द्रदेव के अनुग्रह से हमारी ये गौएँ, दुग्ध-घृतादि प्रदान करने वाली और शरीर से पुष्ट हों ॥१ ॥

१०८५. आ घ त्वावान् त्मना युक्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवीयानः । ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥२ ॥

हे धैर्यवान् इन्द्रदेव ! आप कल्याणकारी बुद्धि से स्तुति करने वाले स्तोताओं को अभीष्ट पदार्थ अवश्य प्रदान करें । आप स्तोताओं को धन देने के लिए रथ के चक्रों को मिलाने वाली धुरी के समान ही सहायक हैं ॥२ ॥

१०८६.आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितृणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! स्तोताओं द्वारा इच्छित धन आप उन्हें प्रदान करें । जिस प्रकार रथ की गति से उसकी धुरी को भी गति मिलती है, उसी प्रकार स्तुति कर्त्ताओं को धन की प्राप्ति हो ॥३ ॥

१०८७.सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥४ ॥

जिस प्रकार दूध निकालने के अवसर पर गोपाल गौओं को बुलाते हैं, उसी प्रकार सुन्दर स्वरूपधारी हे इन्द्रदेव ! हम अपनी रक्षा के लिए आपका आवाहन करते हैं ॥४ ॥

१०८८.उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद्रेवतो मदः ॥५ ॥

सोमपान करने वाले हे इन्द्रदेव ! सोमरस पान हेतु आप हमारे यज्ञों के सवनों में पधारें । सोमपान करके आप याजकों के लिए वैभव, प्रसन्नता और गौएँ प्रदान करें ॥५ ॥

१०८९. अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् ।मा नो अति ख्य आ गहि ॥६ ॥

सोमपान के पश्चात् आपकी श्रेष्ठ बुद्धियों का हम दर्शन करें । आप हमारे यहाँ पधारें । हमसे विमुख होकर अन्य दुराचारियों को ऐसे ज्ञान से कृतार्थ न करें अर्थात् हमें अवश्य ही लाभान्वित करें ॥६ ॥

१०९०.उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव । महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम् ।
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! उषा जिस प्रकार द्युलोक और भूलोक को अपने प्रकाश से अभिपूरित करती है, उसी प्रकार आप भी दोनों को भर देते हैं । महानता से युक्त, मनुष्यों के अधिपति हे इन्द्रदेव ! कल्याणकारिणी, देवमाता अदिति ने आपको जन्म दिया है ॥७ ॥

१०९१.दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः । पूर्वेण मघवन्पदा वयामजो यथा
यमः । देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥८ ॥

हे ज्ञाननिधि इन्द्रदेव ! महाशस्त्रधारी के समान आप शक्ति-सामर्थ्य को धारण करते हैं । (हे इन्द्र) जैसे अजा- पुत्र (बकरा) आगे के पैरों से अपने खाद्य पदार्थ को नियंत्रित करता है, वैसे आप भी अपनी सामर्थ्य से दुष्टों को नियंत्रित करते हैं । आपको देवताओं की जननी ने जन्म दिया है, कल्याणकारी माता ने उत्पन्न किया है ॥८ ॥

१०९२.अव स्म दुर्हणायतो मर्त्तस्य तनुहि स्थिरम् । अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ
अभिदासति । देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! जो हमें परतन्त्र करने वाले हैं, उन दुष्कर्मी शत्रुओं को आप पैरों तले कुचल दें । आपको अदिति माता ने उत्पन्न किया है, कल्याण करने वाली माता ने प्रादुर्भूत किया है ॥९ ॥

॥इति पञ्चमः खण्डः ॥

* * *

॥षष्ठः खण्डः ॥

१०९३.परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत्। मदेषु सर्वधा असि ॥१ ॥

गिरि- शिखरों पर रहने वाले, प्रसन्नतादायक पदार्थों में सर्वश्रेष्ठ हे सोमदेव ! आपकी रस धारा शोधन-यन्त्र द्वारा पवित्र होकर स्थिर हो रही है ॥१ ॥

१०९४.त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः । मदेषु सर्वधा असि ॥२ ॥

हे सोमदेव ! आप ज्ञानवान् हैं, दूरदर्शी हैं तथा आप अन्न से पैदा हुए पोषक-तत्त्वों को देते हैं । आनन्दप्रद रसों में आपका स्थान सर्वोपम है ॥२ ॥

१०९५.त्वे विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत । मदेषु सर्वधा असि ॥३ ॥

हे सोमदेव ! संगठन-शक्ति से क्रियाशील, सभी देवता आपके रस का सेवन करने की कामना करते हैं । आनन्द-प्रदाताओं में आप ही सर्वोत्कृष्ट हैं ॥३ ॥

१०९६. स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम् । सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥४ ॥

जो सोम, धन-धान्य, गौएँ एवं श्रेष्ठ सन्तति के रूप में अपार वैभव प्रदान करने वाले हैं, उस सोम के रस को हम निचोड़ने एवं पवित्र करते हैं ॥४ ॥

१०९७.यस्य त इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ॥५ ॥

हे सोम !आपके दिव्य रस को इन्द्र, मरुद्‌गण, अर्यमा, भग आदि देवता सेवन करते हैं । जिस प्रकार सोम द्वारा सुरक्षा के लिए मित्र और वरुण देवों को बुलाया जाता है; उसी प्रकार इन्द्रदेव को भी आमंत्रित करते हैं ॥५ ॥

१०९८. तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत । शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥६॥

हे ऋत्विजो ! आप देवताओं की प्रसन्नता के लिए शुद्ध होने वाले सोमरस का गुणगान करो । जिस प्रकार मातृ-शक्ति बालक को शोभायुक्त करती है । उसी प्रकार सोम को आहुतियों और प्रार्थनाओं द्वारा सुस्वादु (स्वादयुक्त) बनाओ ॥६ ॥

१०९९.सं वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते । देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥७ ॥

देव-संरक्षक, प्रसन्नतादायक, स्तुतियों से शोधित और याजकों के प्रेरक सोमरस को जल से मिश्रित करते हैं । माता के द्वारा शिशु को नहलाने-धुलाने की तरह, सोमरस जल के द्वारा शुद्ध किया जाता है ॥७ ॥

११००.अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये । अयं देवेभ्यो मधुमत्तरः सुतः ॥८ ॥

बलवृद्धि के साधनरूप इस मधुरतम सोमरस को देवताओं के पीने हेतु विधिवत् निकालते हैं । वे शक्ति-सामर्थ्यवान् बनने के लिए इसका पान करते हैं ॥८ ॥

११०१.सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः॥

मित्र के सदृश हितैषी, स्रवित हुए, पापरहित और श्रेष्ठ उद्देश्य के प्रेरक, आत्मतत्त्वदर्शी, स्तुति योग्य, दीप्तिमान् सोमरस हमारे लिए पात्र में पवित्र होता है ॥९ ॥

११०२.ते पूतासो विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
सूरासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥१० ॥

देखने में सूर्यदेव के सदृश तेजस्वी, शुद्ध, विलक्षण सोम दधि से युक्त कलश में स्थिर है। वह जल की स्निग्ध धार से मिलकर पवित्र होने वाला है ॥१० ॥

११०३.सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि। इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन्वसुविदः॥

पृथ्वी के ऊपर निवास करने वाला, अनेक पत्थरों से पिसने वाला, धनदायक सोम, हमें प्रचुर मात्रा में धन प्रदान करता है ॥११ ॥

११०४.अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व।
ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥१२ ॥

हे सोमदेव ! अपनी इस पावन धारा से आप हमें धन से अभिपूरित करें। हे सोमदेव ! श्रेष्ठ जल में मिश्रित आपका सेवन करके सूर्यदेव भी हवा के समान गतिशील होते हैं। अति ज्ञानवान् इन्द्रदेव सोमपान करके हमें नेतृत्व- क्षमता सम्पन्न सन्तान प्रदान करते हैं ॥१२ ॥

११०५. उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे।
षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ॥१३ ॥

हे सोम !सबके लिए स्तुत्य, आप हमारे यज्ञ में पवित्र धारा के साथ शुद्ध हों। हे शत्रुनाशक ! पेड़ों से मिलने वाले पके फल की भाँति सहस्रों प्रकार का धन शत्रुओं से मुकाबला करने के लिए हमें प्रदान करें ॥१३ ॥

११०६.महीमे अस्य वृष नाम शूषे मांश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे ।
अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः ॥१४ ॥

साधकों पर सुखों की वर्षा करना और दुराचारियों को पराजित करके झुकाना— ये दो आपके सुखदायी कार्य हैं। (हे सोम ! आप) संग्राम द्वारा (अस्त्र प्रहार द्वारा) मल्लयुद्ध द्वारा अथवा छुपकर, (काम, क्रोध आदि ।) हानि पहुँचाने वाले शत्रुओं को शक्तिहीन करके नष्ट करें। जड़ता को (मूर्खों को) हमसे दूर करें ॥१४ ॥

॥इति षष्ठः खण्डः ॥

* * *

॥सप्तमः खण्डः ॥

११०७.अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ॥१ ॥

हे श्रेष्ठ अग्निदेव ! आप हमारे पास रहते हुए हमारी रक्षा करें तथा हमारे कल्याण के निमित्त बनें ॥१ ॥

११०८. वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः ॥२ ॥

सभी को आश्रय देने वाले, धनवानों में अग्रगण्य, हे अग्निदेव ! आप हमारे पास सहजता से आएँ और तेजस्वितायुक्त होकर हमें धन प्रदान करें ॥२ ॥

११०९.तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥३ ॥

हे तेजवान् और प्रकाशवान् अग्निदेव ! मित्र आदि स्नेही परिजनों के लिए सुख की कामना करते हुए निश्चित ही हम आपकी प्रार्थना करते हैं ॥३ ॥

१११०.इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥४ ॥

ये सभी लोक हमारे आनन्द के साधन हों। इन्द्र सहित सभी देवता हमारे लिए सुखकर हों ॥४ ॥

१११९. यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधातु ॥५ ॥

आदित्यों सहित हे इन्द्र ! हमारे यज्ञकर्म, शरीर और सन्तानादि को आप श्रेष्ठ सफलता से युक्त करें ॥५ ॥

१११२.आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत् ॥६ ॥

आदित्यों, मरुद्गणों एवं अपनी अन्य सहायक शक्तियों के साथ इन्द्र (सूर्य) देव हमारे लिए ओषधि (सूर्य-चिकित्सा से आरोग्य कारक स्थिति) तैयार करें ॥६ ॥

१११३.प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते ॥७ ॥

हे मनुष्यो ! शत्रुहन्ता, विद्वान् इन्द्रदेव के लिए स्तवनों का गान करो, जिन्हें वे प्रसन्नता से सुनते हैं ॥७ ॥

१११४.अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥८ ॥

आदरणीय, प्रशंसनीय इन्द्रदेव की साधकगण स्तुति करते हैं। बलवान् एवं यशस्वी इन्द्रदेव उनकी हर प्रकार से रक्षा करते हैं ॥८ ॥

१११५.उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव !आपके संरक्षण में निवास करने वाले हम याजक बलवान् हों और धन-सम्पदा धारण करें ॥९ ॥

॥इति सप्तमः खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- (अकृष्टा माषादि) तीन ऋषि १०३१-१०३३ । कश्यप मारीच १०३४-१०३६, १०७६-१०७८ । मेधातिथि काण्व १०३७-१०४६ । हिरण्यस्तूप आङ्गिरस १०४७-१०५६ । अवत्सार काश्यप १०५६-१०६० । जमदग्नि भार्गव १०६१-१०६३ । कुत्स आङ्गिरस १०६४-१०६६, ११०४-११०६ । वसिष्ठ मैत्रावरुणि १०६७-१०६९ । त्रिशोक काण्व १०७०-१०७२ । श्यावाश्व आत्रेय १०७३-१०७५ । सप्तर्षिगण १०७९-१०८० । अमहीयु आङ्गिरस १०८१-१०८३ । शुनःशेप आजीगर्ति १०८४-१०८६ । मधुच्छन्दा वैश्वामित्र १०८७-१०८९ । मान्धाता यौवनाश्व १०९०, १०९२ । मान्धाता यौवनाश्व (पूर्वार्ध का), गोधा ऋषि (उत्तरार्ध का) १०९१ । असित काश्यप अथवा देवल १०९३-१०९५ । ऋणंचय राजर्षि १०९६ । शक्ति वासिष्ठ १०९७ । पर्वत-नारद काण्व १०९८-११०० । मनु सांवरण ११०१-११०३ । बन्धु, सुबन्धु, श्रुतबन्धु, विप्रबन्धु गौपायन अथवा लौपायन ११०७-११०९, भुवन आप्त्य अथवा साधन भौवन १११०-१११२ । वामदेव* १११३-१११५ ।

देवता- पवमान सोम १०३१-१०६३, १०७६-१०८३, १०९३-११०६ । अग्नि १०६४-१०६६, ११०७-११०९, आदित्य १०६७-१०६९ । इन्द्र १०७०-१०७२, १०८४-१०९२ । इन्द्राग्नी ११७३-११७५ । विश्वेदेवा १११०-१११२ । इन्द्र* १११३-१११५ ।* वैदिक यन्त्रालय, अजमेर के संस्करण के अनुसार।

छन्द- जगती १०३१-१०३३, १०४-१०६६ । गायत्री १०३४-१०६३, १०६७-१०७८, १०८१-१०८९, १०९३-१०९५ । बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा सतोबृहती १०७९-१०८० । महापंक्ति १०९०-१०९२ । यवमध्या गायत्री १०९६ । सतोबृहती १०९७ । उष्णिक् १०९८-११०० । अनुष्टुप् ११०१-११०३ । त्रिष्टुप् ११०४-११०६ । द्विपदा विराट् गायत्री ११०६-११०९ । द्विपदा त्रिष्टुप् १११०-१११२ । द्विपदा विराट् गायत्री १११३-१११५ ।

॥इति सप्तमोऽध्यायः ॥

॥अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

११११६. प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥१ ॥

उशना के समान उत्तम वाणी वाले स्तोता, देवताओं की जीवनियों को भलीप्रकार से प्रस्तुत करते हैं । व्रतशील, तेजस्वी, सात्विक, पोषक -तत्त्वों से युक्त सोमरस, शुद्ध होते समय ध्वनि करते हुए पात्र में स्थिर होता है ॥१ ॥

१११७. प्र हंसासस्तृपला वग्नुमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः ।
अङ्गोषिणं पवमानं सखायो दुर्मर्षं वाणं प्र वदन्ति साकम् ॥२ ॥

विवेकवान् साधक, शत्रुओं के बल से घबराकर सोम तैयार किये जा रहे स्थल पर तत्काल पहुँच गये । सभी मिलकर शत्रुओं द्वारा असहनीय तथा पवित्र होने वाले सोम के निमित्त वाद्ययन्त्रों से मधुर ध्वनि करने लगे ॥२ ॥

१११८. स योजत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीडन्तं मिमते न गावः ।
परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥३ ॥

क्रीड़ा करते हुए सहजरूप से ही वह सोम प्रशंसनीय गति को प्राप्त करता है । जिसे अन्यों के द्वारा मापा नहीं जा सकता, उसका महान् तेजस्वी प्रकाश दिन में हरिताभ एवं रात्रि में उज्ज्वल आभायुक्त होता है ॥३ ॥

१११९. प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः । सोमासो राये अक्रमुः ॥४ ॥

अश्वों एवं रथों की भाँति वेगपूर्वक ध्वनि करता हुआ सोमरस पवित्र हो रहा है । शोधित सोम, हमें अपार यश एवं वैभव प्रदान करता है ॥४ ॥

११२०. हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः । भरासः कारिणामिव ॥५ ॥

युद्ध में जा रहे रथों के समान, यज्ञ की ओर जाने वाले सोमरस को, भारवाहक द्वारा दोनों हाथों से उठाये गये बोझ के समान, याजकगण धारण करते हैं ॥५ ॥

११२१. राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते । यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥६ ॥

प्रशंसित राजा तथा सात याजकों द्वारा जिस प्रकार यज्ञ प्रतिष्ठित होता है, उसी प्रकार गोघृतादि से यह सोम संस्कारयुक्त होता है ॥६ ॥

११२२. परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा । मधो अर्षन्ति धारया ॥७ ॥

श्रेष्ठ स्तवनों से प्रशंसित, स्रवित सोम, देवताओं की आनन्दवृद्धि के लिए मधुर रस की धारा के साथ पात्र में गिरता है ॥७ ॥

११२३. आपानासो विवस्वतो जिन्वन्त उषसो भगम् । सूरा अण्वं वि तन्वते ॥८ ॥

उषा को तेजस्वी बनाता हुआ सोमरस इन्द्रदेव के पान हेतु ध्वनि करता हुआ शोधित हो रहा है ॥८ ॥

११२४. अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः । वृष्णो हरस आयवः ॥९ ॥

प्राचीन, शक्तिशाली सोम का आवाहन करने वाले ऋत्विज् स्तोता, यज्ञ द्वारों को उद्घाटित करते हैं ॥९ ॥

११२५. समीचीनास आशत होतारः सप्तजानयः । पदमेकस्य पिप्रतः ॥१० ॥

उत्कृष्ट जाति के, एक मात्र सोम को पूर्णता प्रदान करते हुए, सात याज्ञिक, यज्ञ- कर्मानुष्ठान के लिये उपस्थित होते हैं ॥१० ॥

११२६. नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुषा सूर्यं दृशे । कवेरपत्यमा दुहे ॥११ ॥

नेत्रों से सूर्य दर्शन के निमित्त, यज्ञ की नाभि सदृश सोम को, निज नाभि के निकट अर्थात् उदर के समीप स्थापित करते हैं, इस प्रकार सोम से उत्पन्न तेजस्विता को हम पूर्णता प्रदान करते हैं ॥११ ॥

११२७. अभि प्रियं दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम् । सूरः पश्यति चक्षसा ॥१२ ॥

बलवान् इन्द्रदेव अपने नेत्रों से दिव्यलोक में प्रिय और अध्वर्युओं द्वारा हृदयस्थ सोम को देखते हैं ॥१२ ॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

११२८. असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः । विदाना अस्य योजना ॥१ ॥

यजमान एवं देवताओं के सम्बन्ध में भली-भाँति जानते हुए, यशस्वी सोम धर्म-कार्यों की तरह यज्ञ मार्ग में आरूढ़ होता है ॥१ ॥

११२९. प्र धारा मधो अग्रियो महीरपो वि गाहते । हविर्हविःषु वन्द्यः ॥२ ॥

हवियों में सर्वश्रेष्ठ प्रशंसित हवि-सोम, जल में मिश्रित होते हुए मधुर रसधार से पात्र में स्थिर हो रहा है ॥२ ॥

११३०. प्र युजा वाचो अग्रियो वृषो अचिक्रदद्वने । सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥३ ॥

आहुतियों में अग्रिम, वाणी के उत्पादक, शक्तिशाली, सत्यतायुक्त और अहिंसक यह सोमदेव जल के साथ यज्ञशाला में प्रविष्ट होता है ॥३ ॥

११३१. परि यत्काव्या कविर्नृम्णा पुनानो अर्षति । स्वर्वाजी सिषासति ॥४ ॥

प्रज्ञावान् सोम निज शक्ति- सामर्थ्य से, मनुष्यों में पवित्रता का संचार करते हुए, स्तुतियों को जैसे ही स्वीकार करता है, वैसे ही शक्तिशाली इन्द्रदेव स्वर्ग से यज्ञस्थल पर आने के लिए उद्यत होते हैं ॥४ ॥

११३२. पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति । यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥५ ॥

संस्कारित सोम याजकों की प्रेरणा से, प्रजा की रक्षा के लिए, राजा की भाँति शत्रुओं का संहार करने के लिए तैयार होता है ॥५ ॥

११३३. अव्या वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति । रेभो वनुष्यते मती ॥६ ॥

जल मिश्रित हरिताभ सोम, शोधन यन्त्र द्वारा पवित्र होते समय, ऋत्विजों द्वारा की गई स्तुतियों को स्वीकार करते हुए, ध्वनि के साथ पात्र में स्थिर हो रहा है ॥६ ॥

११३४. स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति । रणा यो अस्य धर्मणा ॥७ ॥

जो याजक इस सोम को निकालने एवं शुद्ध करने में संलग्न रहते हैं, वे आनन्दवर्द्धक सोम के साथ वायु, इन्द्र और अश्विनीकुमारों का सान्निध्य लाभ प्राप्त करते हैं ॥७ ॥

११३५. आ मित्रे वरुणे भगे मधोः पवन्त ऊर्मयः । विदाना अस्य शक्मभिः ॥८ ॥

जिन ऋत्विजों द्वारा मधुर सोम की धाराएँ मित्र, वरुण और भग देवों के निमित्त प्रवाहित होती हैं, ऐसे सोम की महिमा से परिचित याजक आनन्द की प्राप्ति करते हैं ॥८ ॥

११३६. अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये । श्रवो वसूनि सञ्जितम् ॥ ९ ॥

हे पृथ्वी और द्युलोक के अधिष्ठाता देवता ! सोमरस रूपी श्रेष्ठ पोषक आहार को प्राप्त करने के लिए आप हमें, धन-धान्य के रूप में अपार वैभव प्रदान करें ॥९ ॥

११३७. आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥१० ॥

हे सोमदेव ! आपकी सुखदायक, अभीष्ट धन देने वाली, संरक्षण करने वाली बहु प्रशंसित शक्ति को आज हम (याजक) प्राप्त करने की इच्छा करते हैं ॥१० ॥

११३८. आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम् । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥११ ॥

आनन्दवर्द्धक, श्रेष्ठ, ज्ञानी, विलक्षण, संरक्षक और सबके द्वारा प्रशंसनीय, हे सोमदेव ! हम (याजकगण) आपकी उपासना करते हैं ॥११ ॥

११३९. आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥१२ ॥

उत्तम कर्मरत हे सोम ! धन, उत्तम ज्ञान, श्रेष्ठ पुत्र-पौत्र (सन्तति) , सबल संरक्षण और प्रशंसा के योग्य शक्ति-सामर्थ्य पाने के लिये हम आपकी वन्दना करते हैं ॥१२ ॥

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः ॥

११४०. मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥१ ॥

दिव्यलोक के मूर्धा स्थान पर स्थित, पृथ्वी पर विचरणशील, संसार के नायक, यज्ञ हेतु प्रकट होने वाले, ज्ञानशील और साम्राज्याधिपति, देवताओं के मुख और हमारे संरक्षक, पूजनीय अग्निदेव को याजकगण यज्ञस्थल में समिधाओं के घर्षण द्वारा पैदा करते हैं ॥१ ॥

११४१. त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते ।
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन् वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ॥२ ॥

हे अमृत स्वरूप अग्ने ! समस्त देवमानव उत्पन्न होते समय आपको, बालक के समान आदरणीय मानते हैं । हे विश्व के नायक ! जब द्युलोक और भूलोक के मध्य आप दीप्तिमान् हुए, तब यजमानों ने आपके द्वारा सम्पादित यज्ञ से देवत्व के पद को प्राप्त किया ॥२ ॥

११४२. नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त ।
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥३ ॥

यज्ञ के केन्द्र स्थल, धन के भण्डार, महान् आहुतियों से युक्त, समस्त विश्व के नेता, अहिंसक, यज्ञ के संचालक, यज्ञ की पताकारूपी अग्नि को याज्ञिकों ने मन्थन द्वारा उत्पन्न किया ।उसकी सभी वन्दना करते हैं ॥३ ॥

११४३. प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा । महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥४ ॥

हे ऋत्विजो ! आप मित्र और वरुणदेव- हेतु तेज ध्वनि से गायन करें । महानतायुक्त, क्षात्रबल से सम्पन्न वे दोनों, यज्ञस्थल पर विस्तृत स्तोत्रगान के श्रवण हेतु उपस्थित हों ॥४ ॥

११४४. सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च । देवा देवेषु प्रशस्ता ॥५ ॥

तेजस्विता के उत्पत्ति केन्द्र, मित्र और वरुण दोनों अधिपतियों की देवगणों के बीच प्रशंसा होती है ॥५ ॥

११४५. ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु ॥६ ॥

देवताओं में प्रसिद्ध, पराक्रमी, हे मित्र और वरुण देवताओ ! आप हमें पृथ्वी एवं द्युलोक का अपार वैभव प्रदान करें ॥६ ॥

११४६. इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥७ ॥

हे अद्‌भुत दीप्तिमान् इन्द्रदेव ! अँगुलियों द्वारा स्रवित, श्रेष्ठ पवित्रता युक्त, यह सोम आपके निमित्त है । आप आएँ और यहाँ आकर सोमरस का पान करें ॥७ ॥

११४७. इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! श्रेष्ठ बुद्धि द्वारा जानने योग्य आप सोमरस प्रस्तुत करते हुए ऋत्विजों द्वारा बुलाये गये हैं । उनकी स्तुति सुनने के लिए आप यज्ञशाला में पहुँचें ॥८ ॥

११४८. इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥९ ॥

हे अश्वपालक इन्द्रदेव ! आप स्तवनों के श्रवणार्थ एवं इस यज्ञ में हमारी हवियों का सेवन करने के लिए यज्ञशाला में शीघ्र ही पधारें ॥९ ॥

११४९. तमीडिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् । कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥१०

जिन अग्निदेव की प्रचण्ड ज्वालाएँ, सब वनों को अपनी चपेट में लेकर भस्मीभूत कर काला कर देती हैं, उन शक्तिशाली अग्निदेव की हम स्तुति करें ॥१० ॥

११५०. य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः । द्युम्नाय सुतरा अपः ॥११ ॥

जो मनुष्य प्रज्वलित अग्नि में इन्द्रदेव के लिए आनन्दप्रद आहुति अर्पित करते हैं, उनकी तेजस्विता के लिए (श्रेष्ठ और सहजता से अन्न प्राप्ति हेतु) इन्द्रदेव जल वर्षा करते हैं ॥११ ॥

११५१. ता नो वाजवतीरिष आशून् पिपृतमर्वतः । एन्द्रमग्निं च वोढवे ॥१२ ॥

हे इन्द्र और अग्निदेवो ! आप दोनों इन्द्र (ऐश्वर्य) अग्नि (उन्नतिशीलता) की प्राप्ति के लिए शक्तिवर्द्धक अन्न और वेगवान् अश्व प्रदान करें ॥१२ ॥

॥इति तृतीयः खण्डः ॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः ॥

११५२. प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम् ।
मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना पथा ॥१ ॥

अनेक प्रकार से शुद्ध किया गया सोमरस इन्द्रदेव के उदर में प्रविष्ट हुआ । मधुर (मित्ररूप) सोमरस अपने मित्र इन्द्रदेव के उदर में पहुँचकर उन्हें कोई कष्ट नहीं पहुँचाता । (भली प्रकार स्थित हो जाता है ।) जैसे पुरुष तरुण स्त्रियों के साथ विचरण करता है, उसी प्रकार सोम वसतीवरी आदि में अभिषुत होकर अनेक मार्गों (प्रकारों) से कलश में जाता है ॥१ ॥

[यज्ञ के एक दिन पूर्व, जिस जल को नदी से लाकर रातभर रखने के बाद यज्ञ में प्रयुक्त किया जाता था, उसे वसतीवरी कहते थे ।]

११५३. प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवरणेष्वक्रमुः ॥
हरिं क्रीडन्तमभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेदशिश्रयुः ॥२ ॥

हे सोमदेव ! आपका ध्यान करने वाले, आनन्दपूर्वक स्तुति करने के अभिलाषी याजक, जब यज्ञस्थल में यज्ञ करते हुए तरंगित हरिताभ सोमरस को संस्कारित करते हैं, उस समय गौएँ अपने दुग्ध से (पोषण देकर) इस सोम की सेवा करती हैं । (गो- दुग्ध सोम में मिलाया जाता है ।) ॥२ ॥

११५४. आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमान ऊर्मिणा ।
या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम् ॥३ ॥

हे पवित्र होने वाले तेजोमय सोमदेव ! दिन के तीनों सवनों में प्रयुक्त जो अन्न, प्रशंसित, बलवर्द्धक, मधुर तथा उत्तम पुत्र प्रदान करने वाला है, हमारे उस पोषक अन्न को आप अपनी तरंगों से शुद्ध करें ॥३ ॥

११५५. न किष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥४ ॥

वृद्धिदायक, सभी के स्तुत्य, महान्, तेजस्वी, अपराजेय, शत्रुओं को पराभूत करने वाले इन्द्रदेव का, जो यजमान यज्ञ द्वारा यजन (सत्कार) करते हैं, उन्हें अपने प्रभाव-पुरुषार्थ (कर्म) से कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥४ ॥

११५६. अषाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः ।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामीरनोनवुः ॥५ ॥

जिन इन्द्रदेव के प्राकट्य पर (उनके महान् प्रभाव से) महान् वेगवाली (पशु) गौएँ उन्हें प्रणाम करती हैं, और पृथ्वी तथा आकाश भी उनके समक्ष झुककर अभिवादन करते हैं, उन उग्र, शत्रु विजेता और पराक्रमी इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं ॥५ ॥

॥इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

॥पञ्चमः खण्डः ॥

११५७. सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्रगायत । शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥१

हे मित्रो ! बैठकर पवित्र होने वाले सोम के लिए स्तुतिगान करो । पिता द्वारा पुत्र को अलंकृत करने के समान सोम को हवि आदि पदार्थों द्वारा यज्ञ में विभूषित करो ॥१ ॥

११५८. समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम् ।देवाव्यं३मदमभि द्विशवसम् । ।२॥

हे ऋत्विग्गण ! घर के साधनभूत, दिव्य गुणों के रक्षक, आनन्दवर्द्धक, दोनों प्रकार (दिव्य और पार्थिव) से बलवर्द्धक इस सोम को उसी प्रकार जल से मिश्रित करें, जैसे माताओं के साथ बच्चे मिलकर रहते हैं ॥२ ॥

११५९. पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये ।यथा मित्राय वरुणाय शन्तमम् ॥३ ॥

(हे ऋत्विजो !) गतिशीलता प्राप्त करने के लिए, देवों (दिव्यज्ञान) को प्रदान करने के लिए, अधिकाधिक सुखप्रद बनाने के लिए, बल वृद्धि के लिए तथा मित्र और वरुण देवों के लिए सोम का शोधन करें ॥३ ।

११६०. प्र वाज्यक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥४ ॥

बलयुक्त और अनेक धाराओं से छना जाने वाला सोम, ऊन के शोधक छन्ने से छनकर टपकता है ॥४ ॥

११६१. स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥५ ॥

असंख्य बलों से युक्त, जल से शोधित किया हुआ, गो-दुग्ध आदि से मिश्रित वह बलशाली सोम छनता हुआ (पात्र में) जाता है ॥५ ॥

११६२. प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः ॥६ ॥

पाषाणों से कूटकर निष्पादित हुआ, ऋत्विजों द्वारा विधिपूर्वक पवित्र किया हुआ सोमरस, इन्द्रदेव के उदर (रूप कलश) में प्रविष्ट हो ॥६ ॥

११६३. ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । ये वादः शर्यणावति ॥७ ॥

जो सोम दूरस्थ देशों में, या समीपस्थ देशों में शर्यणावत् सरोवर के निकट (उत्पन्न होते और) संस्कारित होते हैं । (हमें इष्ट प्रदायक हों ।) ॥७ ॥

[सायण के मतानुसार 'शर्यणावत्' कुरुक्षेत्र के 'शर्यणा' नामक मण्डल (कमिश्नरी) की एक झील का नाम है ।]

११६४. य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् । ये वा जनेषु पञ्चसु ॥८ ॥

जो सोम आर्जीक देश में, कर्म करने वालों के देशों में, नदियों के किनारे या पंचजनों के बीच में उत्पन्न होता और संस्कारित किया जाता है, वह हमारे लिए सुखदायक हो ॥८ ॥

[हिलेब्राण्ट के अनुसार आर्जीक कश्मीर में एक स्थान]

११६५. ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम् । स्वाना देवास इन्दवः ॥९ ॥

निचोड़कर निष्पादित हुआ, दीप्तिमान् दिव्य सोम, हमें द्युलोक से वृष्टि और उत्तम बलयुक्त पोषक अन्न प्रदान करे ॥९ ॥

॥इति पञ्चमः खण्डः ॥

* * *

॥षष्ठः खण्डः ॥

११६६. आ ते वत्सोमनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् । अग्ने त्वां कामये गिरा ॥१ ॥

हे अग्ने ! वत्स ऋषि स्तुतियों द्वारा आपसे कामना करते हैं कि आपका मन अति उच्च स्थान (द्युलोक) से भी हमारे पास (सहायतार्थ) आए ॥१ ॥

११६७. पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि दिशो विश्वा अनु प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे ॥२ ॥

हे अग्ने ! आप सर्वत्र समान दृष्टि रखने वाले, सभी दिशाओं के अधिपति हैं; अतः युद्ध में अपनी सुरक्षा के निमित्त, हम आपका आवाहन करते हैं ॥२ ॥

११६८. समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे ।
वाजेषु चित्रराधसम् ॥३ ॥

हम संग्राम में अपने संरक्षण के लिए, अपने बलों को प्रयुक्त करने के निमित्त, अद्‌भुत सामर्थ्यवान् अग्नि देव का आवाहन करते हैं ॥३ ॥

११६९. त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।
आ वीरं पृतनासहम् ॥४ ॥

हे शतकर्मा, विशिष्ट द्रष्टा इन्द्रदेव ! आप हमें तेजस्वितायुक्त सामर्थ्य प्रदान करें और युद्ध में शत्रुओं का नाश कर, वीरपुत्र देने वाले हों ॥४ ॥

११७०. त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अथा ते सुम्नमीमहे ॥५ ॥

हे सबको आश्रय देने वाले शतकर्मा इन्द्रदेव ! आप पितातुल्य पालन करने वाले और मातातुल्य धारण करने वाले हैं । अतः हम आपके पास सुख माँगने के लिए आते हैं ॥५ ॥

११७१. त्वां शुष्मिन्पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे सहस्कृत । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥६ ॥

हे प्रशंसित, शक्तिशाली, असंख्यों द्वारा स्तुत्य बलवान् इन्द्रदेव ! हम आपकी स्तुति करते हुए कामना करते हैं कि आप हमें उत्तम तेजस्वी सामर्थ्य प्रदान करें ॥६ ॥

११७२. यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥७ ॥

हे वज्रधारी विलक्षण शक्ति सम्पन्न इन्द्रदेव ! जो आपके द्वारा प्रदत्त धन-सामर्थ्य हमारे पास नहीं है, उस धन को हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप दोनों हाथों (मुक्त हस्त) से हमें भरपूर प्रदान करें ॥७ ॥

११७३. यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर ।
विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावनः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस धन-सामर्थ्य को आप श्रेष्ठ और तेजस्वितायुक्त मानते हैं, वह धन हमें भरपूर प्रदान करें, साथ ही हम उस धन को (लोक कल्याणार्थ) दान देने की स्थिति में भी हों ॥८ ॥

११७४. यत्ते दिक्षु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
तेन दृढा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥९ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप सब दिशाओं में स्तुत्य, प्रसिद्ध और व्यापक मन (आन्तरिक शक्ति-इच्छा शक्ति) से हमें स्थिर धन और सामर्थ्य प्रदान करें ॥९ ॥

॥इति षष्ठः खण्डः ॥

* * *

देवता, ऋषि, छन्द-विवरण

ऋषि- वृषगण वासिष्ठ १११६-१११८। असित काश्यप अथवा देवल १११९-११३६। भृगु वारुणि अथवा जमदग्नि भार्गव ११३७-११३९, ११६३-११६५। भरद्वाज बार्हस्पत्य १०४०-११४२, ११४९-११५१। ययत आत्रेय ११४३-११४५। मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ११४६-११४८। सिकता निवावरी ११५२-११५४। पुरुहन्मा आङ्गिरस ११५५-११५६। पर्वत-नारद काण्व अथवा शिखण्डिनी-अप्सरा काश्यपी ११५७-११५९। अग्निधिष्ण्य ऐश्वर ११६०-११६२। वत्स काण्व ११६६-११६८। नृमेध आङ्गिरस ११६९-११७१। अत्रि भौम ११७२-११७४।

देवता- पवमान सोम १११६-११३९, ११५२-११५४, ११५७-११६५। अग्नि ११४०-११४२, ११६६-११६८। मित्रावरुण ११४३-११४५। इन्द्र ११४६-११५१, ११५५, ११५६, ११६९-११७४।

छन्द- त्रिष्टुप् १११६-१११८, ११४०-११४२। गायत्री १११९-११३९, ११४३-११५१, ११६३-११६८। जगती ११५२-११५४। बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ११५५, ११५६। उष्णिक् ११५७-११५९। द्विपदा विराट् गायत्री ११६०-११६२। ककुप् ११६९, ११७०। पुर उष्णिक् ११७१। अनुष्टुप् ११७२-११७४।

॥इति अष्टमोऽध्यायः॥

॥अथ नवमोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

११७५. शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति विप्रं मरुतो गणेन ।
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥१ ॥

नवजात शिशु के सदृश सबको प्रमुदित करने वाले सोमरस को मरुद्गण शुद्ध करते हैं । सप्तगुणों से युक्त यह मेधावर्द्धक सोमरस स्तुतियों के साथ शब्द करता हुआ शुद्ध हो जाता है ॥१ ॥

११७६. ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रनीथः पदवीः कवीनाम् ॥
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ॥२ ॥

ऋषियों की भाँति संस्कार वाला, ऋषित्व प्रदान करने वाला, स्तुत्य, ज्ञानदायी, सोम स्वयं महान् है । यह तृतीय धाम (द्युलोक) स्वर्गलोक में रहने वाले तेजस्वी इन्द्रदेव को और अधिक तेज सम्पन्न बनाता है ॥२ ॥

११७७. चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥३ ॥

यह प्रशंसनीय, सभी सामर्थ्यों से युक्त, शक्तिमान्, समुद्र की तरंगों के समान गतिमान्, गो -दुग्ध में मिलाया जाने वाला, प्रवाही सोम चतुर्थ (महः) लोक में विराजित होता है ॥३ ॥

११७८. एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् । वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥४ ॥

इन्द्रदेव की सामर्थ्य में वृद्धि करने वाला यह सोम इन्द्रदेव को प्रिय लगने वाले रसों की वर्षा करता है ॥४ ॥

११७९. पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायु मश्विना । ते नो धत्त सुवीर्यम् । ॥५ ॥

हे शुद्ध सोम ! आप वायु और अश्वनीकुमारों के साथ मिलकर हमें वीरोचित श्रेष्ठता प्रदान करें ॥५ ॥

११८०. इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय । देवानां योनिमासदम् ॥६ ॥

हे पवित्र सोमदेव ! आप इन्द्रदेव की आराधना के लिए हमारे हृदय में प्रेरणा उत्पन्न करें । हम देवों के अनुकूल यज्ञ कर्म हेतु प्रस्तुत हुए हैं ॥६ ॥

११८१. मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः । अनु विप्रा अमादिषुः ॥७ ॥

हे सोमदेव ! आपको दसों अँगुलियाँ संयुक्त होकर परिशोधित करती हैं । सात होतागण आपको तृप्त करते हैं । श्रेष्ठ पुरुष आपके अनुगामी बन कर आपकी प्रसन्नता प्राप्त करते हैं ॥७ ॥

११८२. देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः । सं गोभिर्वासयामसि ॥८ ॥

शोधित होने वाले सुखदाता, आनन्दवर्द्धक हे सोमदेव ! आपको देवताओं को आनन्दित करने के लिए हम गो-दुग्ध में मिलाते हैं ॥८ ॥

११८३. पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः । परि गव्यान्यव्यत ॥९ ॥

शुद्ध होकर कलश में स्थापित होने वाले हरिताभ सोम को गो-दुग्ध धारण कर लेता है ॥९ ॥

११८४. मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः । इन्दो सखायमा विश ॥१० ॥

हे सोमदेव ! आप हमें धन-ऐश्वर्य से युक्त करने के लिए पवित्र हों । द्वेष करने वालों का नाश करें और साथी इन्द्रदेव के साथ एकाकार हो जाएँ ॥१० ॥

११८५. नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम् । भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥११ ॥

हे सोमदेव ! समस्त प्राणियों का निरीक्षण करने वाले, सर्वज्ञ इन्द्रदेव के द्वारा पान किये जाने वाले आप हमें सन्तान, अन्न, बल और सद्ज्ञान आदि प्रदान करें ॥११ ॥

११८६. वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि । सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥१२ ॥

हे सोमदेव ! आप आकाश से पृथ्वी के ऊपर दिव्य वृष्टि करें । पृथ्वी पर पोषक अन्न उत्पन्न करें और हमें संघर्ष की शक्ति प्रदान करें ॥१२ ॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

११८७. सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः । वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१ ॥

सहस्रधार बनकर पवित्र होने वाला, हजारों धाराओं से बालों की छलनी से छाना गया शोधित सोम, वायु और इन्द्रदेवों के पान करने के लिए, श्रेष्ठ पात्रों में स्थित होता है ॥१ ॥

११८८. पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत । सुष्वाणं देववीतये ॥२ ॥

अपने संरक्षण की कामना करने वाले हे याजको ! सबको पवित्र करने वाले, विशेष आनन्द प्रदान करने वाले, देवों के पान के योग्य, शोधित सोम के लिए सम्मानपूर्वक स्तुतियों का गान करो ॥२ ॥

११८९. पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः । गृणाना देववीतये ॥३ ॥

अन्न (पोषण) प्राप्त कराने के कारण स्तुत्य, देवतुल्य हजारों प्रकार से बलवर्द्धक यह सोमरस शोधित किया जा रहा है ॥३ ॥

११९०. उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः । द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥४ ॥

हे दिव्य सोमदेव ! आप जीवन-संग्राम की सफलता के लिए हमें श्रेष्ठ अन्न प्रदान करें, हमें तेजस्वी एवं सामर्थ्यवान् बनाएँ ॥४ ॥

११९१. अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये । वि वारमव्यमाशवः ॥५ ॥

जीवन-संग्राम का प्रेरक सोम ऋत्विजों द्वारा तीव्र गति से शोधित किया जाता है ॥५ ॥

११९२. ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् । स्वाना देवास इन्दवः ॥६ ॥

वह स्रवित किया गया दिव्य सोमरस, हमें असंख्य ऐश्वर्य और उत्तम सामर्थ्यों को प्रदान करे ॥६ ॥

११९३. वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न मातरः । दधन्विरे गभस्त्योः ॥७ ॥

जैसे गौएँ बछड़ों की ओर रँभाती हुई जाती हैं, उसी प्रकार शब्द करते हुए सोम कलश में प्रवेश करता है और हाथों में धारण किया जाता है ॥७ ॥

११९४. जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमानः कनिक्रदत्। विश्वा अप द्विषो जहि ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव को तृप्त करने वाले सोमदेव ! आप पवित्र होकर शब्द करते हुए सब शत्रुओं का विनाश करें ॥८ ॥

११९५. अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः । योनावृतस्य सीदत ॥९ ॥

हे दिव्य सोमदेव ! दान न देने वाले स्वार्थियों का नाश करते हुए, अपने तेजस्वी रूप में, आप यज्ञस्थल पर विराजमान हों ॥९ ॥

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः ॥

११९६. सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य धारया । इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥१ ॥

यज्ञ के लिए शोधकर तैयार किये गये, मधुर रस-संयुक्त सोम को इन्द्रदेव के निमित्त प्रस्तुत करते हैं ॥१ ॥

११९७. अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न धेनवः । इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥२ ॥

हे ऋत्विजो ! जिस प्रकार गौएँ अपने बछड़ों के लिए व्याकुल हो जाती हैं, उसी भाव से सोम पीने के लिए इन्द्रदेव की स्तुति करो ॥२ ॥

११९८. मदच्युत्क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् । सोमो गौरी अधि श्रितः ॥३ ॥

हर्ष बढ़ाने वाला सोमरस यज्ञ स्थान में प्रतिष्ठित होता है । नदी की तरंगों के समान यह वाणी को तरंगित करता है ॥३ ॥

११९९. दिवो नाभा विचक्षणोऽव्या वारे महीयते । सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥४ ॥

श्रेष्ठकर्मा, ज्ञानयुक्त यह दिव्य सोम है, जो अन्तरिक्ष की नाभि के समान छन्ने में शुद्ध होकर महिमा - मण्डित होता है ॥४ ॥

१२००. यः सोमः कलशेष्वा अन्तः पवित्र आहितः । तमिन्दुः परि षस्वजे ॥५ ॥

पवित्र होकर कलशों में अवस्थित सोमरस में चन्द्रमा के श्रेष्ठ गुणों का संचार होता है ॥५ ॥

१२०१. प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि । जिन्वन्कोशं मधुश्चुतम् ॥६ ॥

मधुर रस सोम, आकाश (घटाकाश) में प्रवेश कर शब्द करता हुआ कलश को पूरी तरह भर देता है ॥६ ॥

१२०२. नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धेनामन्तः सबर्दुघाम् । हिन्वानो मानुषा युजा ॥७ ॥

नित्य स्तुत्य, वन के स्वामी सोमदेव, श्रेष्ठ मनुष्यों को संगठित होने की प्रेरणा प्रदान करें और मधुरभाषी की हार्दिक स्तुतियों को स्वीकार करें ॥७ ॥

१२०३. आ पवमान धारया रयिं सहस्रवर्चसम्। अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥८ ॥

हे शुद्ध होने वाले सोमदेव ! आप हमें सहस्र गुण सम्पन्न अपने धाम और ऐश्वर्य का अधिकारी बनाएँ ॥८ ॥

१२०४. अभि प्रिया दिवः कविर्विप्रः स धारया सुतः । सोमो हिन्वे परावति ॥९ ॥

श्रेष्ठ स्थान पर रहने वाले (ज्ञान प्रेरक) ज्ञानी की तरह, द्युलोक में रहने वाला सोम, प्रिय स्थानों (यज्ञस्थलों) की ओर श्रेष्ठ प्रेरणाओं का संचार करता है ॥९ ॥

॥इति तृतीयः खण्डः ॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः ॥

१२०५. उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः । वाणस्य चोदया पविम् ॥१ ॥

हे सोमदेव ! आपके वेग से प्रवाहित होने से समुद्र की तरंगों जैसी ध्वनियाँ प्रकट होती हैं । आप वाणी से उत्पन्न शब्दों को प्रेरित करें ॥१ ॥

१२०६. प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः । यदव्य एषि सानवि ॥२ ॥

हे सोमदेव ! आपके प्रादुर्भाव के बाद याजकवृन्द ऋक्-यजु, साम के मंत्रों का गान करते हैं, तब आप उच्च आसीन होकर संस्कारित होने के लिए तत्पर हो जाते हैं ॥२ ॥

१२०७. अव्या वारैः परिप्रियं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । पवमानं मधुश्चुतम् ॥३ ॥

ऋत्विग्गण पाषाणों से कूटे गये, हरिताभ, सुन्दर मधुर सोमरस को (ऊन से बने) छन्ने से छानते हैं ॥३ ॥

१२०८. आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे । अर्कस्य योनिमासदम् ॥४ ॥

हे परम आनन्ददायी सोमदेव ! इन्द्रदेव को तृप्ति प्रदान करने के लिए, आप शोधन यंत्र में से निर्मलधारा के रूप में निकलें ॥४ ॥

१२०९. स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः । एन्द्रस्य जठरं विश ॥५ ॥

हे आनन्दप्रदायक सोमदेव ! गाय के पुष्टिकारक दुग्धादि के मिश्रण में छनकर आप इन्द्रदेव के उदर में प्रवेश करें ॥५ ॥

॥इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

॥पञ्चमः खण्डः ॥

१२१०. अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा । अवाहन्नवतीर्नव ॥१ ॥

हे सोमदेव ! इन्द्रदेव के सेवन के लिए आप शुद्ध हों । आपका दिव्य रस जीवन संग्राम में बाधाओं को नष्ट करने में समर्थ है ॥१ ॥

१२११. पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शंबरम् । अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥२ ॥

सोमरस पीकर इन्द्रदेव ने यज्ञ करने वाले दिवोदास (दिव्य गुणों के लिए समर्पित व्यक्ति) के लिए शम्बरासुर (अकल्याण करने वाले) को, तुर्वश (क्रोध) को और यदु (नियंत्रण विहीन) को मारा ॥२ ॥

१२१२. परि णो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत् । क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥३ ॥

हे सोमदेव ! आप हमें गौ, अश्व, सुवर्ण आदि ऐश्वर्य और अभीष्ट पोषक अन्न प्रदान करें ॥३ ॥

१२१३. अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥४ ॥

यह सोमरस विकारों का नाश कर, अनुदारों को हटाकर, इन्द्रदेव के स्थान तक पहुँचने के लिए पवित्र होता है ॥४ ॥

१२१४. महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः । रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥५ ॥

हे पवित्रकर्मा सोमदेव ! आप हमें बहुत साधन, पुत्रादि तथा यश प्राप्त कराएँ और शत्रुओं का हनन करें ॥५ ॥

१२१५. न त्वा शतं च न ह्रुतो राधो दित्सन्तमा मिनन्। यत्पुनानो मखस्यसे ॥६ ॥

हे पवित्र सोमदेव ! यज्ञ करने वाले को जब आप ऐश्वर्य देने की इच्छा करते हैं, तो आपको सैकड़ों शत्रु भी रोक नहीं सकते ॥६ ॥

१२१६. अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः । हिन्वानो मानुषीरपः ॥७ ॥

हे सोमदेव ! मनुष्यों के लिए हितकारी, जल की वर्षा करने वाले, आप सूर्यदेव को प्रकाशित करने वाली क्षमता से स्वयं भी पवित्र हों ॥७ ॥

[पवित्र करने वाला सोम अंतरिक्ष (चतुर्थ लोक) वासी दिव्य सोम है तथा पवित्र होने वाला सोम वनस्पतियों से प्राप्त सोम है, जो पवित्र होकर अपनी दिव्य क्षमताएँ प्रकट कर सकता है ।]

१२१७. अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ॥८ ॥

यह पवित्र सोम, अभीष्ट ऊर्ध्व गति पाने के लिए संकल्पित याजकों को सूर्य के अश्वों (किरणों) जैसा वेग प्रदान करने में समर्थ है ॥८ ॥

१२१८. उत त्या हरितो रथे सूरो अयुक्त यातवे । इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥९ ॥

इन्द्रदेव सोम को पुकारते हुए, हरितवर्ण वाले अश्वों को सूर्य के रथ में जाने के लिए युक्त करते हैं ॥९ ॥

॥इति पञ्चमः खण्डः ॥

* * *

॥षष्ठः खण्डः ॥

१२१९. अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥१ ॥

हे देवताओ ! अनेक अग्नियों में पूज्य, उस यज्ञाग्नि को दूत बनाकर प्रयुक्त करो, जो अग्नि, देवता होकर भी मनुष्य का साथी है, घृत जिसका आहार है और जिसका तेज विकारनाशक एवं पवित्रता प्रदान करने वाला है ॥१ ॥

१२२०. प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥२ ॥

हिन- हिनाते घोड़े जिस प्रकार घास को चरते चले जाते हैं, उसी प्रकार दावानल वृक्षों को उदरस्थ करता चलता है । उस अवस्था में वायु के प्रभाव से जिस ओर काला धुआँ जाता है, वही मार्ग अग्नि का होता है ॥२ ॥

१२२१. उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः ।
अच्छा द्यामरुषो धूम एषि सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ॥३ ॥

हे यज्ञाग्नि ! आपकी नवीन ज्वालाएँ वृष्टि करने में समर्थ हैं । हे प्रकाशित यज्ञाग्नि ! आप नष्ट न होने वाली अपनी ऊर्जा सहित द्युलोक में पहुँचकर देवों को तुष्ट करते हैं ॥३ ॥

१२२२. तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥४ ॥

इन्द्रदेव स्वयं ही बलशाली हैं । वृत्रासुर (राक्षसी वृत्तियों) के विनाश के लिए उन्हें हम और अधिक बलवान् बनाते हैं ॥४ ॥

१२२३. इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स बले हितः ।
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥५ ॥

दान देने के लिए ही पैदा हुए इन्द्रदेव बलवान् बनने के लिए सोमपान करते हैं । प्रशंसनीय कार्य करने वाले इन्द्रदेव सोम पिलाये जाने योग्य हैं ॥५ ॥

१२२४. गिरा वज्रो न सम्भृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष उग्रो अस्तृतः ॥६ ॥

वज्रपाणि, स्तुतियों से प्रशंसित, बलवान्, तेजस्वी, वीर और अपराजेय इन्द्रदेव, साधकों को ऐश्वर्य देने की इच्छा रखते हैं ॥६ ॥

॥इति षष्ठः खण्डः ॥

* * *

॥सप्तमः खण्डः ॥

१२२५. अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय ।
पुनाहीन्द्राय पातवे ॥१ ॥

हे अध्वर्यु ! पाषाणों द्वारा कूटकर निष्पन्न इस सोम रस को, इन्द्रदेव के पीने के लिए छन्ने में शोधित करें ॥१ ॥

१२२६. तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्याशत । पवमानस्य मरुतः ॥२ ॥

हे सोम ! वह इन्द्रादि और मरुद्‌गण आपके मधुर और पवित्रकारी पोषक रस का पान करते हैं ॥२ ॥

१२२७. दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे । सुनोता मधुमत्तमम् ॥३ ॥

हे ऋत्विजो ! इस अत्यन्त मधुर, द्युलोक के अमृत सदृश, इस श्रेष्ठ सोमरस को वज्रपाणि इन्द्रदेव के लिए शोधित करो ॥३ ॥

१२२८. धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा ॥४ ॥

शोधनयोग्य, रसयुक्त, देवों का बलवर्द्धक, ऋत्विजों द्वारा प्रशंसित, सर्वधारक सोम अंतरिक्ष में शुद्ध होता है । हरित वर्णयुक्त यह सोमरस अश्व के समान गतिमान् धाराओं में प्रवाहित, अपनी क्षमताओं को प्रकट करता है ॥४ ॥

१२२९. शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्व३ः सिषासन्रथिरो गविष्टिषु ।
इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥५ ॥

हाथों में शस्त्र धारण किये हुए शूरमाओं की तरह रथारूढ़, गौ-रक्षक, वीरों का एवं इन्द्रदेव का बल बढ़ाते हुए, यह दिव्य सोम, ऋत्विजों द्वारा प्रेरित होकर, गो- दुग्ध के साथ मिलाया जाता है ॥५ ॥

१२३०.इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश ।
प्र नः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया नो वाजाँ उप माहि शश्वतः ॥६ ॥

हे संस्कारित सोम ! आप महान् सामर्थ्यवान् बनकर इन्द्रदेव के उदर में प्रवेश करें । मेघों को बरसने के लिए प्रेरित करती विद्युत् की तरह आप आकाश और पृथ्वी को फलदायी बनाएँ । कर्म करते हुए आप, कर्म के माध्यम से हमारे लिए अक्षय पोषकतायुक्त अन्न प्रदान करें ॥६ ॥

१२३१. यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सभी दिशाओं में स्तोताओं द्वारा बुलाये जाते हैं । शत्रु को पराजित करने वाले हे इन्द्रदेव ! प्राण-संवर्द्धन एवं तुर्वश (क्रोधी) के नाश के लिए आपकी स्तुति की जाती रही है ॥७ ॥

१२३२. यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा स्तोमेभिर्ब्रह्मवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप रुम, रुशम, श्यावक और कृप हैं । ऋषिगण आपको विभिन्न स्तोत्रों से प्रभावित करने का प्रयास करते हैं । हे इन्द्रदेव ! आप यज्ञार्थ पधारें ॥८ ॥

[रुम को इन्द्र का विशेष कृपा पात्र माना गया है । रुशम इन्द्र का सहयोगी और कृपा पात्र है । रुशमों के राजा के रूप में ऋणंजय और कौर्म का उल्लेख है । श्यावक एक याज्ञिक, जिनका निवास स्थान सुवास्तु नदी के तट पर था । कृप, इन्द्र से धन-धान्यरूपी सहायता प्राप्त करने वाला विशेष दया पात्र ।.

१२३३. उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥९ ॥

हमारी दोनों प्रकार की वाणियों को इन्द्रदेव हमारे सामने आकर श्रवण करें । बलवान् एवं ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव हमारी प्रार्थना से प्रसन्न होकर सोमपान करने के लिए हमारे निकट आएँ । ।९ ॥

१२३४. तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसा धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो निषीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥१० ॥

आकाश और पृथ्वी, समर्थ और तेजस्वी इन्द्रदेव को अपनी क्षमता से प्रकट करते हैं । हे इन्द्रदेव ! आप उपमानों में सर्वश्रेष्ठ हैं । आप सोमपान की इच्छा से यज्ञवेदी पर विराजमान होते हैं ॥१० ॥

॥इति सप्तमः खण्डः ॥

* * *

॥अष्टमः खण्डः ॥

१२३५. पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः ।
वायुमा रोह धर्मणा ॥१ ॥

हे तेजस्वी सोमदेव ! शुद्ध होकर आपका आनन्दवर्द्धक रस इन्द्रदेव को मिले और शक्तियुक्त होकर वायु-देव को प्राप्त हो ॥१ ॥

१२३६. पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम् ।
इन्दो समुद्रमा विश ॥२ ॥

हे पवित्र सोमदेव ! आप सराहनीय ऐश्वर्य के लिये दुष्टों को दण्डित करते हैं । हम यज्ञ कलश में आपका आवाहन करते हैं ॥२ ॥

१२३७. अपघ्नन्पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः ।
नुदस्वादेवयुं जनम् ॥३ ॥

हे यज्ञकर्म के विशेषज्ञ, आनन्ददायक सोम ! आप शुद्ध होकर अपने दिव्य प्रभाव से नास्तिकों एवं अहित करने वालों को दूर हटाएँ ॥३ ॥

१२३८.अभी नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम् ।
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ॥४ ॥

हे तेजस्वी सोमदेव ! आप हमें ऐसा श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करें, जो सैकड़ों द्वारा सराहनीय, सहस्रों का पालन-पोषण करने में समर्थ, तेजस्वी और यशवर्द्धक हो ॥४ ॥

१२३९. वयं ते अस्य राधसो वसोर्वसो पुरुस्पृहः ।
नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्ने ते अध्रिगो ॥५ ॥

हे उत्तम आश्रय देने वाले सोमदेव ! सबके द्वारा सराहनीय, सबको पोषण देने वाले आपकी विभूतियों का हम सान्निध्य चाहते हैं । हे सूर्य रश्मियों के साथ रहने वाले सोमदेव ! आपके द्वारा प्रदत्त अन्नादि (पोषक पदार्थों) के उपयोग से हम सुखी हों ॥५ ॥

१२४०. परि स्य स्वानो अक्षरदिन्दुरव्ये मदच्युतः ।
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा न याति गव्ययुः ॥६ ॥

सूर्य रश्मियों की कामना करने वाला, स्वाभाविक तेज से युक्त यह श्रेष्ठ सोम, धाररूप में यज्ञार्थ पहुँचता है । याजकों को आनन्दित करने के लिए प्राकृतिक ढंग से परिष्कृत होता है ॥६ ॥

१२४१. पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥७ ॥

हे सोमदेव ! आप अद्वितीय रसयुक्त, सबका पालन करने वाले हैं । आप देवों के सभी स्थानों को अपने दिव्यरस से परिपूर्ण कर दें ॥७ ॥

१२४२. शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजाभ्यः ॥८ ॥

हे कान्तिमान् सोमदेव ! आप दिव्य गुणों के लिए प्रवाहित हों । आकाश, पृथ्वी तथा प्रजाओं (समस्त जीव-जगत्) को सुख प्राप्त हो ॥८ ॥

१२५२. इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमैरनूषत ।
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥९ ॥

उद्‌गातागण असंख्यों अनुदान देने वाले, सामर्थ्यों के स्वामी इन्द्रदेव की स्तुति करने लगे ॥९ ॥

॥इति नवमः खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि—प्रतर्दन दैवोदासि ११७५-११७७। असित काश्यप अथवा देवल ११७८-१२०४। उचथ्य आङ्गिरस १२०५-१२०९, १२२५-१२२७। अमहीयु आङ्गिरस १२१०-१२१५। निध्रुवि काश्यप १२१६-१२१८, १२३५-१२३७। वसिष्ठ मैत्रावरुणि १२१९-१२२१। सुकक्ष आङ्गिरस १२२२-१२२४। कवि भार्गव १२२८-१२३०। देवातिथि काण्व १२३१-१२३२। भर्ग प्रागाथ १२३३-१२३४। अम्बरीष वार्षागिर और ऋजिश्वा भारद्वाज १२३८-१२४०।अग्नि धिष्ण्य ऐश्वर १२४१-१२४३। उशना काव्य १२४४-१२४६। नृमेध आङ्गिरस १२४७-१२४९। जेता माधुच्छन्दस १२५०-१२५२।

देवता—पवमान सोम ११७५-१२१८, १२२५-१२३०, १२३५-१२४३। अग्नि १२१९-१२२१, १२४४-१२४६। इन्द्र १२२२-१२२४, १२३१-१२३४, १२४७-१२५२।

छन्द—त्रिष्टुप् ११७५-११७७, १२१९-१२२१। गायत्री ११७८-१२१८, १२२२-१२२७, १२३५-१२३७, १२४४-१२४६। जगती १२२८-१२३०। बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) १२३१-१२३४। अनुष्टुप् १२३८-१२४०, १२५०-१२५२। द्विपदा विराट् गायत्री १२४१-१२४३। उष्णिक् १२४७-१२४९।

॥इति नवमोऽध्यायः ॥

॥अथ दशमोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

१२५३. अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन्प्रजा भुवनस्य गोपाः ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥१ ॥

जल की वृष्टि करने वाला , सर्वरक्षक दिव्यसोम, विस्तृत आकाश में सर्वप्रथम प्रजाओं की उत्पत्ति करके श्रेष्ठतम महत्त्व को प्राप्त हुआ, तदनन्तर पृथ्वी के ऊपर स्थापित प्राकृतिक शोधक (छन्ने) के द्वारा प्रवेश करता हुआ वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

१२५४. मत्सि वायुमिष्टये राधसे नो* मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ॥२ ॥

हे दिव्य सोम ! हमें अन्न और धन की प्राप्ति कराने हेतु आप वायुदेव को प्रमुदित करें । शोधित किये गये आप, मित्र और वरुण देवों को, मरुत् की सामर्थ्य को, इन्द्रादि देवों को, आकाश और पृथ्वी के हर्ष को बढ़ाने वाले हों ॥२ ॥

[* क. स्वाध्यायमण्डल पारडी - नो' ख. वैदिक यन्त्रालय, अजमेर - 'ना' ग. आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी - मैक्समूलर (१८४९) - 'च']

१२५५. महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥३ ॥

जल का गर्भरूप यह सोम देवताओं के सेवनार्थ प्रयुक्त होता है । संस्कारित हुए इस सोम ने इन्द्रदेव में बल भरा और सूर्यदेव में तेज स्थापन किया है ॥३ ॥

१२५६. एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयते । अभि द्रोणान्यासदम् ॥४ ॥

मरणधर्मरहित यह दिव्य सोम वेग से गतिमान् पक्षी के सदृश, कलश में वेग से प्रविष्ट होता है ॥४ ॥

१२५७. एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥५ ॥

श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा प्रशंसित होने वाला यह दिव्य सोम, हविदाता को धन प्रदान करता हुआ, जल में मिश्रित होता है ॥५ ॥

१२५८. एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः । पवमानः सिषासति ॥६ ॥

यह शोधित, बलयुक्त सोम अपनी सामर्थ्य से उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करते हुए, उसके समुचित वितरण की इच्छा करता है ॥६ ॥

१२५९. एष देवो रथर्यति पवमानो दिशस्यति । आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥७॥

यह शोधित दिव्य सोम ध्वनि करते हुए यज्ञ स्थल में जाने हेतु, उपयुक्त माध्यम की कामना करता है और याजकों को इष्ट पदार्थ प्रदान करने की इच्छा रखता है ॥७॥

१२६०. एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः । हरिर्वाजाय मृज्यते ॥८॥

इस शोधित किये गये सोम को उद्‌गातागण स्तुतियों द्वारा उसी तरह विभूषित करते हैं, जिस प्रकार युद्धोन्मुख अश्व को सब प्रकार से सज्जित किया जाता है ॥८॥

१२६१. एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति । पवमानो अदाभ्यः ॥९॥

अँगुलियों द्वारा निचोड़कर शोधित किया गया सोम, स्वयं अदम्य रहकर शत्रुओं का दमन करता है ॥९॥

१२६२. एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया । पवमानः कनिक्रदत् ॥१०॥

शोधित होकर शब्द करते हुए धार रूप में प्रकट सोम, शत्रुलोकों (प्रकृति चक्र में आने वाले अवरोधों) को जीतकर यज्ञ के प्रभाव से पुनः ऊर्ध्वगति पाता है ॥१०॥

[यहाँ प्रकृति-चक्र (इकॉलाजिकल सर्किल) को जीवन्त बनाये रखने का संकेत है।]

१२६३. एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्तृतः । पवमानः स्वध्वरः ॥११॥

उत्तम यज्ञकारक, शोधित दिव्य सोम, शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ हुआ, वह सोम इस यज्ञ स्थान से दिव्यलोक को गमन करता है ॥११॥

१२६४. एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ॥१२॥

यह दिव्य हरिताभ सोम, सदा से ही दैवीय गुणों की अभिवृद्धि करने में पवित्र होकर प्रयुक्त होता रहा है ॥१२॥

१२६५. एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः । धारया पवते सुतः ॥१३॥

विशिष्ट कार्यक्षमता का जनक और पोषक-आहार उत्पन्न करने वाला यह सोम, अपने रस- प्रवाह से स्वाभाविकरूप से शुद्ध हो जाता है ॥१३॥

॥इति प्रथमः खण्डः॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः॥

१२६६. एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१॥

अँगुलियों से निचोड़ा गया, शक्तिशाली यह सोम, तीव्र गतिशील रथ से विवेकपूर्वक इन्द्रदेव के निकट पहुँच जाता है ॥१॥

१२६७. एष पुरु धियायते बृहते देवतातये । यत्रामृतास आशत ॥२॥

देवों से अधिष्ठित,श्रेष्ठ यज्ञ स्थान में, यह सोम असंख्यों कर्म सम्पादन करने की अभिलाषा रखता है ॥२॥

१२६८. एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः । प्रचक्राणं महीरिषः ॥३॥

रसयुक्त(पोषक) अन्नों के उत्पत्तिकारक, शोधित होने योग्य सोमरस को ऋत्विग्गण संस्कारित करके कलशों में एकत्र करते हैं ॥३॥

१२६९. एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुन्ध्यावता पथा । यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥४॥

हविष्यान्न के रूप में प्रयुक्त यह सोम यज्ञस्थल पर ले जाया जाता है, जहाँ से अध्वर्युगण उसे शुद्ध करते हुए देवताओं को समर्पित कर देते हैं ॥४॥

१२७०. एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः । पतिः सिन्धूनां भवन् ॥५॥

श्वेत रश्मियों से युक्त, रसों का अधिपति, प्रवहमान, शक्तिशाली सोम वेग से प्रवाहित होकर उपासकों के पास पहुँचता है ॥५॥

१२७१. एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३ वृषा । नृम्णा दधान ओजसा ॥६॥

ऐश्वर्यवान्, यह सोम अपनी सामर्थ्य को उसी प्रकार प्रकट करता है, जिस प्रकार बलशाली वृषभ पशुओं के मध्य अपनी शक्ति को प्रकट करता है ॥६॥

१२७२. एष वसूनि पिब्दनः परुषा ययिवाँ अति । अव शादेषु गच्छति ॥७॥

अपनी सामर्थ्य से निठल्ले दुष्टों को पीड़ित करता हुआ यह सोम, उन्हें मर्यादित रखता है और हिंसक दुष्टों का विनाश कर देता है ॥७॥

१२७३. एतमुत्यं दश क्षिपो हरिं हिन्वन्ति यातवे । स्वायुधं मदिन्तमम् ॥८॥

श्रेष्ठ प्राण-शक्ति को धारण करने वाला हरिताभ सोम, दसों अँगुलियों द्वारा निचोड़ा जाकर समर्पित किया जाता है ॥८॥

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः ॥

१२७४. एष उ स्य वृषा रथोऽव्या वारेभिरव्यत । गच्छन्वाजं सहस्रिणम् ॥१॥

रथ के सदृश वेगवान्, अभीष्ट अन्न-प्रदायक यह सोम, कलश में छलनी के द्वारा छाना जाता है ॥१॥

१२७५. एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥२॥

इन्द्रदेव द्वारा प्रयुक्त किये जाने के लिए यह हरिताभ सोम त्रित (तीन प्रकार से - अंतरिक्ष में, भौतिक यंत्रों में तथा शरीरस्थ तंत्र में) निचोड़ा जा रहा है ॥२॥

१२७६. एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति । गच्छं जारो न योषितम् ॥३॥

जिस प्रकार बाज़ पक्षी अपने शिकार के प्रति तथा प्रेमी अपनी प्रियतमा के प्रति वेगपूर्वक जाता है, उसी प्रकार यह सोम मानवों के बीच शीघ्रतापूर्वक पहुँचकर प्रतिष्ठित होता है ॥३॥

१२७७. एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः । य इन्दुर्वारमाविशत् ॥४॥

द्युलोक में उत्पन्न हुआ यह आनन्दवर्द्धक सोम, सबको देखता हुआ (प्राकृतिक) छलनी से शुद्ध होता है ॥४॥

१२७८. एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः । क्रन्दन्योनिमभि प्रियम् ॥५॥

सबको धारण करने वाला यह अविनाशी सोम, देवों के पीने के लिए तैयार किया गया है, जो ध्वनि करता हुआ अपने प्रिय निवास स्थान, कलश में प्रवेश करता है ॥५॥

१२७९. एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः। याभिर्मदाय शुम्भते ॥६॥

इन्द्रदेव को प्रसन्न करने के लिए यज्ञार्थ दसों अँगुलियाँ उस सोम को शोधित करती हैं ॥६॥

[(i) इन्द्र =जीव चेतना, (ii) दसों अँगुलियाँ = दशेन्द्रियाँ, (iii) सोम शोधन = रस परिपाक]

॥इति तृतीयः खण्डः॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः॥

१२८०. एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः। अव्यं वारं वि धावति ॥१॥

सर्वज्ञाता, मन का अधिपति, हितकारी एवं बलशाली दिव्य सोम, यज्ञकर्ताओं द्वारा शुद्ध होकर यज्ञ कलश में प्रतिष्ठित होता है ॥१॥

१२८१. एष पवित्रे अक्षरत्सोमो देवेभ्यः सुतः। विश्वा धामान्याविशन् ॥२॥

देवों के निमित्त निष्पन्न हुआ यह सोम, शुद्ध होकर देवों के शरीरों में संव्याप्त हो जाता है ॥२॥

१२८२. एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः। वृत्रहा देववीतमः ॥३॥

देवताओं को अतिप्रिय, देवत्व को बढ़ाने वाला, अविनाशी, शत्रुसंहारक सोम, यज्ञ कलश में अत्यधिक शोभायमान होता है ॥३॥

१२८३. एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः। अभि द्रोणानि धावति ॥४॥

दसों अँगुलियों द्वारा निचोड़ा गया, बलवर्द्धक यह सोमरस शब्दनाद करता हुआ, वेगपूर्वक कलश में पहुँचता है ॥४॥

१२८४. एष सूर्यमरोचयत्पवमानो अधि द्यवि। पवित्रे मत्सरो मदः ॥५॥

पवित्र करने वाले द्युलोक में यह आनन्दित करने वाला शुद्ध सोम सूर्यदेव को प्रकाशित करता है ॥५॥

१२८५. एष सूर्येण हासते संवसानो विवस्वता। पतिर्वाचो अदाभ्यः ॥६॥

किसी के बन्धन में न रहने वाला, स्तुत्य यह सोम तेजस्वी सूर्यदेव द्वारा जलादि पंचतत्त्वों में मिलाये जाने के लिए छोड़ा जाता है ॥६॥

॥इति चतुर्थःखण्डः॥

* * *

॥पंचमः खण्डः॥

१२८६. एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते। पुनानो घ्नन्नप द्विषः ॥१॥

कवियों-ज्ञानियों के द्वारा स्तुत्य, शोधित, विकार नाशक यह सोमरस तृप्ति प्रदान करने वाला है ॥१॥

१२८७. एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परि षिच्यते। पवित्रे दक्षसाधनः ॥२॥

शक्तिवर्द्धक एवं स्वर्गीय सुख को अपने अधिकार में रखने वाला दिव्य सोम, अंतरिक्ष से छनकर इन्द्रदेव (मेघों) और वायुदेव के निमित्त नीचे आता है ॥२॥

१२८८. एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः । सोमो वनेषु विश्ववित् ॥३ ॥

बलवान्, सबकुछ जानने वाला, द्युलोक (आदि) में प्रशंसित दिव्यरस रूप सोम, ऋत्विजों द्वारा लकड़ी के बने पात्रों में रखकर (यज्ञस्थल की ओर) ले जाया जाता है ॥३ ॥

१२८९. एष गव्युरचिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः । इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥४ ॥

द्युलोक में प्रतिष्ठित, शक्तिवर्द्धक, रसरूप, विश्वज्ञाता यह सोम वनों (वृक्ष-वनस्पतियों के माध्यम से), मनुष्यों द्वारा प्रयुक्त किया जाता है ॥४ ॥

१२९०. एष शुष्म्यसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः । पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥५ ॥

यह प्रकाशित, विजयशील, अपराजित, शुद्ध सोम, गौओं एवं स्वर्णादि (खनिजों) को समृद्ध करने के लिए शब्द करता हुआ अवतरित होता है ॥५ ॥

१२९१. एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति । देवावीरघशंसहा ॥६ ॥

देवताओं का रक्षक, पापकर्मियों का संहारक, नष्ट न होने वाला, शोधित हुआ, बलयुक्त, सोमरस कलश में पहुँचता है ॥६ ॥

॥इति पंचमः खण्डः ॥

* * *

॥ षष्ठः खण्डः ॥

१२९२. स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति । विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥१ ॥

दिव्यगुणों से युक्त, इन्द्रादि देवों के लिए तैयार किया हुआ, अभीष्ट प्रदायक सोम, विकारों को नष्ट करता हुआ शोधन यंत्र से टपकता है ॥१ ॥

१२९३. स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः । अभि योनिं कनिक्रदत् ॥२ ॥

सबका संरक्षक, सबका धारक, दुष्टों का संहारक वह हरिताभ सोम, छन्ने से पवित्र होकर, शब्द करते हुए कलश में पहुँचता है ॥२ ॥

१२९४. स वाजी रोचनं दिवः पवमानो वि धावति । रक्षोहा वारमव्ययम् ॥३ ॥

द्युलोक में प्रकाशवान्, सामर्थ्यवान्, दुष्टों का संहारक, शोधित होता हुआ यह दिव्य सोम अविरल प्रवाहित होता है ॥३ ॥

१२९५. स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् ।
जामिभिः सूर्यं सह ॥४ ॥

वह सोम त्रितयज्ञ (अंतरिक्ष, प्रकृति और जीवों के मध्य आदान- प्रदान करने वाले यज्ञ) में संस्कारित होकर अपने महान् तेज से सूर्यदेव को प्रकाशित करता है ॥४ ॥

१२९६. स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः । सोमो वाजमिवासरत् ॥५ ॥

शत्रुओं का नाश करने वाला, बलवर्धक, निचोड़कर निकाला गया, धन देने वाला सोम अश्व के वेग के समान कलश में प्रविष्ट होता है ॥५ ॥

१२९७. स देवः कविनेषितो३ऽभि द्रोणानि धावति। इन्दुरिन्द्राय मंहयन् ॥६॥

द्युलोक में प्रकाशवान् वह सोम याजकों के द्वारा प्रवाहित होकर, इन्द्रादि देवों की महत्ता बढ़ाने के लिए, वेग-पूर्वक, कलश (विश्वघट) में प्रविष्ट होता है ॥६॥

॥इति षष्ठःखण्डः॥

* * *

॥सप्तमः खण्डः॥

१२९८. यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम्।
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥१॥

ऋषियों द्वारा संगृहीत (जीवन सूत्रों) में रस लेने वाला, पवित्र करने वाले सूक्तों का पाठ करने वाला, याजक (यज्ञ के प्रभाव से) वायु में संव्याप्त पोषक अन्नादि का सेवन करता है ॥१॥

१२९९. पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम्।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥२॥

जो ऋषियों द्वारा प्रणीत वेदों की ऋचाओं का अध्ययन करता है, उसके लिए (उसके ज्ञान को पुष्ट करने के लिए) देवी सरस्वती, दुग्ध, घृत, शहद जैसे पोषक तत्त्व स्वयं उपलब्ध कराती हैं ॥२॥

१३००. पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः।
ऋषिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम् ॥३॥

ऋषियों द्वारा सम्पादित पावमानी (पवित्र बनाने वाले) मंत्र कल्याण कारक, उत्तम फलदायक एवं स्नेह- वर्षक हैं। वेदपाठी ब्राह्मणों के बीच मानों उन्होंने हितकारी अमृत ही रख दिया है ॥३॥

१३०१. पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम्।
कामान्त्समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृताः ॥४॥

देवताओं द्वारा सम्पादित दैवी ऋचाएँ हमें इहलोक और परलोक में सुख पहुँचाएँ और हमारे अभीष्ट मनोरथ फलित हों ॥४॥

१३०२. येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा।
तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः ॥५॥

देवगण अपने को पवित्र करने के जिन साधनों को प्रयुक्त करते हैं, उन हजारों प्रकार के साधनों से पवित्र करने वाली यह ऋचाएँ हमें भी निर्मल बनाएँ ॥५॥

१३०३. पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम्।
पुण्यांश्च भक्षान्भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति ॥६॥

पवित्रता प्रदान करने वाली एवं कल्याणकारिणी ऋचाओं से प्रेरित होकर साधक, आनन्द की स्थिति को प्राप्त करता है। वह पवित्र (पुण्यार्जित) अन्न खाता और अमरता प्राप्त करता है ॥६॥

॥इति सप्तमः खण्डः॥

* * *

॥अष्टमः खण्डः ॥

१३०४. अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे ।
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥१ ॥

यज्ञ वेदिका में उत्तम रीति से प्रदीप्त, आकाश और पृथ्वी के मध्य, विशेषरूप से दीप्तिवान्, उत्तम आहुतियुक्त, सर्वत्रव्याप्त, चिरयुवा अग्निदेव को, हम श्रद्धापूर्वक नमन करते हुए, उनका आश्रय प्राप्त करते हैं ॥१ ॥

१३०५. स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
स नो रक्षिषद्दुरितादवद्यादस्मान्गृणत उत नो मघोनः ॥२ ॥

अपने महान् तेज से सब पापों को नष्ट करने वाले, ज्ञानरूपी प्रकाश के विस्तारक अग्निदेव, यज्ञशाला में प्रतिष्ठित होते हैं । वे स्तुत्य अग्निदेव हमें दोषपूर्ण एवं निन्दित कर्मों से बचाते हैं और आहुतियाँ स्वीकार करके हमारे योग-क्षेम का वहन करते हैं ॥२ ॥

१३०६. त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप वरुण (कामनाओं की पूर्ति करने वाले) और मित्र (स्नेहपूर्वक सहयोग देने वाले) रूप हैं । विशिष्ट ऋषिगण श्रेष्ठ स्तुतियों से आपको गौरवान्वित करते हैं । आप श्रेष्ठ धन एवं कल्याणकारी साधनों से हमारी रक्षा करें ॥३ ॥

१३०७. महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥४ ॥

वृष्टि करने वाले मेघों के सदृश महान् और तेजस्वी वे इन्द्रदेव अपने प्रिय पात्रों की स्तुतियों से, व्यापकरूप ग्रहण कर यशस्वी होते हैं ॥४ ॥

१३०८. कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् । जामि ब्रुवत आयुधा ॥५ ॥

जब कण्वादि ऋषिगण स्तुतियों के माध्यम से इन्द्रदेव को यज्ञसाधक (यज्ञरक्षक) बना लेते हैं, तो (यज्ञ रक्षार्थ) शस्त्रों की आवश्यकता नहीं रह जाती- ऐसा कहा गया है ॥५ ॥

१३०९. प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः । विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥६ ॥

जब आकाश को घेर लेने वाली दिव्य अग्नियाँ यज्ञ के लिए तत्पर इन्द्रदेव को वेगपूर्वक (यज्ञस्थल पर) ले जाती हैं, तब उद्‌गातागण यज्ञीय स्तुतियों से उनकी स्तुति करते हैं ॥६ ॥

॥इति अष्टमःखण्ड ॥

* * *

॥नवमः खण्डः ॥

१३१०. पवमानस्य जिघ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत । जीरा अजिरशोचिषः ॥१ ॥

शत्रु-विनाशक, सर्वत्र गमनशील तेज वाले हरिताभ सोमरस की यशःआह्लादकारी धारा, शोधित होकर प्रवाहित होती है ॥१ ॥

१३११. पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः । हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥२ ॥

उच्च स्थान में सुशोभित, शुभ्रतेजों से कान्तिमान्, मरुद्गणों की सहायता से पुष्ट हुआ यह हरिताभ सोम सबके लिए आह्लादकारी है ॥२ ॥

१३१२. पवमान व्यश्नुहि रश्मिभिर्वाजसातमः । दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥३ ॥

हे सोमदेव ! असंख्यों प्रकार के अन्न और सामर्थ्य प्रदान करने वाले आप, स्तोताओं को श्रेष्ठ पुत्र और ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥३ ॥

१३१३. परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्व३ऽन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥४ ॥

देवताओं का सर्वोपमग्राह्य पदार्थ (हव्य) मनुष्यों का हितैषी सोम, जल में मिश्रित किया जाता है । अध्वर्यु उसे पाषाणों से कूटकर रसरूप बनाते हैं , ऐसे उस सोम को ऊपर उठाकर उसका सिंचन करें ॥४ ॥

१३१४. नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभितरः ।
सुते चित्वाप्सु मदामो अंधसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥५ ॥

हे अनश्वर, अति सुगन्धित, शोधित होने वाले सोम ! छनने के बाद आपको अन्नादि एवं गाय के दूध के साथ मिश्रित किया जाता है, तब आपको जल में संयुक्त कर प्रसन्न (सेवन-योग्य) किया जाता है ॥५ ॥

१३१५. परि स्वानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥६ ॥

देवताओं के आनन्द को बढ़ाने वाला, यज्ञों के साधनरूप, ज्ञानसम्पन्न, तेजस्वितायुक्त सोम सबको देखने के लिए कलश में स्थिर हो ॥६ ॥

१३१६. असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।
पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ॥७ ॥

प्रकाशवान्, बलवर्द्धक, हरिताभ शोधित सोम राजा के समान दर्शनीय है । गो-दुग्ध आदि में मिश्रित कर पवित्र होने वाला सोम, ऊन के छन्ने में छाना जाता है । वेग से उतरते पक्षी के समान जलयुक्त पात्रों में प्रविष्ट होता है ॥७ ॥

१३१७. पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे ।
स्वसार आपो अभि गा उदासरन्त्सं ग्रावभिर्वसते वीते अध्वरे ॥८ ॥

पर्जन्य की वर्षा करने वाले मेघ ही बड़े-बड़े पत्तों वाले सोम के जनक हैं । वे सोमदेव पृथ्वी के नाभि स्थान में अवस्थित पर्वतों के निवासक हैं । वे सोमदेव गोदुग्ध, जल और स्तुतियों को प्राप्त करते हुए यज्ञस्थल में स्थित होते हैं ॥८ ॥

१३१८. कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि ।
अपसेधन् दुरिता सोम नो मृड घृता वसानः परि यासि निर्णिजम् ॥९ ॥

हे सोमदेव ! यज्ञ की इच्छा से जल से युक्त, आप छन्ने में शोधित होकर, युद्धस्थल पर जाने वाले अश्व के सदृश, वेगपूर्वक स्थिर होते हैं । हे सोमदेव ! आप हमें दुष्प्रवृत्तियों से दूर कर सुखी करें ॥९ ॥

॥इति नवमः खण्डः ॥

॥ दशमः खण्डः ॥

१३१९. श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः ॥१ ॥

हे पुरुषो ! किरणों के आश्रयदाता सूर्यदेव की भाँति देवराज इन्द्र विश्व के अपार वैभव को धारण करने वाले हैं । पिता द्वारा अर्जित सम्पत्ति का भाग प्राप्त करने के समान हम उनके (इन्द्र के) सामर्थ्य से प्रकट वैभव को प्राप्त करते हैं ॥१ ॥

१३२०. अलर्षिरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
यो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥२ ॥

हे स्तोताओ ! सात्विक पुरुषों को धनादि दान करने वाले इन्द्रदेव की स्तुति करो; क्योंकि इनके दान कल्याणप्रद प्रेरणा वाले हैं । जब ये इन्द्रदेव अपने मन को (याजकों के निमित्त) देने की प्रेरणा करते हैं, तो उपासक की कामना को नष्ट नहीं करते ॥२ ॥

१३२१.यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! हिंसकों के भय से आप हमें निर्भयता प्रदान करें । अपनी सामर्थ्य से हमारी रक्षा करने में समर्थ, आप हमारे द्वेषियों और हिंसकों को नष्ट करें ॥३ ॥

१३२२. त्वं हि राधसस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधर्ता ।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥४ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! हमें देने के लिए आप असंख्य धन धारण करते हैं । हे स्तुति करने योग्य धनवान् इन्द्रदेव ! शुद्ध सोम का आस्वादन करने के निमित, हम (साधक) आपको बुलाते हैं ॥४ ॥

॥इति दशमः खण्डः ॥

* * *

॥ एकादशः खण्डः ॥

१३२३. त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे । पवस्व मंहयद्रयिः ॥१ ॥

हे सोमदेव ! परम सुखप्रदायक, सामर्थ्यवान् आप उत्तम यज्ञ में अपनी धाराओं को ऐश्वर्ययुक्त बनाएँ । धन और बलप्रदायक हे सोमदेव ! आप कलश में शुद्ध हों ॥१ ॥

१३२४. त्वं सुतो मदिन्तमो दधन्वान्मत्सरिन्तमः । इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥२ ॥

हे सोमदेव ! शोधित हुए आप परम हर्षवर्द्धक, शक्ति-सम्पन्न, यज्ञ के आधार, दीप्तिवान्, उत्साहवर्द्धक, शत्रु-विजेता और अपराजेय हैं ॥२ ॥

१३२५. त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत् । द्युमन्तं शुष्ममा भर ॥३ ॥

हे सोमरस ! पाषाणों से कूटकर रसरूप निष्पन्न आप शब्द करते हुए कलश में प्रविष्ट हों और हमें तेजस्विता युक्त सामर्थ्य प्रदान करें ॥३ ॥

१३२६. पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥४॥

हे शक्तिसम्पन्न, मधुर सोमरस ! देवों की परिपुष्टि के लिए आप वेगपूर्वक धारारूप में हमारे कलश पात्र में प्रविष्ट हों ॥४ ॥

१३२७. तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः ।त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥५ ॥

(हे सोम !) जल में मिश्रित किया जाने वाला आपका रस, इन्द्रदेव के आनन्द एवं यश को बढ़ाने के लिए है । देवगण अमरत्व प्राप्त करने हेतु आपका पान करते हैं ॥५ ॥

१३२८. आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम् ।वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥६॥

आकाश से प्राण-पर्जन्य की वृष्टि कराने वाले, शोधित होकर रसरूप निष्पन्न हुए हे दिव्य सोमरस ! आप हमें श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करें ॥६ ॥

१३२९. परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥७ ॥

हम मनभावक, पापनाशक, कान्तिमान् सोम को छन्ने से शोधित करते हैं । वह सोमरस सब देवों को हर्षयुक्त रसों सहित प्राप्त होता है ॥७ ॥

१३३०. द्विर्यं पञ्च स्वयशसं सखायो अद्रिसंहतम् ।
प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त ऊर्मयः ॥८ ॥

पाषाणों द्वारा कूटकर निष्पन्न, कीर्तिवान्, सबका इष्ट और इन्द्रदेव के प्रिय सोमरस को दसों अँगुलियाँ भलीप्रकार शोधित करती हैं और जल से युक्त करती हैं ॥८ ॥

१३३१. इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥९ ॥

हे सोमरस ! दुष्टनाशक इन्द्रदेव के पान के लिए, यज्ञ में दक्षिणा देने वाले वीर के लिए और यज्ञ करने वाले यजमान के लिए आप पात्र में प्रवाहित होकर स्थिर हों ॥९ ॥

१३३२. पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥१० ॥

हे सोमरस ! अश्व के समान वेगवान्, जल से धोकर शुद्ध हुए आप शत्रुनाशक बल और ऐश्वर्य के लिए पात्र में आएँ ॥१० ॥

१३३३. प्र ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥११ ॥

हे सोमदेव ! साधकगण आपके रस को आनन्दवृद्धि के लिए शोधित करते हैं ॥११ ॥

१३३४. शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥१२ ॥

नवजात शिशु को शुद्ध करने के सदृश ऋत्विग्गण, हरिताभ, दीप्तिवान् सोम को देवों के निमित्त छन्ने से शोधित करते हैं ॥१२ ॥

१३३५. उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥१३ ॥

शत्रुनाशक, जल-गोदुग्धादि में मिश्रित, संस्कारित, दीप्तिमान् सोमरस का देवगण पान करते हैं ॥१३ ॥

१३३६. तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव।
य इन्द्रस्य हृदं सनिः ॥१४

हमारी वाणी इन्द्रदेव के हार्दिक प्रिय पात्र, श्रेष्ठ सोम की स्तुतियाँ करें । जिस प्रकार बालक को माता अपने दुग्ध से पुष्ट करती है, उसी प्रकार हमारी स्तुतियां सोम की यशवृद्धि करें ॥१४ ॥

१३३७. अर्षा नः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् । वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥१५ ॥

स्तुति करने योग्य हे सोम ! हमारी गौओं को सुख प्रदान करने वाले, हमारे घर को पौष्टिक अन्न से भरने वाले आप जल से मिश्रित होकर सुपात्र में स्थिर हों ॥१५ ॥

॥इति एकादशः खण्डः ॥

* * *

॥ द्वादशः खण्डः ॥

१३३८. आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥१ ॥

अग्नि को प्रदीप्त करने वाले साधकों के, युवा इन्द्रदेव सदा ही मित्र रहते हैं । वे साधक देवों के लिए क्रमशः कुशाएँ (आसन) बिछाते हैं ॥१ ॥

१३३९. बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्त्रं पृथुः स्वरुः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥२ ॥

ऋषियों के पास समिधाएँ पर्याप्त हैं । शस्त्र (प्रार्थनाएँ) महान् हैं । स्तोत्र भी असंख्य हैं । युवा इन्द्रदेव इनके सदा ही मित्र रहते हैं ॥२ ॥

१३४०. अयुद्ध इद्युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥३ ॥

इन्द्रदेव जिनके मित्र हैं, वह साधक युद्ध की इच्छा न रखते हुए भी सैन्यबल से युक्त शत्रु को पराजित करने में समर्थ होता है ॥३ ॥

१३४१. य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे । ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥४ ॥

विश्व के स्वामी, युद्ध में अकेले होते हुए भी शत्रु से कभी पराजित न होने वाले इन्द्रदेव, याजकों को सम्पूर्ण वैभव प्रदान करते हैं ॥४ ॥

१३४२.यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति । उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥५ ॥

असंख्यों में से जो यजमान सोमयज्ञ करके आपकी आराधना करता है, उसे हे इन्द्रदेव ! आप अति शीघ्र बल सम्पन्न बना देते हैं ॥५ ॥

१३४३. कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् । कदा नः शुश्रवद्गिर इन्द्रो अङ्ग ॥६ ॥

वे इन्द्रदेव हमारी स्तुतियों को कब सुनेंगे और आराधना न करने वालों को क्षुद्र पौधे की भाँति कब नष्ट करेंगे ? ॥६ ॥

१३४४. गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥७ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! स्तोतागण आपका गुण गान करते और मंत्रों द्वारा यजन करते हैं । बाँस की वृद्धि की भाँति ऋत्विग्गण महिमा गान द्वारा आपको उच्च पद प्रदान करते हैं ॥७ ॥

१३४५. यत्सानोः सान्वारुहो भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् ।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥८ ॥

जब यजमान समिधादि के निमित्त पर्वत पर जाते हैं और यजनकर्म करते हैं, तब उनके मनोरथ को जानने वाले इन्द्रदेव, इष्ट प्रदायक यज्ञ में जाने को उद्यत होते हैं ॥८ ॥

१३४६. युंक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ।
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥९ ॥

हे सोम पीने वाले इन्द्रदेव ! पुष्ट और बलवान् अश्वों को रथ में जोड़कर आप हमारी स्तुतियाँ सुनने के लिए निकट आएँ ॥९ ॥

॥इति द्वादशः खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- पराशर शाक्त्य १२५३-१२५५ । शुनःशेप आजीगर्ति (कृत्रिम देवरात वैश्वामित्र) १२५६-१२६५ । असित काश्यप अथवा देवल १२६६-१२७३ । रहूगण आङ्गिरस १२७४-१२७९, १२९२-१२९७ । प्रियमेध आङ्गिरस १२८०-१२८३, १२९१ । प्रियमेध आङ्गिरस (प्रथम पाद), नृमेध आङ्गिरस (तीन पाद) १२८४ । नृमेध आङ्गिरस (प्रथम पाद), इध्मवाह दार्ढच्युत (तीन पाद) १२८५ । नृमेध आङ्गिरस १२८६-१२९०, १३१९-१३२० । पवित्र आङ्गिरस अथवा वसिष्ठ अथवा दोनों १२९८-१३०३ । वसिष्ठ मैत्रावरुणि १३०४-१३०६ । वत्स काण्व १३०७-१३०९ । शतं वैखानस १३१०-१३१२ । सप्तऋषिगण १३१३-१३१५ । वसुभारद्वाज १३१६-१३१८ । भर्ग प्रागाथ १३२१, १३२२ । भरद्वाज बार्हस्पत्य १३२३-१३२५ । मनु आप्सव १३२६-१३२८ । अम्बरीष वार्षागिर और ऋजिश्वा भारद्वाज १३२९-१३३१ । अग्निधिष्ण्य ऐश्वर १३३२-१३३४ । अमहीयु आङ्गिरस १३३५-१३३७ । त्रिशोक काण्व १३३८-१३४० । गोतम राहूगण १३४१-१३४३ । मधुच्छन्दा वैश्वामित्र १३४४-१३४६ ।

देवता- पवमानसोम १२५३-१२९७,१३१०-१३१८, १३२३-१३३७, पवमान अध्येता १२९८-१३०३ । अग्नि १३०४-१३०६ । इन्द्र १३०७-१३०९, १३१९-१३२२, १३३९-१३४६, अग्नीन्द्र १३३८ ।

छन्द- त्रिष्टुप् १२५३-१२५५,१३०४-१३०६ । गायत्री १२५६-१२९७,१३०७-१३१२,१३२३-१३२५, १३३५-१३४० । अनुष्टुप् १२९८-१३०३, १३२९-१३२९-१३३१, १३४४-१३४६ । बार्हत प्रगाथ (बृहती, सतोबृहती) १३१३-१३१४, १३१९-१३२२ । द्विपदा विराट् गायत्री १३१५, १३३२-१३३४ । जगती १३१६-१३१८ । उष्णिक् १३२६-१३२८, १३४१-१३४३ ।

॥ इति दशमोऽध्यायः ॥

॥अथ एकादशोऽध्यायः ॥

॥प्रथमखण्डः॥

१३४७. सुषमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते । होतः पावक यक्षि च ॥१ ॥

हे पवित्रकर्ता, याजक अग्निदेव ! आप अच्छी तरह प्रज्वलित होकर यजमान के हित के लिए, देवताओं का आवाहन करें और उनको लक्ष्य करके यज्ञ सम्पन्न करें; अर्थात् देवों के पोषण के लिए हविष्यान्न ग्रहण करें ॥१ ॥

१३४८. मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुह्यूतये ॥२ ॥

ऊर्ध्वगामी, मेधावी हे अग्निदेव ! हमारी रक्षा के लिए प्राणवर्द्धक, मधुर हवियों को देवताओं के निमित्त प्राप्त करें और उन तक पहुँचाएँ ॥२ ॥

१३४९. नराशंसमिह प्रियमस्मिन्यज्ञ उप ह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥३ ॥

इस यज्ञ में हम देवताओं के प्रिय और आह्लादक अग्निदेव का आवाहन करते हैं । वे हमारी हवियों को, देवताओं को प्राप्त कराने वाले तथा स्तुत्य हैं ॥३ ॥

१३५०. अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईडित आ वह । असि होता मनुर्हितः ॥४ ॥

मानव मात्र के हितैषी हे अग्निदेव ! आप अपने श्रेष्ठ-सुखदायी रथ से देवताओं को लेकर (यज्ञस्थल पर) पधारें । हम आपकी वन्दना करते हैं ॥४ ॥

१३५१. यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ॥५ ॥

सूर्योदय के पश्चात् निष्पाप मित्र, अर्यमा, भग तथा सविता देव हमारी ओर अभीष्ट धन के प्रेरक हों; अर्थात् हमें अभीष्ट वैभव प्रदान करें ॥५ ॥

१३५२. सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः । ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥६ ॥

हे कल्याणकारी देवो ! आप हमारे उत्तम रक्षक हों । यज्ञ में वास करने वाले आप हमारी रक्षा करें और हमें पापों से मुक्त कराएँ ॥६ ॥

१३५३. उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईशते ॥७ ॥

मित्रादि देवगण अपनी माता अदिति सहित हमारे संकल्पों के पोषक हैं । हमारा अभीष्ट पूर्ण करने में समर्थ हैं, अतः वे शासक हैं ॥७ ॥

१३५४. उ त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥८ ॥

हे सशक्त इन्द्रदेव ! सोमरस का पान करते हुए आप प्रमुदित हों । हमें ऐश्वर्य प्रदान करें तथा सद्ज्ञान से द्वेष करने वालों का नाश करें ॥८ ॥

१३५५. पदा पणीनराधसो नि बाधस्व महाँ असि । न हि त्वा कश्चन प्रति ॥९ ॥

हे इन्द्र ! आप महान् हैं । आपके समान सामर्थ्यवान् कोई नहीं । आप दान न देने वालों को पीड़ित करें ॥९ ॥

१३५६. त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥१० ॥

हे इन्द्र ! आप रस-युक्त पदार्थों एवं रस विहीन पदार्थों के स्वामी हैं । आप समस्त प्राणियों के शासक हैं ॥१०

॥इति प्रथमःखण्डः ॥

॥ द्वितीयःखण्डः ॥

१३५७. आ जागृविर्विप्र ऋतं मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥१ ॥

चैतन्य, सत्य स्तुतियों का ज्ञाता सोम शुद्ध होकर पात्र में स्रवित होता है। उत्तम कर्म-कुशल, देहधारी, मनोकांक्षी अध्वर्यु इसे एकत्रित करके सुरक्षित रखते हैं ॥१ ॥

१३५८. स पुनान उप सूरे दधान ओभे अप्रा रोदसी वी ष आवः ।
प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती सतो धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥२ ॥

पवित्र होने वाला, वह सोम इन्द्र को प्राप्त करता है। आकाश और पृथ्वी को अपने तेज से पूर्ण करने वाला यह सोम है; जिसकी अत्यन्त प्रिय रसयुक्त धाराएँ हमारा संरक्षण करती हैं और ऐश्वर्य प्रदान करती हैं ॥२ ॥

१३५९. स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावीत् ।
यत्र नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमिष्णन् ॥३ ॥

वृद्धि पाने वाला, देवत्व की वृद्धि करने वाला, इष्टप्रदायक, शोधित सोम अपने तेज से हर प्रकार से रक्षा करे। मन्त्रज्ञ आत्मज्ञानी, हमारे पूर्वज अपनी गौओं (यज्ञधेनु) को (सोमलता से युक्त) पर्वत के निकट ले जाते थे ॥३ ॥

१३६०. मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥४ ॥

हे मित्रो ! इन्द्रदेव की स्तुति छोड़कर अन्य की स्तुति उपादेय नहीं है । उसमें शक्ति नष्ट न करो। सोम शोधित करके संयुक्तरूप से एकत्र होकर, बलशाली इन्द्रदेव की ही प्रार्थना करो ॥४ ॥

१३६१.अवक्रक्षिणं वृषभं यथा जुवं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननमुभयङ्करं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥५ ॥

साँड़ के सदृश संघर्षशील, शीघ्रगामी, शत्रुओं का विरोध और उनका संहार करने वाले, उपासकों के आराध्य, निर्भय करने वाले, महान् दैविक और भौतिक ऐश्वर्यों के दाता इन्द्रदेव का ही स्तवन करें ॥५ ॥

१३६२. उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥६ ॥

(जीवन-संग्राम में) वास्तविक विजय दिलाने वाले, ऐश्वर्य प्राप्ति के माध्यम, सतत रक्षा करने वाले इन्द्रदेव के लिए मधुर स्तोत्र, युद्ध के प्रिय उपकरण रथ के समान, कहे जाते हैं ॥६ ॥

१३६३.कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमाशत ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥७ ॥

भृगुओं ने भी कण्व की तरह ध्यान द्वारा, सूर्य किरणों की तरह संसार में संव्याप्त इन्द्रदेव का साक्षात्कार किया। वे भावनापूर्वक यज्ञ करने वाले याजकों के समान ही इन्द्रदेव की महत्ता का गान करने लगे ॥७ ॥

१३६४.पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः । द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ।

हे सोम ! आप उत्तम प्रकार के श्रेष्ठ अन्न प्रदान करने के लिए प्रस्तुत हों । साहसी वीर (इन्द्र) जैसे वृत्रासुर को परास्त करने के लिए आगे बढ़े थे, वैसे हे ऋणों के नाशक ! आप शत्रुओं के विनाश के लिये प्रेरित हों ॥८ ॥

१३६५. अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।
गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥९ ॥

हे दिव्य सोम ! किरणों के माध्यम से अंतरिक्ष और पृथ्वीलोक में जीवन को गतिशील बनाने वाले, आपने अपनी क्षमता से जल को धारण करने वाले आकाश से ऊपर सूर्य को उत्पन्न किया ॥९ ॥

[अन्तरिक्ष यात्रियों ने यह तथ्य प्रकट किया है कि जल अंश की उपस्थिति के कारण ही आकाश नीला दिखता है, निश्चित ऊँचाई के बाद जलांश का प्रभाव न रहने से नीलापन समाप्त हो जाता है । सूर्यादि ग्रह उसी क्षेत्र में स्थापित हैं ।]

१३६६.अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये । वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे॥

हे सोमदेव ! श्रेष्ठ पुरुषों के इस महान् राज्य में, आपके अनुगामी होकर हम सुख से रहते हैं । आप शक्ति से सम्पन्न होने वाले कार्य करते हैं ॥१० ॥

१३६७. परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥११ ॥

हे सोमदेव ! आनन्द प्रदायक आप मित्र, पूषा, भग और इन्द्र आदि देवताओं के लिए प्रवाहित हों ॥११ ॥

१३६८. एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ॥१२ ॥

हे सोम !दिव्य लोक में देवों के सेवनार्थ प्रकट हुए आप, अमरत्व तक पहुँचने के लिए गतिशील हों ॥१२ ॥

१३६९.इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयात्क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः ॥१३ ॥

हे सोमदेव ! श्रेष्ठ ज्ञान एवं बल प्राप्त करने के इच्छुक इन्द्रदेव सहित सभी देवगण निष्पन्न आपके इस शोधित सोमरस का पान करें ॥१३ ॥

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

॥ तृतीयः खण्डः ॥

१३७०. सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुतः साकमीरते ।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किंचन ॥१ ॥

सूर्य रश्मियों के सदृश, प्रेरणादायी, आनन्दवर्द्धक, सोमधाराएँ शोधक छन्ने से गिरती हुई फैलती हैं । वे इन्द्रदेव के अतिरिक्त किसी और को प्राप्त नहीं होतीं ॥१ ॥

१३७१. उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु-मन्द्राजनी चोदते अन्तरा सनि ।
पवमानः सन्तनिः सुन्वतामिव मधुमान् द्रप्सः परि वारमर्षति ॥२ ॥

मधुर एवं आनन्ददायक सोमरस, स्तुत्य इन्द्रदेव को प्रदान किया जाता है । यजमानों द्वारा निकाला गया यह मधुर सोमरस बार-बार शुद्ध किया जाता है ॥२ ॥

१३७२. उक्षा मिमेति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम् ।
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ॥३ ॥

शब्द करते हुए प्रकाशमान सोम की, दिव्य वाणी से स्तुति की जाती है और वह सोम शुद्ध होता हुआ दिव्य गुणों को धारण कर लेता है ॥३ ॥

१३७३.अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् ।
दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् ॥४ ॥

स्तुत्य, दूर से दर्शनीय, गृहरक्षक, अगम्य एवं प्रकाशमान अग्नि को हे ऋत्विजो !अरणि-मंथन से प्रकट करो ॥

१३७४. तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् ।
दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥५ ॥

जो घर में प्रज्वलित किये जाने योग्य, नित्य दर्शनीय, सदैव ज्वालायुक्त अग्निदेव हैं, उन्हें याजकों ने अपने रक्षण हेतु यज्ञस्थल में स्थापित किया है ॥५ ॥

१३७५.प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ । त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः॥

हे शक्तिशाली अग्निदेव ! भलीप्रकार से प्रज्वलित हुए आप, प्रचण्ड ज्वालाओं से हमारे निकट (यज्ञ वेदिका में) प्रदीप्त हों । ये आहुतियाँ निरन्तर आपको समर्पित की जाती हैं ॥६ ॥

१३७६. आयंगौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥७ ॥

निरन्तर गतिशील, तेजस्वी सूर्यदेव प्राची दिशा में उदित होकर, ऊपर अन्तरिक्ष में स्थित हो जाते हैं ॥७ ॥

१३७७. अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥८ ॥

आकाश और पृथ्वी के मध्य इन सूर्यदेव का तेज उदय से अस्त तक संव्याप्त रहता है । वे महान् सूर्यदेव आकाश को प्रकाशयुक्त और तेजोमय बनाते हैं ॥८ ॥

१३७८. त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥९ ॥

वे सूर्यदेव दिन की तीस घड़ियों में (१२ घंटे) अपने तेज से अत्यन्त प्रकाशमान रहते हैं । उस समय ऋक्, यजु, साम रूपी स्तुतियाँ सूर्यदेव को प्राप्त होती हैं ॥९ ॥

॥इति तृतीयःखण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- मेधातिथि काण्व १३४७-१३५० । वसिष्ठ मैत्रावरुणि १३५१-१३५३, १३७३-१३७५ । प्रगाथ काण्व १३५४-१३५६ । पराशर शाक्त्य १३५७-१३५९ । प्रगाथ घौर काण्व १३६०-१३६१ । मेध्यातिथि काण्व १३६२-१३६३ । त्र्यरुणत्रैवृष्ण, त्रसदस्युपौरुकुत्स्य १३६४-१३६६ । अग्नि धिष्ण्य ऐश्वर १३६७-१३६९ । हिरण्यस्तूप आंगिरस १३७०-१३७२ । सार्पराज्ञी १३७६-१३७८ ।

देवता- आप्री सूक्त (इध्म अथवा समिद्ध अग्नि, तनूनपात्, नराशंस, इडा) १३४७-१३५० । आदित्य १३५१-१३५३ । इन्द्र १३५४-१३५६, १३६०-१३६३ । पवमान सोम १३५७-१३५९, १३६४-१३७२ । अग्नि १३७३-१३७५ । आत्मा अथवा सूर्य १३७६-१३७८ ।

छन्द- गायत्री १३४७-१३५६, १३७६-१३७८ । त्रिष्टुप् १३५७-१३५९ । बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) १३६०-१३६३ । पिपीलिकमध्या अनुष्टुप् १३६४-१३६६ । द्विपदा विराट् गायत्री १३६७-१३६९ । जगती १३७०-१३७२ । विराट् स्थाना १३७३-१३७५ ।

॥ इति एकादशोऽध्यायः ॥

॥अथ द्वादशोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

१३७९. उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥१ ॥

श्रेष्ठ यज्ञ कर्म करने वाले याजकों की स्तुति सुनने को उद्यत अग्निदेव की हम वन्दना करते हैं ॥१ ॥

१३८०. यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद्दाशुषे गयम् ॥२ ॥

सदा आज्वल्यमान् वे अग्निदेव परस्पर स्नेह-सौजन्ययुक्त प्रजाओं के एकत्र होने पर, दाताओं के ऐश्वर्य की रक्षा करते हैं ॥२ ॥

१३८१. स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु शन्तमः । उतास्मान्पात्वंहसः ॥३ ॥

अत्यन्त कल्याणकारी वे अग्निदेव हमारे धन की रक्षा में सहायक हों और हमें पापों से दूर करें ॥३ ॥

१३८२. उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनञ्जयो रणेरणे ॥४ ॥

शत्रुनाशक, युद्ध में शत्रुओं को पराजित कर धन जीतने वाले अग्निदेव का प्राकट्य हुआ है, उद्गाता उनकी स्तुति करें ॥४ ॥

[अग्नि-विद्या के अन्वेषण की प्रेरणा मंत्र में निहित है ।]

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* *

॥द्वितीय खण्डः ॥

१३८३. अग्ने युंक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्त्याशवः ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपने तीव्रगामी और सशक्त अश्वों को रथ में जोड़ें ॥१ ॥

१३८४. अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये । आ देवान्त्सोमपीतये ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! हवि ग्रहण करने और सोम का पान करने के निमित्त हमारी ओर उन्मुख हों । देवों को भी प्रकट करें ॥२॥

१३८५. उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् । शोचा वि भाह्यजर ॥३ ॥

संसार का भरण-पोषण करने वाले हे अग्निदेव ! आप प्रज्वलित होकर उन्नत हों । कभी क्षीण न होने वाले अपने तेज से प्रकाशित हों और जगत् में प्रकाश फैलाएँ ॥३ ॥

१३८६. प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥४ ॥

सेवनीय, रसयुक्त सोम के शब्दों को (की गई स्तुति को) लोभी कुत्ते न सुनें । उसे अपरा[illegible] के सदृश पीड़ित करें; जैसे भृगु ने मख (असुर) का हनन किया था ॥४ ॥

१३८७. आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।
सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ॥५ ॥

भाई के सदृश अत्यन्त प्रिय सोम, माता- पिता की भुजाओं में रक्षित पुत्र के तुल्य छन्ने से प्रवाहित होकर कलश में उतरता है । जैसे कामी पुरुष स्त्री की ओर, वर कन्या की ओर उन्मुख होता है, वैसे ही सोम कलश में प्रविष्ट होता है ॥५ ॥

१३८८. स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी ।
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥६ ॥

पौष्टिक तत्त्वों और रसायनों से युक्त वह वीर सोम, आकाश और पृथ्वी को अपने तेज से व्याप्त कर देता है । यजमान के घर में प्रविष्ट होने के तुल्य शोधित हुआ हरिताभ सोम छनकर कलश को प्राप्त करता है ॥६ ॥

१३८९. अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि । युधेदापित्वमिच्छसे ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अजातशत्रु, सर्व-नियन्ता, बन्धु-भावरहित हैं । बन्धु भाव की इच्छा से युद्ध में शत्रुओं का विनाश करके, आप केवल साधकों को ही अपना बन्धु मानते हैं ॥७ ॥

१३९०. न की रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे ॥८ ॥

हे बलशाली इन्द्रदेव ! आप धनाभिमानी के मित्र नहीं होते । सुरा पीकर मदान्ध लोग आपको दुःख देते हैं । ज्ञान एवं गुण - सम्पन्नों को मित्र बनाकर आप उन्नति पथ पर चलाते हैं, तब पिता - तुल्य सम्मान प्राप्त करते हैं ॥८ ॥

१३९१. आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपको स्वर्ण रथ में बिठाकर संकेत मात्र से गति पकड़ने वाले अश्व, आपको यज्ञस्थल में सोमरस का पान करने के लिए लाएँ ॥९ ॥

१३९२. आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या ।
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! मधुर, अमृत - तुल्य, स्तुत्य सोम के सेवनार्थ, स्वर्ण रथ में, मोर-रंगी, श्वेत-पीठ वाले अश्व, आपको यज्ञस्थल पर लाएँ ॥१० ॥

१३९३.पिबा त्व३स्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ॥११ ॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! इस शोधित निष्पन्न सोमरस का आप सर्वप्रथम पान करें । यह सोमरस प्रसन्नता बढ़ाने वाले गुणों से युक्त है ॥११ ॥

१३९४. आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् । वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥१२॥

हे ऋत्विजो ! अश्व के सदृश वेगपूर्वक जल के प्रवाहक, तेज का विस्तार करने वाले, तैरने वाले सोमरस का शोधन करें और उसका जल में मिश्रण करें ॥१२ ॥

१३९५. सहस्रधारं वृषभं पयोदुहं प्रियं देवाय जन्मने ।
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥१३ ॥

असंख्य धाराओं से छनित हुआ, सुखवर्द्धक, दुग्ध-मिश्रित प्रिय सोमरस को देवताओं के निमित्त संस्कारित करें । वह दिव्य गुण से युक्त सोम जल से मिलकर वृद्धि पाता है ॥१३॥

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः ॥

१३९६.अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥१॥

उत्तम प्रकार से दीप्तिमान् और तेजस्वी, हवियों से पुष्ट होने वाले, धन दाता अग्निदेव अज्ञान रूपी शत्रुओं के नाशक हैं ॥१॥

१३९७. गर्भे मातुः पितुः पिता विदिद्युतानो अक्षरे । सीदन्नृतस्य योनिमा ॥२॥

पृथ्वी माँ के गर्भ में विशेषरूप से देदीप्यमान एवं अन्तरिक्ष में संरक्षक की भूमिका में नियुक्त अग्निदेव यज्ञ वेदी पर विराजमान हैं ॥२॥

१३९८. ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे । अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥३॥

सब कुछ जानने वाले, दिव्य-द्रष्टा, हे अग्निदेव ! अन्तरिक्षलोक में देवों को प्राप्त सुख, ऐश्वर्य और सन्तान आदि से हमें भी सम्पन्न करें ॥३॥

१३९९. अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥४॥

इस सोम का प्रेरक, स्वर्ण के तुल्य तेज से परिशुद्ध हुआ, दीप्तिमान् सोम देवताओं से मिलता है । ऋत्विज् के पशु आदि से युक्त घरों में प्रविष्ट होने के समान, कूटकर निष्पन्न सोम छनकर पात्रों में प्रवाहित होता है ॥४॥

१४००. भद्रा वस्त्रा समन्या३वसानो महान्कविर्निवचनानि शंसन् ।
आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥५॥

वीरोचित शौर्य एवं शोभासम्पन्न, महान् ज्ञानी, स्तुत्य, चैतन्य, विशिष्ट द्रष्टा हे सोमदेव ! आप पवित्र होकर यज्ञशाला के पात्रों में प्रविष्ट हों ॥५॥

१४०१. समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे ।
अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

यशस्वियों में श्रेष्ठ, भूमि में प्रकट हुए, तृप्तिदायक, सोमरस छन्ने में शोधित होता है । हे पवित्र होने वाले सोम ! आप शब्द करते हुए, कल्याणकारी साधनों से हमारी रक्षा करें ॥६॥

१४०२. एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्धैराशीर्वान्ममत्तु ॥७॥

शुद्ध मन्त्रों से साम-गान करते हुए हम इन्द्रदेव का स्तवन करते हैं । हे सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव शीघ्र आएँ । हम शुद्ध गोदुग्धादि से युक्त, आनन्ददायक सोमरस आपके लिए प्रस्तुत करते हैं ॥७॥

१४०३. इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः ।
शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्य ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! शुद्ध हुए आप हमें, ऐश्वर्य प्रदान करें । हे सोम पीने वाले इन्द्रदेव ! शुद्ध हुए इस सोम से आप आनन्द- स्वरूप को प्राप्त हों ॥८ ॥

१४०४. इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे ।
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! पवित्र हुए आप हमें ऐश्वर्य दें । उत्तम कर्मों में प्रकट विघ्नों को दूर करें । ऐश्वर्य देने में समर्थ आप हमारे मन्त्रों से शुद्ध होकर शत्रुओं को विनष्ट करें ॥९ ॥

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः ॥

१४०५. अग्ने स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः । देवस्य द्रविणस्यवः ॥१ ॥

द्रव्य लाभ की कामना से, हम आकाशव्यापी, तेजस्वी अग्निदेव का सिद्धि प्रदान करने वाले स्तोत्रों द्वारा स्तवन करते हैं ॥१ ॥

१४०६. अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा । स यक्षद्दैव्यं जनम् ॥२ ॥

यज्ञ के साधनभूत, मनुष्यों के सहायक अग्निदेव, हमारी स्तुतियों को भली-भाँति सुनें और हमें दिव्यता से अभिपूरित करें ॥२ ॥

१४०७. त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप हर्ष-प्रदायक, वरणीय, यज्ञ -साधक एवं महान् हैं । सब यजमान आपको प्रतिष्ठित कर यज्ञ-अनुष्ठान पूर्ण करते हैं ॥३ ॥

१४०८. अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशंत वाणीः ।
वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥४ ॥

तीनों कालों में बरसने वाले, अन्न प्रदाता, शब्द करने वाले सोमदेव की ओर हमारी स्तुतियाँ प्रेरित होती हैं । जल को आच्छादित करने वाला, प्रवाही, रत्नप्रदाता सोम, वरणीय धन देने वाला है ॥४ ॥

१४०९. शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान् जेता पवस्व सनिता धनानि ।
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाढः साह्वान्पृतनासु शत्रून् ॥५ ॥

शूरों के समूह और अनेक वीरों का प्रेरक, शक्तिशाली, विजेता, धन-प्रदाता, आयुधों से युक्त, अतिशीघ्र गति वाला, शस्त्र-प्रहारक, संग्राम में अदम्य, युद्ध में शत्रु को हराने वाला सोम कलश में शुद्ध हो ॥५ ॥

१४१०. उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आ पवस्वा पुरन्धी ।
अपः सिषासन्नुषसः स्वऽ३र्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ॥६ ॥

हे सोम !विस्तीर्ण पथयुक्त, निर्भय बनाने वाले, आकाश-पृथ्वी को जोड़ने वाले, आप छनकर शुद्ध हों । जल, उषा तथा सूर्य किरणों का सेवन कर पोषित; शब्दनाद करता हुआ वह सोम हमें प्रचुर ऐश्वर्य प्रदान करे ॥

१४११. त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः ।
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप बलों के अधिपति, सोम के अभीच्छु, यशस्वी और अपराजेय हैं। सब मनुष्यों के द्रष्टा आप शक्तिशाली दुष्टों का विनाश करने वाले हैं ॥७ ॥

१४१२. तमुत्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ।
महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्नवन् ॥८ ॥

हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! जैसे पिता से पुत्र धन का भाग माँगता है, वैसे ही हम आपसे श्रेष्ठ ऐश्वर्य की याचना करते हैं। आप धन तथा ज्ञान सम्पन्न हैं, एवं सबके आश्रयदाता हैं। आपका श्रेष्ठ सुख हमें प्राप्त हो ॥८ ॥

१४१३. यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप देवों में दिव्य, यज्ञ करने वाले, अमर, श्रेष्ठकर्मा, तथा यजन योग्य हैं; अतः हम आपकी स्तुति करते हैं ॥९ ॥

१४१४. अपां नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निमु श्रेष्ठशोचिषम् ।
स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि ॥१० ॥

आकाशीय जल के धारक, उत्तम भाग्यवान्, उत्तम दीप्तिमान्, श्रेष्ठ ज्वालाओं से युक्त अग्निदेव का हम स्तवन करते हैं । वे हमें यज्ञस्थल में अधिष्ठित मित्र और वरुणदेवों द्वारा मिलने वाला सुख दें, साथ ही सुखदायी जल प्रदान करें । ॥१० ॥

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

॥ पंचमः खण्डः ॥

१४१५. यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः ॥१ ॥

हे अग्ने ! आप संग्राम में जिस पुरुष को प्रेरित करते हैं, उनकी रक्षा आप स्वयं करते हैं। साथ ही उनके लिए पोषक अन्न की पूर्ति भी करते हैं ॥१ ॥

१४१६. न किरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् । वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥२ ॥

हे शत्रु-विजेता अग्निदेव ! आपके उपासक को कोई पराजित नहीं कर सकता, क्योंकि उसका (आपके द्वारा प्रदत्त) तेजस्वी बल प्रसिद्ध है ॥२ ॥

१४१७. स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता । विप्रेभिरस्तु सनिता ॥३ ॥

सब मनुष्यों के कल्याणकारक वे अग्निदेव जीवन-संग्राम में अश्वरूपी इन्द्रियों द्वारा हमें विजयी बनाने वाले हों । मेधावी पुरुषों द्वारा प्रशंसित वे अग्निदेव हमें अभीष्ट फल प्रदान करें ॥३ ॥

१४१८. साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥४ ॥

ये दसों अँगुलियाँ (दसों दिशाएँ) मिलकर दिव्य सोम को मथकर शुद्ध करती हैं, फिर यह हरिताभ सोम सूर्य-रश्मियों से शुद्ध होता है । तत्पश्चात् अश्व के सदृश गतिमान् (चंचल) सोम कलश में जाता है ॥४ ॥

१४१९. सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥५ ॥

देवताओं का इष्ट, वरणीय, शक्तिशाली सोम, माता द्वारा शिशु से अथवा पुरुष द्वारा स्त्री से मिलने के तुल्य, जल द्वारा मिलकर धारण किया जाता है, फिर संस्कार (शोधित) किये जाने वाले स्थान में गोदुग्धादि से मिश्रित होता है ॥५ ॥

१४२०. उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥६ ॥

गौओं के योग्य, पोषक घासों में प्रविष्ट हुआ सोम, उनके दुग्धाशय को पूर्ण करता है । उत्तम मेधावी यह सोम दुग्ध-धाराओं से मिलाया जाता है । जिस प्रकार लोग स्वयं को कपड़ों से आच्छादित करते हैं, उसी प्रकार ये गौएँ सोम के पात्र को दुग्ध से आच्छादित करती हैं ॥६ ॥

१४२१. पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे द्वारा निचोड़कर तैयार किये गये, गोदुग्ध मिश्रित सोमरस को पीकर आनन्दित हों । सोम के द्वारा अपने साथ हमारी वृद्धि करते हुए सुमति से रक्षा प्रदान करें ॥७ ॥

१४२२. भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा न स्तरभिमातये ।
अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके अनुकूल उत्तम बुद्धि द्वारा प्रेरित होकर हम सामर्थ्य प्राप्त करें । शत्रु हमें नष्ट न करें । आप अपने अभीष्ट और सामर्थ्ययुक्त रक्षा-साधनों से संरक्षित करें और हमारी सुख-समृद्धि बढ़ाएँ ॥८ ॥

१४२३. त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥९ ॥

परम व्योम में स्थित इस सोम को इक्कीस गौएँ उत्तम दुग्ध प्रदान करती हैं और जब यह सोम यज्ञादि द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता है, तो अन्य चार प्रकार के जल को शोधनार्थ कल्याणकारी क्रम में प्रवाहित करता है ॥९ ॥

[सन्दर्भ के लिए विशेष मन्त्र नं ५६० की टिप्पणी देखें]

१४२४. स भक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे ।
तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः ॥१० ॥

श्रेष्ठ रस की इच्छा करने वालों की स्तुतियों से प्रभावित दिव्यसोम द्युलोक और पृथ्वी को जल से परिपूर्ण कर देता है । ऋत्विज् जब देवों के स्थान को यज्ञ की हवि से युक्त करते हैं, तो वह (सोम) जल को अपनी महिमा से मण्डित कर देता है ॥१० ॥

१४२५. ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु ।
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ॥११ ॥

अदम्य और अमरत्व प्राप्त इस सोमरस की किरणें दोनों प्रकार के (द्विपद एवं चतुष्पद) प्राणियों की रक्षक हैं । अपनी सामर्थ्य से यह सोम अन्न को देवों की ओर प्रेरित करता है ; तत्पश्चात् राजा सोम की (यजमानों द्वारा) स्तुतियाँ की जाती हैं ॥११ ॥

॥ इति पंचमः खण्डः ॥

* * *

॥ षष्ठः खण्डः ॥

१४२६. अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो३ऽभि मित्रावरुणा पूयमानः ।
अभी नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥१ ॥

हे सोमदेव ! आप स्तुति के बाद वायु देवता के पान के लिए प्रस्तुत हों । पवित्र होकर मित्र और वरुण देवों को प्राप्त हों । नेतृत्ववान्, बुद्धि-दाता, रथ में सवार अश्विनीकुमारों की ओर पहुँचें और अभीष्टवर्षक वज्रतुल्य भुजाओं वाले इन्द्रदेव के पास जाएँ ॥१ ॥

१४२७. अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान्रथिनो देव सोम ॥२ ॥

हे दिव्य सोमदेव ! आप हमें उत्तम वस्त्र, तेजस्वी स्वर्ण आदि ऐश्वर्य प्रदान करें तथा रथों के लिए अश्व दें । शुद्ध हुए आप हमें नव-प्रसूता दुधारू गौएँ प्रदान करें ॥२ ॥

१४२८. अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः ।
अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ॥३ ॥

हे सोमदेव ! शुद्ध हुए आप हमें दिव्य धन एवं पार्थिव ऐश्वर्य से युक्त करें । जमदग्नि आदि ऋषियों की सम्पत्ति (सामर्थ्य) प्रदान करें । हमें श्रेष्ठ धन के सदुपयोग करने की सामर्थ्य प्राप्त हो ॥३ ॥

१४२९. यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय ।
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥४ ॥

हे आदिपुरुष इन्द्रदेव ! शत्रुओं के विनाश के लिए जब आपका प्राकट्य होता है, तब आपके प्रभाव से भूमि दृढ़ हुई और द्युलोक ऊपर स्थिर हुआ ॥४ ॥

१४३०. तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ।
तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके प्राकट्यकाल से ही श्रेष्ठ यज्ञ कर्मों की उत्पत्ति हुई । दिन का नियामक सूर्य स्थापित हुआ । उत्पन्न हुए तथा आगे उत्पन्न होने वाले सभी प्राणियों को आप अभिभूत (संव्याप्त) किये हुए हैं ॥५ ॥

१४३१. आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
घर्मं न सामन्तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! बच्चा जनने से पूर्व ही आपने परिपुष्ट दूध उत्पन्न किया । आकाश में सूर्य का स्थापन किया । जिस प्रकार याजक यज्ञ (अग्नि) को प्रकट करते हैं, उसी प्रकार हे स्तोताओ ! उक्त स्तुतियों से इन्द्रदेव में हर्ष- उल्लास की वृद्धि करो । स्तुत्य इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए बृहत्-साम (सामगान की एक विधि) का गान करो ॥६ ॥

१४३२. मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥७ ॥

हे अश्वधारक इन्द्रदेव ! बड़े पात्र के समान आप महान् हैं । आप आनन्ददायक, हर्षवर्द्धक, बलवर्द्धक, शक्तिशाली, असंख्यों श्रेष्ठ दान (उपकारी कार्य के लिए) देने वाले सोमरस का पान करते हुए आनन्द की अनुभूति करें ॥७ ॥

१४३३. आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाडमर्त्यः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके सेवनार्थ यह तैयार किया गया बलवर्द्धक, हर्षदायक, श्रेष्ठ, सामर्थ्ययुक्त, पीने योग्य, अविनाशी, शत्रुविजेता, आनन्ददायी सोम है; यह आपको प्राप्त हो ॥८ ॥

१४३४. त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप वीर और दानदाता हैं । मनुष्य के मनोरथों को आप भलीप्रकार (श्रेष्ठता की दिशा में) प्रेरित करें । जैसे अग्नि अपनी ज्वाला से पात्र को तपाती है, वैसे ही आप हमारे सहायक बनकर दुष्टों और मर्यादाहीनों को नष्ट कर दें ॥९ ॥

॥इति षष्ठः खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- गोतमराहूगण १३७९,१३८०,१३८२ ।वसिष्ठ मैत्रावरुणि १३८१, १३९९-१४०१,१४०८-१४१० । भरद्वाज बार्हस्पत्य १३८३-१३८५, १३९६-१३९८ । प्रजापति वैश्वामित्र अथवा वाच्य १३८६-१३८८ । सौभरि काण्व १३८९-१३९०, १४१३-१४१४ । मेधातिथि-मेध्यातिथि काण्व १३९१-१३९३ । ऋजिश्वा भारद्वाज १३९४ । ऊर्ध्वसद्मा आङ्गिरस १३९५ । तिरश्ची आङ्गिरस १४०२-१४०४ । सुतंभर आत्रेय १४०५-१४०७ । नृमेध-पुरुमेध आङ्गिरस १४११-१४१२, १४२९-१४३१ । शुनःशेप आजीगर्ति १४१५-१४१७ । नोधा गौतम १४१८-१४२० । मेध्यातिथि काण्व १४२१-१४२२ । रेणु वैश्वामित्र १४२३-१४२५ । कुत्स आङ्गिरस १४२६-१४२८ । अगत्स्य मैत्रावरुण १४३२-१४३४ ।

देवता- अग्नि १३७९-१३८५, १३९६-१३९८, १४०५-१४०७, १४१३-१४१७ । पवमान सोम १३८६-१३८८, १३९४-१३९५, १३९९-१४०१, १४०८-१४१०, १४१८-१४२०, १४२३-१४२८ । इन्द्र १३८९-१३९३, १४०२-१४०४, १४११-१४१२, १४२१-१४२२, १४२९-१४३४ ।

छन्द- गायत्री १३७९-१३८५, १३९६-१३९८, १४०५-१४०७, १४१५-१४१७ । अनुष्टुप् १३८६-१३८८, १४०२-१४०४, १४२९-१४३०, १४३३-१४३४ । काकुभ प्रगाथ (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती) १३८९-१३९०, १३९४-१३९५, १४१३-१४१४ । बृहती १३९१-१३९३, १४३१ । त्रिष्टुप् १३९९-१४०१, १४०८-१४१०, १४१८-१४२०, १४२६-१४२८ । बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) १४११-१४१२, १४२१-१४२२ । जगती १४२३-१४२५ । स्कन्धोग्रीवी बृहती १४३२ ।

॥ इति द्वादशोऽध्यायः ॥

॥अथ त्रयोदशोऽध्याय: ॥

॥ अथ प्रथमः खण्डः ॥

१४३५. पवस्व वृष्टिमा सुनोऽपामूर्मि दिवस्परि । अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥१ ॥

हे दिव्य सोम ! आप (हमारे लिए) द्युलोक से उत्तम रीति से वृष्टि करें । जल को तरंगित करें और स्वास्थ्यकारी अन्न हमें प्रदान करें ॥१ ॥

१४३६. तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् । जन्यास उप नो गृहम् ॥२ ॥

हे सोमदेव ! आप उस (दिव्य) जलधारा से पवित्र हों (अर्थात् जल बरसाएँ), जिससे दुधारू गौएँ (पोषक तत्व-अन्नादि) हमारे घर पहुँचें ॥२ ॥

१४३७. घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः । अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥ ३ ॥

हे सोमदेव ! यज्ञ में देवों द्वारा चाहे गये आप धार-रूप जल की वृष्टि करें । (मूसलाधार वर्षा करें) ॥३ ॥

१४३८. स न ऊर्जे व्य३व्ययं पवित्रं धाव धारया। देवासः शृणवन् हि कम् ॥४ ॥

हे सोमदेव ! हमें (पोषणयुक्त) अन्न प्रदान करने के लिए आप छन्ने से धाररूप में छनकर (शोधित होकर) कलश में प्रविष्ट हों । देवगण आपके (मधुर) शब्द सुनकर उल्लसित हों ॥४ ॥

१४३९. पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ्घनत्। प्रत्नवद्रोचयन्नुचः ॥५ ॥

शत्रुओं का नाश करने वाला, तेज से देदीप्यमान, पवित्र होने वाला सोमरस कलश में स्रवित होता है ॥५ ॥

१४४०. प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः ॥६ ॥

हे याजको ! यज्ञसंचालन कर्ता, सर्वज्ञाता, यज्ञकर्मा, अग्रगामी, प्रगतिशील तथा सोम -पान की कामना वाले इन्द्रदेव के लिए सोमरस (कलश पात्र में) भर दें ॥६ ॥

१४४१. एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् ।
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥७ ॥

हे ऋत्विजो ! संस्कारित-रसयुक्त, दीप्तिमान् सोमरस को रुचिपूर्वक सोम के पात्रों से ही अत्यधिक मात्रा में पान करने वाले इन इन्द्रदेव के पास जाकर प्रार्थना करो ॥७ ॥

१४४२. यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ ।
वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तन्तमिदेषते ॥८ ॥

हे ऋत्विजो ! रसयुक्त, दीप्तिवान् सोम को लेकर इन्द्रदेव की शरण में जाने पर, वे आपके मनोरथों को जानते हुए, विघ्नों को दूर करते हुए, सभी इच्छाओं को पूर्ण कर देंगे ॥८ ॥

१४४३. अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्वरत् ॥९ ॥

हे अध्वर्युगणो ! इन इन्द्रदेव के लिए प्राण-रूप सोमरस भरपूर प्रदान करो । ये इन्द्रदेव स्पर्धा योग्य, जीतने योग्य शत्रुओं को विनष्ट करके आपकी रक्षा करेंगे ॥९ ॥

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥ द्वितीयः खण्डः ॥

१४४४. बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे । सोमाय गाथमर्चत ॥१ ॥

हे स्तुति करने वालो ! भूरे रंग के, बलशाली, अरुणिमायुक्त, आकाश में रहने वाले, दिव्य सोम की आप लोग स्तुति करें ॥१ ॥

१४४५. हस्तच्युतेभिरद्रिभिःसुतं सोमं पुनीतन । मधावा धावता मधु ॥२ ॥

हे ऋत्विजो ! पाषाणों से कूटकर निष्पन्न सोमरस को शोधित करो । उस मधुर सोमरस में, मधुर गो-दुग्ध मिश्रित करो ॥२ ॥

१४४६. नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन । इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥३ ॥

हे ऋत्विजो ! इस सोमरस को नमस्कारपूर्वक दही में मिलाकर रखो । इस दीप्तिमान् सोमरस को इन्द्रदेव को पीने के लिए अर्पित करो ॥३ ॥

१४४७. अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे । देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥४ ॥

हे दिव्य सोम ! शत्रुनाशक, सर्वद्रष्टा, देवों की इच्छानुसार कार्य करने वाले, आप हमारी गौओं को सुख दें (सुख पूर्वक रखें) ॥४ ॥

१४४८. इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे । मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥५ ॥

यह सोम मनों में रमण शील, मनों के अधिपति हुए इन्द्रदेव के सेवनार्थ, उनके आनन्दवर्द्धन के निमित्त संस्कारित होकर पात्र में एकत्रित होता है ॥५ ॥

१४४९. पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि णः । इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥६ ॥

हे शोधित होने वाले पवित्र सोम ! आप उत्तम तेजस्वितायुक्त होकर अपने सहायक इन्द्रदेव के पास से हमें अभीष्ट धन दिलाएँ ॥६ ॥

१४५०. उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥७ ॥

हे सूर्य के समान तेजस्वी इन्द्रदेव ! यशस्वी धन से युक्त, बलशाली, मानव हितैषी, दाता के समक्ष आप प्रकट होते हैं ॥७ ॥

१४५१. नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा । अहिं च वृत्रहावधीत् ॥८ ॥

अपने बाहुबल से शत्रु के निन्यानवे निवास केन्द्रों को ध्वंस करने वाले और वृत्र नामक दुष्ट का नाश करने वाले इन्द्रदेव हमें अभीष्ट धन प्रदान करें ॥८ ॥

१४५२. स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद्गोमद्यवमत् । उरुधारेव दोहते ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे लिए कल्याणकारी मित्ररूप गौओं की असंख्य दुग्ध-धारा के समान हमें बहु-संख्यक धन प्रदान करें ॥९ ॥

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः ॥

१४५३. विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा वि राजति ॥१ ॥

तेजस्वी सूर्यदेव, याजक को आरोग्य एवं दीर्घायुष्य देते हैं । वायु प्रवाहक, सर्वरक्षक, प्रजापालक, अनेक रूपों में शोभायमान इन्द्रदेव प्रचुरमात्रा में सोमरूप मधु का पान करें ॥१ ॥

१४५४. विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मं दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ॥२ ॥

विशेष तेजयुक्त, महान्, उत्तम पोषक अन्न और बल प्रदायक, धर्म से आकाश को धारण करने वाले, शत्रुनाशक, वृत्र संहारक, दुष्टों और राक्षसों के विनाशक सूर्यदेव अपना प्रकाश चारों ओर विस्तारित करते हैं ॥२ ॥

१४५५.इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत् ।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ॥३ ॥

यह सूर्य ज्योति, अनेक ज्योतियों की ज्योति, उत्तम विश्व-विजयिनी है । यह प्रकाशमान सूर्यदेव धन के विजेता, महान् सामर्थ्यवान्, सम्पूर्ण जगत् के प्रकाशक, अविनाशी, ओजस्वी बल को (सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में) प्रसारित करते हैं ॥३ ॥

१४५६. इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमें, उत्तम कर्मों (यज्ञों) का फल प्राप्त हो । जैसे पिता, पुत्रों को धन आदि प्रदान कर पोषण करता है, वैसे ही हमें पोषित करें । अनेकों द्वारा सहायता के लिए पुकारे जाने वाले हे इन्द्रदेव ! यज्ञ में हमें दिव्य तेज प्रदान करें ॥४ ॥

१४५७. मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासोऽव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! अज्ञात, पापी, दुष्ट, कुटिल, अमंगलकारी, हम पर आक्रमण न करें । हे श्रेष्ठ वीर ! आपके संरक्षण में हम विघ्नों, अवरोधों के प्रवाहों से पार हों ॥५ ॥

१४५८. अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।
विश्वा च नो जरितॄन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! वर्तमान और भविष्य में आपका संरक्षण प्राप्त हो । हे सज्जनों के पालक इन्द्रदेव ! सर्वदा दिन और रात हमारे (याजकों के) आप रक्षक रहें ॥६ ॥

१४५९. प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्याय कम्।
उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥७॥

हे सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव ! आप अपने पराक्रम से शत्रुओं की सामर्थ्य को चूर-चूर करने वाले हैं। आप सब में व्यापक और ऐश्वर्यवान् हैं। हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! आपकी दोनों भुजाएँ जो वज्र को धारण करती हैं, विशिष्ट सामर्थ्य से युक्त हैं ॥७॥

॥इति तृतीयः खण्डः॥

* *

॥चतुर्थः खण्डः॥

१४६०. जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः। सरस्वन्तं हवामहे ॥१॥

स्त्री-पुत्र आदि की कामना करते हुए, यज्ञ-दानादि श्रेष्ठ कर्मों में अग्रणी हम याजकगण माँ सरस्वती का आवाहन करते हैं ॥१॥

१४६१. उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा। सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥२॥

परम प्रिय गायत्री आदि सातों छन्द और गंगा आदि सरिताएँ जिन देवी सरस्वती की बहिनें हैं, वे देवी सरस्वती हमारे लिए स्तुत्य हैं ॥२॥

१४६२. तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥३॥

जो हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हैं, उन सविता देवता के वरण करने योग्य तेज को हम धारण करते हैं ॥३॥

१४६३. सोमानां स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते। कक्षीवन्तं य औशिजः ॥४॥

हे ब्रह्मणस्पते ! (ज्ञानपते !) सोमाभिषव करने वाले हमें, उसी प्रकार यशस्वी और ज्ञान-सम्पन्न बनाएँ, जिस प्रकार (पूर्वकाल में) उशिज पुत्र कक्षीवान् को बनाया था ॥४॥

१४६४. अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥५॥

हे अग्निदेव ! विभिन्न प्रकार के पोषक तत्त्वों के साथ आप हमें बल और दीर्घायुष्य प्रदान करें। दुष्टों को हमारे पास से दूर करें ॥५॥

१४६५. ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य। महि वां क्षत्रं देवेषु ॥६॥

देवों में प्रशंसनीय, क्षात्र बल से सम्पन्न हे मित्र वरुण देव ! आप हमें धरती और आकाश का समस्त वैभव प्रदान करें ॥६॥

१४६६. ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते। अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥७॥

सत्य से सत्य का पालन करने वाले अभीष्ट बल को प्राप्त करते हैं। द्रोह न करने वाले मित्र और वरुण देव अपनी सामर्थ्य से वृद्धि पाते हैं ॥७॥

१४६७. वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः। बृहन्तं गर्तमाशाते ॥८॥

वर्षा के लिए जिनकी वंदना की जाती है, नियमानुसार सब कुछ प्राप्त करने वाले, दान की प्रवृत्ति वाले, अन्नों के अधिपति वे मित्र और वरुण देव श्रेष्ठ स्थान में प्रतिष्ठित हैं ॥८॥

१४६८. युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥९ ॥

आदित्यरूप, अग्निरूप, चलायमान दीखने वाले, पर स्थिर सूर्यदेव की हम आराधना करते हैं । सूर्य के तुल्य इन्द्रदेव की प्रकाश-किरणें समस्त नक्षत्र-लोक में प्रकाश फैलाती हैं ॥९ ॥

[सूर्य के स्थिर रहने (पृथ्वी के घूमने) का सिद्धान्त वैदिक ऋषियों के लिए अनजाना नहीं था,]

१४६९. युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥१० ॥

इन्द्ररूपी आत्मा को इच्छित स्थान पर ले जाने के लिए, शरीररूपी रथ, कर्म व ज्ञानरूपी अश्वों के द्वारा खींचा जाता है, मनरूपी सारथी द्वारा चलाया जाता है ॥१० ॥

१४७०. केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥११ ॥

हे मनुष्यो ! अज्ञानी को ज्ञानयुक्त करते हुए, कुरूप को रूपवान् करते हुए, उषाकाल में ये सूर्यदेव प्रकट होते हैं ॥११ ॥

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

॥पंचम खण्डः ॥

१४७१. अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।
त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! यह सोमरस आपके निमित्त निकालकर शोधित किया जाता है । इस पवित्र हुए सोम का आप पान करें । आप ही इसके उत्पादक हैं, इस दीप्तिमान् सोम को आनन्द के लिए, योग के लिए आप ग्रहण करें ॥१ ॥

१४७२. स ईं रथो न भुरिषाडयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि ।
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥२ ॥

वे महान् इन्द्रदेव अधिक भार धारण किये हुए, रथ के समान, हमें अपार वैभव प्रदान करने के निमित्त, नियुक्त किये गये हैं और हमारे विरोधी शत्रुओं को संग्राम में विनष्ट करते हैं ॥२ ॥

१४७३. शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट् ।
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण्न यज्ञः ॥३ ॥

हे सोमदेव ! मरुद्गणों के तुल्य बल प्राप्त करने के लिए आप पवित्र हों । जैसे दिव्य प्रजा परस्पर ईर्ष्या निन्दासे दूर अखण्ड रहती है , वैसे ही आप जल के समान पवित्र होकर हमारे लिए उत्तम बुद्धि प्रदान करें । अनेक रूपों में विभूषित, शत्रुविजेता आप यज्ञ के सदृश पूज्य हैं ॥३ ॥

१४७४. त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषं हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप सब यज्ञों को सम्पन्न करने वाले हैं । देवताओं ने आपको मानव-मात्र के कल्याण के लिए नियुक्त किया है ॥४ ॥

१४७५. स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः । आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे यज्ञ में हर्षवर्द्धक ज्वालाओं के द्वारा देवों का यजन करें । देवताओं का आवाहन कर उन्हें तृप्तिदायक हविष्यान्न अर्पित करें ॥५ ॥

१४७६. वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा । अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥६ ॥

हे नियन्ता, श्रेष्ठकर्मा अग्ने ! आप यज्ञ के निकटस्थ एवं दूरस्थ सभी मार्गों के ज्ञाता हैं । आप याजकों का उचित मार्गदर्शन करें ॥६ ॥

१४७७. होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया । विदथानि प्रचोदयन् ॥७ ॥

यज्ञ करने वाले, अविनाशी, प्रकाशमान अग्निदेव, याजकों (साधकों) को सत्कर्म की प्रेरणा देते हुए शीघ्र ही प्रकट होते हैं ॥७ ॥

१४७८. वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते । विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥८ ॥

संग्राम में बलशाली अग्निदेव को शत्रु-नाश करने के निमित्त स्थापित करते हैं । ये ज्ञानसम्पन्न अग्निदेव यज्ञ-कर्मों को सिद्ध करने वाले साधनरूप हैं ॥८ ॥

१४७९. धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे । दक्षस्य पितरं तना ॥९ ॥

वे अग्निदेव सब यज्ञ-कर्मों में प्रकट होने के कारण श्रेष्ठ हैं । सब प्राणियों में संव्याप्त हैं । विश्वपालक अग्निदेव को दक्ष-पुत्री (वेदी-स्वरूपिणी) यज्ञादि के निमित्त धारण करती हैं ॥९ ॥

॥इति पंचमः खण्डः ॥

* *

॥षष्ठः खण्डः ॥

१४८०. आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् । रसा दधीत वृषभम् ॥१ ॥

हे अध्वर्युगण ! आकाश और पृथ्वी में देदीप्यमान दुग्ध (धवल किरणों) से सोम का मिश्रण करो । (क्योंकि) बाद में वह दुग्ध (धवल तेज) बलशाली सोम को आत्मसात् कर लेता है । (और स्वयं अत्यधिक बलशाली बन जाता है ।) ॥१ ॥

१४८१. ते जानत स्वमोक्य३ सं वत्सासो न मातृभिः । मिथो नसन्त जामिभिः ॥२ ॥

वे गौएँ (सूर्य रश्मियाँ) अपने स्थानों को जानती हैं । जिस प्रकार बछड़े भीड़ में भी अपनी माताओं के पास चले जाते हैं, उसी प्रकार ये गौएँ (दिव्य किरणें) भी अपने बन्धुओं (सहयोगी-आश्रय दाताओं) के पास स्वतः चली जाती हैं ॥२ ॥

१४८२. उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि । इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ॥३ ॥

भक्षण करने वाली ज्वालाओं से प्राप्त अन्न और दुग्ध को इन्द्र और अग्निदेव यज्ञ (यज्ञीय प्रक्रिया) द्वारा आकाश में विस्तीर्ण कर देते हैं । तत्पश्चात् इन्द्र और अग्निदेव को सभी (प्रकृति के अंग-अवयव) दुग्ध-पोषण देते हैं ॥३ ॥

[यहाँ यज्ञ द्वारा बहुलीकरण का संकेत है]

१४८३. तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥४ ॥

संसार का कारणभूत ब्रह्म स्वयं ही सब लोकों में प्रकाशरूप में संव्याप्त हुआ । जिसके प्रचण्ड तेजस्वी बल से युक्त सूर्यदेव का प्राकट्य हुआ । जिसके उदय होने मात्र से (अज्ञानरूपी) शत्रु नष्ट हो जाते हैं । उसे देखकर सभी प्राणी हर्षित हो उठते हैं ॥४ ॥

१४८४. वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥५ ॥

अपनी सामर्थ्य से वृद्धि को प्राप्त हुए अनन्त शक्तियुक्त, दुष्टों के शत्रु इन्द्रदेव सभी चर-अचर प्राणियों को संचालित करते हैं ।(ऐसे) इन्द्रदेव की हम (याजकगण) सम्मिलितरूप में, एक साथ स्तुति करके उन्हें तथा स्वयं को आनन्दित करते हैं ॥५ ॥

१४८५. त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! सब यजमान आपके लिए ही अनुष्ठान करते हैं । जब यजमान विवाह करके दो या एक सन्तान के बाद तीन होते हैं, तो प्रिय से भी प्रिय लगने वाले (संतान) को प्रिय (धन-ऐश्वर्य) से युक्त करें । बाद में इस प्रिय संतान को पौत्रादि की मधुरता से युक्त करें ॥६ ॥

१४८६. त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत् सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशम्
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं
सश्चद्देवो देवं सत्य इदुः सत्यमिन्द्रम् ॥७ ॥

महान् सामर्थ्यवान्, तृप्त हुए इन्द्रदेव तीन बर्तन में निकाले जौ के सत्तू से मिश्रित सोमरस को विष्णुदेव के साथ पान करते हैं । वे सोमदेव महान् व्यापक तेजस्वी, इन इन्द्रदेव को महान् कार्य करने के लिए आह्लादित करते हैं । सत्यस्वरूप, दीप्तिमान् दिव्य सोम सत्य और देव स्वरूप इन्द्रदेव को प्राप्त होता है ॥७ ॥

१४८७. साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ
साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः ।
दाता राध स्तुवते काम्यं वसु प्रचेतन सैनं
सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप यज्ञ के साथ प्रकट हुए हैं । अपनी सामर्थ्य से विश्व का भार उठाने को लालायित रहते हैं । हे ज्ञानी, श्रेष्ठ इन्द्रदेव ! महान् पराक्रमी, शत्रु संहारक, विशिष्ट ज्ञानी आप स्तोताओं को अभीष्ट ऐश्वर्य देते हैं । सत्यस्वरूप, दीप्तिमान् दिव्य सोम सत्यदेव इन इन्द्रदेव को प्राप्त होता है ॥८ ॥

१४८८. अध त्विषीमाँ अभ्योजसा कृविं युधाभवदा
रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे ।
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत प्र चेतय सैनं
सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! अपनी सामर्थ्य से कृवि नामक असुर को आपने जीता और तेजस्वी हुए आप आकाश एवं पृथ्वी को तेज से परिपूर्ण कर दिया । सोमपान से और अधिक प्रभावशाली हुऐ आप सोम के एक भाग को अपने उदर में और दूसरे भाग को देवों के लिए बचा दिया है । हे इन्द्रदेव ! सोमपान के लिए आप अन्य देवों को प्रेरित करें । सत्यस्वरूप, दीप्तिमान् दिव्यसोम, सत्यस्वरूप देदीप्यमान इन्द्रदेव को प्राप्त होता है ॥९ ॥

॥इति षष्ठः खण्डः ॥

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- कवि भार्गव १४३५-१४३९ । भरद्वाज बार्हस्पत्य १४४०-१४४३, १४६१, १४७४-१४७६ । असित काश्यप अथवा देवल १४४४-१४४९ । सुकक्षआङ्गिरस १४५०-१४५२ । विभ्राट् सौर्य १४५३-१४५५ । वसिष्ठ मैत्रावरुणि १४५६-१४५७, १४६० । भर्ग प्रागाथ १४५८-१४५९ । विश्वामित्र गाथिन १४६२, १४७७-१४७९ । मेधातिथि काण्व १४६३ । शतं वैखानस १४६४ । यजत आत्रेय १४६५-१४६७ । मधुच्छन्दा वैश्वामित्र १४६८-१४७० । उशना काव्य १४७१-१४७३ । हर्यत प्रागाथ १४८०-१४८२ । बृहद्दिव आथर्वण १४८३-१४८५ । गृत्समद शौनक १४८६-१४८८ ।

देवता- पवमान सोम १४३५-१४३९, १४४४-१४४९, १४७१-१४७३ । इन्द्र १४४०-१४४३, १४५०-१४५२, १४५६-१४५९, १४६८-१४७०, १४८३-१४८८ । सूर्य १४५३-१४५५ । सरस्वान् १४६० । सरस्वती १४६१ । सविता १४६२ । ब्रह्मणस्पति १४६३ । अग्नि पवमान १४६४ । मित्रावरुण १४६५-१४६७ । अग्नि १४७४-१४७९ । अग्नि अथवा हवींषि १४८०-१४८२ ।

छन्द- गायत्री १४३५-१४३९, १४४४-१४५२, १४६०-१४७०, १४७५-१४८२ । अनुष्टुप् १४४०-१४४२ । बृहती १४४३ । जगती १४५३-१४५५ । बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) १४५६-१४५९ । त्रिष्टुप् १४७१-१४७३, १४८३-१४८५ । वर्धमाना गायत्री १४७४ । अष्टि १४८६ । अतिशक्वरी १४८७, १४८८ ।

॥इति त्रयोदशोऽध्यायः ॥

॥ चतुर्दशोऽध्याय: ॥

॥प्रथम: खण्ड: ॥

१४८९. अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे। सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥१ ॥

हे स्तोताओ ! सत्य यज्ञ के पोषक, भद्रजनों के संरक्षक, गो-पालक, इन इन्द्रदेव की सुन्दर स्तोत्रों से प्रार्थना करो ॥१ ॥

१४९०. आ हरय: ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि। यत्राभि संनवामहे ॥२ ॥

इन्द्रदेव के अश्व प्रकाशयुक्त कुश-आसन पर इन्द्रदेव को अधिष्ठित करें। जहाँ प्रतिष्ठित हुए इन्द्रदेव की हम (यजमान) स्तुति करते हैं ॥२ ॥

१४९१. इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु। यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥३ ॥

जब यज्ञस्थल में समीप ही इन्द्रदेव मधुर रस का पान करते हैं, तब गौएँ वज्रहस्त इन्द्रदेव के (पान करने के) लिए मधुर दुग्ध प्रदान करती हैं ॥३ ॥

१४९२.आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रं समत्सु भूषत ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम ॥४ ॥

सभी संग्रामों (विशेषकर जीवन-संग्राम) में सहायतार्थ आवाहन योग्य इन्द्रदेव को लक्ष्य कर गाये गये हमारे स्तोत्र एवं यज्ञ उन्हें सुशोभित करते हैं। हे वृत्रहन्ता, श्रेष्ठ धनुर्धर, स्तुत्य इन्द्रदेव ! हमें (यजमानों को) आप मनोवाञ्छित धन प्रदान करें ॥४ ॥

१४९३. त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सर्वप्रथम धन दाता हैं। ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं। आप से हम पराक्रमी एवं श्रेष्ठ सन्तान की कामना करते हैं ॥५ ॥

१४९४. प्रत्नं पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत ।
इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ॥६ ॥

सबसे पहले यह स्तुत्य (सोमरस) अमृत, सर्वोच्च एवं सुविस्तृत द्युलोक से प्रकट हुआ है, तदनन्तर इन्द्रदेव के समक्ष याजकगण सोम की सस्वर स्तुति करते हैं ॥६ ॥

१४९५.आदीं के चित्पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत ।
दिवो न वारं सविता व्यूर्णुते ॥७ ॥

कालान्तर में इस सोम का दर्शन करने वाले दिव्य वसुरुच गण, आच्छादित अंधकार का निवारण करने वाले सविता के उदित होने के पूर्व (उषाकाल में ही) भाई के समान आदरणीय इस सोम की स्तुति करते हैं ॥७ ॥

१४९६.अथ यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना ।
यूथे न निष्ठा वृषभो वि राजसि ॥८ ॥

हे शोधित सोम ! गौओं के समूह में अवस्थित वृषभ के समान (आप) द्युलोक, पृथ्वीलोक एवं सम्पूर्ण प्राणियों के मध्य विद्यमान रहते हैं ॥८ ॥

१४९७. इमम् षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम्। अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे (उद्‌गाता) द्वारा समुच्चारित, परमार्थ भावयुक्त, नूतन स्तोत्रों को देवताओं के पास जाकर भली प्रकार निवेदित करें ॥९ ॥

१४९८.विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ। सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥१० ॥

सात ज्वालाओं से दीप्तिमान् हे अग्निदेव ! आप धन-दायक हैं। नदी के पास आने वाली जल तरङ्गों के सदृश आप हविष्यान्न-दाता को तत्क्षण (श्रेष्ठ) कर्म-फल प्रदान करते हैं ॥१० ॥

१४९९. आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु। शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! हमें श्रेष्ठ, मध्यम एवं कनिष्ठ अर्थात् सभी प्रकार की धन-सम्पदा आप प्रदान करें ॥११ ॥

१५००. अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह। अहं सूर्य इवाजनि ॥१२ ॥

पालनकर्ता तथा अमर्त्य इन्द्रदेव की सत्य-श्रेष्ठ बुद्धि को हमने प्राप्त किया है। अतएव हम सूर्यवत् प्रभावशाली हो गये हैं ॥१२ ॥

१५०१. अहं प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत्। येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे ॥१३ ॥

कण्व के सदृश प्राचीन वेद वाणी से हमने स्तोत्र पाठ करके इन्द्रदेव को सुशोभित किया है। जिन (स्तोत्रों) के प्रभाव से इन्द्रदेव शक्ति-सम्पन्न बनते हैं ॥१३ ॥

१५०२.ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः । ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः ॥१४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी स्तुति न करने वाले तथा आप के निमित्त स्तुति करने वाले ऋषिगणों के मध्य हमारे ही स्तोत्र प्रशंसनीय हैं। आप उन स्तोत्रों के प्रभाव से भलीप्रकार परिपुष्ट हों ॥१४ ॥

॥इति प्रथमःखण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

१५०३.अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्जोषि ब्रह्म सहस्कृत ।
ये देवत्रा य आयुषु तेभिर्नो महया गिरः ॥१ ॥

हे बलशाली यज्ञाग्नि ! सभी अग्नियों के साथ आप भी हमारे स्तोत्रों का श्रवण करें। जो अग्नियाँ देव रूप में अधिष्ठित हैं, तथा जो मानवों में अवस्थित हैं, उनके द्वारा हमारे स्तोत्रों को आप महिमा मण्डित करें ॥१ ॥

१५०४.प्र स विश्वेभिरग्निभिरग्निः स यस्य वाजिनः ।
तनये तोके अस्मदा सम्यङ्वाजैः परीवृतः ॥२ ॥

जिस शक्तिवान् यज्ञाग्नि में अनेक लोग आहुतियाँ प्रदान करते हैं, वह यज्ञाग्नि अन्य अग्नियों सहित हविष्यान्न से परिपूरित होकर हमारे पास कल्याण करने हेतु पधारे। हमारे पुत्र-पौत्रों का भी आप कल्याण करें ॥२

१५०५.त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय।
त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप अन्य सभी अग्नियों के साथ हमारे स्तोत्र एवं यज्ञ की अभिवृद्धि करें । आप धन-वैभव प्रदान करने के निमित्त (अन्य) देवों को भी प्रेरित करें ॥३ ॥

१५०६.त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।
स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥४ ॥

हे सोमदेव ! प्रधान ऋत्विग्गण श्रेष्ठ बल एवं (पोषण) अन्न के निमित्त आपके विषय में श्रेष्ठ विचारयुक्त (पूर्ण आश्वस्त) हैं । हे वीर सोमदेव ! आप हमें वीरता की प्राप्ति के लिए प्रेरित करें ॥४ ॥

१५०७.अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम् ।
शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥५ ॥

हे सोमदेव ! (पोषण) अन्न से युक्त होकर आपका रस छलनी से नीचे गिरता हुआ कलश पात्र को उसी प्रकार परिपूरित कर देता है, जिस प्रकार पीने योग्य जल को कोई व्यक्ति हथेलियों से क्रमशः (पानी के) हौज को पूरा भर देता है ॥५ ॥

१५०८.अजीजनो अमृत मर्त्याय कमृतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः ।
सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥६ ॥

हे अमृतरूपी सोमदेव ! आपने सत्य एवं कल्याणकारी तत्त्व को धारण करके अन्तरिक्ष लोक में सूर्यदेव को मानव के निमित्त प्रादुर्भूत किया तथा देवगणों की सेवा की । आप अन्न आदि वैभव (यजमानों को देने) के लिए सर्वदा सक्रिय रहते हैं ॥६ ॥

१५०९.एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।
प्र राधांसि चोदयते महित्वना ॥७ ॥

(हे याजको !) सोमरस इन्द्रदेव को प्रदान करो । वे मधुर सोमरस का पान करते हैं और अपनी महिमा से ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥७ ॥

१५१०.उपो हरीणां पतिं राधः पृञ्चन्तमब्रवम् ।
नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥८ ॥

अश्वों के अधिपति, स्तोताओं के धनप्रदायक इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं । स्तुति करते हुए अश्व्य ऋषि के स्तोत्रों को (हे इन्द्र) आप निश्चतरूप से सुनें ॥८ ॥

१५११.न ह्यां ३ग पुरा च न जज्ञे वीरतरस्त्वत् । न की राया नैवथा न भन्दना ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपसे पहले आपके समान वीर, धन-दाता, युद्ध में शत्रुओं को परास्त करने वाला तथा स्तुति योग्य अन्य कोई देवता नहीं हुआ ॥९ ॥

१५१२.नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् । पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि ॥१० ॥

हे यजमानो ! आपके लिए उषा को उत्पन्न करने वाले, चन्द्र किरणों को उत्पन्न करने वाले और गौओं को पालने वाले इन्द्रदेव को बुलाते हैं । आप गो-दुग्ध को पोषक अन्न के रूप में प्राप्त करने की इच्छा करते हैं, इसकी भी पूर्ति करने में इन्द्रदेव सक्षम हैं ॥१० ॥

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः ॥

१५१३.देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम्।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥१ ॥

अनुदानदाता अग्निदेव घृत से पूर्ण स्रुवाओं की कामना करते हैं, (हे याजको !) उसे सोम से सिंचित करो, हविपात्र को पूर्णरूप से भरो, अग्निदेव ही तुम्हारा पोषण करेंगे ॥१ ॥

[यहाँ पर यज्ञ को पूर्ण मनोयोगपूर्वक करने का निर्देश है ।]

१५१४. तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ॥२ ॥

देवों ने श्रेष्ठ प्रज्ञावान् उन अग्निदेव को अपना सहायक बनाया है, जो हवि के वाहक हैं । वे यज्ञ करने वाले तथा दान देने वाले के लिए पराक्रम आदि श्रेष्ठतम विभूतियाँ प्रदान करते हैं ॥२ ।

१५१५.अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः ।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥३ ॥

जिस अग्नि में यजमान यज्ञकर्म सम्पन्न करते हैं, वहाँ मार्गदर्शकों में सर्वश्रेष्ठ अग्निदेव प्रकट होते हैं । आर्यों की उन्नति चाहने वाले भलीप्रकार प्रदीप्त अग्निदेव को हमारी स्तुतियाँ प्राप्त हों ॥३ ॥

१५१६.यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः ।
सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिर्नमस्यत ॥४ ॥

जिस समय कर्त्तव्य में तत्पर मनुष्यों को शत्रु पक्ष वाले विचलित करते हैं, उस समय हे मनुष्यो ! ऐश्वर्यदाता अग्निदेव का उत्तम कर्मों द्वारा बुद्धिपूर्वक स्तवन करो ॥४ ॥

१५१७.प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना ।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ॥५ ॥

द्युलोकवासी अग्निदेव अंतरिक्ष में भी निवास करते हैं तथा विद्युत् जैसी सामर्थ्य के साथ सब जीवों की माता पृथिवी पर यज्ञीय कर्म करते हैं ॥५ ॥

१५१८.अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमें दीर्घायु प्रदान करें । हमें बल और अन्न प्रदान करें । दुष्टों को दूर करके, उन्हें उत्पीड़ित करें ॥६ ॥

१५१९.अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् ॥७ ॥

पंच जनों (समाज के पाँचों वर्गों) का हित चाहने वाले और सब कुछ देखने वाले शुद्ध अग्निदेव जिन्हें ऋत्विजों ने यज्ञ के लिए प्रथम स्थापित किया है, उन समर्थ अग्निदेव की हम स्तुति करते हैं ॥७ ॥

१५२०. अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषम् ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! आप उत्तम कर्म की प्रेरणा देने वाले हैं । आप हमें तेज तथा पराक्रम से युक्त शक्ति प्रदान करें, हमें ऐश्वर्य और पोषक तत्त्वों से सम्पन्न बनाएँ ॥८ ॥

१५२१.अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया। आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥९॥

हे पवित्रता प्रदान करने वाले अग्निदेव ! देवताओं को प्रसन्न करने वाली ज्वालारूपी जिह्वा द्वारा, देवताओं को आमन्त्रित करके आप उनके निमित्त यज्ञ सम्पन्न करें ॥९॥

१५२२.तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम्। देवाँ आ वीतये वह ॥१०॥

हे घृत से उत्पन्न होने वाले अद्भुत तेजस्वी अग्निदेव ! सबको देखने वाले आपकी हम प्रार्थना करते हैं। हवि सेवनार्थ देवों को आप यहाँ बुलाएँ ॥१०॥

१५२३.वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि। अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥११॥

हे ज्ञानी अग्निदेव ! यज्ञानुरागी, तेजस्वी तथा महान् आपको हम यज्ञ में प्रज्वलित करते हैं ॥११॥

॥इति तृतीयः खण्डः॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः॥

१५२४.अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि। विश्वासु धीषु वन्द्य ॥१॥

हे अग्निदेव ! आप सभी यज्ञों में वन्दनीय हैं। गायत्री छन्द वाले सामगान से स्तुति करने पर प्रसन्न हुए आप अपने संरक्षणरूपी साधनों से हमारी रक्षा करें ॥१॥

१५२५.आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम्। विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥२॥

हे अग्निदेव ! दरिद्रता को नष्ट करने वाले, शत्रुओं को पराजित करने वाले, वरण करने योग्य, श्रेष्ठ ऐश्वर्य आप हमें प्रदान करें ॥२॥

१५२६. आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम्। मार्डीकं धेहि जीवसे ॥३॥

हे अग्निदेव ! आप उत्तम ज्ञान से युक्त, जीवन भर पोषक सामर्थ्य प्रदान करने वाला, सुखदायक धन हमारे दीर्घ जीवन के लिए हमें प्रदान करें ॥३॥

१५२७.अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु। तेन जेष्म धनंधनम् ॥४॥

हमारी बुद्धियाँ अग्नि (प्रतिभा) को उसी प्रकार प्रेरणा दें, जिस प्रकार युद्ध में शीघ्र चलने वाले घोड़े को प्रेरित किया जाता है। जीवन-संग्राम में हम सभी ऐश्वर्यों के विजेता हों ॥४॥

१५२८.यया गा आकरामहे सेनयाग्ने तवोत्या । तां नो हिन्व मघत्तये ॥५॥

हे अग्निदेव ! आपकी विघ्न-निवारण करने वाली एवं संरक्षण प्रदान करने वाली शक्ति से हमें दिव्यज्ञान की प्राप्ति हो। हमारे उत्तम धनादि देने के लिये (उस शक्ति को) प्रेरित करें ॥५॥

१५२९.आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् । अङ्धि खं वर्तया पविम् ॥६॥

हे अग्निदेव ! महान् गौओं और घोड़ों से युक्त प्रचुर धन आप हमें प्रदान करें। आकाश आपके तेज से प्रकाशित है, शत्रुवृत्तियों (दोष-दुर्गणों) को आप हमसे दूर हटाएँ ॥६॥

१५३०.अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि। दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥७॥

हे अग्निदेव ! सब वस्तुओं को प्रकाश देते हुए, जर्जर न होने वाले और निरन्तर गतिशील सूर्यदेव को आप अन्तरिक्ष में स्थापित करें ॥७॥

१५३१.अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत्। बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ॥८॥

हे अग्निदेव ! आप प्रजाओं को ज्ञान देने वाले, प्रिय और सर्वश्रेष्ठ हैं, यज्ञशाला में स्थित आप हमारे स्तुतिगान को स्वीकार करते हुए हमें श्रेष्ठ पोषण प्रदान करें ॥८॥

१५३२.अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।
अपां रेतांसि जिन्वति ॥९॥

देवताओं में सर्वश्रेष्ठ, आकाश में उन्नत स्थान पर रहने वाले, पृथ्वी को पोषण देने वाले ये अग्निदेव जल के मूल घटकों को अपने में समाहित किये हैं ॥९॥

१५३३.ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वः पतिः । स्तोता स्यां तव शर्मणि ॥१०॥

हे अग्निदेव ! आप स्वर्गलोक के स्वामी, वरण करने योग्य और दान देने योग्य धन के अधिष्ठाता हैं। आपके द्वारा प्रदत्त सुख भोगते हुए हम सदा आपके प्रशंसक बने रहें ॥१०॥

१५३४.उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते। तव ज्योतींष्यर्चयः ॥११॥

हे अग्निदेव ! स्वच्छ-उज्ज्वल और प्रकाशित ज्योतियाँ आपके तेज को प्रवाहित करती रहती हैं ॥११॥

॥इति चतुर्थः खण्डः॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- प्रियमेध आङ्गिरस १४८९-१४९१, १५१२। नृमेध-पुरुमेध आङ्गिरस १४९२, १४९३। त्र्यरुण त्रैवृष्ण और त्रसदस्यु पौरुकुत्स १४९४-१४९६, १५०६-१५०८। शुनःशेप आजीगर्ति १४९७-१४९९। वत्स काण्व १५००-१५०२। अग्नि तापस १५०३-१५०५। विश्वमना वैयश्व १५०९-१५११। वसिष्ठ मैत्रावरुणि १५१३-१५१४। सौभरि काण्व १५१५-१५१७। शतंवैखानस १५१८-१५२०। वसूयव आत्रेय १५२१-१५२३। गोतमराहूगण १५२४-१५२६। केतुआग्नेय १५२७-१५३१। विरूपआङ्गिरस १५३२-१५३४।

देवता- इन्द्र १४८९-१४९३, १५००-१५०२, १५०९-१५१२। पवमान सोम १४९४-१४९६। १५०६-१५०८। अग्नि १४९८-१४९९, १५१३-१५१७, १५२१-१५३४। विश्वेदेवा १५०३-१५०५। अग्नि पवमान १५१८-१५२०।

छन्द- गायत्री १४८९-१४९१, १४९७-१५०२, १५१८-१५३४। बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) १४९२-१४९३, १५१३-१५१४। ऊर्ध्वा बृहती १४९४-१४९६, १५०६-१५०८। अनुष्टुप् १५०३-१५०५। उष्णिक् १५०९-१५१२। बृहती १५१५-१५१७।

॥इति चतुर्दशोऽध्यायः॥

॥अथ पञ्चदशोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

१५३५. कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः । को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! मनुष्यों में आपका बन्धु कौन है ? श्रेष्ठ दान से कौन आपका यजन करता है ? आपके स्वरूप को कौन जानता है ? आपका आश्रय स्थल कहाँ स्थित है ? ॥१ ॥

१५३६. त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः । सखा सखिभ्य ईड्यः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप मनुष्यों से भ्रातृ-भाव रखने वाले, स्तोताओं के लिए प्रिय मित्र के तुल्य हैं ॥२ ॥

१५३७. यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत् ।
अग्ने यक्षिस्वं दमम् ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे निमित्त मित्र और वरुण देवों का यजन (पूजन) करें । देवताओं का यजन (पूजन) करें । यज्ञ की पूजा करें तथा यज्ञशाला में पूजायोग्य भाव से रहें ॥३ ॥

१५३८. ईडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः । समग्निरिध्यते वृषा ॥४ ॥

स्तुत्य, प्रणम्य, अन्धकारनाशक, दर्शनीय और शक्तिशाली हे अग्निदेव ! आप आहुतियों द्वारा भली प्रकार प्रज्वलित किये जाते हैं ॥४ ॥

१५३९. वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईडते ॥५ ॥

बलशाली अश्व जैसे राजा के वाहन को खींच कर ले जाते हैं, उसीप्रकार अग्निदेव, देवताओं तक हवि पहुँचाते हैं । उत्तम प्रकार से प्रदीप्त हुए, ऐसे अग्निदेव यजमान की स्तुतियों को प्राप्त करते हैं ॥५ ॥

१५४०. वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥६ ॥

हे बलवान् अग्निदेव ! घृतादि की हवि प्रदान करने वाले हम, शक्तिशाली, तेजस्वी और महान् आपको (अग्नि को) प्राप्त करते हैं ॥६ ॥

१५४१. उत्ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः । अग्ने शुक्रास ईरते ॥७ ॥

हे तेजस्वी अग्निदेव ! भली प्रकार प्रदीप्त, महानता को प्रेरित करने वाली शक्तिदायक आपकी लपटें वृद्धि को प्राप्त करती हैं ॥७ ॥

१५४२. उप त्वा जुह्वो३ मम घृताचीर्यन्तु हर्यत । अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥८ ॥

हे पूजायोग्य अग्निदेव ! हमारे घृत (हवि) से पूर्णरूप से भरे पात्र आपको प्राप्त हों, आप हमारी आहुतियों को स्वीकार करें ॥८ ॥

१५४३.मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम्।
अग्निमीडे स उ श्रवत्॥९॥

आनन्द प्रदायक, देवताओं का आवाहन करने वाले, ऋतु के अनुकूल यज्ञ करने वाले, तेजस्विता से युक्त, प्रकाशमान अग्निदेव की हम स्तुति करते हैं ॥९॥

१५४४.पाहि नो अग्न एकया पाह्युऽत द्वितीयया।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥१०॥

हे अग्निदेव ! आप एक, दो, तीन और चार वाणियों से हमारा संरक्षण करें ॥१०॥

[इसके विशेष तात्पर्यार्थ को मंत्र संख्या ३६ में देखें]

१५४५.पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव ॥
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे ॥११॥

हे अग्ने ! समस्त राक्षसी वृत्तियों और दान न देने वाले संकीर्ण स्वार्थियों से हमारा संरक्षण करें। जीवन-संग्राम में हमारी रक्षा करें। हमारे समीपस्थ हितैषी आप ही हैं। हम यज्ञ की सफलता और संवर्द्धन तथा आश्रय ग्रहण करते हैं ॥११॥

॥इति प्रथमः खण्डः॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः॥

१५४६.इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि ।
चिकिद्वि भाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ॥१॥

हे अग्निदेव ! आप सबके स्वामी, दिव्य गुणों से युक्त, देदीप्यमान, शत्रुओं के लिए भयंकर, उपासकों को इच्छित पदार्थ प्रदान करने वाले, सब प्रकार से शक्ति को विकसित करने वाले हैं, ऐसा अनुभव किया गया है। सर्वज्ञाता आप प्रदीप्त होकर अपने प्रकाश को सर्वत्र फैलाते हुए सांध्य-हवन के निमित्त निशाकाल में प्राप्त होते हैं ॥१॥

१५४७.कृष्णां यदेनीमभि वर्पसाभूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम् ।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ॥२॥

ये अग्निदेव, पिता (रूप सूर्य) से उत्पन्न होकर, स्त्रीरूपी को प्रकट कर, अँधेरी रात को अपनी ज्वालाओं से हटाते हैं (परास्त करते हैं) । उस समय गतिशील अग्निदेव द्युलोक में अपने तेज से सूर्य की दीप्ति को ऊपर ही रोककर (उसे हतप्रभ करके) स्वयं प्रकाशित होते हैं ॥२॥

१५४८.भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्नुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥३॥

हितकारक अग्निदेव कल्याणकारिणी उषा द्वारा सेवित होकर प्रदीप्त होते हैं, तब रिपुनाशक अग्निदेव अपनी बहिन उषा के पास जाते हैं। अपनी तेजस्विता के प्रभाव से सर्वत्र विचरणशील ये अग्निदेव जाज्वल्यमान लपटों से रात्रि के अँधेरे को नष्ट करके प्रतिष्ठित होते हैं ॥३॥

१५४९.कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम्।
वराय देव मन्यवे ॥४॥

हे अंग प्रकाशक और बलवर्द्धक अग्निदेव ! सभी द्वारा स्वीकार करने योग्य और विरोधियों को पीड़ित करने वाले आपकी हम किस वाणी से स्तुति करें ? ॥४॥

१५५०.दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो।
कदु वोच इदं नमः ॥५॥

हे (अरणिमंथनरूप) पुरुषार्थ से उत्पन्न अग्निदेव ! किस यजमान के देवयजन कर्म द्वारा हम आहुति आपके निमित्त अर्पित करें ? ये हवि अथवा ये स्तुतियाँ आपको प्राप्त हों, ऐसी प्रार्थना हम कब करें ? ॥५॥

१५५१.अधा त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः।
वाजद्रविणसो गिरः ॥६॥

हे अग्ने ! आपकी हम पर ऐसी कृपा हो, जिससे अपनी स्तुतियों के प्रभाव से हम श्रेष्ठ स्थानों के अधिपति और श्रेष्ठ पोषक धन-धान्य से युक्त हो जाएँ ॥६॥

१५५२.अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥७॥

हे अग्निदेव ! आप देवों को बुलाने वाले हैं, हमारी प्रार्थना सुनकर अपनी (विभूतिरूप) अग्नियों सहित यहाँ पधारें। हे पूज्य अग्निदेव ! आपके लिए तैयार हविष्यान्न, यज्ञ वेदिका पर आसन ग्रहण करने के बाद आहुतिरूप में आपको प्राप्त हो ॥७॥

१५५३.अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥८॥

बलोत्पन्न, सर्वत्र गमनशील हे अग्निदेव ! आप तक हविष्यान्न पहुँचाने के लिए ये हवि पात्र सक्रिय हैं। शक्ति का ह्रास रोकने वाले अभीष्ट दाता, तेजस्वी, ज्वालायुक्त अग्निदेव की हम यज्ञ में प्रार्थना करते हैं ॥८॥

१५५४.अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम्।
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये ॥९॥

हमारी प्रार्थनाएँ भलीप्रकार प्रज्वलित ज्वालाओं से परिपूर्ण और दर्शनयोग्य अग्निदेव के समीप सहजता से जाएँ। हमारी रक्षा के लिए घृतयुक्त हवियों से सम्पन्न किये गये यज्ञ, प्रचुर सम्पदा से युक्त और अति प्रशंसनीय अग्निदेव को प्राप्त हों ॥९॥

१५५५.अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम्।
द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि ॥१०॥

जो अग्नि अमरत्व प्राप्त देवताओं में है, वह मनुष्यों में भी उसी प्रकार अमृतरूप है, अर्थात् दोनों स्थानों में वह अमृत रूप है। मनुष्यों में यज्ञ को सफल करने वाले आनन्ददायक सर्वज्ञ अग्निदेव को धन-धान्य प्रदान करने के लिए हम बुलाते हैं ॥१०॥

॥इति द्वितीयः खण्डः॥

॥तृतीयः खण्डः ॥

१५५६. अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम् । तूर्णी रथः सदा नवः ॥१ ॥

मानव मार्गदर्शक होने से अग्रणी, तत्काल क्रियाशील, रथ के समान वेगशील (गतिशील), चिरयुवा ये अग्निदेव सर्वथा अदम्य हैं ॥१ ॥

१५५७.अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः ।
क्षयं पावकशोचिषः ॥२ ॥

हविदाता मनुष्य, प्रिय हविष्यान्न प्रदान करते हुए, पावन प्रकाशयुक्त, हविवाहक अग्निदेव से उत्तम आवास की प्राप्ति करते हैं ॥२ ॥

१५५८.साह्वान्विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः ।
अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥३ ॥

आक्रामक शत्रु-सेनाओं को परास्त करने वाले, दिव्य गुणों के संवर्द्धक हे अग्निदेव ! आप प्रचुर अन्न (पोषण) प्रदान करने वाले हैं ॥३ ॥

१५५९.भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥४ ॥

आहुतियों से संतुष्ट अग्निदेव हमारे हितैषी हों । हे सौभाग्यशाली अग्निदेव ! आपके कल्याणकारी अनुदान हमें मिलें । हमारे द्वारा सम्पन्न यज्ञ और गान की गई स्तुतियाँ, हमारे लिए मंगलमय हों ॥४ ॥

१५६०.भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहिः ।
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टये ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! जीवन-संग्राम में हमें कल्याणकारी विचार प्रदान करें, जिससे पाप पूर्ण विचारों को दबाया जा सके, (उसी से) कामक्रोधादि शत्रुओं को भी नष्ट करें । हम अपने (समग्र) कल्याण के लिए आपकी स्तुति करते हैं ॥५ ॥

१५६१.अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥६ ॥

हे शक्ति सम्पन्न अग्निदेव ! गवादि पशुओं के साथ उत्पन्न अन्न के आप स्वामी हैं । हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! आप हमें असंख्य ऐश्वर्य प्रदान करें ॥६ ॥

१५६२.स इधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा । रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥७ ॥

देदीप्यमान, सभी को वास प्रदान करने वाले (आवास योग्य) वे अग्निदेव ज्ञानयुक्त वाणी से स्तवन योग्य हैं । हे जाज्वल्यमान अग्निदेव ! आप हमें दीप्तियुक्त सम्पदा प्रदान करें ॥७ ॥

१५६३.क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः । स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥८ ॥

हे दीप्तिमान् अग्निदेव ! आप सभी दिन-रात्रियों (प्रत्येक क्षण) में दुष्टों को पीड़ित करें और स्वयमेव तेजमुख वाले हे अग्निदेव ! आप असुरों को समूल नष्ट कर दें ॥८ ॥

॥इति तृतीयः खण्डः ॥

॥चतुर्थः खण्डः ॥

१५६४.विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वच स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥१ ॥

अन्न व बल की कामना से युक्त हे याजको ! आप हरेक मनुष्य के गृह में अतिथि रूप में आदरणीय और सर्वप्रिय, अग्निदेव को हविष्य प्रदान करो । आपके बलवर्द्धक स्तवनों से स्थण्डिल (यज्ञवेदी में विद्यमान) अग्नि की हम प्रार्थना करते हैं ॥१ ॥

१५६५.यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् ।
प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥२ ॥

हविदाता मित्र के समान घृतादि से यज्ञ सम्पन्न करते हुए वैदिक स्तोत्रों से हम पूजनीय अग्निदेव का स्तवन करते हैं ॥२ ॥

१५६६.पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता । हव्यान्यैरयद्दिवि ॥३ ॥

अत्यधिक स्तुत्य, सर्वज्ञानयुक्त अग्निदेव की हम प्रशंसा करते हैं । अग्निदेव यज्ञ में प्रदत्त हविष्यान्न को देवलोक तक पहुँचाने में सहायक हैं ॥३ ॥

१५६७.समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥४ ॥

समिधाओं द्वारा प्रकट हुई अग्नि की हम वाणी से स्तुति करते हैं । शुद्ध, स्थिर और पावन बनाने वाली अग्नि को यज्ञ में अग्रिम स्थान पर प्रतिष्ठित करते हैं । (विप्र) विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न तथा हविदाता सभी द्वारा धारण करने योग्य, द्रोहमुक्त, ज्ञानवान् और सर्वज्ञाता अग्निदेव की ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए हम स्तुति करते हैं ॥४ ॥

१५६८.त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! अमर देवता और मनुष्य प्रत्येक शुभ यज्ञ में, हविवाहक रक्षक और स्तुति योग्य आपको दूत रूप में नियुक्त करते हैं तथा मनुष्य, जाग्रती प्रधान, विस्तारशील और प्रजा की रक्षा में सहायक मानकर अग्निदेव को प्रणाम करते हुए उनकी उपासना करते हैं ॥५ ॥

१५६९.विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ।
यत्ते धीतिं सुमति मावृणीमहेऽध स्म नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥६ ॥

देव एवं मनुष्य दोनों को महिमामण्डित करते हुए, अनुशासन प्रिय, व्रतशील देवों के दूत बनकर, दिव्यलोक एवं इसमें हवि ले जाने वाले हे अग्निदेव ! हम आपकी स्तुतियाँ करते हैं । तत्पश्चात् तीनों स्थानों (पृथ्वी-अन्तरिक्ष-द्युलोक) में विचरणशील आप हमें सुख प्रदान करें ॥६ ॥

१५७०. उपत्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः । वायोरनीके अस्थिरन् ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! हवि प्रदान करने वालों की स्तुतियाँ, बहिनों के समान आपके गुणों का बखान करती हुई वायु के सहयोग से आपको प्रज्वलित करके (यज्ञस्थल में) स्थापित करती हैं ॥७ ॥

१५७१.यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसन्दिनम् । आपश्चित्रि दधा पदम् ॥८ ॥

जिस अग्नि के (यज्ञकुण्ड के चारों ओर) तीन बार घुमाए हुए और अब खुले हुए बन्धन-रहित कुश-आसन बिछे हुए हैं, उस (अन्तरिक्ष) अग्नि में जल का भी अस्तित्व सन्निहित है ॥८ ॥

[अन्तरिक्ष में जल के साथ विद्युत्-रूप अग्नि भी विद्यमान रहती है।]

१५७२.पदं देवस्य मीढुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः । भद्रा सूर्य इवोपदृक् ॥९ ॥

प्रशंसनीय और तेजस्वितायुक्त अग्निदेव के स्थान रिपुओं से बाधारहित एवं सुरक्षित हैं, उनका दर्शन भी सूर्य दर्शन के समान कल्याणकारी है ॥९ ॥

॥इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- गोतम राहूगण १५३५-१५३७, १५६१-१५६३। विश्वामित्रगाथिन १५३८-१५४०, १५५६-१५५८। विरूप आङ्गिरस १५४१-१५४३। भर्ग प्रागाथ १५४४-१५४५, १५५२-१५५३। त्रित आप्त्य १५४६-१५४८। उशना काव्य १५४९-१५५१। सुदीति, पुरुमीढ आङ्गिरस १५५४-१५५५। सोभरि काण्व १५५९-१५६०। गोपवन आत्रेय १५६४-१५६६। भरद्वाज बार्हस्पत्य अथवा वीतहव्य आङ्गिरस १५६७-१५६९। प्रयोग भार्गव अथवा अग्नि पावक अथवा अग्नि बार्हस्पत्य अथवा सहस् पुत्र गृहपति-यविष्ठ अथवा अन्य कोई १५७०-१५७२।

देवता- अग्नि १५३५-१५७२।

छन्द- गायत्री १५३५-१५४३, १५४९-१५५१, १५५६-१५५८, १५७०-१५७२। बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) १५४४-१५४५, १५५२-१५५५। त्रिष्टुप् १५४६-१५४८। काकुभ प्रगाथ (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती) १५५९-१५६०। उष्णिक् १५६१-१५६३। अनुष्टम्मुख प्रगाथ (अनुष्टुप + गायत्री + गायत्री) १५६४-१५६६। जगती १५६७-१५६९।

॥इति पञ्चदशोऽध्यायः ॥

॥अथ षोडशोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

१५७३.अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।

समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! सर्व प्रथम सोमपान के लिए उपासक मनुष्य आपकी वैदिक स्तोत्रों द्वारा प्रार्थना करते हैं । विवेक दृष्टि से युक्त ऋभुगण एवं रुद्र (वृद्ध ब्रह्मचारी) जन आपकी ही स्तुति करते हैं ॥१ ॥

१५७४.अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।

अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥२ ॥

वे इन्द्र देवता सोम का सेवन करके अत्यधिक आनन्दित होकर यजमान के वीर्य और बल को बढ़ाते हैं; अतएव स्तोतागण आज भी इन्द्रदेव की महिमा का वर्णन करते हैं ॥२ ॥

१५७५. प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।

इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥३ ॥

हे इन्द्र और अग्निदेवो ! स्तोतागण आपकी प्रार्थना करते हैं, सामवेद-गायक आपका गुणगान करते हैं । (पोषक) अन्न प्राप्ति हेतु हम भी आपकी स्तुति करते हैं ॥३ ॥

१५७६. इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् ।

साकमेकेन कर्मणा ॥४ ॥

हे इन्द्राग्ने ! आप रिपुओं के नब्बे (सैकड़ों) नगरों को एक बार के आक्रमण से, एक ही समय में कम्पित कर देते हैं ॥४ ॥

१५७७.इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या३ अनु ॥५ ॥

हे इन्द्र और अग्ने ! होतादि ऋत्विग्गण यज्ञ के मार्ग से (सत्कर्म करते हुए) हमारे इस पवित्र यज्ञ में उपस्थित होते हैं ॥५ ॥

१५७८.इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च ।

युवोरप्तूर्यं हितम् ॥६ ॥

हे इन्द्राग्ने ! आपके पास बल और अन्न (पोषक पदार्थ) संयुक्तरूप से रहते हैं । आपका बल शुभ कर्मों की ओर प्रेरित करने वाला है ॥६ ॥

१५७९.शग्ध्यू३ षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।

भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥७ ॥

हे शक्तिमान् इन्द्रदेव ! सभी संरक्षणकारी शक्तियों से युक्त होकर, आप सामर्थ्य-सम्पन्न एवं सर्वथा सक्षम हैं । हे बलवान् इन्द्रदेव ! सम्पदायुक्त, कीर्तिवान्, सौभाग्यवान् की तरह हम आपके ही अनुगामी हैं ॥७ ॥

१५८०. पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।
न किर्हि दानं परि मर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! गौ, अश्वादि पशुधन का पोषण आप ही करते हैं । जिस प्रकार स्वर्ण मुद्राओं से पूरित पात्र प्रसन्नतादायी है, वैसे ही आप दैवी सम्पदायुक्त हैं । हे इन्द्रदेव ! आपके अनुदानों को विस्मृत करने की सामर्थ्य किसी में नहीं, अत: हमें अभीष्ट फलों से परिपूर्ण करें ॥८ ॥

१५८१.त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
उद्वावृषस्व मघवन्गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप धन-सम्पदा प्रदान करने हेतु पधारें, सदाचारी को सौभाग्ययुक्त करें एवं हमारी गौओं और अश्वादि सम्बन्धी कामनाओं की पूर्ति करें ॥९ ॥

१५८२.त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे ।
आ पुरंदरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हविदाता को, सैकड़ों हजारों गौओं के समूह देने की सामर्थ्य से युक्त हैं । आप शत्रुनगरों को विध्वंस करने में समर्थ हैं । अपनी रक्षा के निमित्त सामगान करने वाले, ज्ञानपरक वार्ता से युक्त हम आप को बुलाते हैं ॥१० ॥

१५८३. यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये ॥११ ॥

जो अग्निदेव देवशक्तियों को बुलाने वाले और आनन्द प्रदान करने वाले हैं, वे साधकों को सभी प्रकार की (भौतिक एवं आध्यात्मिक) विभूतियाँ देते हैं । हे अग्निदेव ! आपको हमारा स्तुतिगान और समर्पित किया गया सोमरस प्राप्त हो ॥११ ॥

१५८४.अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः ।
उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम् ॥१२ ॥

हे मनोहारी प्रजापालक अग्निदेव ! श्रेष्ठ दानदाता और देव पक्षधर यजमानों द्वारा, रथ में जोते गये अश्वों के उत्साहवर्द्धन हेतु, रथवाहक के समान ही आपकी स्तुति की जाती है । आप याजकों के पुत्र-पौत्रादि को (कृपया धनवानों से छीनकर) धन प्रदान करें ॥१२ ॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

१५८५. इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युरा चके ॥१ ॥

हे वरुणदेव ! आप हमारी प्रार्थना (स्तुतियों) पर ध्यान दें, हमें सुखी बनाएँ । अपनी रक्षा के लिए हम आपकी स्तुति करते हैं ॥१ ॥

१५८६.कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्। कया स्तोतृभ्य आ भर ॥२ ॥

हे अभीष्ट फलदायक इन्द्रदेव ! आपके किस साधन से रक्षा करते हुए हमें अतिहर्ष प्रदान करते हैं ? कौन सी संरक्षण-सामर्थ्य से आप स्तोताओं को अभीप्सित (पोषक) अन्न प्रदान करते हैं ? ॥२ ॥

१५८७. इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥३ ॥

यज्ञ के निमित्त, यज्ञ प्रारंभ होने पर तथा धन प्रदान करने के समय हम इन्द्रदेव का ही आवाहन करते हैं। साथ ही युद्ध में (राष्ट्र) भक्तगण भी (विजय की कामना से) आपका आवाहन करते हैं ॥३ ॥

१५८८. इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्य मरोचयत्।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे इन्द्रे स्वानास इन्दवः ॥४ ॥

इन्द्रदेव ने अपने बल की सामर्थ्य से द्युलोक और पृथ्वी को विस्तृत किया, सूर्यदेव को आलोक युक्त किया। सभी लोकों को आश्रय प्रदान किया-ऐसे इन्द्रदेव के लिए ही यह सोमरस समर्पित है ॥४ ॥

१५८९.विश्वकर्मन्हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व तन्वां३ स्वा हि ते ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥५ ॥

हे कर्मसाधक ईश्वर ! आहुति द्वारा वृद्धि को प्राप्त स्वयं आप ही विश्वरूपी कल्याण यज्ञ के निमित्त स्वयं को न्यौछावर करें। यज्ञ विरोधी दूसरे व्यक्ति मनोबल हीन होकर पराजित हों। जहाँ (यज्ञस्थल में) वे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव तथा सभी ज्ञानीजन हमारे अपने बनकर रहें ॥५ ॥

१५९०.अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि
तरति सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः ।
धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥६ ॥

सिद्ध सोम हरित वर्ण के प्रभाव से भास्कर द्वारा निज रश्मियों से अँधेरे को नष्ट करने के समान वैरियों का संहार करता है। पवित्रतायुक्त हरिताभ सोम आलोकित होता है तथा छलनी के ऊपर इसकी धारा भी प्रकाशित होती है। हे सोमदेव ! आप सात मुखरूपी तेज-रश्मियों द्वारा सभी तेजयुक्त पदार्थों से कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं ॥६ ॥

१५९१.प्राचीमनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभिर्यतते
दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः ।
अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन् ।
वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥७ ॥

सर्वज्ञ सोमदेव जब पूर्व दिशा में प्रस्थान करते हैं, तब दिव्य और दर्शनीय आपका रथ रश्मियों के प्रभाव से और अधिक तेजस्वी दिखाई देता है। पुरुषार्थवर्द्धक स्तुतिगान इन्द्रदेव तक पहुँचाते हैं, जिनसे स्तोतागण विजय के लिए उन्हें प्रसन्न करते हैं और वे (उसके प्रभाव से) वज्र प्राप्त करते हैं। हे सोम और इन्द्रदेव ! तब आप आपसी सहयोग की स्थिति में युद्ध में पराजित नहीं होते ॥७ ॥

१५९२.त्वं ह त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि
स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे ।
परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः ।
त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥८ ॥

हे सोमदेव ! आपने व्यापारियों से धन-सम्पदा उपलब्ध की । यज्ञ के आधारभूत जल से यज्ञस्थल में भली प्रकार आप पवित्र होते हैं । आनन्दित हुए याजकगणों के स्थान (यज्ञस्थल) से गूँजने वाले सामगान दूर से ही सुनाई पड़ते हैं । तीनों स्थानों (पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक) पर देदीप्यमान हे सोमदेव ! आप याजकों को सुनिश्चित रूप से (पोषक) अन्न प्रदान करते हैं ॥८ ॥

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः ॥

१५९३.उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत । नृवत्कृणुह्यूतये ॥१ ॥

हे पूषा देवता ! आप गाय, घोड़े, अन्न तथा पुत्र अथवा सहयोग प्रदान करने वाली हमारी बुद्धि को संरक्षण के उपयुक्त बनाएँ ॥१ ॥

१५९४.शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः ।
विदाकामस्य वेनतः ॥२ ॥

हे सत्यबल सम्पन्न पराक्रमी मरुद्‌गणो ! स्तुति करने वाले (श्रम से) पसीने से भीगे हुए याजकों को आप अभीष्ट फल प्रदान करें ॥२ ॥

१५९५.उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये ।
सुमृडीका भवन्तु नः ॥३ ॥

जो अमर प्रजापति से उत्पन्न (मरुद्‌वीर) हैं, वे हमारी स्तुतियाँ सुनें और हमें सुख प्रदान करें ॥३ ॥

१५९६.प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे । शुची उप प्रशस्तये ॥४ ॥

हे पवित्र एवं तेजस्वी अन्तरिक्ष-भूमण्डलो ! स्तुति के लिए आपके निकट आकर, आप दोनों के लिए पर्याप्त मात्रा में स्तुतियों का उच्चारण करते हैं ॥४ ॥

१५९७.पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः । ऊह्याथे सनादृतम् ॥५ ॥

हे दोनों देवियो ! अपनी अतुलित शक्ति से आप द्युलोक और पृथ्वीलोक, इन दोनों को पवित्र करती हुई प्रदीप्त होती हैं और सदैव यज्ञ का निर्वाह करने वाली हैं ॥५ ॥

१५९८.मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् । परि यज्ञं निषेदथुः ॥६ ॥

हे व्यापक आकाश और भूदेवियो ! आप अपने सखा यजमान को अभीष्ट फल प्रदान करती हैं । यज्ञ की पूर्णता के लिए संरक्षण देती हुई यज्ञ को अवलम्बन प्रदान करती हैं ॥६ ॥

१५९९.अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम्।

वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! कबूतर द्वारा कबूतरी को स्नेहपूर्वक प्राप्त होने की तरह याजक आपकी निकटता को प्राप्त करते हैं इसलिए हमारे द्वारा की गई प्रार्थनाओं को आप ध्यानपूर्वक सुनते हैं ॥७ ॥

१६००.स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते।

विभूतिरस्तु सूनृता ॥८ ॥

हे धनाधिपति, स्तुत्य, वीर इन्द्रदेव ! वैभव-सम्पन्न और सत्य स्वरूप वाले स्तोत्र आपके विषय में सत्य सिद्ध हों ॥८ ॥

१६०१.ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो।

समन्येषु ब्रवावहै ॥९ ॥

हे सैकड़ों कार्यों को सम्पन्न करने वाले इन्द्रदेव ! संघर्षों (जीवन-संग्राम) में हमारे संरक्षण के लिए आप प्रयत्नशील रहें। हम आपसे अन्य कार्यों के विषय में भी परस्पर विचार-विनिमय करते रहें ॥९ ॥

१६०२.गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा।

उभा कर्णा हिरण्यया ॥१० ॥

हे गौओं ! (सूर्य रश्मियाँ अथवा पृथ्वी) यज्ञस्थल पर आप आमंत्रित हैं, शब्द करें। आप ही महान् यज्ञ का फल प्रदान करने वाली हैं। आपके (पृथ्वी) दोनों ही कान (छोर) सोने के (समान चमकीले) आभूषणों से शोभायमान हैं ॥१० ॥

[इसका विशेष तात्पर्यार्थ मन्त्र संख्या ११७ में देखें]

१६०३.अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु।

अवटस्य विसर्जने ॥११ ॥

सम्मानित अध्वर्यु यज्ञ के समीप पधारकर, शेष मधुर सोमरस को महावीर (महान् पराक्रमी इन्द्र) के विसर्जन के अवसर पर कलश में स्थापित करते हैं ॥११ ॥

१६०४.सिञ्चन्ति नमसावटमुच्चाचक्रं परिज्मानम्।

नीचीनबारमक्षितम् ॥१२ ॥

जिसका चक्र ऊपर (अंतरिक्ष में) स्थित है। चारों ओर से नीचे झुकता हुआ जिसका निचला द्वार क्षीण नहीं है, उस महान् को नमन करते हुए यज्ञकर्त्ता हवन करते हैं ॥१२ ॥

[आकाशरूप प्रकृति चक्र, चारों ओर से क्षितिजरूप में झुकता हुआ दिखता है; किन्तु उनका निचला द्वार जिससे पृथ्वी का पोषण होता है- क्षीण नहीं है। उक्त महान् (यज्ञीय) व्यवस्था के प्रति आस्था रखते हुए याजकगण यज्ञीय परंपरा का निर्वाह करते हैं।]

॥इति तृतीयः खण्डः ॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः ॥

१६०५.मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! महावीर, ऐसी आपकी मित्रता से युक्त हम किसी से भयभीत न हों, न थकें । उपासकों की कामना पूर्ति के माध्यम आपके सत्कार्य प्रशंसनीय हैं । हम तुर्वश और यदु को प्रसन्नता की स्थिति में देखें ॥१ ॥

१६०६.सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।
मध्वा संपृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब ॥२ ॥

हे शक्तिमान् देव ! आप अपने बायें हाथ (सरलता) से सबको आश्रय देते हैं । नष्ट-भ्रष्ट करने वाले क्रूर आपको कष्ट देने में सक्षम नहीं हैं । शहद की तरह मधुर दूध (मधुरता) से युक्त गौओं के समान सुख देने वाले हे इन्द्रदेव ! आप शीघ्रता से समीप आकर यज्ञवेदी में पधारें और सोमपान करें ॥२ ॥

१६०७.इमा उत्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चिताऽभि स्तोमैरनूषत ॥३ ॥

हे वैभवशाली इन्द्रदेव ! हमारी जो ये प्रार्थनाएँ हैं, वे आपकी कीर्ति बढ़ायें । अग्नि के समान तेजस्वी साधक, श्रेष्ठ ज्ञानी स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं ॥३ ॥

१६०८.अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥४ ॥

ये इन्द्रदेव हजारों ऋषियों के बल को पाकर प्रख्यात हुए हैं, समुद्र की तरह विस्तृत हैं, इनकी सत्यनिष्ठा और शक्ति प्रसिद्ध है, यज्ञों में और ब्रह्मनिष्ठों के शासन में इन्हीं के स्तुतिगान होते हैं ॥४ ॥

१६०९.यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ॥५ ॥

लोकाधिपति तथा श्रेष्ठ गुणों से युक्त ये इन्द्रदेव सेवक की तरह जिस यज्ञनिधि की रक्षा करते हैं, ऐसा यज्ञ अर्य (स्वामित्व) रुशम (नियन्त्रण-शक्ति) और पवि (दण्ड शक्ति) से युक्त होकर भी हे इन्द्रदेव ! आपके लिए ही आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥५ ॥

१६१०.तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे स्वानास इन्दवः ॥६ ॥

शीघ्रता से यज्ञ करने वाले ऋत्विज् मधु-खीर और घी की आहुतियों से पूजनीय इन्द्रदेव की ही अर्चना करते हैं । हमारा हविरूपी धन, सोम प्रदान करने वाला बल तथा हमारे द्वारा सिद्ध सोम ख्याति को प्राप्त करे ॥६ ॥

१६११.गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव ।
शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥७ ॥

हे सोमदेव ! आप हमारे लिए गौ और अश्वादि से युक्त धन दें । हे श्रेष्ठशक्ति सम्पन्न सोमदेव ! रस निचोड़ने के उपरान्त गो-दुग्ध के साथ मिलकर आप धवलिमा को प्राप्त करें ॥७ ॥

१६१२. स नो हरीणां पत इन्दो देवप्सरस्तमः ।
सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ॥८ ॥

हे हरिद्वर्ण वनौषधिपति सोमदेव ! तेजस्विता के पुञ्ज, मानव मङ्गलकारी आप हमारी भी तेजस्विता में प्रखरता लाएँ । जिस प्रकार एक मित्र दूसरे मित्र के प्रति परस्पर सहयोग के लिए तत्पर रहता है, ऐसा ही व्यवहार आप हमारे साथ करें ॥८ ॥

१६१३.सनेमि त्वमस्मदा अदेवं कं चिदत्रिणम् ।
साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥९ ॥

हे सोमदेव ! आप प्राचीनकाल से प्रचलित सुखों को हमारे लिए प्रकट करें । हे शत्रुनाशक सोमदेव ! आप सुखबाधक रिपुओं का संहार करें तथा दुहरे व्यवहार वाले दुष्टों को समाप्त करें एवं दिव्य गुणों से रहित स्वार्थी शत्रुओं का भी संहार करें ॥९ ॥

१६१४.अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ॥१० ॥

ऋत्विज् लोग गाय के दूध के साथ अनेक श्रेष्ठ विधियों से मिश्रण वाले इस मधुर सोमरस का पान करते हैं । मीठे दूध के साथ मिश्रित होने वाले, जल के उच्च भाग से गिरने वाले एवं सबके दर्शन में समर्थ सोम को स्वर्ण (सदृश शुद्ध) जल में शुद्ध करके पुनः जल से मिश्रित करते हैं ॥१० ॥

१६१५.विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति ।
अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीडन्नसरद्वृषा हरिः ॥११ ॥

हे ऋत्विजो ! श्रेष्ठ विचारशील और शुद्ध सोमरस की स्तुति करो, यह सोमरस महाधारा के समान वेग से अन्न (पोषण) प्रदान करता है । सर्पतुल्य वह अपनी पुरानी त्वचा (छाल) का त्याग करता है । शक्तिमान् और हरित वर्ण का सोमरस घोड़े की तरह खेल करता हुआ कलशपात्र में स्थापित होता है ॥११ ॥

१६१६.अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः ।
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥१२ ॥

प्रगतिशील राजा सोम, जल में मिश्रित होता हुआ प्रशंसित होता है । वह दिवस का मापक (निर्माण करने वाला) सोम जल में स्थापित है । हरित् वर्ण के जल मिश्रित, सुन्दर, दर्शनीय और जल में निवास करने वाला, ज्योतिस्वरूप रथ वाला सोम धनागार स्वरूप है ॥१२ ॥

॥इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- मेध्यातिथि काण्व १५७३-१५७४, १५८७-१५८८, १६०७-१६०८। विश्वामित्र गाथिन १५७५-१५७८। भर्ग प्रागाथ १५७९-१५८२। सोभरि काण्व १५८३-१५८४। शुनःशेप आजीगर्ति १५८५, १५९९, १६०१। सुकक्ष आङ्गिरस १५८६। विश्वकर्मा भौवन १५८९। अनानत पारुच्छेपि १५९०-१५९२। भरद्वाज बार्हस्पत्य १५९३। गोतम राहूगण १५९४। ऋजिश्वा भरद्वाज १५९५। वामदेव गौतम १५९६-१५९८। हर्यत प्रागाथ १६०२-१६०४। देवातिथि काण्व १६०५-१६०६। वालखिल्य (श्रुष्टिगु काण्व) १६०९-१६१०। पर्वत-नारद १६११-१६१३। अत्रि भौम १६१४-१६१६।

देवता- इन्द्र १५७३-१५७४, १५७९-१५८२, १५८६-१५८८, १५९९-१६०१, १६०५-१६१०। इन्द्राग्नी १५७५-१५७८। अग्नि १५८३-१५८४। वरुण १५८५। विश्वकर्मा १५८९। पवमान सोम १५९०-१५९२, १६११-१६१६। पूषा १५९३। मरुद्गण १५९४। विश्वेदेवा १५९५। द्यावापृथिवी १५९६-१५९८। अग्नि अथवा हवींषि १६०२-१६०४।

छन्द- बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा समोबृहती) १५७३-१५७४, १५७९-१५८४, १५८७-१५८८, १६०५-१६१०। गायत्री १५७५-१५७८, १५८५-१५८६, १५९३-१६०४। त्रिष्टुप् १५८९। अत्यष्टि १५९०-१५९२। उष्णिक् १६११-१६१३। जगती १६१४-१६१६।

॥इति षोडशोऽध्यायः ॥

॥अथ सप्तदशोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

१६१७. विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः । चनो धाः सहसो यहो ॥१ ॥

हे बल के पुत्र ! सभी अग्नियों के साथ आप हमारे यज्ञ में पधारें और स्तुतियों को सुनते हुए हमें अन्न (पोषण) प्रदान करें ॥१ ॥

१६१८. यच्चिद्धि शश्वता तना देवं देवं यजामहे । त्वे इद्धूयते हविः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! इन्द्र, वरुण आदि अन्य देवताओं के लिए प्रतिदिन विस्तृत आहुति अर्पित करने पर भी सभी हव्य आपको ही प्राप्त होते हैं ॥२ ॥

१६१९. प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः । प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥३ ॥

प्रजापालक, यज्ञ (पूर्ण करने वाला) साधक, देव आनन्दवर्द्धक, वरण करने योग्य अग्निदेव आप हमें प्रिय हों, तथा श्रेष्ठ विधि से अग्नि के रक्षक हम, ऐसे अग्निदेव के प्रिय हों ॥३ ॥

१६२०. इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥४ ॥

हे ऋत्विजो ! सभी लोकों में उत्तम इन्द्रदेव को, आप सब के कल्याण के लिए हम आमन्त्रित करते हैं, वे हमारे ऊपर विशेष कृपा करें ॥४ ॥

१६२१. स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥५ ॥

तत्काल फलदायक हे बलशाली इन्द्रदेव ! आप हमारे द्वारा प्रदत्त अन्न (हव्य) को ग्रहण करें और हमारी कामनाओं का प्रतिकार न करें, (अपितु सहायता की ही दृष्टि रखें) ॥५ ॥

१६२२. वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥६ ॥

सबके स्वामी, हमारे विरुद्ध कार्य न करने वाले, शक्तिमान् इन्द्रदेव, अपनी सामर्थ्य के अनुसार अनुदान बाँटने के लिए मनुष्यों के पास उसी प्रकार जाते हैं जैसे बैल गौओं के समूह में जाता है ॥६ ॥

१६२३. त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥७ ॥

हे आश्रयदाता अग्निदेव ! आप विलक्षण शक्ति-सम्पन्न हैं, हमारी रक्षा करें और साथ ही जिस धन को आप रथ से ले जाते हैं, उस धन-सम्पदा से हमें युक्त करें । हमारी सन्तानें श्रेष्ठ कीर्ति से युक्त हों ॥७ ॥

१६२४. पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
अग्ने हेडांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! सहयोग वृत्ति से युक्त और पराभूत न होने वाले आप अपने संरक्षण के साधनों से हमारे पुत्र-पौत्रों का पालन करें । दैवी प्रकोपों से हमें बचाएँ, मानुषी-राक्षसी वृत्तियों से भी आप हमारी रक्षा करें ॥८ ॥

१६२५. किमित्ते विष्णो परिचक्षि नाम प्र यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।
मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥९ ॥

"रश्मियों से युक्त मैं (सर्वत्र) हूँ"— इस प्रकार सर्वव्यापी भाव वाला आपका स्वरूप निःसन्देह प्रख्यात है । ऐसे स्वरूप को हम से छिपाए न रखें; क्योंकि संग्राम में तो अन्य रूप धारण करते हुए (विराट्रूप) भी आप हमारे संरक्षक रहते हैं ॥९ ॥

१६२६. प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट हव्यमर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्क्षयन्त मस्य रजसः पराके ॥१० ॥

हे रश्मिवन्त विष्णो ! आपके पूज्य नाम वाले स्वरूप की, श्रेष्ठ-सत्कर्म परायण हम प्रशंसा करते हैं । अत्यधिक बलशाली रजोलोक (दिव्यलोक) , से दूर रहने वाले हम आप के छोटे भाई के रूप में आपकी स्तुति (प्रशंसा) करते हैं ॥१० ॥

१६२७. वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥११ ॥

हे विष्णो ! आप के समक्ष हम वषट्कारपूर्वक आहुति अर्पित करते हैं । हे आलोक से व्याप्त देव ! आप हमारी आहुति को ग्रहण करें । श्रेष्ठ स्तुतियों से युक्त हमारी वाणियाँ आपकी गरिमा को बढ़ाएँ । आप सभी कल्याणकारी शक्तियोंसहित सदा हमारे संरक्षक सिद्ध हों ॥११ ॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

१६२८. वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥१ ॥

हे वायो ! निर्दोष हम, आपके लिए यज्ञ में सर्वप्रथम सोमरस भेंट करते हैं । हे देव ! आदर के योग्य आप नियुत (नामक) घोड़े से सोमपान के निमित्त पधारें ॥१ ॥

१६२९. इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः ।
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥२ ॥

हे वायु और इन्द्रदेव ! आप दोनों सोमपान की पात्रता से युक्त हैं, इसीलिए नीचे की ओर जलधारा के समान ही आप दोनों तक सोमरस का प्रवाह पहुँचता है ॥२ ॥

१६३०. वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥३ ॥

हे वायु और इन्द्रदेव ! आप दोनों बल के स्वामी और सामर्थ्यवान् हों । नियुत नामक घोड़े से युक्त आप दोनों ही हमारी रक्षा के लिए सोमरस पान हेतु एक साथ पधारें ॥३ ॥

१६३१.अथ क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहसे ।
यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥४ ॥

रात्रि समाप्ति पर उषाकाल में जलमिश्रित परिष्कृत हुए हे सोमदेव ! आप पौष्टिक पदार्थों को देते हैं । साधकों की अँगुलियाँ हरित वर्ण के सोम को कलश पात्रों की ओर प्रेरित करती हैं ॥४ ॥

१६३२. तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥५ ॥

परिष्कृत सोमरस आनन्ददायक है, इन्द्रदेव के पीने योग्य है । जिसे साधक पहले से पान करते रहे हैं और आज भी पीते हैं । (घासों में स्थित) ऐसे प्रेरणादायी सोम को गौएँ प्रसन्नतापूर्वक खा जाती हैं ॥५ ॥

१६३३. तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।
उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥६ ॥

पवित्र सोमरस की प्रचलित स्तवनों से याजक लोग स्तुति करते हैं, यज्ञ कर्म के लिए प्रेरित अँगुलियाँ देवताओं के निमित्त सोम को हविरूप में प्रदान करती हैं ॥६ ॥

१६३४. अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।
सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥७ ॥

हे यज्ञेश अग्निदेव ! आपके लिए उसी प्रकार हवि प्रदान करके वन्दना करते हैं जिस प्रकार श्रेष्ठ घोड़े से अश्वारोही प्रेम करते हैं ॥७ ॥

१६३५. स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः ।
मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥८ ॥

इन अग्निदेव की हम उत्तम विधि से उपासना करते हैं । बल से उत्पन्न, शीघ्र गतिशील अग्निदेव हमें अभीष्ट सुख प्रदान करें ॥८ ॥

१६३६. स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः । पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! सब मनुष्यों के हितचिंतक आप दूर से और निकट से, अनिष्ट चिन्तकों से सदैव हमारी रक्षा करें ॥९ ॥

१६३७. त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आप संग्राम में प्रतिस्पर्धा को तत्पर शत्रुओं को पराजित करते हैं । हे शीघ्र रिपुदल संहारक इन्द्रदेव ! आप विपत्तिनाशक, सुखोत्पादक और शत्रुनाशक तथा विघ्नकारियों को दूर करने वाले हैं ॥१० ॥

१६३८. अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार माता-पिता अपने शिशु की रक्षा में तत्पर रहते हैं, आकाश और पृथ्वी उसी प्रकार शत्रुसंहारक आपके बल के अनुगामी होते हैं । हे इन्द्रदेव ! जब आप वृत्रासुर का वध करते हैं; तब आप के क्रोध के समक्ष युद्ध के लिए तत्पर सभी शत्रुपक्ष वाले कमजोर पड़ जाते हैं ॥११ ॥

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः ॥

१६३९. यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ॥१ ॥

अन्तरिक्ष से मेघों को बरसने के लिए प्रेरित कर, भूमि की पोषणशक्ति को बढ़ाने वाले इन्द्रदेव की सामर्थ्य को यज्ञ (यज्ञप्रक्रिया) ने बढ़ाया । (विशेषरूप से बढ़ाया) ॥१ ॥

१६४०. व्य३न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद्वलम् ॥२ ॥

सोमपान से प्रसन्न हुए इन्द्रदेव दीप्तियुक्त अंतरिक्ष को विशेष दीप्ति सम्पन्न करते हैं तथा बादलों को छिन्न-भिन्न करते हैं ॥२ ॥

१६४१. उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः ।
अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥३ ॥

इन्द्र (सूर्य) देव ने गुफा में स्थित (अप्रकट) किरणों (गौओं) को प्रकट कर उन्हें देहधारियों (आंगिराओं) तक पहुँचाया । उन्हें रोककर रखने वाला असुर (वल) मुख नीचे करके पलायन कर गया ॥३ ॥

[यहाँ गौओं के संदर्भ में पौराणिक उपाख्यान सिद्ध होता है, तथा किरणों के संदर्भ में वैज्ञानिक प्रक्रिया का प्रतिपादन हैं]

१६४२. त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् । आ च्यावयस्यूतये ॥४ ॥

अनेक शत्रुओं का एक साथ संहार करने वाले तथा सभी स्तवनों में प्रशंसित ऐसे इन्द्रदेव का अपनी रक्षा के निमित्त हम आवाहन करते हैं ॥४ ॥

१६४३. युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम् । नरमवार्यक्रतुम् ॥५ ॥

युद्ध करते हुए भी कभी पराजित न होने वाले, शत्रुओं पर भारी पड़ने वाले और सोमरस का पान करने वाले जिसका निश्चय अपरिवर्तनीय है, ऐसे न इन्द्रदे: का सहयं.ग पाने के लिए हम आवाहन करते हैं ॥५ ॥

१६४४. शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम । अवा नः पार्ये धने ॥६ ॥

हे दर्शन करने योग्य सर्वज्ञ इन्द्रदेव ! आप हमारे लिए पर्याप्त धन लाकर दें । शत्रुओं के पास से भी जीत कर लाये धन को हमारे संरक्षण के निमित्त प्रयोग करें ॥६ ॥

१६४५. तव त्यदिन्द्रियं बृहत्तव दक्षमुत क्रतुम् ।
वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी तीक्ष्ण बुद्धि, आपके शौर्य, सामर्थ्य, कुशलता, पराक्रम और श्रेष्ठ वज्र को तेजस्वी बनाती है ॥७ ॥

१६४६. तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः ।
त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! अन्तरिक्ष से आपकी शक्ति-सामर्थ्य का और पृथ्वी से आपके यशस्वी स्वरूप का विस्तार होता है । जलप्रवाह और पर्वत आपके पास आपको अपना अधिपति मानकर पहुँचते हैं ॥८ ॥

१६४७. त्वां विष्णुर्बृहन्क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।
त्वां शर्द्धो मदत्यनु मारुतम् ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! महान् आश्रयदाता मानकर के विष्णु, मित्र और वरुणादि देवता आपका स्तुतिगान करते हैं । मरुद्‌गणों के बल से आप हर्षित होते हैं ॥९ ॥

॥इति तृतीयः खण्डः ॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः ॥

१६४८. नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! बल के निमित्त साधक आपको नमन कर के स्तुतिगान करते हैं । अपने पराक्रम से आप शत्रुओं का संहार करें ॥१ ॥

१६४९. कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम् । उरुकृदुरु णस्कृधि ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! गौओं की इच्छा करने वाले आप हमारे लिए प्रचुर धन प्रदान करें । महानता के पोषक आप से हम महानता की कामना करते हैं ॥२ ॥

१६५०. मा नो अग्ने महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा । संवर्गं सं रयिं जय ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! युद्ध में आप हम से विपरीत न हों, जिस प्रकार भारवाहक भार को उठा लाता है , उसी प्रकार शत्रु से जीती हुई, संग्रहित सम्पदा को लाकर हमें प्रदान करें ॥३ ॥

१६५१. समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।
समुद्रायेव सिन्धवः ॥४ ॥

सभी प्रजाजन इन्द्रदेव के क्रोध के समक्ष वैसे ही झुकते हैं, जैसे समुद्र की ओर नदियाँ स्वयं झुकती चली जाती हैं ॥४ ॥

१६५२. वि चिद्‌वृत्रस्य दोधतः शिरो बिभेद वृष्णिना ।
वज्रेण शतपर्वणा ॥५ ॥

संसार को भयभीत करने वाले (कम्पित करने वाले) वृत्रासुर के शीश को शक्तिसम्पन्न इन्द्रदेव ने अपने तीक्ष्ण प्रहार वाले वज्र से अलग कर दिया (काट डाला) ॥५ ॥

१६५३. ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥६ ॥

जिस शक्ति-सामर्थ्य से इन्द्रदेव दोनों भूलोक और द्युलोक को बाहरी आवरण (चर्म इव) की तरह धारण करके अपने अधीन करते हैं, ऐसी शक्ति अत्यंत प्रकाशित है ॥६ ॥

१६५४. सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! आपके मनरूपी अश्व उत्तम ज्ञान-युक्त और ऐश्वर्यवान् हैं, तथा वे रमणीय और सौन्दर्यशाली भी हैं ॥७॥

१६५५. सरूप वृषन्ना गहीमौ भद्रौ धुर्यावभि । ताविमा उप सर्पतः ॥८॥

सुन्दर समर्थ हे इन्द्रदेव ! श्रेष्ठ कल्याणकारी रथ में जोतने वाले दोनों अश्वों के साथ हमारे यज्ञ में पधारें। आपके ये दोनों अश्व आपकी श्रेष्ठ सेवा करते हैं ॥८॥

१६५६. नीव शीर्षाणि मृढ्वं मध्य आपस्य तिष्ठति ।
शृङ्गेभिर्दशभिर्दिशन् ॥९॥

हे मनुष्यो ! दोनों हाथों से (दसों अँगुलियों से) अभीष्ट फल को देते हुए इन्द्रदेव हमारे यज्ञ में उपस्थित हैं। शीश झुकाकर हम उनके दर्शन करें ॥९॥

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- शुनःशेप आजीगर्ति १६१७-१६१९, १६३४-१६३६, १६५४-१६५६। मधुच्छन्दा वैश्वामित्र १६२०-१६२२। शंयु बार्हस्पत्य (तृणपाणि) १६२३-१६२४। वसिष्ठ मैत्रावरुणि १६२५-१६२७। वामदेव गोतम १६२८-१६३०। रेभसूनू काश्यप १६३१-१६३३। नृमेध आङ्गिरस १६३७-१६३८। गोषूक्ति-अश्वसूक्ति काण्वायन १६३९-१६४१। श्रुतकक्षअथवासुकक्षआङ्गिरस १६४२-१६४४। विरूप आङ्गिरस १६४५-१६५०। वत्स काण्व १६५१-१६५३।

देवता- अग्नि १६१७-१६१९, १६२३-१६२४, १६३४-१६३६, १६४८-१६५०। इन्द्र १६२०-१६२२, १६३७-१६४७, १६५१-१६५६। विष्णु १६२५-१६२७। वायु १६२८। इन्द्रवायू १६२९-१६३०। पवमान सोम १६३१-१६३३।

छन्द- गायत्री १६१७-१६२२, १६३४-१६३६, १६३९-१६४४, १६४९-१६५६। बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा समोबृहती) १६२३-१६२४, १६३७-१६३८। त्रिष्टुप् १६२५-१६२७। अनुष्टुप् १६२८-१६३३। उष्णिक् १६४५-१६४७

॥इति सप्तदशोऽध्यायः॥

॥अथ अष्टादशोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

१६५७. पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय । सोमं वीराय शूराय ॥१ ॥

सोमरस को तैयार करने वाले हे याजको ! प्रसन्नचित्त और पराक्रमी वीर इन्द्रदेव के पास प्रशंसनीय सोमरस को शीघ्र भेंट करो । (सोम पीकर इन्द्र अधिक पराक्रम करने वाले हो जाते हैं) ॥१ ॥

१६५८. एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् ।
इन्द्रं गीर्भिर्गिर्वणसम् ॥२ ॥

संकेत को समझने वाले, आनन्दवर्द्धक इन्द्रदेव के दोनों घोड़े, सखा के समान, वाणियों द्वारा स्तुति योग्य इन्द्रदेव को यज्ञ में लेकर आएँ ॥२ ॥

१६५९. पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत् । नि यमते शतमूतिः ॥३ ॥

सैकड़ों साधनों (हर प्रकार) से हमारी रक्षा करने वाले, वृत्रासुर का हनन करने वाले, सोमपायी हे इन्द्रदेव ! हमारे यज्ञ में आप अवश्य पधारें और शत्रुओं को हम से दूर करें ॥३ ॥

१६६०. आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! समुद्र को प्राप्त होने वाली नदियों की तरह आपको सोमरस प्राप्त हो । अन्य कोई देव आप से उत्तम नहीं है ॥४ ॥

१६६१. विव्यक्थ महिना वृषन्भक्षं सोमस्य जागृवे । य इन्द्र जठरेषु ते ॥५ ॥

हे शक्तिमान्, जागरणशील इन्द्रदेव ! आप सोमपान के लिए अपनी ख्याति से सभी स्थानों में व्यापक होते हैं । आपके द्वारा उदरस्थ सोम भी प्रशंसनीय है ॥५ ॥

१६६२. अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् ।
अरं धामभ्य इन्दवः ॥६ ॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! हमारे द्वारा प्रदत्त सोम आपके लिए पर्याप्त हो, आपके साथ-साथ (आपकी प्रेरणा से) सोमरस सभी देवताओं के लिए पर्याप्त हो ॥६ ॥

१६६३. जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय ।
स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥७ ॥

स्तुतियों से प्रदीप्त हे अग्निदेव ! प्रत्येक मनुष्य के कल्याण के लिए आप यज्ञ मंडप में प्रकट हों । याजक गण रौद्र अग्निदेव के निमित्त सुन्दर स्तवनों को उच्चारित करें ॥७ ॥

१६६४.स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः ।
धिये वाजाय हिन्वतु ॥८ ॥

अपरिमित धूम्र ध्वजा से युक्त, (प्रज्वलित होने वाले) आनन्दप्रद, महान् अग्निदेव, हमें ज्ञान और वैभव की ओर प्रेरित करें ॥८ ॥

१६६५. स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः ।
उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ॥९ ॥

विश्वपालक, अत्यंत तेजस्वी और ध्वजा सदृश गुणों से युक्त, दूरदर्शी अग्निदेव ! आप वैभवशाली राजा के समान हमारी स्तवन रूपी वाणियों को ग्रहण करें ॥९ ॥

१६६६. तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद्गवे न शाकिने ॥१० ॥

हे स्तोताओ ! सोम रस संग्रहित करने के बाद, सर्वसहायक और शक्तिमान् इन्द्रदेव के लिए संगठित होकर स्तोत्रों का गान करें । जैसे गौओं को घास सुखप्रद है, वैसे ही इन्द्रदेव को स्तोत्र सुखदायक हैं ॥१० ॥

१६६७. न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत्सीमुपश्रवद्गिरः ॥११ ॥

सभी के आश्रयदाता वे इन्द्रदेव, हमारी स्तुतियों को सुनने के बाद, हमें धन-धान्य के रूप में अपार वैभव देने से नहीं रुकते ॥११ ॥

१६६८. कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् ।
शचीभिरप नो वरत् ॥१२ ॥

शत्रुसंहारक इन्द्रदेव दुराचारियों द्वारा चुराई गई गौओं को छुड़ाकर अपने स्वामित्व में लेते हैं और हमें प्रदान करते हैं ॥१२ ॥

॥इति प्रथमःखण्डः ॥

* * *

॥ द्वितीयः खण्डः ॥

१६६९. इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पांसुले ॥१ ॥

(वामनरूप में अवतरित हुए) विष्णुदेव ने अपनी शक्ति-सामर्थ्य के विस्तार के लिए अपने पैरों को तीन प्रकार से स्थापित किया, तब उनकी चरणधूलि में समस्त विश्व अन्तर्निहित हुआ ॥१ ॥

१६७०. त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् ॥२ ॥

विश्वरक्षक, अविनाशी विष्णुदेव, तीनों लोकों में यज्ञादि कर्मों को पोषित करते हुए, तीन चरणों से जगत् में व्याप्त हैं । अर्थात् तीन शक्ति धाराओं द्वारा (सृजन, पोषण, परिवर्तन) विश्व का संचालन करते हैं ॥२ ॥

१६७१. विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥३ ॥

हे याजको ! सभी कार्यों को प्रेरणा एवं गति देने वाले, विष्णुदेव के कार्यों को देखो । वे इन्द्रदेव के उपयुक्त सहायक मित्र हैं ॥३ ॥

[विष्णुदेव को उपेन्द्र (छोटे इन्द्र) कहा जाता है ।]

१६७२. तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥४ ॥

जिस प्रकार सामान्य नेत्रों से, आकाश में स्थित सूर्यदेव को सहजता से देखा जाता है, उसी प्रकार विद्वज्जन अपने ज्ञान चक्षुओं से विष्णुदेव के (देवत्व के परमपद) श्रेष्ठ स्थान को देखते (प्राप्त करते) हैं ॥४ ॥

१६७३. तद्विप्रासो विपन्युवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥५ ॥

आलस्य रहित विद्वान् स्तोता विष्णु के परम पद को उत्तम कर्मों द्वारा (ज्ञान चक्षुओं से) प्राप्त करते हैं ॥५ ॥

१६७४. अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।
पृथिव्या अधि सानवि ॥६ ॥

उस विष्णुरूप ईश्वर ने, पृथ्वी के जिस सर्वोच्च स्थान से अपने पराक्रम को स्थापित किया है (अर्थात् सृष्टि का संचालन करते हैं) ऐसे श्रेष्ठ लोक से सभी देवता हमारी रक्षा करें ॥६ ॥

१६७५. मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन् ।
आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! दूर होते हुए भी आप हमारे यज्ञ में पधारें और हमारी भावभरी स्तुतियों को सुनें । ज्ञानीजन की विद्वता आपको हमसे दूर न करे ॥७ ॥

१६७६. इमे हि ते ब्रह्मकृतः सु ते सचा मधौ न मक्ष आसते ।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी तृप्ति के लिए सोमरस तैयार करके, सभी ऋत्विज् मधु पर बैठी हुई मक्खियों की भाँति एकत्रित होकर बैठते हैं । ऐश्वर्य की कामना से अपनी इच्छाओं को आप पर उसीप्रकार स्थापित करते हैं, जिस प्रकार शूरवीर धन की कामना से (दिग्विजय यात्रा हेतु) रथ पर कदम रखता है ॥८ ॥

१६७७. अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥९ ॥

स्तुति करने योग्य हे ऋत्विजो ! इन्द्रदेव के लिए सनातन कण्ठस्थ स्तोत्रों का पाठ करो । पूर्व यज्ञों के बृहती-छन्द में सामगान करो । इससे स्तोताओं की मेधा बुद्धि उत्पन्न होती है, अर्थात् बुद्धि परिष्कृत होती है ॥९ ॥

१६७८. समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम् ।
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥१० ॥

शोधित, गो- दुग्ध मिश्रित सोमरस इन्द्रदेव के लिए समर्पित है । यह (सोम) उनके आनन्द को बढ़ाने वाला हो । वे (सोमरस से तृप्त इन्द्र) हमें सूर्य की तेजस्विता, भूमि एवं अपार वैभव प्रदान करें ॥१० ॥

१६७९. इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥११ ॥

हे सोम ! वृत्र अर्थात् दुराचारियों का हनन करने वाले, दक्षिणा देने (लोकहित के लिए अपना अंश लगाने) वाले, पराक्रमी इन्द्रदेव की तृप्ति (पीने) के लिए तथा यज्ञस्थल में बैठे याजक के अभीष्ट लाभ के लिए आपको सुपात्र में स्थिर किया जाता है ॥११ ॥

१६८०. तं सखायः पुरूरुचं वयं यूयं च सूरयः ।
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ॥१२ ॥

हे मित्रो ! तुम और हम उस पराक्रमी, पौष्टिक, श्रेष्ठ, सुगन्धि से युक्त, शक्ति-सामर्थ्य को बढ़ाने वाले सोमरस को प्राप्त करें ॥१२ ॥

१६८१. परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान् विश्वाँ इत् परि मदेन सह गच्छति ॥१३ ॥

देवताओं के उल्लास को बढ़ाने वाला, सुन्दर, दुःखनाशक और सबका पोषण करने वाला सोमरस शोधक द्वारा पवित्रता प्राप्त करते हुए स्थिर होता है ॥ १३ ॥

१६८२. कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा हि ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥१४ ॥

सबके आश्रय दाता हे इन्द्रदेव ! आपका तिरस्कार कौन कर सकता है ? हे वैभवशाली ! आपके प्रति श्रद्धा रखने वाले बलवान् साधक विपत्ति के दिन आप से ही बल की सहायता प्राप्त करते हैं ॥१४ ॥

१६८३. मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥१५ ॥

हे वैभवशाली इन्द्रदेव ! हविष्यान्न समर्पित करने वाले याजकों को दुष्ट-दुराचारियों से संघर्ष की शक्ति प्रदान करें । हे अश्वपति ! आपकी प्रेरणा से ज्ञानीजन पापों से छुटकारा पाएँ ॥१५ ॥

॥ इति द्वितीयःखण्डः ॥

॥तृतीयः खण्डः ॥

१६८४. एदु मधोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः ।
एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥१ ॥

हे याजको ! मधुर सुखदायक सोमरस को इन्द्रदेव की तृप्ति हेतु प्रस्तुत करें । सामर्थ्यवान् शक्तिवर्द्धक इन्द्रदेव ही स्तुतियोग्य हैं ॥१ ॥

१६८५. इन्द्र स्थातर्हरीणां न किष्टे पूर्व्यस्तुतिम् ।
उदानंश शवसा न भन्दना ॥२ ॥

हे अश्वपति इन्द्रदेव ! आपकी ऋषि प्रणीत स्तुतियों को अपनी सामर्थ्य एवं तेजस्विता से अन्य कोई भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं । अर्थात् आपके समान बलवान् एवं तेजस्वी कोई दूसरा नहीं ॥२ ॥

१६८६. तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः ।
अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥३॥

ऐश्वर्य की कामना से हम आपके उस वैभवशाली इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं, जो प्रमादरहित याजकों के यज्ञों (सत्कर्मों) से वृद्धि को (पोषण को) प्राप्त करते हैं ॥३॥

१६८७. तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे । देवत्राहव्यमूहिषे ॥४॥

हे स्तुति करने वालो ! देवलोक के प्रतिनिधि, ऐसे यज्ञ की पूजा करो, जिनसे ऋत्विग्गण दिव्य विभूतियों को ग्रहण करते हैं । हे अग्निदेव ! आप हव्यादि पदार्थों को देवताओं तक ले जाने के माध्यम हैं ॥४॥

१६८८. विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीडिष्व यन्तुरम् ।
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् ॥५॥

हे विद्वान ऋषियो ! प्रचुर वैभव प्रदान करने वाले, अति तेजस्वी, इस श्रेष्ठ ज्ञानयज्ञ के नियामक, चिरन्तन अग्निदेव की, यज्ञ की सफलता हेतु वन्दना करें ॥५॥

१६८९. आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ॥६॥

हे सोमरस ! पत्थरों की सहायता से तैयार किये गये, शोधक द्वारा पवित्रता को प्राप्त,हरित आभा से युक्त आप काष्ठपात्र में उसी प्रकार स्थिर हो रहे हैं जैसे कोई शूरवीर बहादुरी के साथ नगर में प्रवेश करता है ॥६॥

१६९०. स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीढ्वांत्सप्तिर्न वाजयुः ।
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥७॥

बलवर्द्धक, परिपुष्ट अश्व के सदृश प्रिय ऋत्विजों द्वारा ऊन के छन्ने से छाना जाता हुआ, विद्वानों की स्तुतियों से प्रशंसित होता हुआ, सोमरस पवित्रता को प्राप्त हो रहा है ॥७॥

१६९१. वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥८॥

हम इस वज्रशक्ति से युक्त इन्द्रदेव को पहले भी सोमरस का पान कराते रहे हैं । इस यज्ञ में इन्द्रदेव के लिए आज भी सोमरस अर्पित करें । स्तोत्रगान श्रवण हेतु निश्चित ही वे यहाँ पधारें । (उपस्थित हों) ॥८॥

१६९२. वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।
सेमं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥९॥

भेड़िया के समान क्रूर शत्रु भी इन्द्रदेव के सामने अनुकूल हो जाते हैं । ऐसे वे (इन्द्र) हमारी प्रार्थना को स्वीकार करते हुए, हमें उत्कृष्ट चिन्तनयुक्त विवेक बुद्धि प्रदान करें ॥९॥

१६९३. इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः । तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥१०॥

हे इन्द्र और अग्निदेव ! दिव्यगुणों से आलोकित आप संघर्षों में सफल होने पर शोभायमान् होते हैं । यह आपके शौर्य की पहचान है ॥१०॥

१६९४. इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या३ अनु ॥११॥

सत्यमार्ग का अवलम्बन लेकर साधना से सिद्धि के सिद्धान्त को फलीभूत करते हैं ॥११॥

१६९५. इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च ।
युवोरप्तूर्यं हितम् ॥१२॥

हे इन्द्रदेव और अग्निदेव ! आप दोनों की शक्तियाँ और सद्विद्याएँ परस्पर सहयोगी भाव से कार्य करती हैं । आप अविलम्ब कार्य सम्पन्न करने में समर्थ हैं ॥१२॥

१६९६. क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥१३॥

यज्ञ में सबके बीच बैठकर सोमरस पीने वाले इन्द्रदेव को एवं उनकी आयु को भला कौन जान सकता है ? सिर पर रक्षा कवच धारण करके सोमपान से आनन्दित हे इन्द्रदेव ! शत्रु के नगरों को अपने पराक्रम से ध्वस्त करते हैं ॥१३॥

१६९७. दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा च रथं दधे ।
न किष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महाँश्चरस्योजसा ॥१४॥

अपने ओज से विचरण करने वाले, हमारे लिए सम्माननीय हे इन्द्रदेव ! इस सोमयज्ञ में पधारें । शत्रु की खोज में घूमने वाले मतवाले हाथी के समान, आपको रथ लेकर यज्ञ में जाने से कोई रोक नहीं सकता ॥१४॥

१६९८. य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥१५॥

जो शस्त्रों से सुसज्जित युद्ध भूमि में स्थिर रहने वाले हैं, ऐसे अपराजेय, पराक्रमी, वैभवशाली इन्द्रदेव हमारी स्तुतियों को सुनकर दूसरी जगह न जाकर इस यज्ञ में ही उपस्थित होंगे ॥१५॥

॥इति तृतीयः खण्डः ॥

॥चतुर्थ खण्डः ॥

१६९९. पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः । अभि विश्वानि काव्या ॥१॥

शुभ ज्योतिर्मय पवित्रता को प्राप्त होने वाला सोमरस, वेदमन्त्रों की स्तुतियों के साथ याजकों द्वारा शोधित किया जाता है ॥१॥

१७००. पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत । पृथिव्या अधि सानवि ॥२॥

संस्कारित होने वाला दिव्य सोम अन्तरिक्ष से धरती के ऊँचे भाग पर्वत शिखरों में प्रवाहित होता है ॥२॥

१७०१. पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः ।
घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥३॥

पवित्रता को प्राप्त होने वाला, उज्ज्वल सोमरस, विकारों का शमन करते हुए तीव्र गति से सुपात्र में स्थिर हो रहा है ॥३॥

१७०२. तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता । इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥४॥

दुष्ट-दुराचारियों, शत्रुओं का हनन कर, हमेशा युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले, अपराजेय, साधकों को अपार वैभव प्रदान करने वाले, इन्द्र और अग्निदेव की हम वन्दना करते हैं ॥४॥

१७०३. प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।

इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥५ ॥

हे इन्द्र और अग्निदेव ! वैदिक मन्त्रों का पाठ करने वाले एवं सामगान करने वाले याजकगण आपकी वन्दना करते हैं। हम भी धन- धान्य की कामना से आपकी स्तुति करते हैं ॥५ ॥

१७०४.इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥६ ॥

हे इन्द्राग्नि ! दस्युओं द्वारा संरक्षित नब्बे नगरियों को एक आक्रमण से सभी को एक साथ कम्पायमान कर देने वाले आपका हम आवाहन करते हैं ॥६ ॥

१७०५. उप त्वा रण्वसंदृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत । अग्ने ससृज्महे गिरः ॥७ ॥

बल अर्थात् घर्षण से प्रकट होने वाले, सौन्दर्यवान् हे अग्निदेव ! हम याजकगण धन-धान्य एवं आपका सान्निध्य प्राप्त करने की कामना से वन्दना करते हैं ॥७ ॥

१७०६. उप च्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् । अग्ने हिरण्यसंदृशः ॥८ ॥

स्वर्ण सदृश जाज्वल्यमान्, हे अग्निदेव ! छाया में मिलने वाली शीतलता की तरह हम आपके संरक्षण में रहकर सुख प्राप्त करें ॥८ ॥

१७०७. य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः । अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥९ ॥

बैल के सींग की भाँति तेजस्वी ज्वालाओं वाले, वीर धनुर्धर के समान पराक्रमी हे अग्निदेव ! आपने दुष्टों के आश्रय स्थलों को नष्ट किया है ॥९ ॥

१७०८. ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! यज्ञीय सत्कर्मों से युक्त, मानवों के लिए कल्याणकारी, अपनी तेजस्विता से यज्ञों की रक्षा करने वाले, जाज्वल्यमान आपकी हम उपासना करते हैं ॥१० ॥

१७०९. य इदं प्रतिपप्रथे यज्ञस्य स्वरुत्तिरन् । ऋतूनुत्सृजते वशी ॥११ ॥

जो अग्निदेव संसार के कल्याण के लिए यज्ञ में उपस्थित अवरोधों को हटाते हैं, जगत् को अपने वश में रखने वाले तथा समस्त ऋतुओं के बनाने वाले हैं, वही इसको (जगत् को) विस्तार देने वाले हैं ॥११ ॥

१७१०. अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।

सम्राडेको विराजति ॥१२ ॥

भूत और भविष्य में जन्म लेने वाले जिसकी कामना करते हैं, ऐसे एकमात्र- राजाधिराज अग्निदेव अपने प्रिय यज्ञस्थलों में विराजमान हैं ॥१२ ॥

॥इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- मेधातिथि काण्व और प्रियमेध आङ्गिरस १६५७-१६५९। श्रुतकक्ष अथवा सुकक्ष आङ्गिरस १६६०-१६६२। शुन:शेप आजीगर्ति १६६३-१६६५। शंयु बार्हस्पत्य १६६६-१६६८। मेधातिथि काण्व १६६९-१६७४। वसिष्ठ मैत्रावरुणि १६७५-१६७६, १६८२-१६८३। वालखिल्य (आयुकाण्व) १६७७-१६७८। अम्बरीष वार्षागिर और ऋजिश्वा भारद्वाज १६७९-१६८१। विश्वमना वैयश्व १६८४-१६८६। सोभरि काण्व १६८७-१६८८। सप्तर्षिगण १६८९-१६९०। कलि प्रागाथ १६९१-१६९२। विश्वामित्र प्रागाथ १६९३-१६९५, १७०२-१७०४। मेध्यातिथि काण्व १६९६-१६९८। निध्रुवि काश्यप १६९९-१७०१। भरद्वाज बार्हस्पत्य १७०५-१७१०।

देवता- इन्द्र १६५७-१६६२, १६६६-१६६८, १६७५-१६७८, १६८२-१६८६, १६९१-१६९२, १६९६-१६९८। अग्नि १६६३-१६६५, १६८७-१६८८, १७०५-१७१०। विष्णु १६६९-१६७३। विष्णु अथवा देवगण १६७४। पवमान सोम १६७९-१६८१, १६८९-१६९०, १६९९-१७०१। इन्द्राग्नी १६९३-१६९५, १७०२-१७०४।

छन्द- गायत्री १६५७-१६७४, १६९३-१६९५, १६९९-१७१०। बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) १६७५-१६७८, १६८२-१६८३, १६८९-१६९२। अनुष्टुप् १६७९-१६८१। उष्णिक् १६८४-१६८६। काकुभ प्रगाथ (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती) १६८७-१६८८। बृहती १६९६-१६९८।

॥इति अष्टादशोऽध्यायः॥

॥अथ एकोनविंशोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

१७११. अग्निः प्रत्नेन जन्मना शुम्भानस्तन्वां३ स्वाम् । कविर्विप्रेण वावृधे ॥१॥

अपने तेजस्वी रूप में सुशोभित होने वाले मेधावी अग्निदेव को पुरातन स्तोत्रों से ऋत्विजों द्वारा प्रज्वलित किया जाता है ॥१॥

१७१२. ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम् । अस्मिन्यज्ञे स्वध्वरे ॥२॥

ऊर्जा को नीचे न गिरने देने वाले, पवित्र बनाने वाले दीप्तिमान् अग्निदेव का इस उत्तम यज्ञ में हम आवाहन करते हैं ॥२॥

१७१३. स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा । देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥३॥

हे पूज्य मित्र तुल्य अग्निदेव ! आप शुभ्र ज्वालाओं और तेज से पूर्ण होकर (प्रज्वलितरूप में) देवों के साथ इस यज्ञ में प्रतिष्ठित हों ॥३॥

१७१४. उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः । नुदस्व याः परिस्पृधः ॥४॥

हे पाषाणों से कूटे शुद्ध सोम ! आपकी उठती बल तरंगों से राक्षसों का विनाश होता है । आप हमसे संघर्ष करने वाले शत्रुओं को दूर करें ॥४॥

१७१५. अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते । स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥५॥

हे सोमदेव ! आप अपनी सामर्थ्य से शत्रु के विध्वंसक हैं । रथों के युद्ध में शत्रुओं का ध्वंस होने पर, हम निर्भय अन्तःकरण से धन प्राप्ति के लिए आपकी स्तुति करते हैं ॥५॥

१७१६. अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या । रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥६॥

इस संस्कारित सोम के कर्मों से दुष्ट राक्षसों की प्रगति नहीं हो सकती । हे सोमदेव ! आपके विरुद्ध युद्धाकांक्षी शत्रुओं का आप विनाश करें ॥६॥

१७१७. तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम् । इन्दु मिन्द्राय मत्सरम् ॥७॥

आनन्द रस बहाने वाले, बल और उत्साहवर्द्धक इस हरिताभ सोम को, नदियों (जल) के माध्यम से इन्द्रदेव के लिए प्रेरित करते हैं ॥७॥

१७१८. आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! आनन्ददायक, मोर पंखों के समान बालों वाले घोड़ों (किरणों) सहित आप यज्ञ में पधारें । शिकारी की तरह मार्ग में जाल फैलाने वाले आपको रोक न पाएँ, उन्हें रेगिस्तान (मृग- मरीचिका) की तरह छोड़कर आएँ ॥८॥

१७१९. वृत्रखादो वलं रुजः पुरां दर्मो अपामजः ।
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृढा चिदारुजः ॥९ ॥

वे इन्द्रदेव वृत्रासुर (आसुरीवृत्तियों) का हनन करने वाले, राक्षसों के बल को विदीर्ण करने वाले, उनके नगरों का ध्वंस करने वाले, जल वृष्टि करने वाले, घोड़ों से सज्जित रथ में विराजमान होकर बलशाली शत्रुओं को पराजित करने वाले हैं ॥९ ॥

१७२०. गम्भीराँ उदधीं रिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा हृदं कुल्या इवाशत ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! गंभीर समुद्र को जल धाराओं से पुष्ट करने के समान आप याज्ञिक को इष्ट फल देकर पुष्ट करते हैं । जिस प्रकार उत्तम गोपालक अपनी गौओं को उत्तम घासादि देकर पुष्ट करता है, जैसे गौएँ घास खाती हैं, नदियाँ समुद्र में मिलती हैं, उसी प्रकार सोम आपको पुष्ट करता है ॥१० ॥

१७२१. यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥११ ॥

जैसे प्यासा हिरन पानी से भरे जलाशय की ओर जाता है, उसी प्रकार हे इन्द्रदेव ! आप मित्र के समान शीघ्र हमारे पास आएँ और मेधावी पुरुषों के यज्ञ में बैठकर सोमपान करें ॥११ ॥

१७२२. मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते ।
आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतं ज्येष्ठं तद्दधिषे सहः ॥१२ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! सोमयज्ञ कर्त्ताओं को वैभव प्रदान करने के लिए सोमरस आपको आनन्दित करे । पात्र में रखे शोधित सोमरस को पीकर आप श्रेष्ठ बल से युक्त होते हैं ॥१२ ॥

१७२३. त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः । ॥१३ ॥

हे शक्तिशाली तेजस्वी इन्द्रदेव ! आप मानवों के प्रशंसक हैं । हे धनवान इन्द्रदेव ! आपके समान सुख देने वाला कोई और नहीं है, अतः हम आपकी स्तुति करते हैं ॥१३ ॥

१७२४. मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान्कदा चना दभन् ।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥१४ ॥

हे विश्व के आश्रय इन्द्रदेव ! आपके द्वारा प्रदान धन, साधन हमारे लिए विनाशकारी न बनें । रक्षा के लिए प्रेरित, आपकी दी गई शक्तियाँ विध्वंस न करें । हे मानव हितैषी इन्द्रदेव ! हम सज्जन नागरिकों को आप सब प्रकार की सम्पत्ति (लौकिक एवं दैवी) प्रदान करें ॥१४ ॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

॥द्वितीयः खण्डः ॥

१७२५. प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः । दिवो अदर्शि दुहिता ॥१ ॥

सब प्राणियों की प्रेरक, फलप्रदायक, अपनी बहिन के तुल्य- रात्रि के अन्त में प्रकाश फैलाने वाली सूर्य पुत्री उषा को सब देखते हैं ॥१ ॥

१७२६. अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी ।सखा भूदश्विनोरुषाः ॥२ ॥

चपला (बिजली) के समान, अद्‌भुत दीप्तिमान् किरणों की माता, यज्ञ आरम्भ करने वाली उषा अश्विनी कुमारों की मित्र है ॥२ ॥

[अश्विनी कुमार रोगों का उपचार करते हैं, उषा इस कार्य में सहायक है ।]

१७२७. उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि । उतोषो वस्व ईशिषे ॥३ ॥

आप अश्विनीकुमारों की मित्र हैं और दीप्तिमान् रश्मियों की रचयित्री हैं इसलिये हे उषे ! आप स्तुति के योग्य हैं ॥३ ॥

१७२८. एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥४ ॥

यह प्रिय अपूर्व उषा आकाश के तम का नाश करती है । हे अश्विनीकुमारो । हम महान् स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं ॥४ ॥

१७२९. या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा ॥५ ॥

ये अश्विनीकुमार शत्रुओं के नाशक, नदियों के उत्पत्तिकर्त्ता, विवेकपूर्वक कर्म करने वालों को सम्पत्ति देने वाले हैं ॥५ ॥

१७३०. वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि । यद्वां रथो विभिष्पतात् । ।६ ॥

हे अश्विनीकुमारो । जब आपका रथ पक्षियों की तरह आकाश में पहुँचता है, तब प्रशंसनीय स्वर्ग लोक में भी आपके लिए स्तोत्रों का पाठ किया जाता है ॥६ ॥

१७३१. उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति । येन तोकं च तनयं च धामहे । ।७ ॥

हे हवनों को प्रारम्भ करने वाली उषे ! हमें वह विलक्षण ऐश्वर्य प्रदान करें, जिससे हम सन्तानादि का पोषण कर सकें ॥७ ॥

१७३२. उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि । रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥८ ॥

गौओं और अश्वों से युक्त, यज्ञ कर्मों की प्रेरक हे उषे ! आप आज हमें धन-धान्य से युक्त करें ॥८ ॥

१७३३. युंक्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः ।
अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥९ ॥

हे हवनों को प्रारम्भ कराने वाली उषे ! आप अरुणाभ अश्वों (किरणों) को अपने रथ से युक्त करें और हमें विश्व के सब सौभाग्य प्रदान करें ॥९ ॥

१७३४. अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥१० ॥

हे अश्विनीकुमारो ! शत्रुनाशक आप, गौओं और स्वर्णमय रथ को मनोयोगपूर्वक हमारी ओर प्रेरित करें ॥१० ॥

१७३५. एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी । उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥११ ॥

उषा के साथ जाग्रत किरणें (अश्व) स्वर्णिम प्रकाश में स्थित दुःखनिवारक एवं सुखदायी अश्विनीकुमारों को इस यज्ञ में सोमपान के लिए लाएँ ॥११ ॥

१७३६. यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥१२॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप द्युलोक से प्रशंसा योग्य प्रकाश लाकर लोगों का हित करते हैं, ऐसे आप हमें अन्न से पुष्ट करें ॥१२॥

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः ॥

१७३७. अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥

उन अग्निदेव का हम स्तवन करते हैं जो सर्वव्यापक हैं । जिनके आश्रय में घोड़े जाते हैं, जिनके आश्रय में गौएँ जाती हैं । नित्यकर्म करने वाले, हविदाता यजमान भी उन्हीं के आश्रय में हैं, ऐसे आप, हम स्तोताओं को प्रचुर अन्न दें ॥१॥

१७३८. अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥२॥

ये अग्निदेव निश्चय ही यजमान को अन्न देने वाले, पूज्य और सब पर दृष्टि रखने वाले हैं । ये प्रसन्न होकर यज्ञ में सब को ऐश्वर्य प्रदान करने में किंचित मात्र संकोच नहीं करते । हे अग्निदेव ! आप स्तोताओं को पर्याप्त पोषण दें ॥२॥

१७३९. सो अग्नियों वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३॥

ये अग्निदेव सर्वव्यापक हैं, जिनके आश्रय में गौएँ जाती हैं, द्रुतगामी अश्व और उत्तम, प्रसिद्ध विद्वान् जाते हैं- ऐसे वे अग्निदेव स्तुत्य हैं । हे अग्निदेव ! हम स्तोताओं को यथेष्ट अन्न दें ॥३॥

१७४०. महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥४॥

हे सुप्रकाशित उषे ! पूर्व की भाँति आप हमें ज्ञानयुक्त बनाएँ, ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए बोध दें । हे श्रेष्ठ कुल वाली-सत्य भाषिणी ! वय्य के पुत्र सत्यश्रवा (सच्ची कीर्ति वाले) को आप अपनी कृपा का पात्र बनाएँ ॥४॥

१७४१. या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥५॥

हे द्युलोक (आदित्य) की पुत्री उषे ! आप शुचद्रथ के पुत्र सुनीथ के लिए अन्धकार को दूर करके प्रकाशित (प्रकट) हुईं । ऐसी आप, वय्य के पुत्र सत्यश्रवा पर अनुग्रह (प्रकाश) वृष्टि करें ॥५॥

१७४२. सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥६॥

हे आदित्य पुत्री उषे ! आप हमें प्रचुर धन दें और आज हमारे अन्धकार को मिटाएँ । हे बलयुक्त, तमनाशक, प्रसिद्ध, सत्यरूपिणी उषे ! वय्य के पुत्र सत्यश्रवा पर आप कृपा करें ॥६ ॥

१७४३. प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥७ ॥

हे अश्वनी कुमारो ! आपके वैभव एवं पराक्रम को धारण करने वाले अत्यन्त प्रिय रथ को स्तोता ऋषि अपनी स्तुतियों द्वारा सुशोभित करते हैं । इसलिए हे ब्रह्मज्ञानी ! आप हमारी स्तुतियों का श्रवण करें ॥७ ॥

१७४४. अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्णा सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥८ ॥

हे अश्वनीकुमारो ! आप अन्यों को लाँघकर हमारे निकट आएँ । हम अपने शत्रुओं पर विजय पाने में सफल हों ! हे शत्रुनाशक, स्वर्णरथयुक्त, उत्तम धन सम्पन्न, नदियों की तरह प्रवहमान, मधुर, विद्यावान् ! आप हमारी स्तुतियों का श्रवण करें ॥८ ॥

१७४५. आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥९ ॥

हे अश्वनीकुमारो ! स्वर्णरथी, शत्रु-उत्पीड़क, रत्नधारक, धनधान्ययुक्त, यज्ञप्रेमी आप हमारे यज्ञ में आकर प्रतिष्ठित हों । हे मधुर विद्यावान् ! आप हमारी स्तुतियों का श्रवण करें ॥९ ॥

॥इति तृतीयः खण्डः ॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः ॥

१७४६. अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ॥१ ॥

याजकों की समिधा से प्रज्वलित अग्नि, निद्रा से उठी गौओं के समान चैतन्य होती है । उषःकाल में प्रज्वलित अग्नि की ज्वाला वृक्ष की फैलती हुई डालियों के समान आकाश में फैलती है ॥१ ॥

१७४७. अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।
समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान् देवस्तमसो निरमोचि ॥२ ॥

यज्ञ के आधार अग्निदेव यजन कार्य के निमित्त देवों द्वारा प्रदीप्त होते हैं । वे अग्निदेव प्रातःकाल श्रेष्ठ मानसिकता से उर्ध्वगामी होते हैं । इनका तेजस्वीरूप प्रत्यक्ष हो उठता है । यह महान् देव, जगत् को तम से मुक्ति देते हैं ॥२ ॥

१७४८. यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।
आद्दक्षिणा युज्यते वाजयंत्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥३ ॥

जब ये अग्निदेव बाधा डालने वाले अंधकार को हर लेते हैं, तो शुभ्र किरणों से तेजस्वी बने अग्निदेव जगत् को प्रकाशित कर देते हैं । इसे बल देने के लिए जब घृत धारा यज्ञ पात्र से युक्त होती है, तो अग्निदेव ऊँचे उठकर ऊपर से गिरने वाली घृतधारा का पान करते हैं ॥३ ॥

१७४९. इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा ।
यथा प्रसूता सवितुः सवायैवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥४ ॥

सब दीप्तिमान् पदार्थों में यह उषा सर्वाधिक तेजयुक्त है । उसका विलक्षण प्रकाश चारों ओर व्यापक होकर सब पदार्थों को आच्छादित कर लेता है। सूर्य के डूबने (के बाद) से उत्पन्न हुई रात्रि, इस उषा के उदय के लिए अपने बीच से स्थान देती है (रात्रि के पूर्णतया समाप्त होने के पूर्व उषाकाल आ जाता है) ॥४ ॥

१७५०. रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ॥५ ॥

उज्ज्वल प्रकाश वाली उषा सूर्यरूप पुत्र को लेकर प्रकट हुई है और रात्रि काले रंग को । उषा और रात्रि दोनों सूर्य के साथ समान सखा भाव से युक्त हैं । दोनों अविनाशी और क्रमशः एक के पीछे एक आकाश में विचरते हैं तथा एक दूसरे के प्रभाव को नष्ट करने वाले हैं ॥५ ॥

१७५१. समानो अध्वा स्वस्रोरनंतस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥६ ॥

रात्रि और उषा दोनों का बहिनों जैसा एक ही मार्ग है और वह अन्तहीन है । उस मार्ग से होकर उषा और रात्रि क्रमशः एक के पीछे एक चलती हैं । उत्तम कार्य करने वाली ये एक दूसरे के विपरीतरूप वाली होते हुए भी, एक मनोभूमि की हैं। ये न कभी परस्पर विरुद्ध होतीं, न ही कहीं रुकती हैं, अपितु अपने-अपने कार्यों में दोनों निरत रहती हैं ॥६ ॥

१७५२. आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥७ ॥

उषा के मुखरूपी यह अग्निदेव दीप्तिमान् हो गये हैं (उषाकाल में अग्नि होत्र प्रारंभ हो गया है ।) दिव्य स्तुतियाँ प्रारंभ हो गई हैं। हे रथ में विराजित अश्वनीकुमारो ! हमें दर्शन देकर यज्ञ में पीने योग्य सोम के समीप उपस्थित होने की कृपा करें ॥७ ॥

१७५३. न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा ॥८ ॥

हे अश्वनीकुमारो ! आप संस्कारित पदार्थों को कृपापूर्वक ग्रहण करें। इस यज्ञ में उपस्थित होने वाले, आपके निमित्त स्तुति की जाती है । दिन के प्रारंभ होते ही (उषाकाल में) रक्षक (पोषक) लेकर आते हुए आप हविदाता (याजक) को सुख प्रदान करें ॥८ ॥

१७५४.उता यातं संगवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥९ ॥

हे अश्वनीकुमारो ! दिन में गाय दुहने (सायं गोधूलि) के समय, प्रातः सूर्योदय के समय, मध्याह्नकाल में, दिन-रात्रि अर्थात् हमेशा सुखदायी, रक्षा करने के साधनों सहित आप पधारें, अभी सोम पान की क्रिया (अन्य देवों द्वारा भी) प्रारंभ नहीं हुई है (अतः आप शीघ्र पधारें ।) ॥९ ॥

॥इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

॥पञ्चमः खण्डः ॥

१७५५. एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥१ ॥

(नित्य प्रति) ये उषाएँ उजाला लाती हैं। (इस समय) आकाश के पूर्वार्द्ध में प्रकाश फैल जाता है। जैसे वीर शस्त्रों को पैना करते हैं (चमकाते हैं) उसी प्रकार अपने प्रकाश से जगत् को प्रकाशित करती हुई वे गमनशील और तेजस्वी उषाएँ प्रतिदिन उदित होती हैं ॥१ ॥

[दिन-रात के समय को एकधा, द्विधा, त्रिधा, पंचधा आदि कई भागों में बाँटा जाता है । यहाँ उसे पंचधा (पांच भागों में) विभक्त किया गया है ।]

१७५६. उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥२ ॥

(उषाकाल में) अरुणाभ किरणें स्वाभाविकरूप से (क्षितिज के) ऊपर आ गई हैं। स्वयं जुते हुए बैलों (किरणों) के रथ से उषा ने पहले ज्ञान का (चेतना का) संचार किया, फिर प्रकाशदाता-तेजस्वी सूर्यदेव की सेवा (सहायता) करने लगी ॥२ ॥

[यहाँ प्रातःकाल का स्वाभाविक (पहले हलकी अरुणिमा, पुनः उजाला, प्राणियों में चेतनता तथा सूर्योदय) वर्णन दृष्टि गोचर है ।]

१७५७. अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥३ ॥

(यज्ञादि) श्रेष्ठकर्म और श्रेष्ठ प्रयोजन हेतु दान देने वाले सोमरस को संस्कारित करने वाले यजमान को अपनी किरणों (के प्रभाव) से प्रचुर मात्रा में अन्नादि देती हुई (उषा) आकाश को तेज से परिपूर्ण करती हैं। रण में शस्त्रों से सज्जित वीर के तुल्य उषा आकाश को सुन्दर दीप्तिमान् बना देती हैं ॥३ ॥

१७५८. अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्यू३षाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा ।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत्पृथक् ॥४ ॥

(आकाशरूपी) वेदिका में प्रदीप्त हुए ये अग्नि (रूप सूर्य) देव प्रत्यक्ष प्रकट हैं। महान् (प्रभावशाली) उषा अपने तेज से लोगों को हर्षित करती हुई आती हैं। हे अश्विनीकुमारो ! आप यज्ञ में उपस्थित होने के लिए अपने अश्वों को रथ से जोड़कर प्रस्थान करें। जगत् के प्रकाशक सूर्य देवता सब प्राणियों को अपने पृथक्-पृथक् कर्मों में प्रेरित कर रहे हैं ॥४ ॥

१७५९. युयुञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप अपने श्रेष्ठ रथ को जोड़कर (यज्ञ में पहुँचकर) हमारे क्षत्रियों को घृत (तेज) से पुष्ट करें। हमारी प्रजाओं में ज्ञान की वृद्धि करें, जिससे हम युद्ध में शत्रुओं को पराजित करके धन प्राप्त करने में समर्थ हो सकें ॥५ ॥

१७६०. अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
त्रिबन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद्द्विपदे चतुष्पदे ॥६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! रथ पर विराजित होकर आप यहाँ पधारें । तीन पहियों वाला और मधुर अमृत को धारण करने वाला, शीघ्रगामी, अश्वों से जुता हुआ, प्रशंसनीय, तीन बैठने के स्थानों वाला, समस्त ऐश्वर्य और सौभाग्य से भरा हुआ रथ हमारे परिजनों और पशुओं के लिए सुख प्राप्ति की परिस्थितियाँ लेकर आए ॥६ ॥

१७६१. प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः । अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥७ ॥

हे सोमदेव ! आपकी अविरल धाराएँ प्रचुर अन्नादि देने वाली हैं, जैसे आकाश से वृष्टि होती है, वैसे ही आपकी धाराएँ पृथ्वी पर (पोषक तत्त्व) अन्न की वृष्टि करती हैं ॥७ ॥

१७६२. अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति । हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥८ ॥

सब प्रिय कर्मों पर दृष्टि रखने वाला हरिताभ सोम शत्रुओं पर आयुधों का प्रहार करता हुआ (उन्हें पराभूत करके) आगे बढ़ता जाता है ॥८ ॥

१७६३. स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः । श्येनो न वंसु षीदति ॥९ ॥

वह नित्य उत्तम कर्मों को सम्पन्न करने वाला सोम, ऋत्विजों द्वारा संस्कारित होता हुआ, राजा के समान निर्भीक और तेजस्वी दिखाई देता है और बाज़ पक्षी के समान वेगपूर्वक जल में मिलाया जाता है ॥९ ॥

१७६४. स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि । पुनान इन्दवा भर ॥१० ॥

हे सोमदेव ! पवित्र होने वाले आप द्युलोक और पृथ्वीलोक में संव्याप्त रहते हुए, हमें सब प्रकार की सम्पदाएँ प्रदान करें ॥१० ॥

॥इति पंचमः खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- विरूप आङ्गिरस १७११-१७१३ । अवत्सार काश्यप १७१४-१७१७, १७६१-१७६४ । विश्वामित्र गाथिन १७१८-१७२० । देवातिथि काण्व १७२१-१७२२ । गोतम राहूगण १७२३-१७२४, १७३१-१७३६, १७५५-१७५७ । वामदेव गौतम १७२५-१७२७ । प्रस्कण्व काण्व १७२८-१७३० । वसुश्रुत आत्रेय १७३७-१७३९ । सत्यश्रवा आत्रेय १७४०-१७४२ । अवस्यु आत्रेय १७४३-१७४५ । बुध- गविष्ठिर आत्रेय १७४६-१७४८ । कुत्स आङ्गिरस १७४९-१७४१ । अत्रि भौम १७५२-१७५४ । दीर्घतमा औचथ्य १७५८-१७६० ।

देवता- अग्नि १७११-१७१३, १७३७-१७३९,१७४६-१७४८ । पवमान सोम १७१४-१७१७, १७६१-१७६४ । इन्द्र १७१८-१७२४ । उषा १७२५-१७२७, १७३१-१७३३, १७४०-१७४२, १७४९-१७५१, १७५५-१७५७ । अश्विनीकुमार १७२८-१७३०, १७३४-१७३६, १७४३-१७४५, १७५२-१७५४, १७५८-१७६० ।

छन्द- गायत्री १७११-१७१७, १७२५-१७३०,१७६१-१७६४ । त्रिष्टुप् १७१८-१७२०, १७४६-१७५४ । बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) १७२१-१७२४ । उष्णिक् १७३१-१७३६ । पंक्ति १७३७-१७४५ । जगती १७५५-१७६० ।

॥इति एकोनविंशोऽध्यायः ॥

॥अथ विंशोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

१७६५. प्रास्य धारा अक्षरन्वृष्णः सुतस्यौजसः । देवाँ अनु प्रभूषतः ॥१ ॥

सोमरस की, बल बढ़ाने वाली तथा देवों पर अपना अनुकूल प्रभाव डालने वाली, प्रभावकारी धाराएँ वेग-पूर्वक (कलश) पात्र में एकत्र होने लग गई हैं ॥१ ॥

१७६६. सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा । ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥२ ॥

देदीप्यमान, स्तुत्य, घोड़े के समान वेगवान् (दिव्य) सोम को मेधावान् अध्वर्युगण अपनी वाणीरूप स्तुतियों द्वारा शुद्ध करते रहे हैं ॥२ ॥

[मंत्र शक्ति से पदार्थों में सन्निहित संस्कारों का शोधन किया जाना संभव है ।]

१७६७. सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो । वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥३ ॥

हे सम्पत्तिशाली और स्तुत्य सोमदेव ! पवित्र होने वाले आप अपने प्रचण्ड पराक्रम से रक्षा करने वाले हैं । समुद्र के समान (आप अपने दिव्य रसों से) इस पात्र को पूर्ण कर दें ॥३ ॥

१७६८. एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥४ ॥

ऋतु के अनुकूल, यज्ञादि कर्मों से वृद्धि को प्राप्त हुए इन्द्रदेव के नाम से जो प्रसिद्ध है, हम उन मेधावी ज्ञानी की स्तुति करते हैं ॥४ ॥

१७६९. त्वामिच्छवसस्पते यन्ति गिरो न संयतः ॥५ ॥

प्रायः लोग जिस प्रकार सदाचारी पुरुष के पास (कल्याण की इच्छा से) जाते हैं । हे महाबली इन्द्रदेव ! हमारी स्तुतियाँ भी उसी प्रकार से आपके पास (आपका अनुग्रह पाने की इच्छा से) जाती हैं ॥५ ॥

१७७०. वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥६ ॥

जिस प्रकार राजमार्ग से अनेक अन्य दूसरे मार्ग निकलते हैं, उसी प्रकार हे इन्द्रदेव ! उपासकों के लिए विविध विध अनुदान उपलब्ध होते रहते हैं ॥६ ॥

१७७१. आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रं शविष्ठं सत्पतिम् ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! अपनी रक्षा के लिए और सुख प्राप्ति के लिए अनेक श्रेष्ठ कर्म करने वाले, शत्रुनाशक, वीरों और सज्जनों के पालक, आपकी जिस प्रकार लोग (सम्मानार्थ) रथ की प्रदक्षिणा करते हैं, उसी प्रकार आपकी आराधना करते हैं ॥७ ॥

१७७२. तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते । आ पप्राथ महित्वना ॥८ ॥

महान् शक्तिमान्, बहुत से उत्तम कर्म करने वाले, पूज्य इन्द्रदेव ! आप सब प्रकार की महिमा से युक्त होकर संसार भर में संव्याप्त रहते हैं ॥८ ॥

१७७३. यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः । हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! (महान् शक्तिशाली) आपके हाथ, सर्वत्रव्यापक, गतिशील, स्वर्णयुक्त (सोने की तरह देदीप्यमान) वज्र को धारण करने वाले हैं ॥९ ॥

१७७४. आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३ नार्वा ।
सूरो न रुरुक्वां छतात्मा ॥१० ॥

जो अग्नि यजमानों द्वारा निर्मित यज्ञ वेदियों को प्रदीप्त करती है । जो द्रुतगामी घोड़ों और वायु के सदृश गति वाली तथा दूरद्रष्टा है । वे अनेक रूपों में (विद्युत्, प्रकाश, ऊर्जा आदि) सुशोभित अग्निदेव सूर्य के सदृश तेजोमय हैं ॥१० ॥

१७७५. अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥११ ॥

दो अरणियों से उत्पन्न हुई यह अग्नि (त्रि-रोचनानि) तीन स्थानों (पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक) और सब लोकों को प्रकाशित करते हुए देवों को बुलाने वाली है । वह पूज्य अग्नि जल में (वडवाग्नि के रूप में) अथवा यज्ञशाला में यज्ञाग्नि के रूप में रहने वाली है ॥११ ॥

[त्रि-रोचनानि-गार्हपत्य, आहवनीय, आवसथ्य ।]

१७७६. अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।
मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥१२ ॥

दो अरणियों से उत्पन्न हुए अग्निदेवों का आवाहन करने (बुलाने) वाला, सब श्रेष्ठ धन और यशस्वी कर्मों का धारक है । वह अग्नि, अपने याजकों को उत्तम सन्तान प्रदान करने वाली है ॥१२ ॥

१७७७. अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥१३

हे अग्ने ! इन्द्रादि देवों को प्राप्त होने वाले श्रेष्ठ वाहन, अश्व के सदृश हवि को उन्हें पहुँचाने वाले; यज्ञ के समान कल्याणकारी और हृदय ग्राही आपको स्तोत्रों अथवा आहुतियों से और अधिक प्रखर बनाते हैं ॥१३ ॥

१७७८. अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥१४ ॥

हे अग्निदेव ! कल्याणकारी, बलवर्द्धक, अभीष्ट प्रदान करने वाले और सत्यस्वरूप आप महान् यज्ञ के मुख्य आधारकर्त्ता हैं ॥१४ ॥

१७७९. एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ्क्स्व३र्ण ज्योतिः ।
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥१५ ॥

हे अग्निदेव । सूर्य के समान तेजस्वी, श्रेष्ठमना, आप हमारे पूज्य इन्द्रादि देवों के साथ हमारे पास (यज्ञ में) पधारें ॥१५ ॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

॥द्वितीयःखण्डः ॥

१७८०. अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।

आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥१ ॥

हे अविनाशी सर्वज्ञाता अग्निदेव ! आप देवी उषा से यजमान के लिए अनेक प्रकार की धन सम्पदा लेकर आएँ और उषाकाल में विशेष चैतन्य देवों को भी यज्ञ में लाने की कृपा करें ॥१ ॥

१७८१. जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।

सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप सेवा के योग्य देवों तक हवि पहुँचाने वाले दूत और यज्ञ में देवों को लाने वाले रथ के समान हैं । आप अश्विनीकुमारों और देवी उषा के साथ हमें श्रेष्ठ पराक्रमी एवं यशस्वी बनाएँ ॥२ ॥

१७८२. विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।

देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥३ ॥

अनेक महान् कार्य कर सकने में समर्थ, संग्राम में बहुत से शत्रुओं को नष्ट करने में समर्थ, तरुण व्यक्ति को भी वृद्धावस्था खा जाती है । हे पुरुषो !देवों के अधिपति इन्द्रदेव के महत्त्व से परिपूर्ण इस कार्य को देखो ।वृद्धावस्था प्राप्त जो पुरुष मृत्यु पाता है वह कल फिर(पुनर्जन्म के सिद्धान्तानुसार) उत्पन्न हो जाता है ॥३ ॥

१७८३. शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीडः ।

यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता ॥४ ॥

सर्वशक्ति सम्पन्न, अरुणाभ पक्षी के समान महान् पराक्रमी और सनातन गतिशील इन्द्र (सूर्य) देव जिसे कर्त्तव्य के रूप में निश्चित कर लेते हैं, वही करते हैं, व्यर्थ कुछ नहीं । अभीष्ट वैभव को अपने पराक्रम से अर्जित करके वे (सूर्य देवता) स्तोताओं को सब प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं ॥४ ॥

१७८४.ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद्वृत्रहत्याय वज्री ।

ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋते कर्ममुदजायन्त देवाः ॥५ ॥

वज्रधारी इन्द्रदेव मरुद्गणों के साथ मिलकर (वृष्टिआदि) महान् पौरुषयुक्त कर्म करते हैं । वृत्रादि (सूखे के रूप में) शत्रुओं को मारने के लिए जल वृष्टि करते हैं ।(शत्रुओं को मारने और वृष्टि-क्रिया आदि महान् कृत्यों में) मरुद्गण इन्द्रदेव के सहायक सिद्ध होते हैं ॥५ ॥

१७८५. अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः ।

उत स्वराजो अश्विना ॥६ ॥

यह सोमरस मरुद्गणों के लिए निचोड़कर तैयार किया गया है । इसके प्रभाव से तेजस्वी बने मरुत् तथा अश्विनीकुमार इस सोमरस को (रुचिपूर्वक) पीते हैं ॥६ ॥

१७८६. पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः । त्रिषधस्थस्य जावतः ॥७ ॥

मित्र, अर्यमा और वरुणदेव इस संस्कारित हुए और तीन पात्रों में रखे हुए (तीनों लोकों में (व्याप्त) प्रशंसनीय सोमरस का पान करते हैं ॥७ ॥

१७८७.उतो न्वस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमतः । प्रातर्होतेव मत्सति ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! इस निचोड़े हुए, शुद्ध किये गये तथा गाय के दूध से मिश्रित हुए सोमरस को आप प्रातःकाल पीने की इच्छा उसी प्रकार करते हैं, जैसे होतागण प्रातः कालीन अग्निहोत्र में स्तुति करने की इच्छा रखते हैं ॥८ ॥

१७८८. बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।

महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि ॥९ ॥

हे सूर्यदेव ! आप महान् हैं । हे आलोककर्त्ता आप सचमुच महान् हैं । हे स्तुतियोग्य ! आपकी महिमा की हम स्तुति करते हैं । आपका व्यापक महत्त्व (प्रभाव) निश्चय ही आपको महान् सिद्ध कर देता है ॥९ ॥

१७८९. बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।

मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥१० ॥

हे सूर्यदेव ! आप अपने यश के कारण महान् हैं । देवों के बीच विशेष महत्त्व के कारण आप महान् हैं । आप तमिस्र (अन्धकार) रूपी असुरों का नाश करने वाले हैं, अतः पुरोहित के समान देवों का नेतृत्त्व करने वाले हैं । आपका तेज अदम्य, सर्वव्यापी और अविनाशी है ॥१० ॥

॥ इति द्वितीयःखण्डः ॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः ॥

१७९०. उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते । उप नो हरिभिः सुतम् ॥१ ॥

हे सोम के स्वामी इन्द्रदेव ! आप घोड़ों के द्वारा हमारे सोमयज्ञ में सोमपान के निमित्त अवश्यमेव पधारें ॥१ ॥

१७९१. द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः । उप नो हरिभिः सुतम् ॥२ ॥

शत्रुनाशक और असंख्यकर्मा इन्द्रदेव, (शत्रुओं के नाश के साथ उग्र और आर्यों के रक्षण के समय शान्त) इन दो रूपों वाले हैं । वे हमारे द्वारा शुद्ध हुए सोम का पान करने घोड़ों से यहाँ आएँ ॥२ ॥

१७९२. त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि । उप नो हरिभिः सुतम् ॥३ ॥

हे दुष्ट-हन्ता इन्द्रदेव ! सोम को पीने के अभिलाषु आप हमारे यज्ञ में अश्वों के माध्यम से सोमपान के निमित्त पधारें ॥३ ॥

१७९३. प्र वो महे महेवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।

विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥४ ॥

हे मनुष्यो ! अपने धन वृद्धि के लिए महान् इन्द्रदेव को सोम अर्पित करो । इन्द्रदेव के निमित्त उत्तम स्तोत्रों का पाठ करो । हे प्रजापोषक इन्द्रदेव ! आप इन हवि दाताओं के समीप आएँ ॥४ ॥

१७९४. उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।

तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥५ ॥

अत्यन्त विशाल इन महान् इन्द्रदेव को ऋत्विगगण उत्तम स्तुतियाँ और हविष्यान्न अर्पण करते हैं । धीर पुरुष उन इन्द्रदेव के व्रतों को डिगाते नहीं हैं ॥५ ॥

१७९५. इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।

हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥६ ॥

सबके राजा रूप इन्द्रदेव जिनके मन्यु (अनीति के प्रति क्रोध के आगे कोई टिक नहीं सकता) के प्रति की गयी स्तुतियाँ उनके शत्रु के पराभव का कारण बनती हैं। अतः हे स्तोताओ ! अपने स्वजनों को इन्द्रदेव की स्तुति की प्रेरणा दें ॥६ ॥

१७९६. यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके समान धन के अधिपति हम भी बनें। हम स्तोताओं (आस्थावानों) को पोषण के योग्य धन देंगे। पापियों को (दुरुपयोग के लिए) धन नहीं देंगे। (अर्थात् धनदान की मर्यादा का पालन करेंगे) ॥७ ॥

१७९७. शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
न हि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता च न ॥८ ॥

कहीं भी रहकर हम आपके यजन के लिए धन निकालते हैं। हे इन्द्रदेव ! हमारा तो आपके सिवाय और कोई भाई नहीं, कोई पिता तुल्य रक्षक भी नहीं है ॥८ ॥

१७९८. श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् ।
कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ॥९ ॥

हे सोमरस पीने वाले इन्द्रदेव ! आप हमारे आवाहन पर ध्यान दें, अर्चना करने वाले ज्ञानियों की प्रार्थना सुनें। हमारी सेवाओं को अपने सच्चे मित्र की सेवाएँ मानकर आप ग्रहण करें ॥९ ॥

१७९९. न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके असाधारण बल को जानने वाले हम आपकी स्तुति को छोड़ नहीं सकते। यश को बढ़ाने वाले आपके स्तोत्रों का पाठ हम करते हैं ॥१० ॥

१८००. भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।
मारे अस्मन्मघवं ज्योक्कः ॥११ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! मनुष्यों द्वारा आपके निमित्त सोम- यज्ञ होते रहे हैं। आपके निमित्त हवन भी सम्पादित होते हैं, अतः हमसे दूर आप कभी न रहें ॥११ ॥

॥इति तृतीयः खण्डः ॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः ॥

१८०१. प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत्सङ्गे समत्सु वृत्रहा ।
अस्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥१ ॥

हे स्तोताओ ! इन इन्द्रदेव के रथ के सम्मुख रहने वाले बल की उपासना करो । शत्रु की सेना के आक्रमण पर यह लोकपालक और शत्रुनाशक इन्द्रदेव ही प्रेरणा के आधार हैं, यह निश्चित जानें। अन्य शत्रुओं के धनुष की प्रत्यंचा टूटे, ऐसी कामना करें ॥१ ॥

१८०२. त्वं सिंधूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् ।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यम् ।
तं त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! आप नदियों के प्रवाहों में आये अवरोधों को तोड़ते हैं । मेघों को फोड़ते हैं । शत्रु विहीन हुए आप सब स्वीकार्य पदार्थों के पोषक हैं । हम आपको हविष्यान्न देकर हर्षित करते हैं । शत्रुओं के धनुष की प्रत्यंचा टूटे, ऐसी कामना है ॥२ ॥

१८०३. वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः ।
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति ।
या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥३॥

हम पर आक्रमण करने वाले शत्रु विनष्ट हो जाएँ । हे इन्द्रदेव ! हम पर घात करने वाले जघन्य दुष्टों को आप अपने शस्त्रों से मारते हैं । हमारी बुद्धि आपकी ओर प्रेरित हो । आपके धन आदि के दान हमें प्राप्त हों । हमारे शत्रुओं के धनुष की प्रत्यंचा टूट जाए, ऐसी कामना है ॥३ ॥

१८०४. रेवाँ इद्रेवत स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः । प्रेदु हरिवः सुतस्य ॥४॥

हे विभूतिवान् इन्द्रदेव ! आपकी स्तुति करने वाला निश्चय ही धन प्राप्त करता है । आपका उपासक सब ऐश्वर्यों से युक्त होता है ॥४ ॥

१८०५. उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानम् ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! आप वाणी से न बोल पाने वाले अज्ञानी के स्तुति पाठ को भी जानते हैं तथा बोले जाने वाले स्तोत्र को भी जानते हैं और गेय 'गायत्र-साम' को भी जानते ही हैं ॥५ ॥

१८०६. मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः । शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥६॥

हे इन्द्रदेव ! हिंसक शत्रुओं और उपेक्षित करने वालों के आश्रय पर आप हमें मत छोड़ें । अपने बल से हमें इष्ट ऐश्वर्य प्रदान करें ॥६ ॥

१८०७. एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! आप घोड़ों से पहुँचकर यजमान की स्तुतियों को ग्रहण करें । हे द्युलोक निवासी इन्द्रदेव ! हम आपके इस दिव्य शासन में सुखपूर्वक रहते हैं ॥७ ॥

१८०८. अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥८॥

भेड़िये के भय से काँपती हुई भेंड़ के समान, पाषाणों की धारें कूटे जाने वाले सोम को कंपाती हैं । हे द्युलोक निवासी इन्द्रदेव ! हम आपके दिव्य शासन में सुख पूर्वक रहते हैं ॥८ ॥

१८०९. आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण वक्षतु ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥९॥

हे इन्द्र ! इस यज्ञ में सोम कूटने का शब्द करते हुए पाषाण द्वारा आपको शब्द करने वाला सोम प्राप्त हो । हे द्युलोक निवासक इन्द्र !हम आपके दिव्य शासन में अत्यन्त सुखपूर्वक रहते हैं, आप अपने लोक को जाएँ ॥९ ॥

१८१०. पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥१० ॥

हे सोम ! अत्यन्त मधुर रस से भरे हुए आप हर्ष उत्पन्न करते हुए इन्द्रदेव के निमित्त शोधित हों ॥१० ॥

१८११. ते सुतासो विपश्चितः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥११ ॥

वह मेधावर्द्धक सोम शोधित होकर वायु देवता के निमित्त प्रकट होता है ॥११ ॥

१८१२. असृग्रं देववीतये वाजयन्तो रथा इव ॥१२ ॥

यह सोमरस अन्न प्राप्ति के अभिच्छु यजमानों द्वारा देवों के लिए तैयार किया जाता है । रथों को सुसज्जित करने के समान सोमरस को तैयार किया जाता है ॥१२ ॥

॥इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

॥पंचमः खण्डः ॥

१८१३. अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् । य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा । घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥१ ॥

सर्वज्ञाता, सर्वस्थापक, बलोत्पन्न, ज्ञानसम्पन्न, पूज्य, स्वप्रकाशित, दैदीप्यमान, यज्ञ वाहक, घृत आदि के अनुरूप तेज प्रवाहक अग्निदेव को हम यज्ञ सिद्ध करने वाला, देवों को बुलाने वाला मानते हैं ॥१ ॥

१८१४.यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः । परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् । शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥२ ॥

हे ज्ञानी और तेजस्वी अग्निदेव ! हम यजमान उत्तम विचारकों के मननीय मंत्रों द्वारा यज्ञ में आपका आवाहन करते हैं । ये प्रजाएँ अपनी रक्षा के लिए श्रेष्ठतम तेजस्वी सूर्यदेव के सदृश गतिमान्, यज्ञ निर्वाहक, प्रदीप्त किरणों से युक्त अग्नि की रक्षा करती हैं ॥२ ॥

१८१५. स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः वीडु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम् । निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥३ ॥

वह अग्नि तेजोमयी सामर्थ्य से (अत्यन्त दीप्तिमान् शत्रुओं में) भय संचार करने वाले फरसे के तुल्य द्रोहियों का नाश करने वाली है । जिसके साथ रहने से बलवान् शत्रु भी पराजित हो जाते हैं एवं अनुशासन स्वीकार करते हैं । धनुष को धारण करने वाले [illegible] वीर के तुल्य अचल यह अग्नि पाषाण जैसे स्थिर शत्रुओं का भी ध्वंस कर देती है ॥३ ॥

१८१६.अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो ।

बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यां ३ दधासि दाशुषे कवे ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आपका हविष्यान्न प्रशंसनीय है । हे तेजस्वी अग्ने ! आपकी ज्वालाएँ अति सुशोभित होती हैं । हे अति तेजस्वी ज्ञानी देव ! आप अपनी सामर्थ्य से हविदाता को प्रशंसनीय अन्न देने वाले हैं ॥४ ॥

१८१७. पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना ।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! पवित्र किरणों और निर्मल तेज से युक्त आप सूर्य के तुल्य उदित होते और बाद में पूर्ण तेजस्विता प्राप्त करते हैं । मातारूपी दो अरण्यों से प्रकट होने पर आप यजमानों के समीप रहकर उनके रक्षक होते हैं । हविष्यान्न से द्युलोक को और फिर वृष्टि से पृथ्वी को सुसम्पन्न बनाते हैं ॥५ ॥

१८१८. ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥६ ॥

हे शक्तिवान् अग्निदेव ! सर्वज्ञाता आप हमारी उत्तम स्तुतियों से हर्षोल्लास को प्राप्त हों । हमारे यज्ञादि कर्मों द्वारा आप संतुष्ट हों । असंख्यरूप, विलक्षण द्रष्टा आप यजमानों द्वारा प्रदत्त सर्वोपम हविष्यान्न को (आहुति रूप में) ग्रहण करें ॥६ ॥

१८१९. इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।
स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि दर्शतं क्रतुम् ॥७ ॥

हे अविनाशी अग्निदेव ! आप अपने तेज से प्रदीप्त होकर हमारे धन में वृद्धि करें । आप हमारे यजन कर्म में अपने तेज से प्रदीप्त होकर हमारे धन में वृद्धि करें । आप हमारे यजन कर्म में अपने तेजस्वीरूप में सुशोभित होते हैं और हमारे यज्ञादि कर्मों का फल प्रदान करते हैं ॥७ ॥

१८२०. इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः ।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम् ॥८ ॥

यज्ञ-संस्कार प्रवाहक, विशिष्टज्ञाता, असंख्य धन के अधिपति, धनप्रदाता आपकी हम आराधना करते हैं । आप हमें सेवनीय धन और सौभाग्ययुक्त प्रचुर अन्न प्रदान करें ॥८ ॥

१८२१. ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥९ ॥

याजकगण यज्ञ के महान् आधार, सामर्थ्यवान्, सर्वत्र दर्शनीय अग्निदेव को सुख की आकांक्षा से अपने समक्ष स्थापित करते हैं । हमारी स्तुति श्रवण करने वाले, सर्वत्र विख्यात, दिव्यगुण सम्पन्न हे अग्निदेव ! यजमान दम्पती अपनी वाणी से आपकी स्तुति करते हैं ॥९ ॥

॥इति पंचमः खण्डः ॥

॥षष्ठः खण्डः ॥

१८२२. प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः ।
यस्य त्वं सख्यमाविथ ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आपका जिसके साथ मैत्री भाव जुड़ता है, वह यजमान उत्तम वीर सन्तानादि से युक्त, तेजस्वी कर्मों से युक्त होकर आपके संरक्षण में जीवन संग्राम से पार होता है ॥१ ॥

१८२३. तव द्रप्सो नीलवान्वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवा ददे ।
त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ॥२ ॥

हे सोम सिंचित अग्निदेव ! प्रवहमान, निकट रखने वाला, कामना योग्य, प्रकाशित तेजस्वी सोम आपके निमित्त प्राप्त किया जाता है । महान् उषाओं के प्रिय रूप आप रात्रि में अधिक प्रकाशित होते हैं ॥२ ॥

१८२४. तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ।
तमित्समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ॥३ ॥

ऋतु के अनुरूप उत्पन्न उन अग्निदेव (ऊर्जा) को ओषधियाँ गर्भ में धारण करती हैं । जल धारायें माता की तरह उसे पैदा करती हैं । वनस्पतियाँ और औषधियाँ उसे गर्भ रूप में धारण करके प्रकट करती हैं ॥३ ॥

[यहाँ प्रकृतिगत ऊर्जा चक्र का वर्णन है ।]

१८२५. अग्निरिन्द्राय पवते दिवि शुक्रो वि राजति । महिषीव वि जायते ॥४ ॥

अग्नि इन्द्रदेव के निमित्त प्रदीप्त होकर व्यापक आकाश में प्रकाशित होती है । उस अवस्था में यह रानी के तुल्य विशेष शोभायमान होती है ॥४ ॥

१८२६. यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
यो जागार तमय सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥५ ॥

जो जागृत हैं उन्हीं से ऋचायें अपेक्षा रखती हैं । जागृत को ही सामगान का लाभ मिलता है । जागृत से ही सोम कहता है कि " मैं तुम्हारे मित्र भाव में ही रहता हूँ" ॥५ ॥

१८२७. अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥६ ॥

अग्नि जागृत रहती है, इसीलिए वह ऋचाओं द्वारा चाही जाती है । अग्नि चैतन्य वान है अतः साम उसका गान करते हैं । चैतन्य अग्नि से ही सोम कहता है—"मैं सदा आपके मित्र भाव में आश्रय स्थान प्राप्त करूँ" ॥६ ॥

१८२८. नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकंनिषेभ्यः ।
युञ्जे वाचं शतपदीम् ॥७ ॥

(यज्ञारम्भ से पूर्व ही प्रतिष्ठित देवों को हमारा प्रणाम) यज्ञारम्भ से यज्ञ में स्थित देवों को हमारा प्रणाम । असंख्य ऋचायें स्तुति रूप से आपको प्राप्त हों ॥७ ॥

१८२९. युञ्जे वाचं शतपदीं गाये सहस्रवर्तनि । गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ॥८ ॥

असंख्य प्रकार से स्तुतियों को देवार्थ प्रयुक्त करते हैं । गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती नामक छन्दों से युक्त सामों का सहस्रों प्रकार से गायन करते है ॥८ ॥

१८३०. गायत्रं त्रैष्टुभं जगद्विश्वा रूपाणि सम्भृता ।
देवा ओकांसि चक्रिरे ॥९ ॥

गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती नामक छन्दों से युक्त सामों को अग्नि आदि देवों के समक्ष अनेकों स्वरूपों में प्रयुक्त करते हैं ॥९ ॥

**१८३१. अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः ।
सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ॥१० ॥**

अग्नि ज्योति है, और ज्योति ही अग्नि है । इन्द्र ज्योति है, और ज्योति ही इन्द्र है । सूर्य ज्योति है, और ज्योति ही सूर्य है ॥१० ॥

१८३२. पुनरूर्जा नि वर्तस्व पुनरग्न इषायुषा । पुनर्नः पाह्यंहसः ॥११ ॥

हे अग्ने ! ऊर्जा रूप (बल रूप) में हमारे पास आएँ । अन्न और आयु प्राप्त कराने वाले हों । पापों से हमारी बार-बार रक्षा करें ॥११ ॥

१८३३. सह रय्या नि वर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥१२ ॥

हे अग्ने ! सब ऐश्वर्यों को साथ लेकर आएँ । दिव्य और सांसारिक ऐश्वर्यों के उपभोग में निहित आनन्द धारा से हमें सिंचित करें ॥१२ ॥

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

* * *

॥सप्तमः खण्डः ॥

१८३४. यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् । स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप धन के एकमात्र अधीश्वर हैं । यदि हम भी आपके समान ऐश्वर्यवान बनें, तो गौओं के मित्र गौओं के साथ हमारे प्रशंसक होंगे । (फिर आपके लिए भला क्या कहना !) ॥१ ॥

१८३५. शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे । यदहं गोपतिः स्याम् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! यदि हम (गौओं के स्वामी) ऐश्वर्यवान बनें, तो अपने बुद्धिमान प्रशंसक को धन देने की इच्छा करें और उसे धन प्रदान भी करें ॥२ ॥

१८३६. धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते । गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी स्तुतियाँ गौ रूप धारण करती हैं और सोम यज्ञ करने वाले यजमान को पोषित करती हुई उसके इच्छित पदार्थों (गो-अश्व आदि) को उपलब्ध कराती हैं ॥३ ॥

१८३७. आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥ ४ ॥

हे जल समूह ! आप सुख के उत्पत्तिकारक हैं । हमारे लिए बल, वैभव एवं दिव्य रमणीय ज्ञान प्रदान करने वाले बनें ॥४ ॥

१८३८. यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥५ ॥

हे जल समूह ! अपने अत्यन्त सुखकारी रस रूप का हमें सेवन करने दें । जैसे बच्चे को माता अपने दुग्ध रूप रस से पोषण देती है, वैसे ही हमें पोषित करें ॥५ ॥

१८३९. तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥६ ॥

हे जल समूह ! जिस ऐश्वर्य (रोग निवारक शक्ति) को धारण करने की आप प्रेरणा देते हैं, पुत्र पौत्रों के साथ हम उसे प्राप्त करें ॥६ ॥

[प्रकृति मंत्र में जल चिकित्सा के सूत्र-संकेत विद्यमान हैं।]

१८४०.वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे। प्र न आयूंषि तारिषत् ॥७

हे वायुदेव ! आप हमारे हृदय को उल्लसित करते हुए अपने ओषधि रूपी (प्राण) प्रवाह से हमें दीर्घायु प्रदान करें ॥७ ॥

१८४१.उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा । स नो जीवातवे कृधि ॥८ ॥

हे वायो ! आप हमारे पिता के तुल्य उत्पत्तिकर्ता, बन्धु के तुल्य प्रिय और मित्र के तुल्य हितकारी हैं। आप हमें जीवन यज्ञ में समर्थ बनाएँ ॥८ ॥

१८४२. यददो वात ते गृहेऽमृतं निहितं गुहा । तस्य नो धेहि जीवसे ॥९ ॥

हे वायो ! आपके पास गुप्त रूप में जो अमृत तत्त्व (प्राण रूपी जीवन तत्व) स्थित है। दीर्घ एवं तेजस्वी जीवन के लिए वह हमें प्रदान करें ॥९ ॥

[वायु में निहित अमृत की याचना वायु चिकित्सा की ओर संकेत है।]

१८४३. अभि वाजी विश्वरूपो जनित्रं हिरण्ययं बिभ्रदत्कं सुपर्णः ।
सूर्यस्य भानुमृतुथा वसानः परि स्वयं मेधमृज्रो जजान ॥१० ॥

गरुड़ के तुल्य वेगवान, विभिन्न रूपों में विद्यमान, उत्पत्ति स्थान को स्वर्णिम तेजस्विता से व्याप्त करने वाले अग्निदेव, ऋतु के अनुरूप सूर्यदेव, के तेज को धारण कर, यज्ञ-कर्म सम्पादन करते हैं ॥१० ॥

१८४४. अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूपं तेजः पृथिव्यामधि यत्संबभूव ।
अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः कनिक्रन्ति वृष्णो अश्वस्य रेतः ॥११ ॥

(अग्नि का) विश्वव्यापी जो तेज वीर्य अर्थात् प्राण पर्जन्य के रूप में जल में आश्रित है, जीवनी शक्ति के रूप में पृथ्वी पर विद्यमान है तथा दिव्य शक्ति प्रवाह के रूप में अनन्त अन्तरिक्ष में अपनी महिमा का विस्तार किये हुए है, वह सृष्टि की कारण सत्ता (परम पिता) की व्यापकता को सिद्ध करता है ॥११ ॥

१८४५. अयं सहस्रा परि युक्ता वसानः सूर्यस्य भानुं यज्ञो दाधार ।
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा धर्ता दिवो भुवनस्य विश्पतिः ॥१२ ॥

पृथ्वी और द्युलोकों के धारक, प्रजा-पालक, याजकों को अपार वैभव प्रदान करने वाले अग्निदेव से असंख्य किरणों को विस्तारित कर सूर्यदेव के तेज को धारण करते हैं ॥१२ ॥

१८४६. नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥१३ ॥

हे वेन ! आपको पाने की हृदय से कामना करते हुए साधक जब ऊपर देखते हैं, तब गरुड़ के दूत, जगत के पोषक आपको, विश्व की नियामक सत्ता, विद्युत् रूपी अग्नि के पास अन्तरिक्ष में पाते हैं ॥१३ ॥

१८४७. ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात्प्रत्यङ्चित्रा बिभ्रदस्यायुधानि ।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वाऽर्ण नाम जनत प्रियाणि ॥१४।

(मेघ के रूप में) जल को धारण करने वाले वेन (देवता) ऊपर अन्तरिक्ष में स्थित रहते हैं। वे अपने अद्‌भुत शस्त्रों (विद्युत आदि) को धारण कर सुन्दर रूप में शोभायमान होते हैं। सूर्य की भाँति (प्राण पर्जन्य के रूप में) जल की वर्षा करते हैं ॥१४॥

१८४८. द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन् गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन् ।
भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥१५॥

प्राण-पर्जन्य रूपी दिव्य प्रवाह एवं सूर्यदेव की तेजस्विता से युक्त, वेन देवता जब जल से अभिपूरित मेघों के समीप पहुँचते हैं, तब तीसरे दिव्य लोक में सूर्य तेज से विद्युत् के रूप में चमकते हुए जल (प्राण-पर्जन्य) की वर्षा करते हैं ॥१५॥

॥इति सप्तमः खण्डः॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- नृमेध आङ्गिरस १७६५- १७६७, नृमेध अथवा वामदेव १७६८- १७७०। प्रियमेध आङ्गिरस १७७१- १७७३। दीर्घतमा औचथ्य १७७४- १७७६। वामदेव गौतम १७७७- १७७९। प्रस्कण्व काण्व १७८०- १७८१। बृहदुक्थ वामदेव्य १७८२- १७८४। बिन्दु अथवा पूतदक्ष आङ्गिरस १७८५- १७८७। जमदग्नि भार्गव १७८८- १७८९, १८१०-१८१२। सुकक्ष आङ्गिरस १७९०-१७९२। वसिष्ठ मैत्रावरुणि १७९३-१८००। सुदास पैजवन १८०१-१८०३। मेधातिथि काण्व १८०४-१८०६। नीपातिथि काण्व १८०७-१८०९। परुच्छेप दैवोदासि १८१३-१८१५। अग्नि पावक १८१६-१८२१। सोभरि काण्व १८२२, १८२३। अरुण वैतहव्य १८२४। अग्नि प्रजापति १८२५। अवत्सार काश्यप १८२६-१८२७, १८३१-१८३३। मृग १८२८-१८३०। गोषूक्ति अश्वसूक्ति काण्वायन १८३४-१८३६। त्रिशिरा त्वाष्ट्र अथवा सिन्धुद्वीप आम्बरीष १८३७-१८३९। उल वातायन १८४०-१८४२। सुपर्ण १८४३-१८४५। वेन भार्गव १८४६-१८४८।

देवता- पवमान सोम १७६५-१७६७, १८१०-१८१२। इन्द्र १७६८-१७७३, १७८२-१७८४, १७९०-१८०९, १८३४-१८३६। अग्नि १७७४-१७८१, १८१३-१८२५, १८२८-१८३३, १८४३-१८४५। मरुद्गण १७८५-१७८७। सूर्य १७८८-१७८९। विश्वेदेवा १८२६-१८२७। आपः १८३७-१८३९। वायु १८४०-१८४२। वेन १८४६-१८४८।

छन्द- गायत्री १७६५-१७६७, १७७२-१७७३, १७८५-१७८७, १७९०-१७९२, १८०४-१८०९, १८२५, १८२८-१८४२। द्विपदा गायत्री १७६८-१७७०, १८१०-१८१२। अनुष्टुप् १७७१। विराट् १७७४-१७७६, १७९३-१७९५, १७९८-१८००। पदपंक्ति १७७७-१७७९। बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) १७८०-१७८१, १७८८-१७८९, १७९६-१७९७। त्रिष्टुप् १७८२-१७८४, १८२६-१८२७, १८४३-१८४८। शक्वरी १८०१-१८०३। अत्यष्टि १८१३-१८१५। विष्टार पंक्ति १८१६-१८१७। सतोबृहती १८१८-१८२०। उपरिष्टाज्योति १८२१। ककुभ प्रगाथ (विषमा ककुप्, समासतो बृहती) १८२२-१८२३। जगती १८२४।

॥इति विंशोऽध्यायः॥

॥अथ एकविंशोऽध्यायः ॥

१८४९. आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥१ ॥

स्फूर्तिवान्, विकराल, वृषभ की तरह शत्रु को भय देने वाले, दुष्टों के नाशक, बैरियों को रुलाने वाले, द्वेष करने वालों को क्षुब्ध करने वाले, आलस्य-हीन वीर इन्द्रदेव सैकड़ों शत्रुओं को जीतकर हरा देते हैं ॥१ ॥

१८५०. सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥२ ॥

हे योद्धाओ ! शत्रुओं को रुलाने वाले, आलस्य रहित, विजयी, निपुण, अविचल, बाणधारी इन्द्रदेव की सहायता से युद्ध जीतकर शत्रुओं को भगाओ ॥२ ॥

१८५१. स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्यू३ग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३ ॥

वे इन्द्रदेव बाण और तलवार धारी योद्धाओं के सहयोग से शत्रुओं को वश में रखते हैं । वे युद्ध में अति कुशल, विजेता, सोम पीने वाले, बाहु-बल सम्पन्न, धनुर्धारी, शत्रु-संहारक हैं ॥३ ॥

१८५२. बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥४ ॥

हे सर्व-पालक इन्द्रदेव ! राक्षसों को मारते हुए, शत्रुओं को बाधायें देकर, उनकी सेना का ध्वंस करते हुए, रथ से यहाँ आएँ । युद्ध में विजयी होकर हमारे रथों की रक्षा करते हुए आगे बढ़ें ॥४ ॥

१८५३. बलविज्ञाय स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! सबके बलों के ज्ञाता, उत्तम वीर, शत्रु के आक्रमण को सहने वाले, बलवान, शत्रु-विजेता, अग्रमहावीर, शक्तिशाली होकर ही जन्म लेने वाले, गो-पालक, आप विजयी रथ में प्रतिष्ठित हों ॥५ ॥

१८५४. गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ॥६ ॥

हे योद्धाओ ! शत्रु के किलों के भेदक, गो-पालक, वज्र जैसी भुजा वाले, बल से शत्रु का विनाश करने वाले, विजेता इन्द्र के नेतृत्व में रहकर पराक्रम दिखाओ । हे मित्रो ! इन्द्र के क्रोध करने पर आप भी शत्रु पर क्रोध करें

१८५५. अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरःशतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्यो३स्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥७ ॥

बल से शत्रु किलों को भेदने वाले, पराक्रमी, शत्रु पर दया न करने वाले, वीर, अनीति के प्रति क्रोध करने वाले, अविचल, शत्रु-विजेता, अद्वितीय योद्धा, ऐसे इन्द्रदेव हमारी सेना का संरक्षण करें ॥७ ॥

१८५६. इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥८ ॥

हमारी सेनाओं के नेतृत्वकर्ता इन्द्रदेव हों । बृहस्पति देव सबसे आगे जाएँ । दक्षिण यज्ञ संचालक सोम भी आगे जाएँ । शत्रु-नाशक मरुद्‌गण विजयी देवों की सेना के आगे हों ॥८ ॥

१८५७. इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥९ ॥

बलशाली इन्द्रदेव, राजा वरुणदेव, आदित्यों और मरुतों के तीक्ष्ण बल हमारे सहायक हों । शत्रु-नगरों के ध्वंसक, विशालमना और विजयी, देवों का जयघोष गुंजायमान हो ॥९ ॥

१८५८. उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनांसि ।
उद्वृत्रहन्वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥१० ॥

हे सामर्थ्यवान् इन्द्रा ! आप हमारे शस्त्रधारी योद्धाओं का हर्ष बढ़ाएँ, हमारे अश्वों को वेग प्रदान करें तथा सैनिकों के मन में उत्साह भरें । हे वृत्रहन्ता इन्द्र । विजयी होकर आने वाले हमारे रथों के शब्द गुञ्जित हों ॥१० ॥

१८५९. अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु ॥११ ॥

हमारी सेनाओं का युद्ध में इन्द्रदेव रक्षण करें । हमारे बाण शत्रुओं पर विजय पाने वाले हों । हमारे वीर विजयी हों । हे देवो ! युद्ध में हमें रक्षण प्रदान करें ॥११ ॥

१८६०.असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति न ओजसा स्पर्धमाना ।
तां गूहत तमसापव्रतेन यथैतेषामन्यो अन्यं न जानात् ॥१२ ॥

हे मरुतो ! अपनी सामर्थ्य से संघर्षरत शत्रु की सेना जब हमारे ऊपर आक्रमण करने को उद्यत हो तो उस सेना को गहन अन्धकार से आच्छादित कर लें, जिससे वे एक दूसरे को न पहचान सकें और सभी आपस में ही लड़ मरें ॥१२ ॥

१८६१. अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥१३ ॥

हे पाप-वृत्तियो ! हमसे दूर रहो । इन शत्रुओं के चित्त को विमोहित करो । उनके अंगों को जकड़ लो । उन शत्रुओं पर आक्रमण कर उनके हृदय में शोक-ज्वाला प्रदीप्त करो । हमारे शत्रुओं को गहन अन्धकार में डाल अचेत करो ॥१३ ॥

१८६२. प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥१४ ॥

हे वीरो ! शत्रु पर आक्रमण करके विजयी बनो । इन्द्रदेव आपको सुख और शान्ति प्रदान करें । आपकी भुजाएँ उग्र सामर्थ्य से युक्त हों, जिससे शत्रु आपको अपने अधिकार में न ले सकें ॥१४ ॥

१८६३. अवसृष्टा परा शत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान्प्र पद्यस्व मामीषां कं च नोच्छिषः ॥१५ ॥

हे वेदमन्त्रों से प्रेरित बाण !हमारे द्वारा छोड़े जाने पर दूरस्थ शत्रुओं के ऊपर जाकर गिरें । उन शत्रुओं में कोई शेष न रहे ॥१५ ॥

१८६४.कङ्काः सुपर्णा अनु यन्त्वेनान् गृध्राणामन्नमसावस्तु सेना ।
मैषां मोच्यघहारश्च नेन्द्र वयांस्येनाननुसंयन्तु सर्वान् ॥१६ ॥

मांस भक्षी की तरह बाण इन शत्रुओं का पीछा करें । शत्रु सेना गिद्धों का भोजन बने । शत्रुओं में से कोई शेष न रहे । हे इन्द्रदेव ! जो अभी पाप में प्रवृत्त हुए हों वे भी न बचें । इन सबके पीछे मास भक्षी पक्षी लगें ॥१६ ॥

१८६५.अमित्रसेनां मघवन्नस्मां छत्रुयतीमभि । उभौ तामिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥

हे ऐश्वर्यवान् शत्रु-हन्ता इन्द्र ! आप और अग्नि दोनों हमसे शत्रुता रखने वाले शत्रुओं की सेना को भस्म करें

१८६६.यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तत्र नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥१८ ॥

जहाँ शिखा रहित बालकों (चंचल बालकों) के समान बाण गिरते हों, वहाँ ब्रह्मणस्पति तथा अदिति हमें सुख प्रदान करें और हमारा सदा कल्याण करें ॥१८ ॥

१८६७. वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥१९ ॥

हे इन्द्रदेव ! राक्षसों का विनाश करें । हिंसक दुष्टों को नष्ट करें । बाधकों का जबड़ा तोड़ दें । हे शत्रु-नाशक इन्द्रदेव ! हमारे संहारक शत्रुओं के क्रोध एवं दर्प को नष्ट करें ॥१९ ॥

१८६८. वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥२० ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे शत्रुओं का नाश करें । हमारी सेनाओं द्वारा पराजित शत्रुओं को मुंह लटकाए भागने दें । हमें वश में करने के अभीच्छु शत्रुओं को गर्त में डालें ॥२० ॥

१८६९. इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानावनाधृष्यौ सुप्रतीकावसह्यौ ।
तौ युञ्जीत प्रथमौ योग आगते याभ्यां जितमसुराणां सहो महत् ॥२१ ॥

राक्षसों के प्रचण्ड बल को जीतने वाले, अविचल और तरुण इन्द्रदेव, जिन पर किसी का वश नहीं हो सकता, ऐसे हाथी की सूँड के समान असह्य भुजाओं को युद्ध में सबसे पहले प्रेरित करें ॥२१ ॥

१८७०.मर्माणि ते वर्मणा च्छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥२२ ॥

हे राजन् ! आपके मर्मस्थलों को कवच से युक्त करते हैं । राजा सोम आपको अमृत से युक्त करें । वरुणदेव आपको सुख प्रदान करें ॥२२ ॥

१८७१.अन्धा अमित्रा भवताशीर्षाणोऽहय इव ।
तेषां वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ॥२३ ॥

शत्रु, सिर विहीन सर्पों के समान अन्धे हों । अग्नि की ज्वाला से बचे श्रेष्ठ शत्रुओं का मर्दन इन्द्र स्वयं करें ॥

१८७२.यो नः स्वोऽरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरं शर्म वर्म ममान्तरम् ॥२४ ॥

जो हमारे बन्धु होकर द्वेष करते हैं, गुप्त रूप से हमारे संहार की इच्छा रखते हैं, उन्हें सब देवगण नष्ट कर दें । वेद मंत्र ही हमारे कवच रूप हैं; वे हमारा कल्याण करें ॥२४ ॥

१८७३. मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः ।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व ॥२५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप पर्वत के हिंसक सिंह के समान भयंकर हैं । आप दूरस्थ प्रदेश से यहाँ आकर दूर मार करने वाले वज्र को तीक्ष्ण कर शत्रुओं का विनाश करें । संग्राम की इच्छा वाले शत्रुओं को दूर करें ॥२५ ॥

१८७४. भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२६ ॥

हे देवो ! कानों से हम मंगलमय वचनों का ही श्रवण करें । नेत्रों से कल्याणकारी दृश्यों को ही देखें । हाथ-पाँव आदि पुष्ट अंगों से आपकी स्तुति करें । देवों के द्वारा नियत आयु को प्राप्त कर इसका हम भली प्रकार उपयोग करें ॥२६ ॥

१८७५. स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥२७ ॥

अति यशस्वी इन्द्रदेव हमारा कल्याण करने वाले हों । सर्व-ज्ञाता पूषादेव हमारा मंगल करें । अहिंसित आयुध वाले गरुड़ हमारे हितकारक हों । ज्ञान के अधीश्वर बृहस्पति देव हमारा कल्याण करें ॥२७ ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द- विवरण

ऋषि - अप्रतिरथ ऐन्द्र १८४९-१८५९, १८६१-१८६२, १८६८-१८६९, १८७१-१८७२ । पायु भारद्वाज १८६३-१८६६, १८७२ । अप्रतिरथ ऐन्द्र अथवा शास भारद्वाज १८६७ । अप्रतिरथ अथवा जय ऐन्द्र १८७३ । अप्रतिरथ ऐन्द्र अथवा गोतम राहूगण १८७४-१८७५ । अप्रतिरथ ऐन्द्र अथवा पायु भारद्वाज १८७० ।

देवता - इन्द्र १८४९-१८५१, १८५३-१८५९, १८६४-१८६५, १८६७-१८६९, १८७१, १८७३ । बृहस्पति १८५२ । मरुद्गण १८६० । अप्वा १८६१ । इन्द्र अथवा मरुद्गण १८६२ । इषव १८६३ । संग्रामाशिष १८६६ । वर्म सोमवरुण १८७०, १८७२ । विश्वेदेवा १८७४-१८७५ ।

छन्द- त्रिष्टुप् १८४९-१८६१, १८६४, १८७०, १८७३-१८७४ । अनुष्टुप् १८६२-१८६३, १८६५, १८६७-१८६८, १८७१-१८७२ । पंक्ति १८६६ । विराट् जगती १८६९ । विराट् स्थाना १८७५ ।

॥इति एकविंशोऽध्यायः ॥

* *

॥इत्युत्तरार्चिकः समाप्तः ॥

* * *

॥इति सामवेद-संहिता समाप्ता ॥

परिशिष्ट—१

सामवेदीय ऋषियों का संक्षिप्त परिचय

१. अंहोमुग्वामदेव्य (४२६) — वामदेव के पिता का नाम उशिज था। इनके द्वारा दृष्ट सूक्तों का संकलन ऋग्वेद के चतुर्थ मंडल में किया गया है। इनके पास वाम्य नाम के दो अतिवेगशाली अश्व थे। कालान्तर में वामदेव की परंपरा में अनेक ऋषिगण परिगणित हुए। 'अंहोमुक्' इसी परंपरा के ऋषियों में प्रमुख थे। यह पद ऋग्वेद में अनेक अर्थों में प्रयुक्त है—**अंहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्** —(ऋ० १०.६३.९) । इनका ऋषित्व ऋग्वेद में उल्लिखित है—**आर्षं वामदेवपुत्रस्य अंहोमुङ् नाम्नो वा** (ऋ० १०.१२६ सा० भा०) ।

२. अगस्त्य मैत्रावरुण (१४३२-३६) - अगस्त्य मैत्रावरुणि का ऋषित्व प्रायः चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। इन्हें मैत्रावरुणि (मित्रावरुण के पुत्र) के रूप में उल्लिखित किया गया है। ऋग्वेद १.१८९.८ में इन्हें मान्य (मान के पुत्र) के रूप में भी उपन्यस्त किया गया है। विश्पला की टाँग की चिकित्सा में इन्होंने अश्विनीकुमारों की सहायता की थी। सप्तर्षियों में इनका नाम भी प्रतिष्ठित है। अगस्त्य और वसिष्ठ दोनों को मित्रावरुण एवं उर्वशी से उत्पन्न माना गया है (बृह० ५.१५०)। अगस्त्य ऋषि की पत्नी के रूप में लोपामुद्रा का नाम प्रसिद्ध है। आचार्य सायण ने ऋग्वेद भाष्य में इनके ऋषित्व का स्पष्ट विवेचन किया है- **'मरुतां वाक्यमन्त्यस्तृचोऽगस्त्यस्य'** (ऋ० १.१६५ सा०भा०)। परन्तु इनके नाम के साथ 'मैत्रावरुण' विशेषण मात्र सामवेद में ही उल्लिखित है। शेष सभी जगह 'मैत्रावरुणि' ही विशेषण ऋषि अगस्त्य के साथ मिलता है।

३. अग्नि-धिष्ण्य-ऐश्वर (१३६७—१३६९) — ऋग्वेद के ऋषि 'अग्नयः' हैं। इनके विशेषण के रूप में 'ऐश्वराः' विशेषण का प्रयोग किया गया है— **परिप्रद् व्यधिकाग्नयोऽधिष्ण्याया ऐश्वराद्वैपदम्** (ऋ० ९.१०९ सा० भा०)। सायण ने 'ऐश्वराः' की व्याख्या करते हुए इसका अर्थ 'ईश्वरपुत्राः' किया है—**यज्ञे सदस्यवस्थितहोत्रीयादिधिष्ण्योपेता अग्नयो नाम ईश्वर पुत्राः ऋषयः**(ऋ०९.१०९ सा० भा०) ।

४. अग्नि चाक्षुष (५६६, ५७२, ५७६) - अग्नि चाक्षुष की गणना ऋषियों के अन्तर्गत की गयी है। चाक्षुष का अर्थ सायण ने चक्षु का पुत्र किया है— **प्रथमस्य तृचस्य चक्षुराख्यपुत्रोऽग्निर्ऋषिः । शिष्टानामपि पंचानां चाक्षुषोऽग्निः** (ऋ० ९. १०६ सा० भा०)।

५. अग्नि तापस (९१) -तापसः पद का आशय तापसगुण विशिष्ट है। दशम मण्डल के १४१ वें सूक्त के ऋषि के रूप में अग्नितापस का वर्णन किया गया है—**तापसगुणविशिष्टस्याग्नेरार्षम्**। (ऋ० १०.१४१सा० भा०)

६. अग्नि पावक (१८१६-२१) - दशम मण्डल में देवता के रूप में अग्नि का विवेचन किया गया है। इसी मंडल के १४० वें सूक्त के ऋषि अग्निपावक हैं—**पावक गुणविशिष्टोऽग्निः ऋषिः । शुद्धाग्निर्देवता**। (ऋ० १०.१४०सा० भा०) । यजुर्वेद तथा सामवेद में भी अग्निपावक नामक ऋषि को मंत्रद्रष्टा के रूप में स्वीकार किया गया है।

७. अत्रि भौम (३६६) - ऋग्वेद का पंचम मण्डल अत्रिकुल द्वारा संगृहीत है। कदाचित् अत्रि परिवार का प्रियमेध, कण्व, गौतम एवं काक्षीवत् कुलों से निकट का संबंध था। ऋग्वेद के पंचम मण्डल के एक मंत्र में परुष्णी एवं यमुना के उल्लेख से मालूम होता है कि यह परिवार विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ था। अत्रि गोत्र प्रवर्तक ऋषि थे।

मुख्य स्मृतिकारों की तालिका में भी अत्रि का नाम आता है । अनेक संदर्भों में ऋषि के रूप में इनका उल्लेख हुआ है—**नवमं सूक्तं भौमस्यात्रेरार्षं** (ऋ० ५.४१ सा० भा०); **अथ पंचानां भौमोऽत्रिर्ऋषिः** (ऋ० ९.८६ सा० भा०)।

८. **अनानत पारुच्छेपि (४६३)** - अनानत को परुच्छेप के पुत्र के रूप में उल्लिखित किया गया है । इनका नाम पिता के नाम के साथ भी प्राप्त होता है—**अयारुचेति तृचमष्टमं सूक्तं परुच्छेपपुत्रस्य अनानताख्यार्षमत्यष्टिच्छन्दस्कम्** (ऋ० ९. १११ सा० भा०)। पारुच्छेप छन्दों के जनक होने के कारण इनके साथ पारुच्छेपि नामकरण किया गया प्रतीत होता है—**रोहितं वै नामैतच्छन्दो यत्पारुच्छेपम्**(गो० ब्रा० २.६.१०)। इन्हीं के द्वारा रचित छन्दों से इन्द्रदेव को स्वर्गलोक की प्राप्ति हुई थी—**एतेन ह वा इन्द्रः सप्तस्वर्गान् लोकानारोहत्** (गो० ब्रा० २.६.१०)। अनानत पद विशेषण प्रतीत होता है, जिसका आशय स्वाभिमान से पूर्ण अर्थात् कभी सिर न झुकानेवाला होता है । यह सम्पूर्ण ऋषि नाम उनके ज्ञान और स्वाभिमान को सूचित करता है ।

९. **अन्धीगु श्यावाश्वि (५४५)** -अन्धीगु श्यावाश्वि, श्यावाश्व कुलोत्पन्न ऋषि हैं । श्यावाश्व ने मरुतों की कृपा से प्रचुर धन-धान्य एवं राजा रथवीति की पुत्री को पत्नी रूप में प्राप्त किया था ।

१०. **अप्रतिरथ ऐन्द्र (१८४९-१८५९)** -'ऐन्द्र' विशेषण पद है, जो अप्रतिरथ, विमद, वृषाकपि आदि ऋषियों के लिए प्रयुक्त हुआ है । सायण ने ऐन्द्र का अर्थ 'इन्द्रपुत्र' किया है, किन्तु इसका अर्थ 'इन्द्र का स्तोता' करना अधिक समीचीन है । अप्रतिरथ ऐन्द्र का ऋषित्व सभी वेदों में है । यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत है—**'आशुः शिशान' इति त्रयोदशर्चं चतुर्थं सूक्तमिन्द्रपुत्रस्याप्रतिरथ नाम्न आर्षम्** (ऋ० १०.१०३ सा० भा०)।

११. **अभीपाद् उदल (२३१)** - सामवेद २३१ के ऋषि अभीपाद् उदल माने गये हैं। लाट्यायन ने इसे साम-विशेष की संज्ञा माना है । सामवेदीय मंत्र-द्रष्टा के रूप में अभीपाद् उदल मात्र इसी स्थल पर विवेचित हैं ।

१२. **अमहीयु आंगिरस (४६७, ४७०, ४७१, ४८४ आदि)** - ऋग्वेद तथा सामवेद के मंत्रों के द्रष्टा के रूप में अमहीयु आंगिरस का विवरण प्राप्त होता है—**अमहीयुर्नामांगिरस ऋषिः ..** (ऋ०९.६१सा० भा०)

१३. **अम्बरीष वार्षागिर (५४९, १२३८)** - ऋग्वेद में ऋज्राश्व, सहदेव, सुराधस् और भयमान के साथ वार्षागिर के रूप में अम्बरीष का उल्लेख हुआ है । राजा वृषागिर् के चार पुत्रों का उल्लेख है, जिनमें अम्बरीष भी एक थे—**तथा चानुक्रम्यते अभि नो द्वादशाम्बरीष...** । **वृषागिरो राज्ञः पुत्रोऽम्बरीषो भरद्वाज पुत्र ऋजिश्वोभौ सहितावस्यर्षी** (ऋ० ९.९८ सा० भा०)।

१४. **अयास्य आङ्गिरस (५०१)** - इन ऋषि का नाम ऋग्वेद के दो परिच्छेदों में वर्णित है तथा इन्हें अनुक्रमणी में अनेक मंत्रों (९.४४.६; १०.६७-६८) का द्रष्टा कहा गया है । ब्राह्मण परंपरा में ये सब राजसूय यज्ञ के उद्गाता थे । कई ग्रंथों में इन्हें यज्ञ क्रिया विधान का मान्य अधिकारी माना गया है । बृहदारण्यक उपनिषद् की वंशावली में अयास्य आंगिरस को आभूति त्वाष्ट्र का शिष्य बतलाया गया है ।आचार्य सायण ने मंत्रद्रष्टा के रूप में इनका उल्लेख किया है -...**सूक्तमांगिरसस्यायास्यस्यार्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकम्**(ऋ० ९.४४ सा० भा०)।

१५. **अरिष्टनेमि तार्क्ष्य (३३२)** - अरिष्टनेमि पद तार्क्ष्य का विशेषण है, जिसका अर्थ है- हानि- रहित चक्रवाला । तार्क्ष्य पद तृक्षि का पैतृक नाम है । तार्क्ष्य को त्रसदस्यु का वंशज माना गया है—**त्रासदस्यवं त्रसदस्योः पुत्रं तृक्षिमेतन्नामकं** —(ऋ० ८.२२.७ सा० भा०)। इनकी गणना ऋषि के साथ-साथ पौरुषवान् व्यक्तियों में की जाती है— **तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानी ग्रामण्याविति** —(शत० ब्रा०८.६.१.१९)

१६.अरुण वैतहव्य (९८२-९८४) - वीतहव्य के वंशज को वैतहव्य कहा जाता है। ब्राह्मण की गाय का भक्षण करने के कारण ये सभी विनष्ट हो गये थे। अरुण इस वंश के प्रमुख ऋषि हैं। तैत्तिरीय आरण्यक में अरुण ऋषि का उल्लेख अनेक स्थलों पर किया गया है।

१७.अवत्सार काश्यप (५००) - ऋग्वेद (५.५४.१०) में अवत्सार को एक ऋषि कहा गया है। ऐत० ब्रा० (२.२४) में उन्हें एक पुरोहित कहा गया है। कौषी० ब्रा० (१३.३) में उन्हें प्रस्रवण पुत्र प्राश्रवण या प्रास्रवण कहा गया है। अनुक्रमणी में ऋग्वेद के एक सूक्त (९.५८) के मंत्र द्रष्टा के रूप में इनका उल्लेख किया है। इन्हें कश्यपगोत्रीय कहा गया है—**अवत्सारो नाम ऋषिः स च कश्यपगोत्रः।.......तं प्रत्यथा पंचोना काश्यपोऽवत्सारोऽन्ये च ऋषयोऽत्र** (ऋ० ५.४४ सा० भा०)।

१८.अवस्यु आत्रेय (४१८) - ऋग्वेद तथा सामवेद के ऋषि के रूप में अवस्यु आत्रेय का नाम प्रख्यात है। अत्रिकुल से संबद्ध होने के कारण इनका नाम आत्रेय है—**अवस्युर्नामात्रेय ऋषिः ...** (ऋ० ५.३१ सा० भा०)।

१९.अश्विनीकुमार वैवस्वत (३०५) - यजुर्वेद तथा सामवेद में अश्विनीकुमार को ऋषि माना गया है। इनकी भुजाओं का विशेष विवरण प्राप्त होता है तथा इनकी गणना चिकित्सक के रूप में भी की गयी है—**अश्विनोर्बाहुभ्याम्..... अश्विनोर्भैषज्येन** (यजु० २०.३)। **कुष्ठः को वामश्विना तपानो देवा मर्त्यः** (साम० ३०५)। सामवेद में अश्विनीकुमार के साथ 'वैवस्वत' पद भी जुड़ा है, जो इनका उपनाम प्रतीत होता है। सम्भव है विवस्वान् कुल में जन्म होने के कारण इन्हें वैवस्वत उपाधि प्रदान की गई है। आचार्य सायण ने अपने सामवेद भाष्य में लिखा है- **कुष्ठ इति अश्विनौ वैवस्वतौ ऋषी** (साम० ३०५)।

२०.असित देवल (४७५, ४७६, ४८५, ४८६ आदि) - असित देवल और असित काश्यप दो ऋषि विशेष प्रसिद्ध हैं। प्रथम युग्म में विकल्प प्राप्त है, परन्तु द्वितीय नाम तो गोत्र नाम है—**वामदेवः कश्यपः असितो देवलो वा** (साम० ९२ तथा ९३)।

२१.आकृष्टा माषा (८८६-८८, ९५५) - इन दोनों को संयुक्त ऋषित्व पद प्राप्त हुआ है। नवम मण्डल के प्रथम दस सूक्तों का साक्षात्कार इनने किया है। आकृष्टा और माषा इनका सामूहिक नाम है। कहीं-कहीं यह नाम 'अकृष्टा माषा' उल्लिखित है—**प्रथमदशर्चस्य आकृष्टा इति माषा इति च द्विनामान ऋषिगणा द्रष्टारः** (ऋ० ९.८६ सा० भा०)।

२२.आत्मा (५९४) - सामवेद ५९४ में आत्मा को ऋषि माना गया है। इस मंत्र में अन्न का आत्म-कथन व्यक्त हुआ है, जो सर्वशक्तिमान् को सूचित करता है—**अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम । यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि** ॥(साम० ५९४)

२३.आत्रेय (४५५) - बृहदारण्यक उपनिषद् (२.६.३) में वर्णित माण्टि के एक शिष्य की यह पैतृक उपाधि है। ऐतरेय ब्राह्मण में आत्रेय अङ्ग के पुरोहित कहे गये हैं। शतपथ ब्राह्मण में एक आत्रेय को कुछ यज्ञों का नियमतः पुरोहित कहा गया है। अत्रि की प्रतिष्ठा निर्विवाद है। जहाँ किसी प्रकार भी शंका उत्पन्न होती है, वहाँ अत्रि गोत्रीय आत्रेय ऋषियों को ही प्रधानता प्राप्त होती है। ऋ० ५.२७ सायण भाष्य में लिखा है—**नात्मात्मने दद्यात् इति सर्वास्वत्रिं केचित्**।

२४.आयुङ्क्ष्वाहि (११) - आयुङ्क्ष्वाहि का वर्णन मात्र सामवेद में ही उपलब्ध होता है। इस मंत्र के वही ऋषि माने गये हैं। इसके अतिरिक्त इनका वर्णन उपलब्ध नहीं होता।

२५.इध्मवाहो दार्ढच्युत (१२८५) - इध्मवाह दृळहच्युत् के पुत्र थे । इन्होंने ऋग्वेद के ९.२६ का दर्शन किया था । सायण ने इनका व्याख्यान करते हुए लिखा है—**दृळहच्युत पुत्रस्येध्मवाहनाम्न आर्षं गायत्रम्....** (ऋ० ९.२६ सा० भा०) ।

२६.इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठ (५३५) - वैदिक परम्पराओं में पौरोहित्य की विशेषताओं से सम्पन्न व्यक्ति का नाम वसिष्ठ है । ऋग्वेद का सप्तम मण्डल वसिष्ठ-प्रणीत बताया गया है । शतपथ ब्राह्मण १२.६.१.४१ का कथन है कि वसिष्ठ लोग ही ऐसे पुरोहित थे, जो यज्ञ के ब्रह्मा का कार्य कर सकते थे । ऋग्वेद ९.९७ के सूक्त में बहुत से ऋषियों का एक साथ उल्लेख है, जो सभी ऋषिगण वसिष्ठ गोत्रीय हैं—**द्वितीयस्येन्द्रप्रमतिर्नाम..... । एते सर्वे वसिष्ठगोत्राः ... । इन्द्रप्रमतिर्वृषगणः .....** (ऋ० ९.९७ सा० भा०) ।

२७.इरिम्बिठि काण्व (१०२, १४४, १५९, १९१ आदि) - इरिंबिठि कण्व-गोत्रीय ऋषि हैं । इनके द्वारा दृष्ट सूक्त ऋग्वेद के अष्टम मण्डल में संकलित हैं, जिनमें इन्द्र की स्तुति की गयी है—... **सूक्तमिरिंबिठिनाम्नः काण्वस्यार्षं गायत्रमैन्द्रम्** (ऋ० ८.१६ सा० भा०) ।

२८.उचथ्य आंगिरस (४९६, ४९९ आदि) - उचथ्य आंगिरस को ऋग्वेद के नवम मण्डलान्तर्गत ४९, ५०, ५१ तथा ५२ सूक्तों के मंत्र द्रष्टा होने का गौरव प्राप्त हुआ है । आचार्य सायण ने ९.५० सूक्त के भाष्य की टिप्पणी में लिखा है—**उत्त इति पंचर्चं षड्विंशं सूक्तम् आंगिरसस्योचथ्यस्यार्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकम् । तथा चानुक्रान्तम् 'उत्ते शुष्मास उचथ्य' इति** । आगे पुनः ५१ वें सूक्त के प्रारंभ में आचार्य सायण ने लिखा है—**अध्वर्यो इति पंचर्चं सप्तविंशं सूक्तं आंगिरसस्य उचथ्यस्यार्षं...**(ऋ०९.५१ सा० भा०) ।

२९.उत्कील कात्य (६०) - कल्प सूत्रों में कातीय शाखा का विवेचन किया गया है, इसके अनुयायियों को कात्य या कात्यायन कहा जाता है । उत्कील कात्य का प्रस्तुत नामकरण पड़ने का कारण है, उनका कातीय शाखानुयायी होना । सायण ने कत गोत्रोत्पन्न होने के कारण प्रस्तुत नामकरण स्वीकार किया है-—**कतगोत्रोत्पन्नोत्कीलस्यार्षं ...** (ऋ० ३.१५ सा० भा०) ।

३०.उपमन्युर्वासिष्ठ (८०६-८) - उपमन्यु वासिष्ठ का ऋषित्व केवल तीन ऋचाओं में प्राप्त होता है । अन्यत्र इनके सन्दर्भ में कुछ उल्लेख नहीं पाया जाता । उपमन्यु ने ऋग्वेद के नवम मण्डल के सूक्तों का दर्शन किया था—.... **पञ्चमस्योपमन्युः .... एते सर्वे वसिष्ठगोत्राः** (ऋ० ९.९७ सा० भा०) ।

३१.उपस्तुत वार्ष्टिहव्य (६४) - उपस्तुत का, ऋषि के रूप में कई बार उल्लेख मिलता है । विशेषतः कण्व के साथ इनका नाम आया है, जिनकी अग्नि, अश्विनीकुमारों एवं अन्य देवों ने सहायता की थी । ऋग्वेद १०.११५.१ में वृष्टिहव्य के पुत्रों- उपस्तुतों को गायक बताया गया है—**इति त्वाग्ने वृष्टिहव्यस्य पुत्रा उपस्तुतास ऋषयोऽवोचन्** । ऋग्वेद १०.११५.१ में इन्हें वृष्टिहव्य का पुत्र कहा गया है—**उपस्तुतो नाम वृष्टिहव्यपुत्र ऋषिः** ।

३२.उरुचक्रि आत्रेय (९८५-८७) - उरुचक्रि अत्रि-गोत्रीय होने के कारण आत्रेय उपाधि से विभूषित हैं । ऋग्वेद और सामवेद में इनका उल्लेख "मित्रावरुणौ" के निमित्त मंत्र दर्शन के सन्दर्भ में किया गया है —'**उरुचक्रिर्नामात्रेय ऋषिः**' ... (ऋ० ५.६९ सा० भा०) ।

३३.उलो वातायन (१८४) - वात या वातवन्त ऋषि का उल्लेख सत्र करने वाले के रूप में किया गया है । इस सत्र को समय के पूर्व ही समाप्त कर देने से इन्हें कष्ट का सामना करना पड़ा । वातवन्त के पुत्र वातायन थे । उल इन्हीं की अनुवांशिक परम्परा के ऋषि थे- ... **वातो वातायन उलो वायव्यमिति...**(ऋ०१०.१८६ सा० भा०) ।

३४.उशना काव्य (५२३, ५३१) - ये एक प्राचीन ऋषि हैं; ऋग्वेद में ही ये अर्ध पौराणिक रूप ग्रहण कर चुके हैं, जहाँ इनका उल्लेख इन्द्र और कुत्स के साथ हुआ । बाद में देवासुर संग्राम के प्रसंग में ये असुरों के पुरोहित कहे गये हैं । इस नाम का एक दूसरा रूप है "कवि उशनस्" । वे ब्राह्मणों के आचार्य के रूप में पाये जाते हैं । इनकी ख्याति कवि के पुत्र के रूप में है । इन्होंने आग्नेय मंत्रों का दर्शन किया था—.... **कवेः पुत्रस्योशनस आर्षम् गायत्रमाग्नेयम् ।..... प्रेष्ठमुशना काव्य आग्नेयमिति** (ऋ० ८.८४ सा० भा०) ।

३५.ऊर्ध्वसद्मा आंगिरस (५७९) - आंगिरस जाति का प्रवर्तक होने के कारण यह नामकरण किया गया है । इन्होंने अयन, द्विरात्र आदि यज्ञीय प्रयोग का संचालन किया था । ऊर्ध्वसद्मा इन्हीं के वंशज थे— **ऊर्ध्वसद्मा नामांगिरसः** (ऋ० ९. १०८ सा० भा०) ।

३६.ऊरुराङ्गिरस (५८४) - ऋग्वेद और सामवेद में इनके द्वारा दृष्ट मंत्र संकलित हैं, जिनमें ऋग्वेदीय सोम सूक्त के मंत्र प्रसिद्ध हैं—**ततः पञ्चानां द्वृचानामूरुर्नामाङ्गिरस ऋजिश्वा ....** (ऋ० ९.१०८ सा० भा०) ।

३७.ऋजिश्वा भारद्वाज (१०५, ५८०, ५८५) - ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर ऋजिश्वा (ऋजिश्वन्) का उल्लेख मिलता है, जिससे ये अति पुरातन ऋषि सिद्ध होते हैं । लुडविग ने इन्हें 'औशिज' का पुत्र माना है, जबकि ऋग्वेद (४.१६.१३,५.२९-११) में इन्हें विदथिन् का पुत्र 'वैदथिन' कहा गया है । ऋग्वेद ९.९८ का सम्मिलित ऋषित्व है। ये उनमें से एक हैं—**वृषागिरो राज्ञः पुत्रोऽम्बरीषो भरद्वाजपुत्र ऋजिश्वोभौ सहितावस्यर्षी....** (ऋ० ९.९८ सा० भा०) ।

३८.ऋणञ्चय राजर्षि (५८२, १०९६) - ऋणञ्चय राजर्षि को ऋषित्व पद तो प्राप्त है, परन्तु मंत्र साक्षात्कार-कर्त्ता के रूप में अत्यल्प गौरव ही प्राप्त हो सका है । ऋग्वेद के नवम मंडल के अन्तर्गत १०८ वें सूक्त के १२ वें - १३ वें मंत्र का ऋषित्व इन्हें प्राप्त है । आचार्य सायण ने १०८ वें सूक्त पर, अपने भाष्य में लिखा है—**'पवस्वेति षोडशर्चं पंचमं सूक्तम् ।.....सोऽप्यांगिरस ऋणंचयो नाम राजर्षि इत्येते क्रमेणर्षयः** (ऋ० ९.१०८ सा० भा०) ।

३९.ऋण त्रसदस्यु (४२७, ४२९-३१ आदि) - ऋणत्रसदस्यु का ऋषित्व सामवेद के मंत्रों के लिए ही सामवेद संहिता (स्वाध्यायमण्डल, पारडी बलसाड़, गुजरात) में उल्लिखित है । अन्यत्र तो केवल त्रसदस्यु का ही उल्लेख मिलता है । ऋग्वेद के नवम मण्डल के ११० वें सूक्त के प्रारंभ में आचार्य सायण ने त्र्यरुण और त्रसदस्यु दोनों का उल्लेख किया है, इसीलिए 'त्रसदस्यु' में द्विवचनान्त प्रयोग 'त्र्यरुणत्रसदस्यू' हुआ है— **पर्यूष्विति द्वादशर्चं सप्तमं सूक्तम् । त्र्यरुणत्रसदस्यू राजर्षी अस्य सूक्तस्य द्रष्टारौ......** (ऋ० ९.११० सा० भा०) ।

४०.एवयामरुत् आत्रेय (४६२) - ऋग्वेद के पाँचवे मण्डल के ८७ वें सूक्त में 'एवया मरुत्' शब्द का प्रयोग प्रत्येक मन्त्र में हुआ है, जिससे यह वैयक्तिक नाम न होकर, मात्र एक विशेषण के रूप में सिद्ध होता है । ऋग्वेद में 'एवयामरुद् आत्रेय' ऋषि का वर्णन कई सूक्तों में प्राप्त होता है ।-मरुतों के स्तुत्यर्थ इनके मंत्रों का प्रयोग किया जाता है— **मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत्** (ऋ० ५.८७.१) । सायण ने अपने भाष्य में सुस्पष्ट रूप से सूक्तांश को व्याख्यायित किया है—**पंचदशं सूक्तमेवयामरुदाख्यस्यात्रेयस्य मुनेरार्षम्....** (ऋ०५.८७ सा० भा०) ।

४१.कण्व घौर (५४, ५६, १३५ आदि) - ऋग्वेद के प्रथम सात मण्डलों के सात प्रमुख ऋषियों में कण्व का नाम आता है ।आठवें मण्डल की ऋचाओं की रचना भी कण्व परिवार की ही है, जो पहले मण्डल के रचयिता हैं । ऋ०, अथर्व०, वाज० सं०, पञ्च० ब्रा० आदि में कण्व का नाम बार-बार आता है । कण्व को घोर पुत्र कहा गया है-**घोरपुत्रः कण्व ऋषिः । अयुजो बृहत्यः । प्र वो विंशतिः कण्वो घौर आग्नेयम्**(ऋ० १.३६ सा० भा०) ।

४२.कर्णश्रुद् वासिष्ठ (५३७) - कर्णश्रुद् वासिष्ठ की ऋषियों के बीच अधिक ख्याति नहीं है । ऋग्वेद के नवम मण्डल के ९७वें सूक्त के २२-२४ मन्त्र का ऋषित्व इन्हें प्राप्त है । आचार्य सायण ने इनके सम्बन्ध में अपने भाष्य में लिखा है— **अष्टमस्य कर्णश्रुत् ।.... कर्णश्रुन्मृळीको वसुक्र इति...** (ऋ० ९.९७ सा० भा०) ।

४३.कलि प्रागाथ (२३७, २७२) - ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर अश्विनीकुमारों के कृपापात्र एक व्यक्ति के लिए बहुवचन में इस शब्द का प्रयोग होता है । अथर्ववेद में इनका नामोल्लेख गंधर्वों के साथ हुआ है । कलि को प्रगाथ का पुत्र कहा गया है— **...सप्तमं सूक्तं प्रगाथपुत्रस्य कलेरार्षम् । तरोभिः पंचोना कलिः प्रागाथः प्रागाथमंत्यानुष्टुबिति** (ऋ० ८.६६. सा० भा०) ।

४४.कवष ऐलूष (४५३) - इनको इलूष का पुत्र कहा गया है—**इलूषपुत्रस्य कवषस्यार्षम्..... । प्र देवत्रा पंचोना कवष ऐलूष आपमपोनखीयं वेति** (ऋ० १०.३०सा० भा०) । ऋग्वेद के ब्राह्मणों में कवष ऐलूष का उल्लेख है, इन्हें दासी पुत्र बतलाया गया है और अन्य ऋषियों ने इन्हें ताना मारा था । इनके द्वारा दृष्ट मंत्र ऋग्वेद के दसवें मण्डल में मिलते हैं । ऐत० ब्रा० २.२९ में वर्णन है कि यज्ञ के समय ऋषियों ने इनका अपमान किया, जिससे क्षुब्ध होकर इन्होंने मंत्रों की रचना की । देवता प्रसन्न हुए तब भेद-भाव दूर कर इन्हें ऋषित्व-पद प्रदान किया ।

४५.कवि भार्गव (५०७, ५५४-५५६, ५५८) - ऋग्वेद १.११६.१४ में कवि एक ऋषि का नाम है, जिन्हें अश्विनीकुमारों ने दृष्टि प्रदान की थी । वेंकट माधव ने इन्हें काव्य उशनस् का वैत्व नामक पिता माना है; स्कन्द स्वामी ने इन्हें मेधावी कण्व माना है; किन्तु सायण ने केवल एक "अन्धा ऋषि" लिखा है । भृगु का पुत्र होने के कारण इन्हें भार्गव कहा जाता है—**भृगुपुत्रस्य कवेरार्षं गायत्रम्...... । अया सोमः पंच कविर्भार्गव इति** (ऋ० ९.४७ सा० भा०) ।

४६.कश्यप मारीच (४७२, ४८१, ४८२) - प्राचीन वैदिक ऋषियों में कश्यप एक प्रमुख ऋषि हैं, जिनका उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है । इन्हें सदा धार्मिक एवं रहस्यात्मक चरित्र वाला बताया गया है । सामवेद ९० में अन्य ऋषि समूह के साथ कश्यप का भी विवेचन उपलब्ध होता है-- **मरीचिपुत्रः कश्यपो वैवस्वतो मनुर्वा ऋषिः** (ऋ० ८.२९ सा० भा०) ।

४७.कुत्स आंगिरस (६६, ३८०, ५४१, ६२९) - ऋग्वेदीय मंत्रों के द्रष्टा ऋषियों में से एक ऋषि हैं । अष्टाध्यायी (पाणिनि) के सूत्रों में जिन पूर्वाचार्यों के नाम आये हैं, उनमें कुत्स भी हैं । त्रित आप्त्य के वैकल्पिक ऋषि के रूप में कुत्स का नाम स्मरण किया गया है । कुछ स्थलों पर स्वतंत्र ऋषि के रूप में भी इन्हें वर्णित किया गया है— **अनुवर्तमानत्वात्कुत्सः ऋषिः** (ऋ० १.१०६ सा० भा०) । **अपां पुत्रस्य त्रितस्य कूपे पतितस्य कुत्सस्य वार्षम्** (ऋ०१.१०५ सा० भा०) ।

४८.कुरुसुति काण्व (९८८, ९८९, ९९०) - कण्व के वंशज काण्व कहे जाते हैं । कण्व का सम्बन्ध अनेक ऋषियों से रहा है । विशेष समादृत होने के कारण इनकी शिष्य परम्परा में अनेक ऋषियों का उल्लेख प्राप्त होता है, जिनमें पर्वत, नारद आदि प्रमुख हैं । कुरुसुति कण्व के वंशज थे, अतएव इनके नाम के उपरान्त काण्व शब्द का प्रयोग किया गया है- **कुरुसुतिर्नाम काण्व ऋषिः ।इमं नु द्वादशकुरुसुतिः काण्व** (ऋ० ८.७६ सा० भा०) ।

४९.कुसीदी काण्व (१३८, १६२, १६७) - कुसीदिन् ऋषि काण्व के पुत्र थे । इन्होंने इन्द्र-विषयक ऋचाओं का दर्शन किया है । कण्व के पुत्र होने से इनका संबंध कण्व ऋषि से विशेष रूप से था—**कण्वपुत्रस्य कुसीदिन आर्षंगायत्रमैंद्रम् । ......आ तू नो नव कुसीदी काण्व इति** (ऋ० ८.८१ सा० भा०) ।

५०.कृतयशा आंगिरस (५८१) - आंगिरस् ऋषि के वंशज को आंगिरस कहा जाता है। कृतयशा इसी परम्परा के ऋषि हैं। साधना के क्षेत्र में विशेष यशस्वी होने के कारण सम्भवतया यह नामकरण हुआ है। इनका विशेष विवरण उपलब्ध नहीं है। ऋ० ९. १०८वें सूक्त के १०-११ मन्त्र का ऋषित्व इन्हें प्राप्त है। सायण भी किसी सुनिश्चित परिणाम पर नहीं पहुँच सके हैं—**कृतयशा नाम कश्चित् सोऽपि आंगिरस**(ऋ० ९. १०८ सा० भा०)।

५१.कृष्ण आंगिरस (३७५) - ऋग्वेद के सूक्त ८.८५.३,४ में ऋषि के रूप में इनका नाम आया है। परम्परा के अनुसार वे या उनके पुत्र विश्वक (कार्ष्णि) अगले सूक्त ऋग्वेद ८.८६ के ऋषि माने गये हैं। पैतृक नाम "कृष्णिय" भी ऋग्वेद के अन्य दो सूक्तों में आया है- (ऋ० १.११६.२३, १.११७.७) ऋग्वेद का सायण भाष्य इनके विषय में उपर्युक्त विवरण की पुष्टि करता है—**विश्वको नाम कृष्णस्य पुत्रः कृष्ण एव वर्षिः। उभा हि पञ्च विश्वको वा कार्ष्णिर्जागतमिति**(ऋ० ८.८६सा० भा०) ।**तदा प्रकृत आंगिरसः कृष्ण एव ऋषिः** (ऋ० ८.८७ सा० भा०)

५२.केतुराग्नेय (१५२७ -३१) - केतु ऋषि द्वारा दृष्ट मंत्रों के देवता अग्नि हैं। कतिपय मंत्रों में "**अग्ने केतुर्विशामसि**" पद में केतु पद अग्नि का विशेषण स्वरूप है। सामवेद में भी इनके कुछ मंत्र संगृहीत हैं। अग्निपुत्र होने के कारण भी इन्हें आग्नेय कहा जाता है—..... **पंचमं सूक्तमग्निपुत्रस्य केतुनाम्न आर्षं गायत्रमाग्नेयं। तथा चानुक्रान्तं-अग्निं केतुराग्नेय आग्नेयं गायत्रमिति**—(ऋ० १०. १५६ सा० भा०)।

५३.गय आत्रेय (८१) - गय आत्रेय ऋग्वेद के मंत्रों के द्रष्टा हैं। अत्रि परंपरा से संबंधित होने के कारण ये आत्रेय उपाधि से विभूषित हुए हैं-**त्वामग्ने हविष्मन्त इति .... सूक्तमात्रेयस्य गयस्यार्षं** (ऋ० ५.९ सा० भा०)।

५४.गातुरात्रेय (३१५) - गातुरात्रेय ऋग्वेद और सामवेद के ऋषि हैं। ये अत्रि गोत्र से सम्बद्ध हैं—**अदर्दरुत्समिति द्वादशर्चमष्टादशं सूक्तम्। गातुर्नामात्रेय ऋषिः** (ऋ० ५. ३२ सा० भा०)।

५५.गृत्समद शौनक (२००,४५७,४६६,५९०,६००,६०७) - गृत्समद एक ऋषि का नाम है। ये ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के ऋषि हैं। ऐतरेय ब्राह्मण ५. २. ४, कौ० ब्रा० २२. ४ में इस परम्परा का समर्थन किया गया है। ऋग्वेद के आख्यान के अनुसार इन्हें अनेक कुलों से सम्बद्ध माना गया है—**अथ गार्त्समदं द्वितीयं मण्डलं व्याख्यायते। .....मंडलद्रष्टा गृत्समद ऋषिः। स च पूर्वमांगिरसकुले शुनहोत्रस्य पुत्रः सन् यज्ञकालेऽसुरैर्गृहीत इन्द्रेण मोचितः। पश्चात्तद्वचनेनैव भृगुकुले शुनकपुत्रो गृत्समदनामाभूत्.... । य आंगिरसः शौनहोत्रो भूत्वा भार्गवः शौनकोऽभवत्स गृत्समदो द्वितीयं मण्डलमपश्यदिति**— (ऋ०२. १ सा० भा०)।

५६.गोतम राहूगण (९९,१४७, १७९, २१८, २४७ आदि) - ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में गोतम ऋषि का नाम आया है। ऋग्वेद १.७८.५से संकेत मिलता है कि 'राहूगण' उनकी उपाधि है, जो पैतृक परम्परा से आयी है। शतपथ ब्राह्मण में उन्हें वैदिक-संस्कृति को बढ़ाने वाला बताया गया है। शत० ब्रा० के ११.४.३.२० में उन्हें विदेह जनक एवं याज्ञवल्क्य का समकालीन कहा गया है—**ता हैतां गोतमो राहूगणः। विदां चकार सा ह जनकं वैदेहं प्रत्युत्ससाद**....(शत० ब्रा० ११.४.३.२०)। इन्हें ऋग्वेद और सामवेदीय सूक्तों का द्रष्टा माना जाता है—**उपप्रयन्तो नव गोतमो राहूगणो गायत्रं त्विति। ... रहूगणनामा कश्चिदृषिः। तस्त पुत्रो गोतमोऽस्य सूक्तस्य ऋषिः** (ऋ० १.७४ सा० भा०)।

५७.गोधा ऋषिका (१७६) - गोधा ब्रह्मवादिनी ऋषिका हैं। साम० १७६ उत्तरार्द्ध की ऋषिका इन्हीं को माना गया है। ऋग्वेद में इनके द्वारा दृष्ट सूक्तों को दशम मण्डल में संगृहीत किया गया है—**पूर्वेणेत्यर्धर्चसहितायाः सप्तम्यास्तु गोधा नाम ब्रह्मवादिन्यृषिः। ...तामध्यर्धां गोधापश्यदिति** (ऋ० १०.१३४ सा० भा०)।

५८.गोपवन आत्रेय (२९,८७,८९) - काण्व शाखीय बृ० उ० २.६.१.४ की प्रथम दो वंश- सूचियों में पौतिमाष्य के शिष्य गौपवन का उल्लेख है, जो गोपवन के वंशज हैं ।इनके द्वारा दृष्ट सूक्तों के विकल्प ऋषि के रूप में सप्तवधि का नाम लिया जाता है-उद्दीराधां गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वाश्विनम्(ऋ० ८.७३ सा० भा०)।

५९.गोषूक्ति-अश्वसूक्ति काण्वायन (१२१,१२२,२११,३८२ आदि) - इन ऋषियों को कण्वगोत्रीय कहा गया है । अतएव इनका नाम काण्वायन भी है । इनको संयुक्त ऋषित्व प्राप्त होता है—**तथा चानुक्रान्तम्- यदिन्द्र पंचानो गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनाविति....** (ऋ० ८.१४ सा०भा०) । पंचविंश ब्राह्मण (१९.६.९) में सम्भवतः 'गौ-षूक्त' के नाम से एक साम द्रष्टा ऋषि के रूप में उन्हीं का उल्लेख है ।

६०.गौरांगिरस (४५८) - आंगिरस परम्परा वाले अनेक ऋषि हैं । इनके साम्य का मात्र आत्रेय वंश ही है । गौरांगिरस सामवेद ४५८ के द्रष्टा हैं । अन्यत्र इनका वर्णन दुर्लभ है ।

६१.गौरिवीति शाक्त्य (३१९,३३१,५७८)- गौरिवीति को शक्ति गोत्रज होने के कारण शाक्त्य कहा जाता है । इनका उल्लेख ब्राह्मण ग्रंथों में भी यत्र-तत्र प्राप्त होता है ।ऋ० और साम० में ये मंत्रद्रष्टा के रूप में निरूपित हैं-**पंचोना गौरिवीतिः शाक्त्य ऐन्द्रमुशना ...शक्तिगोत्रोत्पन्नो गौरिवीतिर्नाम ऋषिः** (ऋ० ५.२९ सा० भा०)।

६२.चक्षुर्मानव (५६७) - चक्षुः एक ऋषि का नाम है ।मनुपुत्र होने से इन्हें मानव कहा जाता है । ऋ० एवं साम० के सूक्तों का इन्होंने दर्शन किया था-**प्रथमस्य ...चक्षुराख्य.. द्वितीयस्य मनुपुत्रश्चक्षुः** (ऋ० ९.१०६ सा० भा०)।

६३.जमदग्नि भार्गव (२५५, २७६, ४७३,४८९ आदि) - ऋग्वेद के एक देवशाखीय ऋषि जमदग्नि हैं, जहाँ उनका अनेक बार नामोल्लेख हुआ है । ऋग्वेद ३.६२.२४; ९.६५.२५ के अनुसार ऐसा लगता है, मानो वे सूक्त के रचयिता हों । अथर्ववेद, यजुर्वेद एवं ब्राह्मणों में प्रायः इनका उल्लेख है । इनके परिवार की सफलता और इनकी उन्नति का कारण 'चतूरात्र यज्ञ' बताया गया है । वे शुनःशेप के यज्ञ में पुरोहित थे तथा सप्त ऋषियों में से एक थे । कुछ मंत्रों का स्वतंत्र ऋषित्व जमदग्नि को प्राप्त है—**गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् । पातं सोममृतावृधा** —(ऋ० ३.६२.१८) । ऋ०९.६५ के आधार पर वरुण के पुत्र भृगु तथा भृगु के पुत्र जमदग्नि सिद्ध होते हैं - **वरुणपुत्रस्य भृगोरार्षं भार्गवस्य जमदग्नेर्वा** (सा०भा०)।

६४.जयऐन्द्र (१८७३) - ऋग्वेद एवं सामवेद में जय ऐन्द्र ऋषि के रूप में विवेचित हैं । ऐन्द्र विशेषण का प्रयोग अप्रतिरथ, जय, बरु, वसुक्र, वृषाकपि तथा सर्वहरि ऋषियों के साथ है । आचार्य सायण ने ऐन्द्र का अर्थ इन्द्रपुत्र किया है- **चतुर्थं सूक्तमिन्द्रपुत्रस्याप्रतिरथनाम्न आर्षं** (ऋ० १०.१०३ सा० भा०)।

६५.जेता माधुच्छन्दस (३४३, ३५९) - मधुच्छन्दस् का पुत्र होने के कारण इन्हें माधुच्छन्दस कहा गया है । ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में इन्हें ११७ वें सूक्त का ऋषि कहा गया है, वहाँ इन्हें जेतृ कहा गया है । जेता विभक्तिगत रूप (प्रथमा विभक्ति एकवचन) है- **'इन्द्रं विश्वा' इत्यष्टर्चस्य सूक्तस्य मधुच्छन्दसः पुत्रो जेतृनामक ऋषिः । तथा चानुक्रान्तम्- इन्द्रमष्टौ जेता माधुच्छंदस इति** (ऋ० १.११ सा० भा०)।

६६.तिरश्ची आंगिरस (३४६, ३४९, ३५०) - अनुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद के एक सूक्त ८.९५.४ के द्रष्टा एक ऋषि का नाम तिरश्ची है । इन्होंने उस सूक्त में इन्द्र से यह प्रार्थना की है कि वे उनकी प्रार्थना सुनें । पं० विं० ब्रा० १२.६.१२ में भी तिरश्ची आंगिरस नामक ऋषि का उल्लेख है । ऋग्वेद की ऋचाओं में इनका सुस्पष्ट उल्लेख किया गया है— **श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति । सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि** (ऋ०८.९५.४) **तिरश्चीर्नामाङ्गिरस ऋषिः** (ऋ० ८.९५ सा० भा०)।

६७.त्रसदस्यु पौरुकुत्स्य (१३६४-६६) - पुरुकुत्स के पुत्र त्रसदस्यु को ऋग्वेद ५.३३.८,७.१९.३, ४.४२.८ में पुरुओं का राजा कहा गया है । कुछ ब्राह्मणों में त्रसदस्यु पौरुकुत्स को, पर आट्णार, वीतहव्य श्रायस और कक्षीवन्त औशिज के साथ प्राचीन काल का प्रसिद्ध यज्ञकर्त्ता बताया गया है (पञ्च० ब्रा० २५.१६, काठ० सं० २२.३, तैत्ति०सं० ५.६.५.३)। त्रसदस्यु एवं इनके साथ उल्लिखित ऋषियों को राजा भी कहा गया है—**त्र्यरुणत्रसदस्यू राजानौ....... । एते त्रयोऽपि राजानः सम्भूयास्य सूक्तस्य ऋषयः** (ऋ० ५.२७ सा० भा०) । जहाँ अनेक द्रष्टा होते हैं, वहाँ प्रथम को प्रमुखता दी जाती है, अन्यों को गौण माना जाता है— **एवं विधेषु सूक्तेषु तस्मादेक ऋषिर्मतः प्रधानोऽन्ये त्वप्रधाना इति मन्यामहे वयम्**(आर्षा० ४.११) ।

६८.त्र्यरुणस्त्रैवृष्ण (१३६४, १३६५) - त्र्यरुण त्रिवृष्ण के पुत्र थे । ऋग्वेद ५ वें मण्डल के २७ वें सूक्त के ये द्रष्टा हैं। इस सूक्त के प्रथम एवं द्वितीय मंत्र में इनकी दानस्तुति प्राप्त होती है— **त्रैवृष्णस्त्रिवृष्णपुत्रस्त्र्यरुणस्त्र्यरुण इत्येतन्नामा राजर्षिः...** (ऋ० ५.२७.१ सा० भा०) ।

६९.त्रित आप्त्य (१०१, ३६८, ४१७, ४७१ आदि) - एकत, द्वित तथा त्रित ऋषियों को जल से उत्पन्न माना गया है । इस कारण इन्हें आप्य कहा गया । कालान्तर में तकार आगम से आप्त्य पद सिद्ध हुआ— **तत् एकतोऽजायत ... द्वितोऽजायत...त्रितोऽजायत । यद् अद्भ्योऽजायंत तद्आप्यानाम् आप्यत्वम्** (तैत्ति० ब्रा० ३.२.८.१०-११) । **तमेतमाप्त्यं ... तकारोपजनेन वयमधीमहे** (ऋ० १.१०५ सा० भा०) । ऋग्वेद में इनके कूप पतन का उल्लेख किया गया है—**अपां पुत्रस्य त्रितस्य कूपे पतितस्य कुत्सस्य वार्षं । .... त्रितः कूपेऽवहितः काटे निबाळ्ह ऋषिरह्वदूतय इति च** (ऋ० १.१०५ सा० भा०) ।

७०.त्रिशिरा त्वाष्ट्र (७१) - इन्हें त्वष्टा का पुत्र कहा गया है । ऋग्वेद दसवें मण्डल के नवम सूक्त का ऋषित्व त्रिशिरा को प्राप्त है ।जैसा कि आचार्य सायण ने लिखा है— **अम्बरीषस्य राज्ञः पुत्रः सिन्धुद्वीप ऋषिस्त्वष्टपुत्रस्त्रिशिरा वा** (ऋ० १०.९.१ सा० भा०) ।

७१.त्रिशोक काण्व (१३१, १३३, १३४) - ये एक प्राचीन देवशास्त्रीय ऋषि हैं, जिनका उल्लेख ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में मिलता है । गोत्र सुस्पष्ट न होने के कारण यह प्रतीत होता है कि ये कण्व के शिष्य थे । मंत्र द्रष्टा के रूप में इनका वर्णन ऋग्वेद के साथ-साथ सामवेद में भी है—**आ घ द्विचत्वारिंशत् त्रिशोक आद्यास्त्वैन्द्री । अनुक्तगोत्रत्वात्काण्वस्त्रिशोक ऋषिः** (ऋ० ८.४५ सा० भा०) ।

७२.दध्यङ्ङाथर्वण (१७७) - अथर्वन् गोत्रीय होने के कारण इन्हें यह नाम दिया गया है । इनका नाम अत्रि, कण्व, प्रियमेधादि ऋषियों के साथ विशेष रूप से लिया जाता है । दध्यङ् को अथर्वन् का पुत्र कहा जाता है, इनका वैदिक कर्मकाण्ड के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान है- **दध्यङ् हवा आभ्यामाथर्वणः** (शत० ब्रा० ४.१.५.१८) । **तमुत्वा दध्यङ् ऋषिः । पुत्र ईधे अथर्वण इति वाग्वै दध्यङ्ङाथर्वणः** (शत० ब्रा० ६.४.२.३) । अश्विनीकुमारों द्वारा इनकी सहायता का उल्लेख प्राप्त होता है ।

७३.दीर्घतमा औचथ्य (९७, १७५८-१७६०) - इन्हें ममता और उचथ का पुत्र माना गया है । ऋग्वेद १.१५८.१-६ में इनका एक गायक ऋषि के रूप में उल्लेख है, अन्यत्र भी मामतेय के रूप में इनका नाम आया है । ऐ० ब्रा० ८.२३ में इन्हें भरत का पुरोहित बताया गया है । ऋग्वेद तो इन्हें सुनिश्चित रूप से मन्त्र- द्रष्टा मानता है— **उचथ्यपुत्रस्य दीर्घतमस आर्षम् ।...सप्तोना दीर्घतमा औचथ्य आग्नेयं तु ...**(ऋ० १.१४० सा० भा०) ।

७४.दुर्मित्र अथवा सुमित्र कौत्स (२२८) - दुर्मित्र को कुत्सगोत्रीय माना गया है, ये अपने गुणों के कारण सुमित्र बन गये थे । ऋग्वेद इस तथ्य के प्रति सचेष्ट है तथा इसका वर्णन भी प्रस्तुत किया है— **शतं वा यदसुर्य प्रति त्वा सुमित्र इत्थास्तौद् दुर्मित्र इत्थास्तौत्**—(ऋ० १०.१०५.११) । सायण ने इस तथ्य का पूर्ण उद्घाटन कर दिया है कि दुर्मित्र सद्गुणों के कारण सुमित्र बन गये थे— **तदानीं सुमित्रो नाम्नेत्थम् 'अस्तौत्'। तथा दुर्मित्रो गुणत इत्थम् अस्तौत्। तद्विपरीतं वा द्रष्टव्यम्। सुमित्रो नाम्ना दुर्मित्रो गुणत इति कात्यायनेन तथोक्तेः** (ऋ० १०.१०५.११ सा० भा०) । ऋक्सर्वानुक्रमणी में ऋषि के सद्गुण एवं दुर्गुण के आधार पर नाम परिवर्तन की बात स्वीकार की गयी है— **कौत्सो दुर्मित्रो नाम्ना सुमित्रो गुणतः सुमित्रो वा नाम्ना दुर्मित्रो गुणतः** (ऋ० सर्वा०) ।

७५.दृढच्युत आगस्त्य (४७४) - ये अगस्त्य के वंशज हैं । जै० ब्रा० ३.२३३ में विभिन्दुकीयों के सत्र में दृढच्युत आगस्ति के उद्गातृ पुरोहित होने का उल्लेख है । अनुक्रमणी में, जहाँ पैतृक नाम आगस्त्य है, उन्हें ऋग्वेद के सूक्त ९.२५ का ऋषि माना है-.**प्रथमं सूक्तं दृळहच्युतनाम्नोऽगस्त्यपुत्रस्यार्षं गायत्रं** (ऋ० ९. २५ सा० भा०) ।

७६.देवजामय इन्द्रमातरः ऋषिकाः (१२०, १७५) - देवजामयः पद के साथ इन्द्रमातरः शब्द प्रयुक्त होता है, जिसको देव भगिनी कहा गया है । देवजामय को प्रातः सवन में प्रयुक्त होने वाले मंत्रों का द्रष्टा कहा गया है । इस मंत्र में कुछ ऋषिकाओं का वर्णन प्राप्त होता है, जो देवों की बहिनें तथा इन्द्र की मातायें हैं—**देवानां स्वसृभूता इन्द्रमातरो नामर्षिकाः । तथा चानुक्रान्तं - ईंखयन्तीर्देवजामय इन्द्रमातरो गायत्रमिति** (ऋ० १०.१५३ सा० भा०) । बृहद्देवता में भी इन ऋषिकाओं का विवेचन प्राप्त होता है—**इन्द्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रोमशोर्वशी** ... (बृह० २. ८३) ।

७७.देवातिथि काण्व (२७७, २७९, ३०८) - ये काण्व के वंशज हैं । पञ्च० ब्रा० ९.२.१९ में साम मन्त्रों के द्रष्टा एक ऋषि का नाम देवातिथि काण्व है । ये ऋग्वेद के एक सूक्त ८.४ के सम्मानित द्रष्टा हैं । इन मंत्रों के बल पर इन्होंने कूष्माण्डों को गौओं के रूप में बदल दिया था, जिससे वे अपने पुत्र के साथ मरुस्थल में भोजन पा सके थे, जहाँ कि शत्रुओं ने उन्हें डाल दिया था । ये ऋग्वेद एवं सामवेद के प्रतिष्ठित ऋषि हैं— .... **चतुर्थं सूक्तं काण्वगोत्रस्य देवातिथेरार्षम्** —(ऋ० ८.४ सा० भा०) ।

७८.द्वित आप्त्य (५७३,५७७) - द्वित आप्त्य ऋषि की चर्चा अनुक्रमणी ग्रन्थों में तो है, किन्तु इन्हें दो ही मन्त्रों के द्रष्टा होने का गौरव प्राप्त है । सामक्रमांक ५७३ तथा ५७७ पर अंकित मन्त्र ऋग्वेद के नवम मण्डल के १०३ वें सूक्त के प्रथम तथा तृतीय मन्त्र हैं, जिनके द्रष्टा के रूप में द्वित आप्त्य का नामोल्लेख है—**प्र पुनानायेति षड्चं सप्तमं सूक्तं आप्त्यस्य द्वितस्यार्षम्** ।.... **द्वितो नामर्षि स्वात्मानं प्रत्याह** (ऋ० ९.१०३ सा० भा०) ।

७९.द्वितमृक्तवाहा आत्रेय (८५) - एकत, द्वित तथा त्रित तीन भाइयों का उल्लेख वेदों में यत्र-तत्र प्राप्त होता है । ऋग्वेद के पंचम मण्डल के ये द्रष्टा हैं । मृक्तवाहा पद विशेषण है—**अत्रेयमनुक्रमणिका । प्रातर्मृक्तवाहा द्वित इति । मृक्तवाहा इति विशेषणविशिष्ट आत्रेयो द्वित ऋषिः** (ऋ० ५. १८ सा० भा०) ।

८०.द्युतान मारुत (३२३, ३२४, ३२६) - तैत्तिरीय संहिता ५.५.९.४ और काण्व संहिता ५.७ के अनुसार एक दैवी पुरुष का नाम द्युतान मारुत है । शतपथ ब्राह्मण-३.६.१.१६ में इन्हें वायु कहा गया है । जबकि पञ्चविंश ब्राह्मण १७.१.७ में उन्हें एक साम मन्त्र का रचयिता बताया गया है । अनुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद के एक सूक्त ८.९६ के द्रष्टा ऋषि हैं—**अस्मै सैका द्युतानो वा मारुतस्त्रैष्टुभं चतुर्थी ......द्युतानाख्यो मरुतां पुत्र ऋषिः** ... (ऋ० ८.९६ सा० भा०) । ऋक्सर्वानुक्रमणी में **'द्युतानो वा मारुतः'** कहकर इनका ऋषित्व स्वीकार किया गया है ।

८१.नकुल (४६४) - अथर्ववेद (४.११), सामवेद (३२१, ४६४) तथा यजुर्वेद (१३.३) में नकुल का उल्लेख किया गया है, इनके विकल्प के रूप में बृहस्पति ऋषि का उल्लेख किया गया है। इनके सम्बन्ध में अधिक विवरण प्राप्त नहीं होता।

८२.नहुष मानव (५४६) - मनु का पुत्र होने के कारण इन्हें मानव कहा जाता है। नहुष की गणना एक राजर्षि के रूप में की गयी है। इनको ९.१०१ सूक्त का ऋषि कहा गया है—**तृतीयस्य मनोः पुत्रो नहुषो नाम राजर्षिः। चतुर्थस्य संवरणाख्यस्य राज्ञः पुत्रो मनुः** (ऋ० ९.१०१ सा० भा०)।

८३.नारद काण्व (३८१) - अथर्ववेद में अनेक बार एक देवशास्त्रीय ऋषि के रूप में 'नारद काण्व' का नाम आया है। मैत्रायणी संहिता के १.५.८ में उन्हें एक आचार्य के रूप में तथा सामविधान ब्रा० ३.९ की वंश सूची में उन्हें बृहस्पति का शिष्य कहा गया है। छान्दोग्य उपनिषद् (७.११) में उनका उल्लेख सनत्कुमार के साथ हुआ है। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार इन्हें पर्वत के साथ हरिश्चन्द्र का पुरोहित माना जाता है। नारद का स्वतन्त्र ऋषित्व भी प्राप्त होता है-**'काण्वस्य नारदस्यार्षमौष्णिहमैन्द्रम्'** (ऋ० ८.१३ सा० भा०)।

८४.नारायण (६१७-६२१) - ऋग्वेदीय पुरुष सूक्त के ऋषि नारायण हैं। इसमें परम पुरुष के विराट् रूप की स्तुति है। पुरुष सूक्त प्रायः सभी वेदों में प्राप्त होता है। नारायण को ही सर्वत्र ऋषि के रूप में स्वीकार किया गया है — **त्र्यायुषं नारायणः** —(ऋ०सर्वा० पृ०.१२) ।**नारायणो नामर्षिरंत्या त्रिष्टुप्**(ऋ० १०.९० सा० भा०)।

८५.निध्रुवि काश्यप (४८३,४९२,४९३,५०१) - निध्रुवि काश्यप को ऋग्वेद नवम मण्डल के ६३ वें सूक्त का ऋषित्व पद प्राप्त है। आचार्य सायण ने इस सूक्त के प्रारंभ में लिखा है—**'आ पवस्व' इति त्रिंशत् ऋचं तृतीयं सूक्तं काश्यपस्य निध्रुवेः आर्षं** (ऋ०९. ६३ सा० भा०)। इसके अतिरिक्त सामवेद के मंत्र ४८३,४९२, ४९३, ५०१ आदि के द्रष्टा ऋषि के रूप में भी निध्रुवि काश्यप का नाम उल्लिखित है।

८६.नीपातिथि काण्व (३४८, १८०७-१८०९) - नीपातिथि द्वारा दृष्ट साम मंत्रों का उल्लेख पञ्चविंश ब्राह्मण में किया गया है तथा ऋग्वेद में भी इनका उल्लेख मिलता है—**यथा प्रावो मघवन्मेध्यातिथिं यथा नीपातिथिं धने**(ऋ० ८,४९,९)। नीपातिथि विशिष्ट याज्ञिक के रूप में भी ख्याति प्राप्त थे—**नीपातिथौ मघवन्मेध्यातिथौ पुष्टिगौ श्रुष्टिगौ सचा**(ऋ० ८,५१,१)

८७.नृमेध आंगिरस (२६७, २८३, ३११, ३८८ आदि) - ऋग्वेद के दशम मण्डल के १३२ वें सूक्त में सुमेध के साथ नृमेध का भी उल्लेख पाया जाता है। पञ्चविंश ब्राह्मण ८. ८. २१ के अनुसार वे एक साम द्रष्टा (२६७, २८३, ३११ आदि) आंगिरस ऋषि थे। ऋग्वेद के १०. ८०. ३ में अग्नि के एक कृपा पात्र के रूप में नृमेध आंगिरस का नाम उल्लिखित हुआ है—..... **अयमग्निर्नृमेधमेतन्नामकमृषिं प्रजया पुत्रादिलक्षणया समसृजत्**(ऋ० १०. ८०. ३ सा० भा०)।

८८.नोधा गौतम (२३६, २९६, ३१२, ५३८) - गोतम गोत्रीय के रूप में नोधस् ऋषि का नाम वर्णित है। ऋग्वेद के अनेक सूक्तों के द्रष्टा के रूप में इनका उल्लेख है—**नोधस आर्षमैन्द्रं त्रैष्टुभम्....। अस्य सूक्तस्य नोधा द्रष्टेत्येतद् ब्राह्मणे समाम्नायते** (ऋ० १. ६१ सा० भा०)।

८९.परुच्छेप दैवोदासि (२८७, ४५९, ४६१, ४६५) - दिवोदास का वंशज होने के कारण दैवोदासि कहा जाता है। पुराणों में भीमरथ के पुत्र तथा द्युमान् के पिता का नाम दिवोदास है। परुच्छेप को मंत्र द्रष्टा कहा है—**तत्परुच्छेपस्य शीलम्** (नि०१०. ४२) । **परुच्छेपस्य तन्नाम्नो मंत्रदृशः शीलम्** (नि० १०. ४२ दु०)।

ऋग्वेद १. १२७ वें सूक्त के ऋषि के रूप में इन्हीं का वर्णन प्राप्त होता है—... **सूक्तमेकादशर्चं दिवोदास पुत्रस्य परुच्छेपस्यार्षमाग्नेयमात्यष्टं** (ऋ० १. १२७ सा० भा०)।

१०.पराशर शाक्त्य (५२५,५२९,५३४,५४२) - ऋग्वेद ७. १८. २१ में शतयातु तथा वसिष्ठ के साथ पराशर का भी उल्लेख है। सात ऋग्वेदीय मंत्रों के सम्पादन में पराशर का भी नाम है। पराशर स्मृति की इन्होंने रचना की, जो वर्तमान युग के लिए बहुत उपयोगी है। पराशर, शक्ति के पुत्र तथा वसिष्ठ के पौत्र के रूप में वर्णित हैं—**पश्वा दश पराशरः शाक्त्यो द्वैपदं तदिति। शक्तिपुत्रः पराशर ऋषिः। तत्पुत्रत्वं च स्मर्यते - 'वसिष्ठस्य सुतः शक्तिः शक्तेः पुत्रः पराशरः' इति**(ऋ० १. ६५ सा० भा०)।

११.पर्वत काण्व (३८४, ३९४) - यद्यपि लुडविग ने इन्हें केवल एक यज्ञकर्ता ही माना है एवं इनकी उदारता की प्रशंसा की है; परन्तु अनुक्रमणी में इन्हें ऋग्वेद ८. १२. ९. १०४ - १०५ का ऋषि कहा गया है। पर्वत को भी कण्व गोत्रीय उल्लिखित किया गया है—**य इन्द्रेति त्रयस्त्रिंशदृचं सप्तमं सूक्तम् कण्वगोत्रस्य पर्वताख्यस्यार्षमौष्णिहमैन्द्रम्। तथा चानुक्रान्तं-य इन्द्र त्रयस्त्रिंशत् पर्वत औष्णिहं त्विति** (ऋ० ८. १२ सा० भा०)

१२.पर्वत और नारद काण्व (५६८- ५६९, ५७४- ५७५) - पर्वत काश्यप के पुत्र माने गये हैं तथा नारद के अत्यन्त घनिष्ठ मित्र हैं। इसीलिए इन दोनों ऋषियों का नाम एक साथ आता है। इन दोनों ऋषियों को कण्वगोत्रीय भी माना जाता है— **सखायः पर्वतनारदौ....** (ऋ० ९. १०४ सा० भा०),**तं व इति षड्चं द्वितीयं सूक्तं । पर्वतनारदयोरार्षम्** (ऋ० ९. १०५ सा० भा०)।

१३.पवित्र आंगिरस (५६५, ५९६) - पवित्र आंगिरस का ऋषि के रूप में उल्लेख बहुत कम प्राप्त होता है। ऋग्वेद के मण्डल ९, सूक्त ८३ के पहले तथा तीसरे मन्त्र में एक ऋषि के रूप में पवित्र आंगिरस का उल्लेख प्राप्त होता है- **पवित्रं त इति पंचर्चं षोडशं सूक्तं आंगिरसस्य पवित्रस्य आर्षं जागतं पवमानसोमदेवताकम्**(ऋ० ९. ८३ सा० भा०)। ऋग्वेद के ९. ६७ वें सूक्त के २२ से ३२ मंत्रों के द्रष्टा ऋषि के रूप में भी पवित्र आंगिरस का उल्लेख है—**सूक्तशेषस्यांगिरसः पवित्रो वसिष्ठो वोभौ वा समुदितावृषी** (ऋ० ९. ६७ सा० भा०)।

१४.पायुर्भारद्वाज (८०, ९५) - भारद्वाज ऋषि के एक पुत्र का नाम पायु भारद्वाज है— **.... चतुर्दशं सूक्तं भारद्वाजस्य पायोरार्षम् ।... जीमूतस्येवैकोना पायुर्भारद्वाजः** ...(ऋ० ६. ७५ सा० भा०) ऋषि पायु भारद्वाज द्वारा चौदह सूक्त दृष्ट हैं।

१५.पावक या बार्हस्पत्याग्नि या सहस् पुत्र गृहपति और यविष्ठ या अन्य (९४९, ९५०) - तीन विकल्पों वाले सामवेद के मंत्र ९५२-५४ के ऋषियों के रूप में पावक अग्नि अथवा बार्हस्पत्य अथवा सहस् पुत्र गृहपति और यविष्ठ अथवा इन दोनों से भिन्न का उल्लेख है। ऋग्वेद ८. १०२ सूक्त में भी कुछ इसी प्रकार का विकल्प है, किन्तु वहाँ विकल्प के रूप में प्रयोग भार्गव का भी नाम जुड़ा हुआ है, परन्तु साम के ये मंत्र उनसे भिन्न हैं। अथर्व० २. ५. १-३ में साम के ये मंत्र (९५२-५४) सामान्य पाठ भेद के साथ उद्धृत हैं, परन्तु वहाँ उन मंत्रों का ऋषित्व केवल आथर्वण भृगु को प्राप्त है।आचार्य सायण ने उपर्युक्त ऋषियों का ऋषित्व-विवेचन निम्न प्रकार किया है— **बार्हस्पत्यः पावकविशेषेण-विशिष्टोऽग्न्याख्यो वा। यद्वा। सहोनाम्नः पुत्रौ गृहपतियविष्ठसंज्ञकौ द्वावग्नी** (ऋ० ८. १०२ सा० भा०)

१६.पुरुमेध आङ्गिरस (२४८, २५७-५८, ६०१) - पुरुमेध ऋषि का गोत्र कथित नहीं है। अनुक्त गोत्रीय होने के कारण इन्हें आंगिरस माना गया है—**तौ चानुक्तत्वाद् आंगिरसौ...। तथा चानुक्रम्यते- बृहदिन्द्राय सप्त**

नृमेधपुरुमेधौ (ऋ०८. ८९ सा० भा०)। नृमेध, सुमेध इन दो ऋषियों को भी पुरुमेध के साथ ही वर्णित किया गया है। मात्र पुरुमेध दृष्ट मंत्रों का वेदों में अभाव है।

९७.पुरुहन्मा आंगिरस (२४३, २६८, २७३, २७८) - ऋग्वेद के ८. ७०. २ में किसी ऐसे ऋषि का नाम है, जो ऋग्वेद अनुक्रमणी के अनुसार आंगिरस कहे जाते थे; किन्तु पञ्चविंश ब्राह्मण (१४. ९. २९) के अनुसार वे एक वैखानस थे — **यो राजा पञ्चोना पुरुहन्मा बार्हतम्...। पुरुहन्मा ऋषिः ....। इति परिभाषयांगिरसः** (ऋ० ८. ७० सा० भा०)।

९८.पृथुर्वैन्य (३१६) - इनका एक विरुद 'वैन्य' अर्थात् वेन का पुत्र है। इन्हें प्रथम अभिषिक्त राजा कहा गया है। पुराणों में पृथु की कथा का विस्तार से वर्णन है। संसार ने पृथु की नर देवताओं के रूप में गणना की और देवताओं के समान ही उनकी पूजा की। पृथु आदर्श राजा के रूप में माने जाते हैं। ऋग्वेद में पृथु का दशम मण्डल में उल्लेख किया गया है— **सुष्वाणासः इति पंचर्चं विंशं सूक्तं वेनपुत्रस्य पृथोरार्षं त्रैष्टुभमैन्द्रम्। अनुक्रान्तं च- सुष्वाणासः पृथुर्वैन्य इति** (ऋ० १०. १४८ सा० भा०)।

९९.पृश्नि-अजा (८२३) - ऋग्वेद के दशम मण्डल के ८६ वें सूक्त के २९-३० मंत्र के ऋषि के रूप में इन्हीं का उल्लेख है। सायण ने अपने भाष्य में पृश्नि और अजा— इन दो नाम वाले ऋषि का उल्लेख किया है तथा ऋषि समूह के दो नामों का प्रयोजन अदृष्ट बतलाया है— **तृतीयस्य दशर्चस्य पृश्नय इत्यजा इति च नामद्वयोपेता ऋषिगणाः । अदृष्टार्थम् एषां द्विनामत्वम् अवगन्तव्यम्** (ऋ० ९. ८६ सा० भा०)।

१००.पृषध्र काण्व (४४७) - ऋग्वेद के वालखिल्य सूक्त में 'पृषध्र' का नाम बड़े सम्मान के साथ उल्लिखित हुआ है— **पृषध्रे मेध्ये मातरिश्वनीन्द्र सुवाने अमन्दथाः** (ऋ० ८. ५२. २) ।पृषध्र काण्व का ऋषित्व अत्यल्प है। मात्र एक सूक्त के द्रष्टा होने का गौरव इन्हें प्राप्त है, वह सूक्त है—ऋ० ८. ५६। इसी सूक्त का पंचम मंत्र सामवेद के ४४७ वें क्रम में उद्धृत हुआ है।

१०१.प्रगाथ काण्व (१४२, ३५५) - द्र०- प्रगाथ घौर काण्व।

१०२.प्रगाथ घौर काण्व (२४२, ३९१) - ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के द्रष्टा ऋषियों को 'प्रगाथ' की संज्ञा प्राप्त है। इनमें मेधातिथि, मेध्यातिथि, घौर, काण्व आदि नाम हैं। इसमें प्रथम सूक्त के प्रथम मन्त्र के द्रष्टा प्रगाथ और काण्व का ही उल्लेख है—**'आद्यस्य द्वयृचस्य तु घोरस्य पुत्रः स्वकीयभ्रातुः कण्वस्य पुत्रतां प्राप्तत्वात्काण्वः प्रगाथाख्य ऋषिः** (ऋ० ८. १ सा० भा०)।

१०३.प्रजापति वैश्वामित्र अथवा प्रजापति वाच्य (५५३) - ऋग्वेद नवम मण्डल एक सौ एक सूक्त के तेरहवें- सोलहवें मन्त्र के द्रष्टा ऋषि के रूप में प्रजापति वैश्वामित्र या प्रजापति वाच्य का उल्लेख प्राप्त होता है-**शिष्टस्य चतुर्ऋचस्य वाचः पुत्रो वैश्वामित्रो वा प्रजापतिर्ऋषिः** (ऋ० ९. १०१ सा० भा०)। यजु, साम तथा अथर्व के अनेक मन्त्रों के ऋषि प्रजापति हैं, किन्तु उनके साथ अनुक्रमणी में इन विशेषणों का प्रयोग नहीं है।

१०४.प्रतर्दन दैवोदासि (५२७, ५३२, ५३३) - प्रतर्दन दैवोदासि ऋषि का उल्लेख कम स्थानों पर ही प्राप्त होता है। इनका विशेष रूप से उल्लेख ऋग्वेद के नवम मण्डल के ९६ वें सूक्त में हुआ है। इन्हें इसी मण्डल और सूक्त के कतिपय मन्त्रों के द्रष्टा होने का गौरव प्राप्त है, जो साम क्रमांक ५२७, ५३२, ५३३, ९४३, ९४५ आदि में भी संगृहीत हैं। ऋग्वेद के उक्त सूक्त की भूमिका में सायणाचार्य ने लिखा है—......

चतुर्विंशत्यृचमेकादशं सूक्तं दिवोदासपुत्रस्य प्रतर्दनाख्यस्य राजर्षेरिदम्। ...... 'प्र सेनानीश्चतुर्विंशतिर्दैवोदासिः प्रतर्दनः' इति। (ऋ० ९. ९६ सा० भा०)।

१०५.प्रथ वासिष्ठ (५९९) - मन्त्र द्रष्टा के रूप में प्रथ वासिष्ठ अधिक प्रथित नहीं हैं। ऋग्वेद के दशम मण्डल के सू०१८१ के प्रथम मन्त्र का ऋषित्व इन्हें प्राप्त है— **तृचं त्रिंशं सूक्तं वैश्वदेवं त्रैष्टुभम्। वासिष्ठः प्रथसंज्ञ ऋषिः प्रथमायाः तथा चानुक्रान्तम्-प्रथश्चैकर्चाः प्रथो वासिष्ठः**(ऋ० १०. १८१ सा० भा०)।

१०६.प्रभूवसु आंगिरस (४९०) - प्रभूवसु आंगिरस का ऋग्वेद के पंचम मंडल तथा नवम मण्डल के अन्तर्गत ऋषित्व उल्लिखित है। ऋग्वेद के नवम मण्डल के ३५-३६ वें सूक्त के द्रष्टा होने के सम्बन्ध में आचार्य सायण ने लिखा है कि 'आ न' इत्यादि षड् ऋचाओं के मन्त्रद्रष्टा ऋषि आंगिरस प्रभूवसु हैं—**'आ न इति षड्चं एकादशं सूक्तं आंगिरसस्य प्रभूवसोः आर्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकम्** (ऋ० ९. ३५ सा० भा०)।

१०७.प्रयोग भार्गव (१३, १८, १९, २१, १०७) - प्रयोग भार्गव ऋषि का नाम ऋग्वेद के एक सूक्त (८. १०२) के प्रथम ऋषि के रूप में उल्लिखित है, जबकि उस मन्त्र के द्रष्टा ऋषि के रूप में अन्य चार विकल्प और भी बताये गये हैं- **.... भृगु गोत्रः प्रयोगो नामर्षिः ।....त्वमग्ने द्व्यधिका भार्गवः प्रयोगो बार्हस्पत्यो वाग्निः** (ऋ० ८. १०२ सा० भा०)।

१०८.प्रस्कण्व काण्व (३१, ४०, ५०, ९६, १७८, २२१ आदि) -अनुक्रमणी के अनुसार प्रस्कण्व काण्व ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के ४४ से ५० सूक्तों के द्रष्टा सिद्ध होते हैं— **अत्रानुक्रमणिका-अग्ने षळूना प्रस्कण्वः काण्व आग्नेयं तु प्रागाथमाद्यो ... । कण्वपुत्रः प्रस्कण्व ऋषिः** (ऋ० १. ४४ सा० भा०)।

१०९.बन्धु , सुबन्धु , श्रुतबन्धु , विप्रबन्धु गौपायन या लौपायन (४४८-५०) - अनुक्रमणीकार ने ऋ० ५.२४ के दो मन्त्रों के लिए चार ऋषियों का ऋषित्व स्वीकार किया है। साथ ही यह भी कहा है कि यहाँ चार द्विपदा ऋचायें हैं तथा एक-एक ऋचा के ऋषि क्रमशः बन्धु, सुबन्धु आदि होंगे। इसी कारण इन ऋषियों को 'एकर्चाः' कहा गया है। ऋग्वेद में यह प्रसंग इस प्रकार विवेचित है- **...अग्ने त्वं गौपायना लौपायना वा बंधुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्चैकर्चा द्वैपदमिति...**(ऋ० ५.२४ सा० भा०)।

११०.बालखिल्य* (वालखिल्य) (२३५, २८२, ३००) - पुराणों में बालखिल्य ऋषियों की संख्या ६० हजार मानी गयी है तथा इन्हें ब्रह्मा के रोम से उत्पन्न माना गया है। इन ऋषियों का आकार बहुत ही छोटा है। प्रत्येक ऋषि की ऊँचाई मात्र अँगूठे के बराबर मानी गई है। इन्हें वालखिल्य (ऋग्वेद) सूक्तों का द्रष्टा कहा गया है। *वैदिक यन्त्रालय, अजमेर से प्रकाशित सामवेद संहितानुसार।

१११.बिन्दु अथवा पूतदक्ष आंगिरस (१४९, १७४) - बिन्दु आंगिरस अथवा पूतदक्ष आंगिरस को ऋ० ८.९४ का ऋषित्व प्राप्त है। इस पूरे सूक्त में बिन्दु का नाम तो कहीं नहीं मिलता है, ऋ० ९.३० में बिन्दु का ऋषित्व अवश्य मिलता है— **'प्र धाराः' इति षड्ऋचं षष्ठं सूक्तं बिन्दुनाम्न आंगिरसस्यार्षं... 'प्रधारा बिन्दु' इत्यनुक्रमणिका** (ऋ० ९. ३० सा० भा०)। पूतदक्ष के सम्बन्ध में इतना जानना ही पर्याप्त है कि यहाँ (८.९४.१०) 'पूतदक्षसः' शब्द प्रयुक्त हुआ है, परन्तु यह शब्द 'पूतदक्ष' न होकर 'पूतदक्षस्' का द्वितीया बहुवचनान्त रूप है, जिसे सायण ने ऋषिवाचक नहीं माना है। आचार्य सायण ने लिखा है— **'पूतदक्षसः परिशुद्धबलान् ...'**।

११२. बुध-गविष्ठिर आत्रेय (७३) - आत्रेय बुध और गविष्ठिर का ऋषित्व ऋग्वेद के पंचम मंडल के प्रथम सूक्त का है। उन दोनों ऋषियों को, इस मण्डल में गोत्र नाम अनुल्लिखित होने के कारण 'आत्रेय' मान लिया गया

है—अत्रेयमनुक्रमणिका- "अबोधि द्वादश बुधगविष्ठिरौ" इति। पंचमे मण्डलेऽनुक्तगोत्रम् आत्रेयं विद्याद् इति परिभाषितत्वाद् आत्रेयौ बुधगविष्ठिावृषी (ऋ० ५. १ सा० भा०)। ऋग्वेद ५.१.१२ में केवल गविष्ठिर का ही नाम मिलता है।

११३.बृहद्दिव आथर्वण (१४८३-८५) - अथर्वन् गोत्रोत्पन्न बृहद्दिव को दशम मण्डल के मंत्रों का द्रष्टा कहा गया है—.... **एवा महान्बृहद्दिवो अथर्वावोचत्स्वां...** (ऋ० १०. १२०. ९) इसका भाष्य करते हुए आचार्य सायण ने लिखा है— **अथर्वणः पुत्रो बृहद्दिवाख्य ऋषिर्देवेषु.....** (ऋ० १०. १२०. ९ सा० भा०)। शांखायन आरण्यक (१५.१) के अनुसार बृहद्दिव को सुमन्यु का शिष्य बताया गया है।

११४.बृहदुक्थ वामदेव्य (६५, ३२५) - वामदेव का पुत्र होने के कारण इन्हें वामदेव्य कहा जाता है। वामदेव स्वयं वाम्नि के वंशज थे। इन्हें याज्ञिक पुरोहित के रूप में भी वेदों में निरूपित किया गया है- **बृहदुक्थो बृहत्स्तोत्राः** —(ऋ० ५. १९. ३ सा० भा०)। बृहदुक्थ वामदेव्य को मंत्रद्रष्टा के रूप में वेदों में सुस्पष्ट रूपेण उल्लिखित किया गया है—**ब्रह्मकृतो बृहदुक्थादवाचि** (ऋ० १०.-५४. ६) ।इसका भाष्य इस प्रकार है — **ब्रह्मकृतो मंत्रकृतो बृहदुक्थात् प्रभूतशस्त्रयुक्तादेतन्नामकादृषेर्मत्तोऽवाचि** (ऋ० १०. ५४. ६ सा० भा०)।

११५.बृहन्मति आंगिरस (४८८) - ऋग्वेद के नवम मण्डलान्तर्गत ३९-४० वें सूक्त के मन्त्र द्रष्टा के रूप में बृहन्मति आंगिरस का उल्लेख प्राप्त होता है। आचार्य सायण ने ३९ वें सूक्त के प्रारम्भ में लिखा है—**आशुरर्षेति षडृचं पंचदशं सूक्तम् आंगिरसस्य बृहन्मतेरार्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकम्। आशुरर्ष बृहन्मतिरित्यनुक्रान्तम्** (ऋ०९. ३९ सा० भा०)। इसके अतिरिक्त इन्हें साम० ४८८,८९८,९२४-२६ का ऋषित्व भी प्राप्त है।

११६.बृहस्पति (३२१) - बृहस्पति को मंत्रों का द्रष्टा कहा गया है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के ७१ तथा ७२वें सूक्त का ऋषित्व इन्हें प्राप्त है, जैसा कि आचार्य सायण ने लिखा है— **बृहस्पत इत्येकादशर्चं तृतीयं सूक्तं आंगिरसस्य बृहस्पतेरार्षम्**(ऋ० १०.७१ सा० भा०)।

११७.ब्रह्मातिथि काण्व (२११) - ब्रह्मातिथि कण्वगोत्रीय ऋषि हैं। अतएव इनके नाम के आगे काण्व भी लगाया जाता है। ऋग्वेद ८. ५ सूक्त के ऋषि के रूप में इनका वर्णन प्राप्त होता है। सामवेद में मात्र एकस्थल पर ही इनका ऋषित्व संप्राप्य है-....**पञ्चमं सूक्तं कण्वगोत्रस्य ब्रह्मातिथेरार्षं .... दूरादेकान्नचत्वारिंशद् ब्रह्मातिथिराश्विनम्...**(ऋ० ८. ५ सा० भा०)।

११८.भरद्वाज बार्हस्पत्य (१, २, ४, ७, ९, २२, २५ आदि) - ऋग्वेद के षष्ठ मण्डल तथा सामवेद के कई मन्त्रों के द्रष्टा के रूप में इनका नाम प्रख्यात है। इन्हें बृहस्पति का पुत्र तथा आंगिरस का पौत्र कहा गया है। इन ऋषियों का एक समूह है, जिनमें अनेक ऋषियों की समष्टि समाहित है। धन-धान्य सम्पन्न होने के कारण इन्हें भारद्वाज कहा जाता है— **भरद्वाजस्य वाजभृद्वाजकर्मीयं वा**(आ० ब्रा० [illegible].२.२)। भरद्वाज दिवोदास के पुरोहित थे। इन्होंने प्रतर्दन को अपना राज्य दे दिया था।

११९.भर्ग प्रागाथ (३६, ४६, २४०, २५३, २७४, २९०) - बृहती ककुभ तथा सतोबृहती छन्दों का सामूहिक नाम प्रगाथ है। सामवेद में इसकी बहुलता है। इन छन्दों की रचना करने वाले ऋग्वेदीय अष्टम मण्डल के ऋषि भी प्रगाथ कहे जाते हैं। भर्ग प्रागाथ, प्रगाथ परम्परा के ऋषि हैं- **प्रथमं सूक्तम् प्रगाथपुत्रस्य भर्गस्यार्षमाग्नेयं।... अग्न आ विंशतिर्भर्गः प्रागाथ आग्नेयं प्रागाथं त्विति** (ऋ० ८. ६० सा० भा०)।

१२०.भुवन आप्त्य साधन (४५२) - भृगु के १२ पुत्रों का वर्णन प्राप्त होता है। भुवन इन्हीं १२ पुत्रों में से एक हैं। भृगु देवों में भुवन ने विशेष ख्याति अर्जित की। तीन ऋषियों के समूह को आप्त्य कहा जाता है— **ततः आप्त्याः संबभूवुस्त्रितो द्वितः एकतः**(शत० ब्रा० १. २. ३. १) ।भृगु पुत्रों में भुवन प्रमुख हैं। 'भुवन आप्त्य साधन' ऋषियों का एक समूह है। मंत्र द्रष्टा के रूप में इनका प्रायः उल्लेख मिलता है— **पंचचं षष्ठं सूक्तमप्त्यपुत्रस्य भुवनस्यार्षं भुवनपुत्रस्य साधनसंज्ञस्य.....** (ऋ० १०.१५७ सा०भा०)।

१२१.भृगु वारुणि (४६९,४८०,४९८,५०३) - ये वरुण के पुत्र कहे गये हैं— **भृगुर्ह वै वारुणिः। वरुणं पितरं विद्ययातिमेने...**(शत० ब्रा० ११. ६. १. १) । अतएव वारुणि इनका पैतृक नाम है। इनके मंत्र द्रष्टा होने के संदर्भ में आचार्य सायण लिखते हैं— **वरुणपुत्रस्य भृगोरार्षम्....** (ऋ० ९.६५ सा०भा०) ।

१२२.(विश्वकर्मा) भौवन (१५८९) - भुवन के वंशज को भौवन कहते हैं। विश्वकर्मन् का पैतृक नाम भी भौवन है- **विश्वकर्मा ह भौवनः। भौवनः भुवनस्य पुत्रः विश्वकर्मा एतन्नामकर्षि** (नि० १०. २६ दु०) **विश्वकर्मन्भौवनमन्द आसिष...**(शत० ब्रा० १३.७.१.१५) । सायण ने भी इनके सम्बन्ध में लिखा है— **त्रयोदशं सूक्तं भुवनपुत्रस्य विश्वकर्मण आर्षम्।** (ऋ० १०. ८१ सा० भा०)।

१२३.मधुच्छन्दा वैश्वामित्र (१४,१२९,१३०,१६०,१६४ आदि) - मधुच्छन्दा की गणना प्रमुख ऋषियों में की गयी है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के दस सूक्त इन्हीं के द्वारा दृष्ट बताये गये हैं— **अग्निं नव मधुच्छन्दा वैश्वामित्र इत्यनुक्रमणिकायामुक्तत्वात्। विश्वामित्रपुत्रो मधुच्छन्दो नामकस्तस्य....** (ऋ० १.१ सा०भा०)। शतपथ ब्राह्मण में इनके 'प्र उ ग' (प्रातः सवन सूक्त) का उल्लेख किया गया है— **प्रउगं माधुच्छन्दसं...। प्रउगे कामो य उ च माधुच्छन्दसे तयो रुभयोः कामयोराप्त्यै क्लृप्तं प्रातः सवनम्** (शत० ब्रा० १३.५.१.८)। मधुच्छन्दा को विश्वामित्र का पुत्र माना जाता है। विश्वामित्र की १०१ सन्तानों में वह बीच की सन्तान अर्थात् ५१ वीं संतान थे।

१२४.मनुराप्सव (५७१) - मनुराप्सव ऋग्वेद और सामवेद के ऋषि हैं। अप्सु-पुत्र के रूप में ये प्रसिद्ध हैं— **अप्सुनाम्नः पुत्रो मनुस्तृतीयस्य।.... मानवो मनुराप्सव इति** (ऋ० ९. १०६ सा० भा०)।

१२५.मनु वैवस्वत (४८) - विवस्वान् नाम आदित्य का है। विवस्वान् से मनु की उत्पत्ति हुई थी। इस तथ्य का उल्लेख अनेक स्थलों पर किया गया है- **एवं देव्यावरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः। सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः** (दु०स०, देवीमाहात्म्य अंतिम अंश) ।**विवस्वान् मनवे प्राह**—(भ०गी०४.१) ।कुछ लोगों ने मनु को विवस्वान् का शिष्य कहा है। ऋग्वेद में इनकी संस्कृति के रूप में यम-यमी का उल्लेख है— **वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य** (ऋ० १०. १४. १) ।मनु वैवस्वत का ऋषित्व स्वीकार करते हुए आचार्य सायण लिखते हैं— **मरीचिपुत्रः कश्यपो वैवस्वतो मनुर्वा ऋषिः** (ऋ० ८. २९ सा० भा०)।

१२६.मनु सांवरण (५४८) - संवरण नामक राजा के पुत्र होने के कारण इनका उपर्युक्त नामकरण किया गया है। आचार्य सायण ने इस तथ्य का उद्घाटन किया है। सामवेद तथा ऋग्वेद में मनु सांवरण का ऋषित्व निरूपित किया गया है- **चतुर्थस्य संवरणाख्यस्य राज्ञः पुत्रो मनुः ..नहुषो मानवो मनुः सांवरण इति.** (ऋ०९.१०१ सा० भा०)

१२७.मन्यु वासिष्ठ (५४०) - इनका ऋषित्व अत्यल्प ही प्राप्त होता है। ऋग्वेद के केवल तीन मंत्रों में से एक मंत्र सामवेद में संगृहीत हुआ है। मन्यु ऋषि का वर्णन ऋग्वेद नवम मण्डल के ९७वें सूक्त में किया गया है जहाँ वे मंत्र द्रष्टा के रूप में वर्णित हैं- **चतुर्थस्य मन्युः.... एते सर्वे वसिष्ठगोत्राः**(ऋ० ९. ९७ सा० भा०)।

१२८.मान्धाता यौवनाश्व (१०९०,९२) - सूर्यवंशी राजाओं में युवनाश्व का नाम प्रख्यात है । महाराजा मान्धाता इन्हीं के पुत्र थे । पुत्रेष्टि यज्ञ के फलस्वरूप इनकी उत्पत्ति हुई थी । इनकी गणना योगी राजाओं में होती थी । इन्हें ऋग्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का मंत्रद्रष्टा ऋषि कहा गया है— **युवनाश्वपुत्रस्य मान्धातुरार्षम्।.... उभे यन्मान्धाता यौवनाश्वो....** (ऋ०१०. १३४ सा० भा०) ।

१२९.मेधातिथि काण्व (३,१६, ३२,१३९ आदि) - मेधातिथि काण्व को ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के १२वें सूक्त तथा इसी मंडल के २३ वें सूक्त का ऋषित्व पद प्राप्त है । आचार्य सायण ने इस तथ्य का उल्लेख करते हुए लिखा है—**तत्र अग्निं दूतं इत्यादिकस्य द्वादशर्चस्य प्रथमसूक्तस्य कण्वपुत्रो मेधातिथिर्ऋषिः** (ऋ० १. १२ सा० भा०); **'ऋषिश्चान्यस्मात्** (अनु० १२.२); **इति परिभाषयानुवर्तनान्मेधातिथिः काण्व ऋषिः** (ऋ० १.२३ सा० भा०) । मेधातिथि काण्व को वैदिक साहित्य के अन्तर्गत विशेष ख्याति प्राप्त है । शताधिक सूक्तों व मन्त्रों के आप मान्य ऋषि हैं ।

१३०.मेधातिथि काण्व और प्रियमेध आंगिरस (१२३, १२४, १५७ आदि) - ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के दूसरे सूक्त के १ से ४० मन्त्रों का साक्षात्कार मेधातिथि काण्व तथा प्रियमेध आंगिरस दोनों ने संयुक्त रूप से किया है— **'तथा चानुक्रान्तम्-इदं वसो द्विचत्वारिंशन्मेधातिथिरांगिरसश्च प्रियमेधः ... मेधातिथिर्विभिंदोर्दानम्....** (ऋ० ८. २ सा० भा०) । अथर्ववेद २०.१८.१ में इस सूक्त के तीन मन्त्र संगृहीत हैं, जिनके ऋषि मेधातिथि काण्व और प्रियमेध आंगिरस ही हैं ।

१३१.मेध्य काण्व (२८२) - कण्व- गोत्रीय होने से इनके नाम के साथ काण्व विशेषण सम्बद्ध किया जाता है । ऋग्वेद में मेध्य काण्व द्वारा दृष्ट सूक्त (८.५३; ५७-५८) वालखिल्य सूक्त के नाम से प्रख्यात हैं । आचार्य सायण ने जिनका भाष्य प्रस्तुत नहीं किया है, परन्तु राजकीय संस्कृत पाठशाला-वाराणसी की प्राप्त हुई ज्ञ- संज्ञक पुस्तक में वालखिल्य सूक्तों का भाष्य उपलब्ध होता है- **'उपमं त्वा' इत्यष्टर्चं पञ्चमं सूक्तं काण्वस्य मेध्यस्यार्षम् । अनुक्रान्तं च-'उपमं त्वाष्टौ मेध्यः' इति** (ऋ०८.५३) ।

१३२.मेध्यातिथि काण्व (२४९, २५१ आदि) - इनका नाम काण्ववंशीय ऋषि परम्परा के अन्तर्गत निरूपित है-.... **परमज्या मघस्य मेध्यातिथे** (ऋ०८. १.३०) । याज्ञिक कार्यों में इन्हें संभवतः अतिथि सत्कार का कार्य सौंपा जाता था । यही इनके नामकरण का कारण है । इनके समक्ष एक बार इन्द्र मेष रूप में प्रकट हुए थे । सोम सवन के समय यह कथा प्रचलित है— **काण्वं मेध्यातिथं । मेषो भूतोऽभि यन्नयः** (ऋ० ८. २ ४०) इसी मंत्र का भाष्य करते हुए आचार्य सायण ने लिखा है— **धीवन्तं स्तुतिमन्तं काण्वं कण्वपुत्रं मेध्यातिथिं .... वज्रवन्निन्द्र मेषो भूतो मेषरूपतां प्राप्तोऽभियन्नभिगच्छन् ।**

१३३.यजत आत्रेय (११४३-४५) - यजत आत्रेय ऋषि को ऋग्वेद के पंचम मण्डल के अन्तर्गत ६७-६८ वें सूक्त का ऋषित्व पद प्राप्त है । इसका उल्लेख वेदों के प्रमुख भाष्यकार आचार्य सायण ने अपने भाष्य में किया है- **...अत्रेयमनुक्रमणिका । बळित्था पंच यजत इति । यजतो नामात्रेय ऋषिः** (ऋ०५. ६७ सा० भा०) । इसके अतिरिक्त यजत आत्रेय को साम मन्त्र ११४३-४५, १४७१-७३ का ऋषित्व पद भी प्राप्त है ।

१३४.ययाति नाहुष (५४७) - 'नाहुष' नाम व्यक्तिवाचक माना जाता है । इस पद का अर्थ नहुष जन से संबद्ध या नहुषों का राजा है । ययाति नहुष के वंशज हैं । ययाति-नाहुष को यज्ञकर्ता भी कहा गया है । मनु के पुत्र का नाम नहुष था तथा नहुष के पुत्र का नाम ययाति था; जैसा कि भाष्यकार आचार्य सायण ने लिखा

है— **द्वितीयस्य नहुषस्य राज्ञः पुत्रो ययातिर्नाम। तृतीयस्य मनोः पुत्रो नहुषो नाम राजर्षिः... ययातिर्नाहुषो नहुषो मानवो ....** (ऋ० ९. १०१ सा० भा०)।

१३५.रहूगण आङ्गिरस (१२७४-७९) - अङ्गिरस् गोत्रोत्पन्न रहूगण का ऋषित्व सामवेद के अनेक मन्त्रों तथा ऋग्वेद के दो सूक्तों ९.३७-३८ में दृष्टिगोचर होता है। ये सप्तर्षियों में प्रसिद्ध गोतम राहूगण के पिता थे। रहूगण वंशजों को ऋ० १.७८.५ में 'रहूगणाः' पद से उल्लिखित किया गया है और गोतम वंशजों को ऋ० १.७८.१; १.६०.५ आदि में 'गोतमाः' पद से वर्णित किया गया है। पौराणिक सन्दर्भ के अनुसार यह शतानन्द की माता अहल्या का ही नाम था। आचार्य सायण ने इनका ऋषि विवेचन इस प्रकार अभिहित किया है- **'स सुतः' इति षड्चं त्रयोदशं सूक्तं रहूगणस्यार्षं गायत्रं सौम्यम्**(ऋ० ९.३७ सा० भा०)।

१३६.रेणु वैश्वामित्र (३३९,५६०) - विश्वामित्र की सन्तति के कारण रेणु को वैश्वामित्र कहा गया है। विश्वामित्र की अनेक संतानों में रेणु का प्रमुख स्थान था। **अथ ह विश्वामित्रः पुत्रानामन्त्रयामास—मधुच्छन्दाः शृणोतन ऋषभो रेणुरष्टकः—** (ऐत०ब्रा० ३३. ५)।

१३७.रेभ काश्यप (२५४, २६०, २६४, ३७०, ४६० आदि) - रेभ को अश्विनों का विशेष कृपापात्र कहा गया है। जिसकी अश्विनों ने समय-समय पर अत्यधिक सहायता की थी। इनके ऋषित्व का प्रतिपादन कई प्रमाणों से हो जाता है— **'या इन्द्र' इति पञ्चदशर्चं चतुर्थं सूक्तं काश्यपस्य रेभष्यषिमैन्द्रम्** (ऋ० ८.९७ सा० भा०);**रेभमेतत्संज्ञमृषिम्**(ऋ० १.११.५ सा० भा०); **विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तम्**(ऋ० १.११६.२४); **नरा वृषणा रेभमप्सु...** (ऋ० १.११७.४)। कश्यप का वंशज होने के कारण इन्हें काश्यप कहा गया है।

१३८.रेभसूनू काश्यप (५५०,५५१) - रेभ के दो पुत्रों का वर्णन है, जो कश्यप गोत्रीय हैं। सायण ने रेभसूनू पद को संज्ञावाची माना है- **कश्यपगोत्रौ रेभसूनू एतत्संज्ञौ द्वावृषी** (ऋ० ९.९९); ऋग्वेद के अनेक स्थलों पर कुएँ में फेंके गये रेभ की अश्विनीकुमारों की बात कही गयी है।**याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्यः** (ऋ० १.११२.५); **पुरा खलु रेभमृषिं पाशैर्बद्ध्वासुराः कूपे..... प्रचिक्षिपुः** (ऋ० १.११६.२४ सा० भा०)।

१३९.वत्स काण्व (८, २०, १३७, १४३ आदि) - वत्स के वंशज या कण्व के पुत्र को वत्स काण्व कहा जाता है। ऋग्वेद में इनका ऋषित्व सिद्ध है— **स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे** (ऋ० ८.६.१) ।इसी सन्दर्भ में सायण ने लिखा है— **प्रथमं सूक्तं काण्वस्य वत्सस्यार्षम् गायत्रम्** (ऋ० ८.६ सा० भा०); **पुत्रः कण्वस्य वामृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत्** (ऋ० ८.८.८); **युवं वत्सस्य गंतमवसे** (ऋ० ८.९. १)। मेधातिथि से विवाद होने पर वत्स ने अपने वंश की पवित्रता सिद्ध की थी।

१४०.वत्सप्रि भालन्दन (७४,७७,५६३) - वात्सप्र नामक साम-मंत्रों का दर्शन करने के कारण इन्हें वत्स-प्री कहा जाता है तथा भलन्दन का वंशज होने के कारण इन्हें भालन्दन कहा जाता है।आचार्य सायण ने इनके ऋषित्व को प्रमाणित करते हुए लिखा है— **भलन्दनपुत्रस्य वत्सप्रेरार्षं .... प्र देवं दश वत्सप्रिर्भालन्दनस्त्रिष्टुबन्तं हेति** (ऋ० ९.६८ सा० भा०)।

१४१.वसिष्ठ मैत्रावरुणि (२४, २६, ३८, ४५, ५५ आदि) - मैत्रावरुण को यज्ञों का प्रणेता कहा गया है—**प्रणेता ह वा एष होत्रकाणां यन्मैत्रावरुणः** —(ऐत०ब्रा० ६. ६)। वसिष्ठ की गणना सप्तर्षियों में की गयी है। वसिष्ठ मैत्रावरुणि को ब्रह्मज्ञाता और ब्रह्मलोक-निवासी कहा जाता है। वसिष्ठ को मित्र और वरुण

का पुत्र कहा जाता है। इन्हें अनेक सूक्तों का द्रष्टा कहा गया है (ऋग्वेद ७. १-३२-३३,१-२; ९. ६७. १९-३२, साम० २४, २६, ३८, ४५ आदि)।

१४२.वसुकृत्-वासुक्र (३३४) - वसुकृत् ऋषि का वर्णन सामवेद तथा ऋग्वेद में प्राप्त होता है। इन्हें वसुक्र का पुत्र कहा गया है— **प्राजापत्य ऐन्द्रो वा विमदो वा वासुक्रो वसुकृद्वर्षि:** (ऋ० १०. २५ सा०भा०); **वसुक्र पुत्रो वसुकृदाख्यो वा** (ऋ० १०. २० सा० भा०)।

१४३.वसुश्रुत आत्रेय (४१९,४२५) - आत्रेय गोत्र का नाम है। आत्रेय गोत्रीय वसुश्रुत ऋषि सामवेदीय मंत्रों के द्रष्टा कहे गये हैं— **तृतीयं सूक्तमात्रेयस्य वसुश्रुतस्यार्षं त्रैष्टुभमाग्नेयं। त्वमग्ने वसुश्रुत इत्यनुक्रान्तम्** (ऋ० ५. ३ सा०भा०)।

१४४.वसूयव आत्रेय (८६) - वेदों में वसूयु नाम वाले अनेक ऋषियों का वर्णन प्राप्त होता है, जिन्हें इस मण्डल में अनुक्त गोत्रीय होने के कारण आत्रेय कहा जाता है—**पंचमे मंडलेऽनुक्तगोत्रमात्रेयं विद्यात्** (ऋ० ५.१सा० भा०)। कुछ स्थलों पर इन ऋषियों को धनेच्छुक कहा गया है- **वसूयवो वसुकामा वयम्** — (ऋ० ५. २५. ९ सा०भा०)। यजुर्वेद में भी कुछ मंत्रों के द्रष्टा इन्हें ही माना गया है।

१४५.वामदेव गौतम (१०,१२,२३,३०,६९ आदि) - ऋग्वेद के चतुर्थ मंडल के ऋषि के रूप में वामदेव का नाम आता है— **चतुर्थं सूक्तं वामदेवस्यार्षम्...**(ऋ०४. ४ सा० भा०); गौतम ऋषि को वामदेव का पिता कहा गया है—**मा पितुर्गोतमादन्वियाय** —(ऋ० ४.४. ११); वामदेव को जन्म के पूर्व से ही ज्ञानी होना बताया गया है।

१४६.विभ्राट् सौर्य (६२८) - ऋग्वेद के १०.१७० सूक्त के देवता सूर्य हैं तथा इसके ऋषि विभ्राट् सौर्य हैं। सायण ने इनके ऋषित्व पर प्रकाश डाला है- **विभ्राट् विभ्राजमानो विशेषेण दीप्यमानः सूर्यो...। विभ्राट् विभ्राजमानं ... ज्योतिः सौरं तेजो जज्ञे प्रादुर्भवति** (ऋ० १०.१७०.१-२सा०भा०); सामवेद में इसी सूक्त के तीन मन्त्र संकलित हैं, जिनके ऋषि यही विभ्राट् सौर्य हैं।

१४७.विमद ऐन्द्र (४२०,४२२) - विमद को ऋग्वेदीय मंत्रों का द्रष्टा कहा गया है—**नोधस्त्वगस्त्ये विमदे नभाके** (बृह० ३-१२८); विमद ऋषि द्वारा दृष्ट ऋचाओं का पाठ बिना न्यूंख के करना चाहिए— **अन्यूंखया विराजो वैमदीश्च** — (ऐत० ब्रा०- ६.४.३); **विमदाख्येन महर्षिणा दृष्टा वैमद्यः** (ऐत० ब्रा० ६. ४. ३ सा०भा०) ; ऐन्द्र की परम्परा में ही विमद ऐन्द्र नामक प्रख्यात ऋषि हुए। विमद को इन्द्र अथवा प्रजापति का पुत्र माना गया है- **एवा ते अग्ने विमदो मनीषाम्** —(ऋ० १०.२०.१०); **यज्ञाय स्तीर्णबर्हिषे वि वो मदे शीरम्** —(ऋ०१०.२१.१)।

१४८.विरूप आंगिरस (२७) - विरूप की गणना अंगिरसों में की गयी है। ऋग्वेद में विरूप का वर्णन यत्र -तत्र प्राप्त होता है- **प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत्...** (ऋ० १. ४५. ३); **वाचा विरूप नित्यया...** (ऋ०८. ७५. ६); **हे विरूप नानारूपैतन्नामक महर्षे ...** (ऋ०८. ७५. ६सा० भा०)। ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के ४३ और ६४ सूक्त विरूप आंगिरस द्वारा दृष्ट हैं।

१४९.विश्वमना वैयश्व (१०३,१०४,१०६, १५८९ आदि) - विश्वमनस् का पैतृक नाम वैयश्व है। इनका ऋषित्व निम्नांकित तथ्यों से प्रकट हो जाता है—**इळिख्व त्रिंशद्विश्वमना वैयश्व...** (ऋ०८.

२३ सा० भा०); **ऋषे वैयश्व दम्यायाग्नये** (ऋ० ८.२३.२४); **वैयश्व व्यश्वस्य पुत्र हे विश्वमनो नामकर्षे...** (ऋ०८.२४.२४ सा० भा०)।

१५०.विश्वामित्र गाथिन (५३,६२,७६,७९,९८ आदि) - ऋग्वेद तृतीय मण्डल के द्रष्टा विश्वामित्र हैं— **अस्य मण्डलद्रष्टा विश्वामित्र ऋषिः** (सा० भा०) । इन्हें कुशिक का पुत्र कहा जाता है। **मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः** —(ऋ० ३. ३३. ५); इसी मन्त्र के भाष्य में आचार्य सायण कहते हैं— **कुशिकस्य राजर्षेः सूनुर्विश्वामित्रोऽहम्। हे कुशिकाः कुशिकपुत्रा योऽहं विश्वामित्रः** (ऋ० ३.५३.१२सा० भा०)। उनका यह नामकरण संभवतः उनके गुणों के आधार पर है— **विश्वस्य ह वै मित्रं विश्वामित्र आस विश्वं हास्मै मित्रं भवति य एवं वेद** -(ऐत० ब्रा०२९.४)। शुनःशेप को विश्वामित्र ने अपना दत्तक पुत्र बनाया और उसका नाम देवरात रखा । ऋग्वेद के ३. २४ में विश्वामित्र को ही विश्वामित्र गाथिन के रूप में उल्लिखित किया गया है— **अग्ने सहस्व गायत्रमाद्यानुष्टुबिति। ऋषिर्गाथिनो विश्वामित्रः** (ऋ० ३.२४ सा० भा०)।

१५१.वृषगण वासिष्ठ (५२४,१११६-१८) - वृषगण वासिष्ठ का ऋषित्व ऋग्वेद के नवम मण्डल के ९७वें सूक्त के कतिपय मन्त्रों का है। आचार्य सायण ने अपने भाष्य में लिखा है **—तृतीयस्य वृषगणः ।... पृथग् वसिष्ठा इन्द्रप्रमतिर्वृषगणः ...** (ऋ० ९.९७ सा० भा०)। इसके अतिरिक्त ७वें - **स्तोतायमृषिर्वृषगणो नाम—** (सा० भा०) तथा ८वें मन्त्र [**हंसा इवचरन्तो वा वृषगणा एतन्नामका ऋषयो—** (सा० भा०)] के द्रष्टा ऋषि होने का भी गौरव वृषगण वासिष्ठ को प्राप्त है।

१५२.वेन भार्गव (३२०,५६१,१८४६ आदि) - वेन भार्गव को ऋषित्व पद ऋग्वेद के ९.८५ में प्राप्त होता है। आचार्य सायण ने इस सूक्त की टिप्पणी करते हुए लिखा है—**इन्द्रायेति द्वादशर्चमष्टादशं सूक्तं भृगुगोत्रस्य वेनस्यार्षं पवमान सोमदेवताकम् ।..... इन्द्राय द्वादश वेनो भार्गवो द्वित्रिष्टुबंतमिति** (ऋ०९. ८५ सा०भा०); इसके अतिरिक्त वेन भार्गव का ऋषित्व ऋग्वेद के १०.१२३ सूक्त का भी प्राप्त होता है— **अयं वेन इत्यष्टर्चमेकादशं सूक्तं भार्गवस्य वेनस्यार्षम् त्रैष्टुभम्। वेनो देवता। तथा चानुक्रान्तम्-अयं वेनो वैन्यमिति** (ऋ०१०. १२३ सा० भा०)।

१५३.शंयु बार्हस्पत्य (३५, ३७,११५,३५१) - ब्राह्मण ग्रंथों में इनका आचार्य के रूप में उल्लेख किया गया है—**शंयुर्ह वै बार्हस्पत्यः सर्वान्** (कौषी० ब्रा० -३.९); **शंयुर्ह वै बार्हस्पत्योऽञ्जसा यज्ञस्य संस्थाम्** (शत० ब्रा० १.९.१.२४)। बृहस्पति के पुत्र को शंयु कहा गया है; अतएव बार्हस्पत्य शब्द वंश वाचक है।

१५४.शक्ति वासिष्ठ (५८३) - वसिष्ठ का उल्लेख मंत्रद्रष्टा ऋषि के रूप में किया गया है। सप्तम मंडल वसिष्ठ द्वारा दृष्ट है —**सप्तमं मण्डलं वसिष्ठोऽपश्यदिति—** (सा० भा०)। वसिष्ठ की विश्वामित्र से शत्रुता प्रसिद्ध है। शक्ति वसिष्ठ के पुत्र थे, उनकी भी विश्वामित्र से शत्रुता थी । विश्वामित्र ने सुदास के परिचरों द्वारा शक्ति का वध करा दिया था, षड्‌गुरु शिष्य ने इसका विस्तृत वर्णन किया है। वसिष्ठ के पुत्रहनन का उल्लेख अनेक स्थानों पर किया गया है— **भवतो वसिष्ठो वा एते पुत्रहतः सामनी अपश्यत्...**(ता० म० १९.३.८); ऋग्वेद ७.३२ के भाष्य में आचार्य सायण ने लिखा है— **मंडल द्रष्टा वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्र क्रतुं न इति प्रगाथस्यार्धर्चस्य च वसिष्ठपुत्रः शक्तिर्वसिष्ठो वा।**

१५५.शतं वैखानस (६२७) - वैखानस ऋषियों का एक सामूहिक वर्ग है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में मुनिमरण नामक स्थान में इनके मारे जाने का उल्लेख है। इनका वध रहस्यु देवमलिम्लुच् ने किया था। ये वैखानस इन्द्र के अतीव

प्रिय थे — **वैखानसा वा ऋषय इन्द्रस्य प्रिया आसं स्तान रहस्युर्देवमलिम्लुङ्मुनि मरणेऽमारयत्** (ता० म० १४.४.७); **वैखानस पुरुहन्मन्** (पंच० ब्रा०१४.९.२९) । 'शतं' पद संख्यावाची विशेषण है, जो उनके समूह की अधिक संख्या को सूचित करता है । जैसा कि आचार्य सायण ने लिखा है— **शतसंख्याका वैखानसाख्याः संहता ऋषयः** (ऋ० ९.६६) ।

१५६.शाकपूत (३५३) - सामवेद ३५३ के ऋषि शाकपूत हैं, वेदों में यही एक ऐसा स्थल है, जहाँ इनका उल्लेख किया गया है । अन्यत्र इनके विषय में कुछ उपलब्ध नहीं होता ।

१५७.शास भारद्वाज (१८६७-६८) - शास पद विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है । इसका आशय तीक्ष्ण या कठोर से है । शतपथ ब्राह्मण में इसी आशय को अभिव्यक्त किया है —**वज्रः शासः** (शत०ब्रा० ३.८.१.५); **असिं वै शास इत्याचक्षते** —(शत० ब्रा० ३. ८. १. ४) । भरद्वाज वंशीय अनेक आचार्यों को भारद्वाज कहा जाता है । भारद्वाजों का संबंध काण्व, पाराशर्य, कौशिक, आत्रेय आदि ऋषियों के साथ जोड़ा गया है । भारद्वाजों ने उपर्युक्त ऋषियों से शिष्यत्व ग्रहण किया था । पुराणों में भारद्वाज को आँगिरस् गोत्रोत्पन्न माना गया है । इन्हें सप्तर्षियों में प्रमुख माना गया है । इनका ऋषित्व सायणाचार्य के इस कथन से सिद्ध होता है— **प्रथमं सूक्तं शासनाम्न आर्षम्** (ऋ० १०.१५२) ।

१५८.शुनःशेप आजीगर्ति (देवरात) (१५,१७,२८,१५३ आदि) - शुनःशेप को ऐतरेय आरण्यक में विस्तार के साथ निरूपित किया गया है । आजीगर्ति वंशवाची पद है, जो संभवतः ऋचीक ऋषि की सन्तान होने के कारण पड़ा । जलोदर रोगग्रस्त हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित ने उन्हें बलि रूप में क्रय किया था, परन्तु बलि के निमित्त यूप-बद्ध शुनःशेप ने वरुण मंत्रों से, वरुण देव की आराधना की तथा मुक्त हो गये । कालान्तर में शुनः शेप ही विश्वामित्र के दत्तक पुत्र देवरात के रूप में प्रख्यात हुए ।

१५९.श्यावाश्व आत्रेय (१४१, ३५६,४७७) - श्यावाश्व अनेक सूक्तों के द्रष्टा कहे गये हैं—**श्यावाश्वस्य रेभतस्तथा शृणु यथा** ...(ऋ० ८.३७.७); **श्यावाश्वस्य सुन्वतोऽत्रीणां शृणुतं हवम्**...(ऋ० ८.३८.८) । इनके आश्रयदाता के रूप में पुरुमीढ, रथवीति आदि का नाम आता है । श्यावाश्व का वैददश्वि से दान ग्रहण करने का उल्लेख भी प्राप्त होता है । इनके पिता (पालक) के रूप में अर्चनानस् तथा अत्रि ऋषि का नाम आता है । इसीलिए इन्हें आर्चनानस और आत्रेय संज्ञा भी प्राप्त है ।

१६०.श्रुत कक्ष आंगिरस (११६,११८आदि) - वैदिक ऋषियों में श्रुतकक्ष का महत्त्वपूर्ण स्थान है— **अरमश्वाय गायति श्रुतकक्षो अरं गवे** (ऋ०-८.९२.२५) । **साम मंत्रों के द्रष्टा के रूप में श्रुतकक्ष विशेष रूप से प्रतिष्ठित हैं—सुतमिति श्रौतकक्षं क्षत्रसाम् प्रक्षत्रमेवैतेन भवति** (ता०म० ९.२.७) । इनके ऋषित्व को प्रमाणित करते हुए आचार्य सायण ने लिखा है— **द्वादशं सूक्तमाङ्गिरसस्य श्रुतकक्षस्य सुकक्षस्य वार्षमैन्द्रम्** (ऋ०८.९२ सा०भा०) ।

१६१.श्रुष्टिगु काण्व (३००) - श्रुष्टिगु काण्व का नाम ऋषियों के बीच अधिक प्रसिद्धि नहीं पा सका है । ऋग्वेद का ८.५१ वाँ सूक्त, जो वालखिल्य सूक्त के अन्तर्गत आता है, उसके सातवें मन्त्र के द्रष्टा के रूप में उल्लिखित हुआ है । यही मन्त्र सामवेद के ३०० क्रमांक पर संगृहीत है, जिसके ऋषि के रूप में सातवलेकर जी ने श्रुष्टिगु काण्व का नामोल्लेख किया है ; जबकि अजमेर वैदिक यन्त्रालय से मुद्रित सामवेद में वालखिल्य नाम ही दिया गया है ।

१६२.संवर्त आंगिरस (४४३,४५१) - ये अंगिरस् के वंशज थे। संवर्त आंगिरस ने मरुतों का अभिषेक किया था। इनकी प्रतिष्ठा यज्ञकर्ता के रूप में भी है। संवर्त, अंगिरस् के कनिष्ठ पुत्र थे। संवर्त की गणना त्यागी और विरक्त ऋषियों में की जाती है। मरुतों के यज्ञ सम्पादन में संवर्त ऋषि की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।यथा— **विंशं सूक्तमाङ्गिरसस्य संवर्तस्यार्षम्** (ऋ०१०.१७२ सा० भा०)।

१६३.सत्यधृति वारुणि (१९२) - सत्यधृति वरुण के पुत्र हैं। इनकी ऋचायें अधिकांशत: गायत्री और आदित्य देवताओं की स्तुति के निमित्त प्रयुक्त हुई हैं—**महीति तृचं चतुस्त्रिंशं सूक्तं वरुणपुत्रस्य सत्यधृतेरार्षं गायत्रमादित्यदेवताकम्। महि सत्यधृतिर्वारुणिरादित्यं स्वस्त्ययनं गायत्रं वा इति** —(ऋ०१०.१८५सा० भा०)।

१६४.सत्यश्रवा आत्रेय (४२१) - सत्यश्रवा का विवेचन ऋग्वेद और सामवेद में उपलब्ध होता है। उषा और अश्विन् देवों के निमित्त स्तोत्र सत्यश्रवा द्वारा ही दृष्ट हैं। सत्यश्रवा को आत्रेय से सम्बद्ध माना गया है—**महेनो अद्येति दशर्चं सप्तमं सूक्तमात्रेयस्य सत्यश्रवस आर्षं पांक्तमुषस्यं** (ऋ० ५.७९ सा० भा०)।कुछ स्थलों पर इन्हें वय्यपुत्र भी कहा गया है—**हे तादृशि देवि वाय्ये वय्यपुत्रे सत्यश्रवसि मय्यनुगृहाणेत्यर्थः** (ऋग्वेद ५.७९. १ सा० भा०); **सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसुनृते**—(ऋ०५.७९.२)।

१६५.सप्तगु आंगिरस (३१७) - सप्तगु मन्त्र द्रष्टा के रूप में प्रसिद्ध हैं— **प्र सप्तगुमृतधीतिं सुमेधाम्** (ऋ० १०.४७.६.)।इस मंत्र का व्याख्यान करते हुये सायण ने सप्तगु को आंगिरस गोत्रोत्पन्न माना है—**यः सप्तगुरांगिरसोऽगिरो गोत्रोत्पन्नोऽहं नमसा नमस्कारेण देवानुपसद्यः** (ऋ० १०.४७.६ सा० भा०)।

१६६.सप्तर्षि (५११-५२२) - वैदिक साहित्य में (ऋ० ९.६७ सा० भा०) भरद्वाज, कश्यप मारीच, गोतम राहूगण, अत्रिभौम, विश्वामित्र गाथिन, जमदग्नि भार्गव और वसिष्ठ इन सात ऋषियों का सामूहिक नाम सप्तर्षि है-**सप्तर्षीनु ह स्म वै पुरक्षि इत्याचक्षते** -(शत० ब्रा० २.१.२.४)। महाभारत में ब्राह्मण ग्रंथों के ऋषियों से भिन्न सूची दी गयी है, जो निम्न प्रकार से है- मरीचि, अत्रि, आंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य और वसिष्ठ।आचार्य सायण ने सप्तर्षियों के ऋषित्व का उल्लेख इस प्रकार किया है- **भरद्वाजकश्यपाद्याः सप्तर्षयः** (ऋ०९.१०७सा० भा०)।

१६७.सव्य आंगिरस (३७३, ३७६, ३७७) - ऋग्वेद में एक आख्यान विवेचित है, जो इनकी उत्पत्ति से संबंधित है। अंगिरा ऋषि ने पुत्र की कामना से देवताओं की उपासना की। उनके सव्य नामक पुत्र के रूप में इन्द्र ने स्वयं जन्म लिया था, जो स्वयं अनुपम था—**अंगिरा इन्द्रसदृशं पुत्रमात्मनः कामयमानो देवता उपासांचक्रे। तस्य सव्याख्येन पुत्ररूपेणेन्द्र एव स्वयं जज्ञे जगति मत्तुल्यः कश्चिन्मा भूदिति। स सव्य आंगिरसोऽस्य सूक्तस्य ऋषिः** (ऋ०१.५१सा० भा०)।

१६८.साधन भौवन (४५२) - भुवन के पुत्र को भौवन कहा गया है। भौवन ने समुद्र पर्यन्त पृथ्वी पर विजय प्राप्त की थी— **कश्यपो विश्वकर्माणं भौवनमभिसिषेच तस्मादु विश्वकर्मा भौवनः.....** (ऐत० ब्रा० ३९.७) साधन भौवन इसी परंपरा के ऋषि थे, जिसका उल्लेख आचार्य सायण ने इस प्रकार किया है—**इमा नु कमिति... भुवन आप्त्यः साधनो वा भौवनो वैश्वदेवम्.....** (ऋ०१०.१५७)।

१६९.सार्पराज्ञी (६३०-६३२) - सार्पराज्ञी मन्त्र द्रष्ट्री ऋषिका के रूप में प्रख्यात हैं। इनके ऋषित्व का प्रतिपादन करते हुए आचार्य सायण लिखते हैं—**आयं गौरिति तृचमष्टात्रिंशं सूक्तं गायत्रम्। सार्पराज्ञी नामर्षिका** (ऋ० १०.१८९)।इनकी ऋचाओं से स्तुति की जाती है—**सार्पराज्ञा ऋग्भिः स्तुवन्ति** (ता० म० ९.८.७)।

१७०.सिकता-निवावरी (५५७,५५९,८२१ आदि) - सिकता तथा नीवावरी— इन दोनों ऋषिगणों का अल्प ऋषित्व अर्थात् कुछ सूक्तों और मन्त्रों का ही ऋषित्व प्राप्त है। ऋग्वेद (९.८६) में इन दोनों के ऋषित्व को पुष्ट करते हुए आचार्य सायण ने अपने भाष्य में लिखा है—**...द्वितीयस्य दशर्चस्य सिकता इति नीवावरी इति द्विनामान ऋषिगणाः। ...प्रथमे सिकता निवावरी द्वितीये पृश्नयोऽजाः...**(ऋ० ९.८६ सा० भा०)।

१७१.सिन्धुद्वीप आम्बरीष (३३) - ऋग्वेदीय ऋषियों में अम्बरीष का उल्लेख किया गया है। सिन्धुद्वीप के अम्बरीष कुलोत्पन्न होने के कारण उन्हें आम्बरीष कहा जाता है। इनके विकल्प ऋषि के रूप में त्वष्टापुत्र त्रिशिरा का भी नाम लिया गया है-**अम्बरीषस्य राज्ञः पुत्रः सिन्धुद्वीपः...हि सिन्धुद्वीपो वाम्बरीष आर्षं गायत्रम्** (ऋ०१०.९ सा० भा०)।

१७२.सुकक्ष आंगिरस (१२२२-२४) - आंगिरस् गोत्र में उत्पन्न होने से इन्हें सुकक्ष आंगिरस की संज्ञा प्राप्त है। इनका उल्लेख प्रायः श्रुतकक्ष के साथ भी होता रहा है। साम तथा ऋक् मन्त्रों के द्रष्टा के रूप में इनका नाम उल्लिखित हुआ है— **पान्तमा व इति ... द्वादशं सूक्तमांगिरसस्य श्रुतकक्षस्य सुकक्षस्य वार्षमैन्द्रम्** —(ऋ०८.९२ सा० भा०)।

१७३.सुतम्भर आत्रेय (९०७-९) - अनुक्रमणी के अनुसार सुतम्भर ऋ०५. ११- १४ के द्रष्टा ऋषि हैं; किन्तु इन सूक्तों में यह शब्द नहीं आता। ऋ० ५.४४.१३ में विशेषण (सोमभरण करने वाले) के रूप में यह शब्द आया है। ऋग्वेद ९.६.६ में यह व्यक्ति परक नाम हो सकता है। (यदि सुतं भर के स्थान पर "सुतं भराय" पाठ माना जाय, जैसा कि राथ ने वोर्टेरबूख में लिया है)।सुतम्भर को ऋ० ५.११ का ऋषित्व निश्चित रूप से प्राप्त है।**जनस्य गोपा इति षड्चमेकादशं सूक्तमात्रेयस्य सुतंभरस्यार्षं जागतमाग्नेयम्** —(ऋग्वेद ५.११ सा० भा०)।

१७४.सुदास पैजवन (१८०१-३) - सुदास को पिजवन का पुत्र कहा जाता है, इसलिए वंशवाचक पैजवन पद का प्रयोग किया गया है— **पैजवनः पिजवनस्य पुत्रः** (नि० २.७.२४)। विश्वामित्र सुदास पैजवन के पुरोहित थे—**विश्वामित्र ऋषिः सुदासः पैजवनस्य पुरोहितो बभूव** (नि० २.७.२४)। सुदास को तृत्सुओं का अधिपति कहा गया है। सुदास ने उनके राजाओं को परास्त किया था। सुदास को शोभनदानी भी कहा गया है—**सुदासे कल्याणदानाय यजमानाय लोकं कर्ता च भवति** (ऋ० ७.२०.२ सा० भा०); **सुदासे शोभनदानाय मह्यं सन्तु** (ऋ०७.२५.३ सा० भा०)। इनके ऋषित्व का प्रतिपादन ऋ० सा० भा० में उपलब्ध है, जो इस प्रकार है—**पञ्चमं सूक्तं पिजवनपुत्रस्य सुदास आर्षमैन्द्रम्** (ऋ०१०.१३३)।

१७५.सुदीति-पुरुमीळ्ह आंगिरस (६,४९,१५५४-५५) - प्राचीन ऋषियों में पुरुमीळ्ह की गणना की जाती है—**यद्ध त्यद्वां पुरुमीळ्हस्य सोमिनः** (ऋ०१.१५१.२); **युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिर्दस्रा...**(ऋ० १.१८३.५.)। सुदीति इसी परंपरा के ऋषि थे। **सुदीति पुरुमीळ्हावृषी तयोरन्यतरो वा** —(ऋ० ८.७१ सा० भा०)। सुदीति को वैदिक ऋषि के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है— **नरोऽग्निं सुदीतये छर्दिः** (ऋ० ८.७१.१४)। इनको आंगिरस् गोत्रोत्पन्न माना जाता है, वैदिक सूक्तों के साथ इन्हें विशेष रूप से सम्बद्ध माना जाता है।

१७६.सुपर्ण (१८४३-४५) - वैदिक संहिता में सुपर्ण को ऋषि माना गया है, जैसा कि आचार्य सायण ने लिखा है— **तार्क्ष्यपुत्रस्य सुपर्णस्यार्षम्**..... (ऋ०१०.१४४ सा० भा०) । सुपर्ण को मध्यम स्थानीय देव के रूप में भी बतलाया गया है— **.....सुपर्णोऽथ पुरूरवाः** —(बृह० १.१२४.)। वेदों में सुपर्ण को सूर्य का विशेषण भी माना गया है।

१७७.सुवेदा शैलूषि (३७१) - शैलूषि शब्द वंश वाचक है। ऋषि परंपरा में सुवेदा शैलूषि का प्रमुख स्थान है। ऋ० १०.१४७ में 'शैलूषि' के स्थान पर 'शैरीषि' प्रयुक्त हुआ है, जो संभवतः 'रलयोरभेदः' के नियमानुसार है—**शिरीषपुत्रस्य सुवेदस आर्षम्......सुवेदाः शैरीषिः....**(सा० भा०)।

१७८.सुहोत्र भारद्वाज (३२२) - वैदिक काल में सुहोत्र भारद्वाज का विशेष विवरण उपलब्ध नहीं होता। ऋग्वेद के केवल छठे मण्डल के ३१-३२ वें सूक्त में इनका नामोल्लेख प्राप्त होता है, जिसका विवरण आचार्य सायण ने अपने भाष्य में इस प्रकार प्रस्तुत किया है-**अभूरेक इति पंचर्चमष्टमं सूक्तं भरद्वाजस्य सुहोत्रस्यार्षम्** (ऋ०६.३१ सा० भा०)।

१७९.सोमाहुति भार्गव (९४) - भृगुवंशीय ऋषियों को भार्गव कहा जाता है। भृगुओं को अग्नि पूजक कहा जाता है। संहिताओं में याज्ञिक पुरोहित के रूप में इन्हें माना गया है। संभवतः सोम की आहुति देने के कारण इन्हें सोमाहुति भार्गव के नाम से भी जाना जाता हो। आचार्य सायण ने लिखा है— **भार्गवः सोमाहुति नामक ऋषिः** (ऋ० २.४ सा० भा०)।

१८०.सौभरि काण्व (४७,५१,५८,१०८ आदि) - सौभरि और कण्व का वंशज होने के कारण इन्हें सौभरि काण्व कहा जाता है। संहिता एवं उपनिषदों में इनका उल्लेख किया गया है।जैसा कि आचार्य सायण ने लिखा है — **अदर्शीति चतुर्दशर्चं दशमं सूक्तं काण्वस्य सोभरेरार्षम्** (ऋ०८.१.३सा० भा०)। सर्ववेदविद् होने के कारण इन्हें बह्वृचाचार्य की पदवी प्राप्त हुई थी।

१८१.हर्यत प्रागाथ (११७, १४८०-८२) - ऋग्वेद के द्वितीय एवं अष्टम मण्डल के ऋषियों को प्रागाथ कहा जाता है। इस नामकरण का कारण यह है कि इन्हें प्रगाथ मंत्रों का दर्शन हुआ था। बृहती या ककुभ एवं सतोबृहती मंत्रों के समूह को प्रगाथ कहा जाता है, इसलिए इन मन्त्रों के द्रष्टा प्रागाथ हुए। हर्यत नाम के ऋषि जिनने ऋ० ८.७२ का दर्शन किया है प्रागाथ परम्परा के ऋषि हैं, अतएव इन्हें हर्यत प्रागाथ कहा जाता है। आचार्य सायाण ने इनके सम्बन्ध में लिखा है—**हविर्ष्कृणुना हर्यतः प्रागाथो हविषां स्तुतिर्वेति। प्रगाथपुत्रो हर्यत ऋषिः** (ऋ० ८.७२)।

१८२.हिरण्यस्तूप आंगिरस (६१२) - अंगिरस् कुलोत्पन्न होने के कारण इन्हें आंगिरस कहा जाता है- **.......त्वामांगिरसोऽङ्गिरसः पुत्रो हिरण्यस्तूपो...........** (ऋ० १०.१४९.५ सा० भा०)। ऋग्वेद १.३१-३५ सूक्त के द्रष्टा के रूप में हिरण्यस्तूप ऋषि का वर्णन प्राप्त होता है- **आङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः।......हिरण्यस्तूप आग्नेयं ....**(ऋ० १.३१)।

परिशिष्ट —२

सामवेदीय देवताओं का संक्षिप्त परिचय

१. **अंगिरा (१२)** - अंगिरस् स्वर्ग के सूनु तथा ब्रह्मा नाम के पुरोहित हैं। उनका सम्बन्ध यम के साथ है। सामान्य रूप से अन्य देवगणों के साथ भी उनका उल्लेख हुआ है। ऋ० में लगभग ६० बार यह नाम आया है।

२. **अग्नि (१-५१,५३,५४,५५ आदि)** - अग्नि (अगि गतौ अर्थात् जो 'ऊपर की ओर जाता है') वैदिक यज्ञ- प्रक्रिया का मूल आधार तथा पृथ्वी स्थानीय देव है। वैदिक देवों में इन्द्र के बाद अग्नि का स्थान है। ऋग्वेद १.१.१ में अग्नि को पुरोहित कहा गया है। इसके लगभग २०० सूक्तों में अग्नि की स्तुति है। अग्नि के तीन स्थान और तीन मुख्य रूप हैं। (१) आकाश में सूर्य (२) अन्तरिक्ष में विद्युत् तथा (३) पृथ्वी पर सामान्य अग्नि ।

३. **अग्नि —पवमान (६२७)** - कुछ स्थलों पर अग्नि के लिए पवमान शब्द आया है। **'यो वा अग्निः स पवमानः तदप्येतद् ऋषिणोक्तमग्निर्ऋषिः पवमान इति'** —(ऐत० ब्रा० २.३७ ।)

४. **अदिति (१०२)** - वेदों में अदिति का उल्लेख प्रायः उसके पुत्रों (आदित्यों) के कारण आया है। इन्हें वरुण, मित्र, अर्यमा आदि की माता अर्थात् देवमाता के रूप में जानते हैं। अदिति का भौतिक आधार अनन्त अन्तरिक्ष है। जहाँ बारह आदित्य भ्रमण करते हैं। इनकी सार्वभौम संज्ञा का संकेत ऋग्वेद-१.८९.१० में मिलता है। **"अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः"** ।

५. **अन्न (५९४)** - **अन्नो वै ब्रह्म—** आहार का प्रतिनिधित्व करने वाला ब्रह्म। 'अन्न' सामान्य भोजन (स्थूल आहार) की अधिष्ठात्री शक्ति को ब्रह्म के रूप में माना गया है।

६. **अपांनपात् (६०७)** - 'जल का पुत्र' जो अग्नि का विद्युत् रूप है। वेदों में प्रायः अग्नि के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद १.१२.६ में सविता के विशेषण के रूप में प्रयोग किया गया है।

७. **अश्विनीकुमार (१७४३-४५, १७५२ आदि)** - अश्व रूपिणी संज्ञा नामक सूर्य पत्नी के युगल पुत्र, जिन्हें देवताओं का वैद्य माना है। ये वैदिक आकाशीय देवता हैं। इनका 'उषा' से सम्बन्ध है। ये विपत्ति में सहायक, आश्चर्यजनक कार्य करने वाले, युवा, असत्यरहित एवं शारीरिक क्षतों (घाव) की पूर्ति करने वाले माने गये हैं।

८. **अप्वा देवी (१८६१)** - वैदिक देवताओं के प्रमुख प्रतिपादक ग्रन्थ बृहदेवता के १.११२ में रात्री, अग्नायी, अरण्यानी, श्रद्धा, इळा के साथ 'अप्वा' का नामोल्लेख हुआ है। इसी प्रकार २.७४ तथा ८.१३ में भी 'अप्वा' देवी का नाम बड़े सम्मान के साथ उल्लिखित हुआ है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के १०३ वें सूक्त के अन्तर्गत १२वें मन्त्र की देवता 'अप्वादेवी' ही हैं। इस तथ्य का प्रतिपादन आचार्य सायण ने अपने भाष्य में इस प्रकार किया है— **'अमीषां चित्तमित्यस्या अप्वाख्या देवी देवता ...**(ऋ० १०.१०३ सा० भा०)।

९. **आत्मा (६१३,६३०)** - कई मन्त्रों का देवता मन्त्रोल्लिखित नाम न होकर अन्य शब्द आया है। ऋग्वेद (सूक्त १०.१८९) में 'गौः' एवं 'पतङ्ग' शब्द पठित हैं, किन्तु सर्वा० में देवता 'आत्मा अथवा सूर्य' लिखा है। **'आयं गौः सर्पराज्ञी आत्मदेवतं सौर्यं वा'**। स्वामी दयानन्द जी ने 'आत्मा सूर्यो वा' देवता के रूप में स्वीकार किया है।

१०. **आदित्यगण (३९५, ३९७)** - देवमाता अदिति के पुत्र ऋग्वेद २.२७.१ में छः आदित्यों का, ९.११४.३ में सात और १०.७२.८ में ८ आदित्यों का उल्लेख है। सामान्य रूप से (द्वादशादित्य) १२ नाम माने जाते हैं इनके नाम हैं— धाता, मित्र, अर्यमा, पूषा, शक्र, वरुण, भग, त्वष्टा, विवस्वान्, सविता, अंशुमान् तथा विष्णु।

११.इन्द्र (५२, ११५-१४८ आदि) - इन्द्र वैदिक युग के सर्वप्रिय- ओजपूर्ण देवता हैं । ऋ० के प्राय: ३०० सूक्तों में इन्द्र का वर्णन है । इन्द्र को अग्नि का जुड़वा भाई कहा गया है । वे अन्तरिक्ष स्थानीय देवता हैं । वृत्रहन्ता, वज्री, विश्व-चर्षणि, कौशिक सदसस्पति, नदियों को प्रवाहित करने वाला एवं वृष्टिकर्ता आदि उनके विशेषण हैं ।

१२.इन्द्राग्नी (६६९-६७१) - इन्द्र और अग्नि युग्म के दोनों देवताओं में घना सम्बन्ध है । इन्द्र का अग्नि के योग में अन्य देवताओं की अपेक्षा अधिक सूक्तों में आवाहन किया गया है । सोमरस पीने वालों में मूर्धन्य दोनों देवता अपने रथ पर बैठकर सोम पीने के लिए यज्ञशाला में पधारते हैं ।इनको यज्ञ का पुरोहित भी कहा गया है ।

१३.इषवः (१८६३) - कृत्रिम और अचेतन पदार्थ भी मनुष्यों के लिए विशेष उपयोगी हैं । वैदिक मान्यता सर्वदिववादी है । जिसके अनुसार प्रत्येक पदार्थ का पृथक् देवता है । अचेतन पदार्थ भी दैवीय विग्रहवान् मानकर पूजे जाते हैं । जिसमें उपकरणों आदि को भी सम्मिलित किया जाता है । यहाँ भी 'बाण' का दिव्यीकरण किया गया है । ऋग्वेद ६.७५.१५ में 'इषु' (बाण) को इसी भाव से नमन किया गया है— **इष्वै देव्यै बृहन्नमः ॥**

१४.उषा (३०३, ३६७, ४२१, ४४३, ४५१) - वैदिक सूक्तों के अन्तर्गत उषा का निरूपण सुन्दरतम रचना के रूप में प्राप्त है । उषः कालीन अरुणिमा के प्राकृतिक दृश्य के आधार पर उषा का उल्लेख सौन्दर्य की देवी के रूप में हुआ है । उषा का गुण, उसका स्त्री सुलभ आकर्षण ही उसका दिव्य स्वरूप है । वेदों की २१ ऋचाओं में उसका उल्लेख हुआ है ।

१५.गौ (६२६) - वैदिक काल में गौ को प्रधान सम्पत्ति के रूप में माना गया । उस समय रोहित, शुक्ल, पृश्नि, कृष्ण आदि रंगों के नाम से उन्हें पुकारा जाता था । गौ को मरुतों की माता पृश्नि तथा देवमाता अदिति के रूप में भी उल्लिखित किया गया है । ऋग्वेद में गौ को लगभग १६ बार अघ्न्या (न मारने योग्य) कहा गया है ।

१६.तार्क्ष्य (३३२) - तार्क्ष्य की निष्पत्ति 'तृक्षि' से हुई प्रतीत होती है । निघण्टु (१. १४) ने तार्क्ष्य को अश्व का पर्यायवाची माना है । कुछ वैदिक ग्रंथों में उन्हें पक्षी के रूप में माना गया है । दधिक्रा के लिए प्रयुक्त हुए शब्दों में कहा गया है कि तार्क्ष्य ने अपनी शक्ति से पंचजनों को उसी प्रकार व्याप्त कर रखा है, जैसे सूर्य अपने प्रकाश से सलिलों को व्याप्त किये रहता है ।

१७.त्वष्टा (२९९) - त्वष्टा धुंधले स्वरूप वाले वैदिक देवों की श्रेणी में माने गये हैं । ऋग्वेद में लगभग ६५ बार इनका नामोल्लेख हुआ है । इनके भुजा और हाथ को छोड़कर किसी अन्य अवयव का वर्णन नहीं मिलता है । त्वष्टा अत्यन्त कार्य कुशल हैं । अपनी तक्षण-कला का प्रदर्शन करते हुए, वे विविध वस्तुओं को रचते हैं ।

१८.त्रैलोक्यात्मा (६४१-६५०) - भारतीय मान्यता ने जन, तप तथा सत्यलोक को त्रिलोक स्वीकारा है । आत्मा सभी का प्राण तत्त्व है— **'आत्मनो वा इमानि सर्वाण्यङ्गानि प्रभवन्ति ।** (शत०ब्रा०४.२.२.५) ये सभी घटक (अंग) आत्मा से प्रादुर्भूत हुए हैं ।तीनों लोकों के अधिष्ठाता देवता को 'त्रैलोक्यात्मा' कहा जाता है, जो सतत प्रकाशित रहने वाले हैं— **'यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिन् लोके स्वर्हितम्** (ऋ० ९.११३.७) ।

१९.दधिक्रा (३५८) - ऋग्वेद में दैवी अश्व के रूप में दधिक्रा का अनेकों बार उल्लेख मिलता है । इसको वेगवान् तथा पंखों वाला पक्षी जैसा कहा गया है । इसकी उपमा आक्रामक श्येन से भी दी गई है । कहीं-कहीं 'दधिक्र' शब्द से विद्युत् की ओर भी संकेत है ।

२०. द्यावा-पृथिवी (३७८, ६२२) - ये दोनों पिता-माता के रूप में प्राणियों की रक्षा करते हैं । निन्दा तथा निर्ऋति (पाप) से उन्हें बचाते हैं । उनका विग्रहत्व यज्ञ नेता के रूप में माना गया । लगभग एक सौ बार इस विग्रह

का उल्लेख हुआ है। स्वर्ग और पृथ्वी को रोदसी कहा गया है। इन्हें कहीं-कहीं पितरा, मातरा, जनित्री कहकर भी याद किया गया है।

२१.पर्जन्य (२११) - पर्जन्य एक वैदिक देवता का नाम है। ऋग्वेदीय देवताओं को तीन भागों में बाँटा गया है (१) पार्थिव (२) वायवीय (३) स्वर्गीय। वायवीय देवों में पर्जन्य की गणना होती है। पर्जन्य भी द्यौ एवं वरुण के सदृश वृष्टिदाता हैं। द्रुतगति से बरसने वाली बूँदों के नाते पर्जन्य को एक धड़कने वाला वृषभ कहा है, जो वीरुधों में वीर्य का विधान करता है। ऋ० में कहा गया है कि पृथ्वी माता और पर्जन्य पिता हैं। ये वनस्पतियों के उत्पादक-पोषक हैं, उन्हें अंकुरित और पल्लवित करते हैं। पर्जन्य देव की देख-रेख में वृक्षों पर भरपूर फल लगते हैं।

२२.पवमान सोम (१०१,४२७-४३२,४३६,४६३ आदि) - ऋग्वेद में इस शब्द का प्रयोग सोम के लिए हुआ है, जो स्वतः छलनी के मध्य से छनकर शुद्ध होता है। अन्य संहिताओं के उल्लेखों में इसका अर्थ वायु (बहने वाला) है। इसका शाब्दिक अर्थ 'प्रवहमान' (शुद्ध होने वाला या करने वाला) है। ज्योतिष्टोम यज्ञ के अवसर पर सामगान करने वालों के स्तोत्र-विशेष को पवमान कहा गया है। सवनों के अनुसार इनके तीन भेद हैं— (१) बहिष्पवमान (२) मध्यदिन पवमान (३) आर्भव पवमान। कुछ स्थलों पर अग्नि के लिए भी पवमान शब्द आया है। कुछ स्थलों पर पवमान शब्द वायु के लिए आया है।

२३.पुरुष (६१७-६२१) - **पुरि शेते इति पुरुषः** — [पुर अर्थात् शरीर में शयन करना] इस निर्वचन के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति पुरुष है, किन्तु ऋग्वेद के पुरुष सूक्त (१०-८०) में आदि पुरुष को विराट् पुरुष अथवा विश्व पुरुष के रूप में व्याख्यायित किया गया है। सृष्टि के मूल में स्थित मूल तत्व के अन्तर्यामी और अतिरेकी स्वरूप का प्रतीक 'पुरुष' है। इस सिद्धांत को सर्वेश्वरवाद कहते हैं। सांख्य दर्शन के अनुसार दो सनातन तत्व हैं— (१) प्रकृति (२) पुरुष। प्रकृति और पुरुष के सम्पर्क से विश्व का विकास होता है। पुरुष का अपने स्वरूप को भूल जाना ही बन्धन है और ज्ञान प्राप्त करके कैवल्य को प्राप्त होना 'मुक्ति'। ज्ञानी पुरुष के लिए प्रकृति संकुचित होकर अपनी लीला का संवरण कर लेती है और पुरुष मुक्त हो जाता है।

२४.पूषा (७५) - ऋग्वेद के एक प्रमुख देवता पूषन् हैं। वे पोषण से सम्बद्ध हैं। वे सभी जीवों को देखने वाले हैं। उनके रथ को अज खींचते हैं। उनका सूर्य से निकट सम्बन्ध है। ऋग्वेद में पूषन् के नाम का उल्लेख लगभग १२० बार हुआ है। एक सूक्त में इन्द्र के साथ और एक अन्य सूक्त में सोम के साथ उनकी देवता-युग्म के रूप में भी स्तुति हुई है। सांख्य के अनुसार उनका स्थान विष्णु से कुछ ऊँचा ही ठहरता है।

२५.प्रजापति (६०२) - वैदिक ग्रंथों में वर्णित एक भावात्मक देवता का नाम प्रजापति है। जो सम्पूर्ण जीवधारियों के स्वामी हैं। वास्तव में एक ही शक्ति के तीन रूप [ब्रह्मा, विष्णु, महेश] हैं। कुछ स्थलों पर प्रजापति शब्द प्रजापालक सविता, अग्नि आदि देवों के लिए भी आया है। सृष्टिकर्ता के अर्थ में भी प्रजापति का प्रयोग प्रायः हुआ है। ब्राह्मण ग्रंथों के अनुसार कभी वे सृष्टि के साथ उत्पन्न बतलाये गये हैं और कहीं पर उन्हें ब्रह्मा का सहायक देव बतलाया गया है।

२६.ब्रह्मणस्पति (५६,१४६३) - बृहस्पति और ब्रह्मणस्पति का ऐक्य माना गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण का सुस्पष्ट कथन है— **"बृहस्पते ब्रह्मणस्पते"** (तैत्ति०ब्रा० ३.११.४.२) बृहस्पति ही ब्रह्मणस्पति हैं। अन्यत्र ब्रह्म को ब्रह्मणस्पति माना गया है— **ब्रह्म वै ब्रह्मणस्पतिः** (कौषी० ब्रा० ८. ५.९.५) **ब्रह्मणस्पति को तीक्ष्ण शृंग, तीक्ष्ण बाण तथा ऋत की डोरी से संयुक्त बताया गया है— अराव्यं ब्रह्मणस्पते तीक्ष्ण शृंगो दृषन्निह** (ऋ० १०.१५५.२)।

२७.मरुद्‌गण (२४१,३५६,४०१,४०४,४३३,४६२ आदि) - ऋग्वेद में वायु एवं आँधी के देवों के रूप में मरुतों का अनेकशः वर्णन आया है । मरुतों की माता पृश्नि हैं । ऋग्वेद में मरुद्‌गण की स्तुति सम्बन्धी कुल ३३ ऋचायें हैं । मरुद्‌गण झंझावात के देवता हैं । उनके स्वभाव का विद्युत्, विद्युद्‌गर्जन, आँधी तथा वर्षा के रूप में वर्णन किया गया है । वृत्र के मारने में मरुद्‌गण ही इन्द्र के सहायक थे । इन्द्र ने अपने मण्डल से बाहर जाकर रुद्रमण्डल में अपने मित्र एवं सहायक ढूँढ़े, क्योंकि रुद्र के पुत्र (गण) होने के कारण मरुत् रुद्रिय कहलाते हैं । मरुत् देवता विद्युत् के अट्टहास से उत्पन्न होते हैं । आकाश के पुत्र हैं, नायक हैं, भाई हैं । बिजली-आँधी तूफान से पहाड़ी को भी हिला देते हैं । बादलों के साथ अन्धकार की सृष्टि करते हैं ।

२८.यूप (५७) - यज्ञीय पशुओं के बाँधने के खूँटे को 'यूप' कहा जाता है । यह प्रायः खदिरवृक्ष का होता है— '**खादिरो यूपो भवति** (शत० ब्रा० ३.६.२.१२) । यज्ञीय उपकरणों में सब से महत्वपूर्ण उपकरण है— यज्ञ-यूप, जिसका ऋग्वेद के तीसरे मंडल के आठवें सूक्त में वनस्पति या यूप के रूप में वर्णन प्राप्त होता है । यूप का यहाँ कुल्हाड़ी से सुकृत एवं यतस्रुक् पुरोहितों द्वारा निर्मित हुए रूप में वर्णन करके उससे प्रार्थना की गई है कि वे हविष् को देवताओं तक पहुँचा दें । गाड़े गये यूपों के विषय में कहा गया है कि वे देवता हैं और मंडराते हंसों की श्रेणियों (पंक्तियों) की तरह हमारे पास आये हैं— **हंसा इव श्रेणिशो यतानाः** .....(ऋ० ३.८.९) । यह स्थूल उपकरण में दिव्यीकरण (देव-भाव) भावना का सुन्दर निदर्शन है ।

२९.रात्रि (६०८) - ऋग्वेद में एवं अन्यत्र रात के लिये 'रात्री '(रात्रि) शब्द आये हैं (ऋग्वेद १.३५.१, १.९४.७) । साथ ही रात्रि एवं उषा को अग्नि का रूप कहा गया है । वे एक युग्म देवत्व की रचना करते हैं । दोनों आकाश (स्वर्ग) की बहिन तथा ऋत की माता हैं । रात्रि के लिए केवल एक ऋचा है । मैकडॉनल के अनुसार रात्रि को अंधकार का प्रतियोगी रूप मानकर "चमकीली रात" कहा गया है । इस प्रकार प्रकाशपूर्ण रात्रि घने अंधकार के विरोध में खड़ी होती है ।

३०.लिंगोक्त (६११) - लिंगोक्त पद द्वारा दो प्रकार की अवधारणाओं का विकास हुआ है— (i) प्रथमतः विभिन्न भागों में विभक्त सूक्तों में व्यक्त विशिष्ट लक्षणों के आधार पर उनमें निहित देवता को ही मुख्य देवता माना जाता है । ये देवता सामूहिक भी हो सकते हैं ।(ii) वेदों में अनेक सूक्त ऐसे भी हैं जिनमें एक देवता को ही विविध रूपों में प्रदर्शित किया गया है तथा उन्हीं के द्वारा विविध कार्यों का सम्पादन भी किया जाता है । ऐसे देवता को लिंगोक्त देवता की श्रेणी में रखा गया है ।

३१.वरुण (५८९) - वरुण एक प्रमुख वैदिक देवता हैं । ये सम्पूर्ण भुवनों के राजा हैं (ऋ० ५.८५.३) । ये देवों और मर्त्यों सभी के राजा हैं ।वरुण की सबसे बड़ी विशेषता है—उनका धृतव्रत होना ।द्यावा-पृथिवी उन्हीं के धर्म से विष्कंभित हैं (ऋ० ६.७०.१) । वे प्रमुख आदित्य हैं । उनका उल्लेख मित्र के साथ प्रायः आया है । मित्र को दिन का और वरुण को रात्रि का देवता कहा गया है । वरुण पापों की चेतावनी तथा दण्ड देने के लिये रोग भी उत्पन्न कर देते हैं । वरुण की इच्छा ही धर्मविधि है । वेदों में वरुण को प्रसन्न करने के लिए अनेक स्तुतियाँ हैं ।

३२.वर्म सोमवरुण (१८७०,७२) - वर्म कवच को कहते हैं । युद्ध के दौरान कवच शरीर की रक्षा करता है । देवताओं का भी वही कार्य है । ये किसी न किसी माध्यम से यह कार्य सम्पन्न करते हैं । इसलिए उस 'माध्यम' को भी देवता मान लिया जाता है । 'वर्म' इसी प्रकार के देवता हैं । सामवेद उत्तरार्चिक क्रमांक १८७० में यही प्रतिपादित है— **मर्माणि ते वर्मणाच्छादयामि** । तुम्हारे मर्मस्थलों को वर्म (कवच) से अच्छादित करते हैं ।

३३.वाजिन् (४३५) - वाजिन् पद को भी देवत्व प्रदान किया गया है । शत्रुओं को भयभीत करने के कारण इस देव को वाजिन् कहते हैं अथवा अन्नयुक्त आशय भी लिया जा सकता है, क्योंकि अन्नप्राप्ति वृष्टि द्वारा ही होती है । इसी तथ्य को प्रकारान्तर से मेघ या अन्नदेवता के रूप में भी व्याख्यायित किया जा सकता है— **वाजिनम् वेजनवन्तम् भयदातारं परेभ्यः । बलवन्तं वा। वाजोऽन्नं तद्वन्तं वा, वृष्ट्या तत्प्रदायकत्वात्** —(निरुक्त १०.२७.१ दु०) ।सायण ने वाजिन् पद से अश्वदेव अर्थ को स्वीकार किया है— **स वाजी वेजनवान् (भयवान् चलनवान्वा) अश्वरूपो देवः** (नि० २.२९.४ दु०) ।

३४.वायु (६००) - वैदिक देवताओं को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है । (१) पार्थिव (२) वायवीय (३) आकाशीय । वायु का पर्याय वात भी है । ये दोनों भौतिक तत्त्व एवं दैवी व्यक्तित्व के बोधक हैं । वायु से देवता और वात से आँधी का बोध होता है । वात के तीन प्रकार के स्वरूप (१) धूल-पत्ते उड़ाता हुआ (२) वर्षाकार (३) वर्षा के साथ चलने वाला झंझावात, जब कि वायु का स्वरूप बड़ा कोमल है ।प्रातः कालीन समीर (वायु) उषा के ऊपर साँस लेकर उसे जग।ता है, जैसे प्रेमी अपनी प्रेयसी को जगाता है ।इन्द्र और वायु युगल देव हैं । ऋषि जानते थे कि वायु ही जीवन का साधन है, स्वास्थ्य के लिए परम आवश्यक है तथा जीवनी शक्ति को बढ़ाता है ।

३५.विष्णु (२२२, १६२५-२७) - विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति "विष्लृ" धातु से हुई है, जिसका अर्थ सर्वत्र फैलना अथवा व्यापक होना है । महाभारत [५ ।७०;१३-२१४] के अनुसार विष्णु सर्वत्र व्याप्त हैं, वे समस्त ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं तथा विध्वंसक शक्तियों का दमन करते हैं । वे इसलिए विष्णु हैं कि वे सभी शक्तियों पर प्रभुत्व प्राप्त करते हैं । विष्णु सहस्र नाम के ऊपर शंकराचार्य ने भाष्य लिखा है । विष्णु का प्रसिद्ध नाम 'हरि' है । इसका अर्थ [पाप-दुःख] दूर करने वाला है । ब्रह्मयोगी ने कलिसन्तरण उपनिषद् [२ ।१ ।२१५] के अपने भाष्य में इसकी व्याख्या की है, जो अज्ञान (अविद्या) और इसके दुष्परिणान का अपहरण करता है— वह हरि है । इनका दूसरा नाम शेषशायी है । जब विष्णु शयन करते हैं तो सम्पूर्ण विश्व अव्यक्त अवस्था में पहुँच जाता है । व्यक्त सृष्टि के अवशेष का ही प्रतीक "शेष" है, जो कुण्डली मार कर अनन्त जलराशि पर तैरता रहता है । शेषशायी विष्णु नारायण कहलाते हैं, जिसका अर्थ है- 'नार (जल) में आवास करने वाला' नारायण का दूसरा अर्थ है-' समस्त नरों (मनुष्यों) का अयन (आवास)' ।

३६.विश्वेदेवा (९१, ३६८) - संपूर्ण देवों को जहाँ एक साथ उद्दिष्ट करने की आवश्यकता समझी गई है, वहाँ उन्हें 'विश्वेदेवाः' के नाम से अभिहित किया गया है । **"प्राणा वै विश्वेदेवाः"** —(शत० ब्रा० १४.२.२३७) । इनका यज्ञ में अपना महत्वपूर्ण स्थान है । ये सभी देवताओं के प्रतिनिधि के रूप में आवाहित किये जाते हैं, ताकि सर्व देवों के उद्देश्य से किये गये यज्ञ में कोई भी देवता अनामंत्रित न रह जायें । किन्तु कभी-कभी 'विश्वेदेवाः' को वसु और आदित्य जैसे गणों के साथ आवाहित किया जाता है । इनकी संख्या तेरह मानी गई है ।

३७.वेन (३२०, १८४६-४८) - यास्क ने इच्छा करने के आशय में (**'वेनतः कान्ति कर्मणः**) 'वेन्' क्रिया से व्युत्पन्न हुए वेन की व्याख्या की है (नि० १०.३८) । समस्त भूतों का प्राण होने के कारण वही उनमें गतिशील होते हैं । ऋग्वेद-१०.१२३ सूक्त के प्रसिद्ध द्रष्टा वेन भार्गव नामक ऋषि ने उन्हें वेन देवता कहा है । इन्हें भी इन्द्र के २६ नामों के अन्तर्गत माना गया है । वेन का उल्लेख उदारदानी एवं अत्यन्त मेधा सम्पन्न के रूप में हुआ है ।

३८.संग्रामाशिष (१८६६) - युद्ध मैदान- रणाङ्गण में भी सुरक्षित रखने वाली देवशक्ति की कल्पना जिस देव के रूप में की गयी है, वही 'संग्रामाशिषः' के नाम से जाना जाता है । मुण्डित केश शिशु की तरह युद्ध के मैदान में गिरने वाले बाणों से अपनी रक्षा हेतु जो प्रार्थना ऋषि करते हैं, उनकी भी प्रतिष्ठा एक देवता से कम कैसे हो

सकती है । निरुक्त में उपर्युक्त भाव को संग्राम पद के निर्वचन में अभिव्यक्त किया गया है— **संग्रामः कस्मात् ? संगमनाद्वा संगरणाद्वा सङ्गतौ ग्रामाविति** (नि० ३.२.९) ।

३९.सदसस्पति (१७१) - प्रजापति के आठ नामों में एक नाम सदसस्पति भी है । इन्हें कोई भी सम्पूर्ण सूक्त समर्पित नहीं किया गया है । ऋग्वेद की तीन ऋचायें (१-१८ ।६ से ८) ही इनको संबोधित हैं ।

४०.सरस्वती (१४६१) - ऋग्वेद में सरस्वती 'देवी' के रूप में कल्पित की गयी हैं । जो पवित्रता, शुद्धता, समृद्धि और शक्ति प्रदान करती हैं । उनका संबंध अन्य देवताओं— पूषा, इन्द्र, मरुद्गण के साथ बतलाया गया है । कई सूक्तों में सरस्वती का संबंध यज्ञीय देवता इडा और भारती से जोड़ा गया है । ये विद्या और कला की अधिष्ठात्री देवी मानी जाती हैं । पुराणानुसार यह ब्रह्मा की पुत्री मानी गयी हैं ।

४१.सरस्वान् (१४६०) - प्राकृतिक शक्तियाँ सर्वव्यापी हैं, जिनका चेतन तथा अचेतन रूप प्राप्त होता है । प्रत्येक पदार्थ का देवता पृथक्-पृथक् नहीं हैं, परन्तु प्रत्येक वस्तु देवाश्रयात्मक अवश्य है । सरस्वान् को मन कहा गया है—**मनो वै सरस्वान्** (शत० ब्रा० ७.५.१.३१) । मन के आनन्दायक होने के कारण इसकी तुलना स्वर्गलोक से की जाती है— **स्वर्गो लोकः सरस्वान्** (ता० म० १६. ५. १५) ।

४२.सविता (४६४,१४६२) - सविता एक प्रेरक शक्ति है । इन्हें द्युलोक और अन्तरिक्ष स्थानीय देवता भी कहा है ।सायण के अनुसार सूर्य उदय के पूर्व सविता होता है और उदयोपरान्त सूर्य होता है ।ऋ० के ११ सूक्तों में अकेले सविता की आराधना आती है । आदित्यों में भी इनकी गणना की जाती है । गायत्री या सावित्री मंत्र (ऋ० ३. ६२. १०) उन्हीं को संबोधित है ।

४३.सूर्य (४५८,६२८-६४०) - ऋग्वेद(१ ।११५ ।१) में सूर्य देवताओं में प्रमुख देवता हैं । मध्याह्न में इनका देवत्व सबसे अधिक विकसित होता है । वेदों में सूर्य का सजीव चित्रण पाया जाता है । सूर्य वास्तव में अग्नि तत्व का ही आकाशीय रूप है । वह अन्धकार में रहने वाले राक्षसों का विनाश करता है । वह दिनों की गणना और उनका संवर्द्धन भी करता है । सूर्य स्वयं विश्व के विधान का संरक्षक है; उनका चक्र नियमित अपरिवर्तनीय सार्वभौम नियम का अनुसरण करता है । विश्व का केन्द्र-स्थानीय है । वह जंगम और स्थावर सभी की आत्मा है— **सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च** । (ऋ० १.११५.१) ।

४४.सोम (४२२) - देवता के रूप में सोम का मानवीकरण अत्यधिक अपूर्ण है । उनके केवल ऐसे ही गुणों का उल्लेख किया गया है जो सभी देवों में सामान्य हैं । सोम की शक्ति से ही इन्द्र शौर्य के विविध कार्य करते हैं । सोम को दिशाओं का अधिपति तथा द्यावा-पृथ्वी का उत्पादक भी कहा गया है । सूर्य को उदय की ओर प्रेरित करने के कारण सोम को ज्योति प्राप्त कराने वाला भी कहा गया है ।

४५.हवींषि (१४८०-८२,१६०२-४) - सम्पूर्ण कार्य देव निमित्त हैं । प्रत्येक यज्ञीय वस्तु दिव्य गुण सम्पन्न है ।हवि देवताओं का प्रिय भोज्य पदार्थ है । हवि को यज्ञ की आत्मा कहा गया है- **हवींषि हवा आत्मा यज्ञस्य** (शत० ब्रा० १. ६. ३. ३९) ।हवि का सेवन देवगण अग्नि के माध्यम से करते हैं । अग्नि ही हवि को देवताओं तक ले जाती है । देवगण-सेवित होने से हवि को देवत्व की प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, जिनका उपभोग देवता करते हैं- **उक्तं हि हविः**—(शत०ब्रा० २. ६. २. ६) तथा **हविर्य्यज्ञैर्व्वै देवा इमं लोकमभ्यजयन्** (ता०म० १७. १. १८) ।

परिशिष्ट —३

सामवेद में प्रयुक्त छन्दों का विवरण

छन्द-नाम	पाद-विवरण	वर्ण-योग	उदाहरण
१. अतिजगती	१२+१२+१२+८+८	५२	३७०
२. अतिशक्वरी	क. १६+१६+१२+८+८	६०	१४८७, १
	ख. ८+८+८+८+८+१२+८	६०	४६४
३. अत्यष्टि	१२+१२+८+८+८+१२+८	६८	४५९
४. अनुष्टुप्	८+८+८+८	३२	८१
५. अष्टि	१६+१६+१६+८+८	६४	४५७
६. उपरिष्टाज्ज्योति[1] (त्रिष्टुप्)	११+८+८+८+८	४३	१८२१
७. उपरिष्टाद् बृहती	८+८+८+१२	३६	९३२
८. उष्णिक्[2]	८+८+१२	२८	९७
९. ऊर्ध्वा बृहती[3]	१२+१२+१२	३६	१४९४
१०. एकपदा गायत्री[4]	८	८	४५६
११. ककुप् (उष्णिक्)	८+१२+८	२८	३९९
१२. गायत्री	८+८ +८	२४	१-३४

---

१. यह छन्द पिङ्गलाचार्य के अनुसार ११ या १२ वर्णों का तथा ऋक् प्रातिशाख्यकार एवं ऋक् सर्वानुक्रमणीकार के अनुसार ८ वर्णों के पाद वाला होता है। यह 'अनुष्टुप्' में १२+१२+८=३२ वर्णों वाला तथा 'जगती में ८ +८+८+८+ १२=४४ वर्णों वाला भी होता है।

२. उष्णिक् छन्द का एक भेद परोष्णिक् का भी यही लक्षण है।

३. यह छन्द "महा बृहती" तथा 'सतो बृहती के नाम से भी जाना जाता है।

४. गायत्री आदि छन्दों के एक 'पाद' में जितने वर्ण होते हैं, उतने ही वर्ण का यदि कोई छन्द होता है, तो वह एकपाद या एकपदा छन्द कहे जाते हैं। यथा —८ वर्ण एकपाद गायत्री, १० वर्ण एकपाद विराट्, ११ वर्ण एकपाद त्रिष्टुप् तथा १२ वर्ण एकपाद जगती छन्द।

१३. जगती	१२ + १२ + १२ + १२	४८	६४, ६६
१४. त्रिपदा अनुष्टुप्[५]	११ + ११ + ११	३३	७२
१५. त्रिष्टुप्	११ + ११ + ११ + ११	४४	६३
१६. द्विपदाविराट्[६]	१० + १०	२०	४२७
१७. पंक्ति[७]	१२ + १२ + ८ + ८	४०	४०९
१८. पदपंक्ति[८]	५ + ५ + ५ + ५ + ५	२५	४३४
१९. पादनिचृत्[९]	७ + ७ + ७	२१	६८४
२०. पिपीलिका मध्याअनुष्टुप्[१०]	१२ + ८ + १२	३२	१३६४
२१. पुर उष्णिक्	१२ + ८ + ८	२८	४३५
२२. प्रगाथ[११] (विषमा बृहती, समासतो बृहती)	९ + ८ + ११ + ८ + ३६	७२	६७५, ६७६

---

५. यह निर्धारण शौनक और कात्यायन के अनुसार है। दूसरे आचार्यों के मतानुसार यह त्रिपदा विराट् गायत्री कहा जाता है।

६. गायत्री आदि छन्दों के एक पाद में जितने वर्ण होते हैं, उतने ही वर्णों के दो पाद वाले छन्द को द्विपदा विराट् या द्विपाद् विराट् कहते हैं। यथा ८ - ८ वर्णों का द्विपदा गायत्री ११-११ वर्णों का द्विपदा त्रिष्टुप् तथा १२-१२ वर्णों का छन्द द्विपदा जगती कहलाता है।

७. यदा-कदा पंचपदा पंक्ति छन्द भी प्राप्त होते हैं।

८. पदपंक्तिः पंच ॥ पिंगल सूत्र ३.४६, चतुष्कषट्कौ त्रयश्च ३.४७। वैसे तो पदपंक्ति में ५-५ वर्णों के ५ पाद होते हैं, किन्तु चतुष्क सूत्रानुसार पहले पाद में ४ वर्ण, दूसरे में ६ वर्ण तथा आगे के तीन पादों में ५वर्ण होते हैं। इसमें भी आचार्य शौनक, उव्वट आदि आचार्यों में मतभेद पाया जाता है।

९. किसी भी छन्द में जब १ वर्ण न्यून होता है, तो वह निचृत् कहलाता है। पाद निचृत् का तात्पर्य प्रति चरण में निर्धारित वर्णों से १ वर्ण कम होना, यथा- गायत्री छन्द में ८-८ वर्ण के ३ पाद होते हैं, अतः पादनिचृत् में ७-७ वर्ण के तीन चरणों में कुल २१ वर्ण होते हैं।

१०. तीन पाद वाले छन्द में जब मध्य पाद अन्य दोनों पादों से न्यून होता है, तब वह पिपीलिका (चींटी) मध्या कहलाता है। यथा- पिपीलिका मध्या ककुप् में ११ + ६ + ११ वर्ण, पिपीलिका मध्या अनुष्टुप् में १२ + ८ + १२ वर्ण होते हैं। इस पिपीलिका मध्या के विपरीत यदि मध्य पाद बड़ा तथा अन्य दोनों न्यून हों, तो वह यवमध्या छन्द कहलाता है। यथा- यवमध्या ककुप् ८ + १२ + ८ वर्ण, यवमध्या गायत्री ७ + १० + ७ वर्ण।

११. वेद मन्त्रों को विशेष कर सामवेद के मन्त्रों को गायन आदि की सुविधा की दृष्टि से एकाधिक मन्त्रों का समूह बना लिया जाता है- यही(प्रग्रथन) प्रगाथ कहलाता है। सामगान में तीन समान ऋचाओं को ग्रहण किया जाता है, परन्तु जब विषम छन्दस्क एक दो या तीन ऋचायें होती हैं, तो उन्हें गायन योग्य बनाने के लिए उनके ही पूर्वोत्तर आदि भागों को जोड़कर समछन्दस्क बना लिया जाता है, यही प्रक्रिया 'प्रगाथ' कहलाती है। सामवेद के उत्तरार्चिक में तीन प्रकार के प्रगाथ पठित हैं- (क) काकुभ (ककुप् + सतोबृहती पंक्ति) (ख) बार्हत (बृहती + सतोबृहती पंक्ति) तथा (ग) आनुष्टुभ (अनुष्टुप् + गायत्री + गायत्री)।

२३. बृहती	१२ +८ +८+८	३६	३५
२४. महापंक्ति[१२]	८+८+८+८ + ८ +८	४८	३७९
२५. यवमध्या गायत्री[१३]	७+१०+७	२४	५८२
२६. वर्धमाना गायत्री[१४]	६+७+८	२१	१४७४
२७. विराट् स्थाना (त्रिष्टुप्)	११+११+११+८	४१	१३७३, १८७५
२८. विराडुष्णिक्[१५]	७+७+१२	२६	३९८
२९. विष्टार पंक्ति	८+१२+१२+८	४०	१८१६
३०. शक्वरी[१६] (सोपसर्गा)	८+८+८+८+८+८+८	५६	६४१-६४९
३१. स्कन्धोग्रीवी बृहती[१७]	८ + १२ +८+ ८	३६	१४३२

---

१२. यह निर्धारण आचार्य कात्यायन के अनुसार है (षडष्टका वा महापंक्तिः) ; जबकि पंक्ति छन्द में ४० वर्ण व चार चरण (२जगती + २ गायत्री) होते हैं।

१३. तीन पाद वाले छन्दों में जब मध्य पाद का वर्ण अधिक होता है और आदि तथा अन्त के न्यून, तब वह यव मध्या (जौ के आकार का) छन्द कहलाता है।

१४. तीन पादों वाले छन्द में जब क्रमशः बढ़ते हुए वर्ण होते हैं, तो उसे वर्धमान छन्द कहते हैं।

१५. २६ वर्ण का एक छन्द और होता है, उसे स्वराट् गायत्री कहते हैं। यह छन्द वास्तविक वर्णों (२४) से २ अधिक अर्थात् २६ वर्णों वाला है। ऐसी स्थिति में विराडुष्णिक् और स्वराड् गायत्री में अन्तर कैसे किया जा सकता है ? इसका समाधान देवता पाद आदि के आधार पर होता है।

१६. उपसर्ग युक्त शक्वरी छन्द ही शक्वरी सोपसर्गा, कहा जाता है। सामवेद के महानाम्न्यार्चिक संज्ञक दस ऋचाओं में इनका प्रयोग हुआ है। इस आर्चिक में तीन-तीन मन्त्रों के तीन त्रिक हैं। इन्हें 'उपसर्ग' जोड़कर गेय बना लिया जाता है। इन ऋचाओं में दसवीं ऋचा पञ्चपुरीष पदों वाली है। इन्हें पुरीष-पद कहने का कारण इनमें वर्णित इन्द्र ही वेद में अग्नि— पूषन् आदि नामों से वर्णित हैं, इस प्रकार ये इन्द्र की पूर्णता के परिचायक हैं ।

१७. इस छन्द के अपरनाम उरोबृहती तथा न्यंकुसारिणी भी है। यह बृहती छन्द का एक उपभेद है।

वेद है ज्ञान, साम है गान। जब वेद के पद्यबद्ध मन्त्रों को गान विद्या से अनुप्राणित किया गया, तो 'सामवेद' बन गया। गान का सीधा सम्बन्ध भाव-संवेदना से है। अनुभूति की अभिव्यक्ति में शब्दों की सामर्थ्य छोटी पड़ जाती है। वेद अनुभूतिजन्य ज्ञान है, उसे व्यक्त करने में शब्द शक्ति अपर्याप्त है। ऋषि ने अनुभूतिजन्य ज्ञान को शब्दों में व्यक्त करने का प्रयास किया, किन्तु जब देखा कि पूरे प्रयास के बाद भी अभिव्यक्ति अनुभूति के स्तर की नहीं बन सकी, तो उसने ईमानदारी से कह दिया 'नेति-नेति'- 'यह बात पूरी नहीं हो सकी'।

* * *

परिशिष्ट-४

सामवेदमन्त्राणां वर्णानुक्रमसूची